MAHL-103

आधुनिक एवं समकालीन कविता

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय–हल्द्वानी 263139
फोन नं : 05946–261122, 261123
टोल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232 ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ला **निदेशक– मानविकी विद्याशाखा** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही'** निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, रामगढ़, नैनीताल
प्रो. एस.डी. तिवारी विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढ़वाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	**डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव** हिन्दी विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि. दिल्ली
प्रो. डी.एस. पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल	**प्रो. नीरजा टंडन** हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं सम्पादन

डॉ. शंशाक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ. राजेन्द्र कैड़ा** अकादमिक एसोसिएट, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. शंशाक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**1,2,3,4,5,6,11,12,13,14**
डॉ. मीता शर्मा विभागाध्यक्ष, हिन्दी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**7, 8, 9, 10**
प्रो. चन्द्रकला त्रिपाठी हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**15, 16**
डॉ. बीना पाण्डे बरेली, उत्तर प्रदेश	**17**
डॉ. समीर पाठक हिन्दी विभाग, फ़ैजाम पी.जी. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश	**18, 19, 20**

मुद्रण : मई–2016 **ISBN 978-93-84632-69-4**

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : जून 2012, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन (उ.मु.वि.वि.) – 263139

mail : studies@uou.ac.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर मुद्रित प्रतियाँ 1000

अनुक्रम

MAHL-103

आधुनिक एवं समकालीन कविता

पृष्ठ संख्या

खण्ड –1 आधुनिकता एवं हिन्दी साहित्य

इकाई 1 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का सन्दर्भ 1–19

इकाई 2 प्रमुख काव्य आन्दोलन : परिचय एवं आलोचना 20–41

इकाई 3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल : पद्य 42–66

इकाई 4 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग 67–89

इकाई 5 हिन्दी कविता का द्विवेदी युग : परिचय एवं आलोचना 90–107

इकाई 6 हिन्दी कविता की भाषा का सन्दर्भ : प्रयोग एवं समस्या 108–123

खण्ड –2 छायावादी कविता

इकाई 7 जयशंकर प्रसाद : पाठ एवं आलोचना 124–152

इकाई 8 सुमित्रानन्दन पन्त : पाठ एवं आलोचना 153–193

इकाई 9 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : परिचय, पाठ और आलोचना 194–227

इकाई 10 महादेवी वर्मा : पाठ एवं आलोचना 228–256

खण्ड –3 छायावादोत्तर हिन्दी कविता

इकाई 11 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता 257–275

इकाई 12 रामधारी सिंह दिनकर : पाठ एवं आलोचना 276–293

इकाई 13 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिन्दी कविता का विकास 294–309

इकाई 14 हरिवंशराय बच्चन : पाठ एवं आलोचना 310–328

खण्ड –4 नई और समकालीन कविता

इकाई 15	नई कविता : सन्दर्भ एवं प्रकृति	329–361
इकाई 16	अज्ञेय : पाठ एवं आलोचना	362–379
इकाई 17	मुक्तिबोध : पाठ एवं आलोचना	380–415
इकाई 18	शमशेर : पाठ एवं आलोचना	416–437
इकाई 19	श्रीकान्त वर्मा : पाठ एवं आलोचना	438–469
इकाई 20	केदारनाथ सिंह : पाठ एवं आलोचना	470–496

इकाई 1 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ
    1.3.1 आधुनिकता की अवधारणा एवं पृष्ठभूमि
        1.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति
        1.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति
        1.3.1.3 धार्मिक परिस्थिति
    1.3.2 आधुनिकता: सीमांकन तथा मतवैभिन्नता
    1.3.3 आधुनिकता संबंधी अवधारणा के आधार विचार
        1.3.3.1 अस्तित्ववाद
        1.3.3.2 मनोविश्लेषणवाद
        1.3.3.3 मार्क्सवाद
1.4 आधुनिकता और राष्ट्रीयता
1.5 आधुनिकता और साहित्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

एम.ए.एच.एल. 101 तथा 102 के अन्तर्गत आपने इतिहास और साहित्य का संबंध, हिन्दी साहित्य का इतिहास के कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या, आदिकालीन कविता, भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविता का अध्ययन किया। दो प्रश्नो पत्रों के सात खण्डों में आपने हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक की साहित्यिक परिस्थिति तथा साहित्य का अध्ययन किया। इस आठवें खण्ड के अंतर्गत आप आधुनिक एवं समकालीन कविता का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की यह पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन में आप आधुनिकता की अवधारण से परिचित होंगे। इस इकाई में आप आधुनिकता की परिस्थियों से विशेष रूप से परिचित हो सकेंगे। आधुनिकता का जन्म किस सामाजिक - ऐतिहासिक - धार्मिक एंव सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर होता है। आधुनिकता किन परिस्थितियों से विषय, आकार, स्वरूप, तर्क, सिद्धान्त तथा व्यवहार ग्रहण करता है, उन परिस्थितियों को समझना बहुत आवश्यक है।

अपने वर्तमान रूप में स्थित हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्षों का है। आधुनिक काल का प्रारंभ इतिहास में 1757 के प्लासी युद्ध के पश्चात् शुरू हो जाता है, किन्तु सही रूप में इसकी प्रक्रिया राजा राममोहन राय के आगमन के पश्चात् शुरू होती है। इसीलिए राजा राममोहन राय को भारतीय आधुनिकता या नवजागरण का अग्रदूत कहा गया है। प्रश्न है क्या आधुनिक काल और मध्यकाल में क्या कोई तात्त्विक भिन्नता हैं ? वस्तुतः आधुनिक साहित्य अपनें पूर्ववर्ती साहित्य से अपने विषय, रूप, विधा, तर्क, चेतना, स्वरूप एवं ट्रीटमेन्ट में काफी भिन्नता लिए हुए है। आधुनिकता की अवधारणा के पीछे दो संस्कृतियों की टकराहट प्रेरणा रूप में रही है। यूरोपीय आधुनिकता के पीछे कुस्तुन्तुनिया की 1453 की घटना का जिक्र किया जाता है।

किन्तु भारतीय आधुनिकता राजा राम मोहन के माध्यम से आया, जिस भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यिक धरातल प्रदान किया। आधुनिकता का दूसरा नाम पुनर्जागरण या नवजागरण भी है। पुनर्जागरण को परिभाषित करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - 'पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से पैदा हुई वैचारिक ऊर्जा का नाम है।' जाहिर है भारतीय संदर्भ में दो जातीय संस्कृतियों से तात्पर्य यूरोपीय इसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति से है। इसीलिए इतिहास में प्रायः आधुनिक काल के आने के पीछे अंग्रेजों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। खैर यह इतिहास का विवादित प्रसंग है, जिसका विस्तार हम यहाँ नहीं करेगे। इस इकाइं में हम परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जो आधुनिक साहित्य लानें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आधुनिक का शाब्दिक अर्थ है, इस समय, सम्प्रति, वर्तमान काल, हाल का, नया, वर्तमान समय का। इस दृष्टि से विचार करें तो केवल अपने समय के साहित्य को ही हम आधुनिक कहेंगे। किन्तु इतिहास के विभाजन में हम मध्यकालीन युग से वैचारिक भिन्नता के लिए आधुनिक शब्द का

व्यवहार करते हैं। किन्तु आधुनिक शब्द भी सापेक्षिक - प्रयोग है। प्रश्न है कि कोई भी समय कब तक आधुनिक रहेगा। 1850 का साहित्य आज पुराना पड़ चुका है, फिर भी उसे हम आधुनिक कहते है। , क्यों ? क्योकि सभी देशों में आधुनिक होने का अर्थ है मध्यकालीन सामंती मनोवृत्तियों से मुक्त होना। सुविधा के लिए अंतिम काल को प्रायः आधुनिक या समकालीन कह दिया जाता है। स्पष्ट है कि आधुनिकता का व्यवहार दो संदर्भी में होता - काल के अर्थ में एवं प्रवृत्ति के अर्थ में । कालागत प्रयोग के संदर्भ में समस्या हो सकती है कि आधुनिक काल के बाद कौन सा काल आयेगा ? हांलाकि 'उत्तर - आधुनिकता' की अवधारण कई विचाराकों ने रखी है। लेकिन फिर प्रश्न है कि उत्तर - आधुनिकता के बाद का अगला चरण क्या है ? काल के संदर्भ में इसीलिए आधुनिकता को प्रायः अंतिम काल मान लिया जाता है। आधुनिकता की दूसरी समझ इसे प्रवृत्ति के रूप में देखने का आग्रह करती है। मध्यकालीन सामंती मनोवृत्ति से मुक्त ऐहलौकिक दृष्टिकोण का नाम आधुनिकता है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है - " आधुनिकीकरण एक दृष्टिकोण है जो वैज्ञानिक विचारधारा से बनता है और वह मूलतः इस लोक से ही सम्बद्ध होता है। '' अतः मानव केंद्रित विशिष्ट तर्क पद्धति से युक्त वैचारिक दृष्टि का नाम आधुनिकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उस काल को आधुनिक कहा गया जिसमें भारत वर्ष में सभ्यता , संस्कृति, भाषा , धर्म, जीवन - पद्धति , राजनीति , शासन - तंत्र , वैज्ञानिक आविष्कार , तर्कसंवलित दृष्टि, धर्म के स्थान पर मानव की केंद्रीयता तथा असाम्प्रदायिक आग्रह को केंद्रीयता प्राप्त होती है।

1.2 उद्देश्य

''आधुनिकता एंव समकालील कविता'' का यह पहला खण्ड है। यह खण्ड की पहली इकाई है, जिसमें आधुनिकता के स्वरूप को साहित्यिक संदर्भ में विवेचन किया गया है । इसके पूर्व आपने आदिकाल, भक्तिकाल, तथा रीतिकाल जैसे कालखण्डों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन आप पूर्व के खंडों में कर चुके हैं। आधुनिकता के विविध सदर्भो को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- आधुनिकता की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिकता की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- आधुनिकता के नामकरण एवं सीमांकन का निर्धारण का सकेंगे।
- आधुनिकता संबंधी विभिन्न विचारधारा से परिचय प्राप्त कर सकेगे।
- आधुनिकता और राष्ट्रीय साहित्य के संबंधों का निर्धारण कर सकेंगे।
- आधुनिकता के संदर्भो से युक्त साहित्य से परिचत प्राप्त कर सकेंगे।

- आधुनिकताबोध को स्पष्ट करती विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

1.3 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आधुनिकता का प्रयोग दो संदर्भों में होता हे एक काल के अर्थ में और दूसरे प्रवृत्ति के अर्थ में। प्रवृत्ति का संदर्भ हमारे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है। आधुनिकता को 'ज्ञानोदय' कहा गया है जिसके भेदक लक्षणों में है: स्वचेतनता, तर्क का आग्रह, मानव की केंद्रीयता, असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का उभार, विचार - बृद्धि को प्राथमिकता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आग्रह। एक ओर यह मध्यकाल से भिन्नता की सूचना देता है, दूसरे यह औद्योगिक सभ्यता एवं आधुनिक तर्क - पद्धति का आश्रय ग्रहण करता है।

आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ कब से हुआ? यह प्रश्न हिन्दी साहित्य में निर्विवाद नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जहाँ इसे 1843 से मानते हें, वही मिश्रबंधु 1832 ई. से । डॉ नगेन्द्र ने 1842 से 1867 ई. के 25 वर्ष के काल को 'पृष्ठभूमि काल' कहकर आधुनिक काल का प्रारम्भ 1867 ई. अर्थात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'कविवचन सुधा' पत्रिका के प्रकाशन से माना है। इसी प्रसंग में रामविलास शर्मा ने आधुनिक साहित्य के केंद्र में 1857 की क्रान्ति को रखा है। वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिकता के प्रारम्भ को भाषाई भिन्नता के आधार पर रेखांखित करते हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई. में लिखा - 'हिन्दी नये चाल में ढली।' 'नये चाल' का अर्थ यहाँ भाषा के रीतिकालीन केंचुल उतार कर नये रूप-रंग ग्रहण करने से ही है। रीतिकालीन कविता के अंतिम बड़े आचार्य - कवि पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. में होती है। उसी समय के आसपास दो लेखकों का सृजन - कर्म प्रारम्भ होता है - राजा शिव प्रसाद सिंह 'सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह। इन दोनों लेखकों के अतिवादों (लक्ष्मण सिंह - भाषा की तप्समता पर अत्यधिक आग्रह तथा 'सितारे हिंद' - भाषा में फारसी शब्दों पर अत्यधिक आग्रह) के बीच भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के लोक - व्यंजना को रचना का आधार बनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व सामाजिक - सांस्कृतिक क्षेत्रों में आधुनिकता का प्रवेश हो चुका था, किन्तु साहित्य पिछड़ा हुआ था। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - समाज तो आगे बढ़ गया था, किन्तु साहित्य पीछे चल रहा था। भारतेन्दु ने साहित्य को समाज से जोड़ने का युगान्तकारी कार्य किया। आधुनिकता को विस्तारसे समझने के लिए आधुनिकता की पृष्ठभूमि, उसका आधार तर्क तथा उसके अवधारणा से संबंधित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

1.3.1 आधुनिकता की अवधारणा एवं पृष्ठभूमि

जैसा कि पूर्व में बताया गया कि मध्यकाल आस्था युक्त, भाववादी रूझान से युक्त मनोवृत्ति है,जबकि आधुनिकता विचार, तर्क, कार्यकारण से युक्त वैज्ञानिक दृष्टि है। आधुनिक और आधुनिकता प्रायः एक ही है। आधुनिकता विशेषण है, जबकि आधुनिक संज्ञा लेकिन डॉ बच्चन सिंह ने दोनों मे भेद किया है । उन्होनें लिखा है - " 'आधुनिक' 'मध्यकालीन' से अलग होने की सूचना देता है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का परिणाम है जब कि 'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का फल है। वस्तुतः नवीन ज्ञान - विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषय मानवीय स्थितियों के नये, गैर - रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।'' आधुनिकता की एक पहचान स्वचेतन वृत्ति भी है। स्वचेतनता का अर्थ क्षिप्रता से है। 'इतिहास क्या है ,? 'नामक प्रस्तक में ई. एच. कार ने स्वेचतनता को क्षिप्रता से जोड़ा है। अपने साहित्यके इतिहास में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने क्षिप्रता का व्यावहारिक उदाहरण देते हुए सिद्ध किया है कि आदिकाल, भक्तिकाल , रीतिकाल, तथा आधुनिक काल के संदर्भ में हम देखें तो पायेंगे कि क्रमश कालों, का समय कम हुआ है। जैसे उदाहरण स्वरूप कहें तो यह कि आदिकाल का समय 400 वर्षो का है, भक्तिकाल का 250 , रीतिकाल का 200 वर्षा का था आधुनिक काल के तो अनेक अवान्तर भेद अब तक हो चुके हैं। उपरोक्त उदाहरण मानव प्रवृत्ति की क्षिप्रता का ही सूचक है। आधुनिकता की एक पहचान 'तर्क - पद्धति' है। प्रश्न है कबीर से बड़ा तार्किक कौन है ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि कबीर के सारे तर्कों के केंद्र में ईश्वर है, मानव नहीं । अतः मानव केंद्रित दर्शन आधुनिकता की एक प्रमुख पहचान है। 'मानव ही सारी चीजों का मापदण्ड है।' इसका सूत्र वाक्य बना।

आधुनिकता की पृष्ठभूमि, खासतौर से हिन्दी आधुनिकता की पृष्ठभूमि में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक - सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों के बदलाव की भूमिका थी। विषय को स्पष्ट करने के लिए यहाँ संक्षिप्त रूप में आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर चर्चा की जा रही है।

1.3.1.1 राजनीतिक स्थिति

इतिहास द्वारा ज्ञात है कि 1857 ई. में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ था। किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में 1757 के प्लासी युद्ध की भूमिका कम महत्पूर्ण नहीं थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सहित्य के पीछे सन् 1857 की क्रान्ति की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं थी। 1857 ई के बाद साहित्य पहली बार मनुष्य के सुख दुःख सघंर्ष के साथ जुड़ता है। साहित्यके संदर्भ में इसे डॉ रामविलास शर्मा नवजागरण की प्रथम मंजिल उचित ही कहते हैं। लॉर्ड डलहौजी का विलय सिद्धान्त , विलियम वैटिंक का सुधारवादी कानून, लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति तथा 1854 का वुड घोषणा पत्र, ने भारतीय चेतना को प्रतिरोधी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई।

1.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति

अंग्रेजो के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज सामंती - धार्मिक मानसिकता से बद्ध समाज था, जिसमें जाति प्रथा, छुआछूत, ब्राह्याडम्बर अपने चरम पर था। ऐसी स्थिति अंग्रेजो ने भले ही अपने फायदे के लिए रेलगाड़ियॉं चलाई, विभिन्न विश्वविद्यालय खोले, पुस्तक प्रकाशन किया, मैक्समूलर द्वारा संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद हुए किन्तु यह सारे कार्य उनकी औपनिवेशिक मानसिकता से संचालित थे। अंग्रजो के उपर्युक्त कार्य अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय चेतना निर्मित करने में सहायक भी हुए, इसमें संदेह नहीं।

1.3.1.3 धार्मिक परिस्थिति

भारत में अंग्रेजी शासन का आधिपत्य पुनर्जागरण लाने में सहायक हुआ। अंग्रेजो के आने से पूर्व देश मे मुस्लिम सत्ता केंद्र में थी, लेकिन उनका प्रभाव भी केंद्रीय स्तर पर संगठित नहीं रह गया था। मुगल शासन का अंतिम बादशाह बहादुर सिंह 'जफर' तो 1857 की क्रान्ति का नेतृत्व भी किया। हिन्दू राज्य सामंती भोग - लिप्सा में इतने तल्लीन थे कि उन्होंने मुगल सत्ता कों 'कर' देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। हिन्दू राजाओंकी भोगलिप्सा का सबसे बढ़िया उदाहरण है - हिन्दू रीतिकालीन साहित्य । कहने का अर्थ यह है कि जब अंग्रेज इस देश में आये तो धार्मिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम सत्ताएँ विघटन की स्थिति में थी। अंग्रेजों ने सबसे घातक कार्य किया - हिन्दू -मुस्लिम धर्म की तुच्छता दिखाकर ईसाई संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रचार - प्रसार करना। सेना में गाय एवं सूअर के चर्बी से बने कातूस ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मो को अपने धर्म के प्रति जागरूक किया।

अभ्यास प्रश्न 1

क) नीचे कुछ कथन दिए गए हैं । कथन की पुष्टि के लिए विकल्प भी दिए गए है। सही विकल्प को ()चिह्न्ति कीजिए.

(1) भारतीय नवजागरण का अग्रदूत कहा गया है।

(भारतेन्दु ,राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी)

(2) हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश कराने वाले साहित्यकार हैं?

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सूयकांतत्रिपाठी, महावीर प्रसाद द्विवेदी)

(3) आधुनिकता को प्रयोग हमम मुख्यतः (दो/तीन/चार) संदभों में करते हैं।

(4) आधुनिकता का भेदक लक्षण है। (आस्था, ईश्वर, मानव)

(5) हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ वर्ष (1832, 1842, 1850) को रेखांकित किया जा सकता है।

1.3.2 आधुनिकता: सीमांकन तथा मत. भिन्नता

आधुनिकता की सही पहचान मानवीय जीवन में आए मूलभूत बदलाव के संदर्भ से रेखांकित की जा सकती है। अतः आधुनिक काल कब से शुरू हुआ, इसे हम यांत्रिक ढंग से लागू नहीं कर सकते। यूरोपीय आधुनिकता का समय 1453 ई. की घटना है, लेकिन यूरोपीय आधुनिकता का सही रूप में आगमन 16 वी. शताब्दी के पूर्व नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार भारतीय आधुनिकता को राजाराम मोहन राय के आगमन से जोड़कर देखा गया है। 1829 ई. सतीप्रथा के खिलाफ कानून पारित होता है . यह सामंती मानसिकता के खिलाफ एक सांवैधानिक पहल थी। इसी प्रकार 1826 ई. में प्रथम हिन्दी समाचार पत्र का प्रकाशन अपने आप में महत्वपूर्ण घटना है। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, तदीय समाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं ने आधुनिक मानोवृत्ति बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । 1857 की क्रान्ति ने नवीन चेतना निर्मित करने में कितनी बड़ी भूमिका निभाई, यह सर्वविदित है। इसी क्रान्ति को साहित्यिक रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से प्राप्त होता है। कहने का आशय यह है कि आधुनिकता की निश्चित सीमा रेखा खींचना कठिन कार्य है, फिर भी मोटे रूप में 1850 के वर्ष को हम, सुविधा की दृष्टि से विभाजक वर्ष मान सकते है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया कि आधुनिकता की पहचान का भेदक लक्षण है - वर्तमान बोध। अतीत के प्रति सम्मोहन का भाव रोमानी वृत्ति है और वर्तमान का सजग बोध आधुनिकता का लक्षण है। भाव के प्रति आसक्ति भी रोमानी वृत्ति है, जबकि आधुनिकता बृद्धि को केंद्र में रख कर चलती है। भावुकता इतिहास को नकार कर चलती है, जबकि आधुनिकता बोध इतिहास को केंद्र में खड़ा करता है यह अलग बात है कि इतिहास को वह मानवीय संदर्भों में विश्लेषित - विवेचित एवं मूल्यांकित करता है। इतिहास बोध वर्तमान के केंद्र में रख कर चलता हैं। वर्तमान से युक्त होने का अर्थ तर्कयुक्त होना है। तर्कयुक्त होने का अर्थ वैज्ञानिक कार्य - कारण से युक्त होना है। वैज्ञानिक कार्य - कारण युक्त होना सामाजिक आवश्यकता की निर्मिति है। लेकिन उपर्युक्त सारी सैद्धान्तिकी पूँजीवादी युग के विकास काल के समय निर्मित हुई। पूँजीवादी विघटन के दौर में आधुनिकता बोध की पहचान विसंगति, विडम्बना, तनाव, अंतर्विरोध एवं मूल्य – च्युति को पकड़ने की सजग दृष्टि से है। इस दृष्टि से आधुनिक होना ओर आधुनिकतावादी होने में फर्क हो जाता है। अपने संकीर्ण अर्थ में आधुनिकतावादी होने का तात्पर्य पूँजीवादी अंतर्विरोधों से युक्त होने से है।

1.3.3 आधुनिकता संबंधी साहित्यिक अवंधारणा के आधार विचार

आधुनिकता की समुचित रूपरेखा निर्मित करने के पीछे किसी एक विचार, किसी एक दर्शन या किसी एक व्यक्तित्व की भूमिका नहीं थी, वरन् यह कई व्यक्तित्वों, व दर्शन का साम्यीकृत प्रयास था। ऐसा नहीं था कि ये विचारक किसी एक बिन्दृ पर सहमत थे, बल्कि सामाजिक परिस्थितियों की अनिवार्यता ने परस्पर विरोधी विचारों को भी एक युग निर्मित करने का आधार प्रदान कर दिया। इस अवधि में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक विचारधाराओं का आगमन हुआ। सामाजिक चिंतकों एवं दार्शनिक मतों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर व्यापक रूप में पड़ा। यहाँ इस संबंध में संक्षिप्त चर्चा उचित होगी।

1.3.3.1 अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद का संबंध प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त पैदा हुई मानवीय सजगता या व्यक्ति की वैयक्तिकता या 'यूनीकनेस' की प्रवृत्ति से है। अस्तित्ववाद ऐसा दर्शन है जो जिया जाता है। सोरेन कीकेंगार्ड, नीप्शे, कार्ल जेस्पर्श, हेडेगर, गैब्रिल मार्शल, पास्कल तथा सार्त्र ने अस्तित्ववाद को दार्शनिक ऊँचाई प्रदान की । जैसा कि कहा गया अस्तित्ववाद का संबंध बदली हुई परिस्थितियों से है, जिसमें मूल्यों का विघटन होने के पश्चात् 'ईश्वर' की मृत्यु' की उदघोषणा ने मनुष्य को क्षुद्र व असहाय बना दिया। 'आधुनिक ज्ञान' - विज्ञान ने मनुष्य के दृढ़ सिद्धान्तों को खोखला सिद्ध कर दिया । आइंस्टीन के सापेक्षतावाद ने पुराने सारे प्रतिमानों को उलट दिया.

अस्तित्ववाद में 'अस्ति' मनुष्य के होने पर जोर देता है। इस दर्शन में कहा गया है सत्य या गुण के पहले अस्तित्व होता है। मनुष्य वही होगा जो अपने को बनाएगा। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के साथ प्रामाणिक ढंग से जीना चाहता है। इस दर्शन में 'मै' के 'मैं पन' पर बल है। दूसरों की सत्ता इसीलिए है कि 'मैं' की सत्ता है। जीवन के बुनियादी प्रश्नों जैसे - स्वतंत्रता, अकेलापन जीवन, मृत्यु, दुःख , निराशा, त्रास , अजनबियत, अलगाव, विंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध, ऊब, समाज, व्यक्तित्व एवं इतिहास इत्यादि पर अस्तित्ववाद गहनतापूर्वक विचार करता है। अस्तित्ववाद उन सारे निश्चयवादी सिद्धान्तों पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है जो व्यक्ति को सीमित बंधनों में बाँधते हैं। सार्त्र के अनुसार मनुष्य होने की बुनियादी शर्त - स्वतंत्रता है। किन्तु यह स्वतंत्रता विद्रोह, चुनाव, निर्णय, क्रिया और दायित्व बोध से बँधी हुई है। हिन्दी में प्रयोगवाद से अस्तित्ववाद की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, किन्तु 'नयी कविता' में असका व्यापक प्रभाव पड़ा। छठें - सातवें दशक में संपूर्ण -हिन्दी साहित्य के बड़े हिस्से को अस्तित्ववाद ने प्रभावित किया था।

1.3.3.2 मनोविश्लेषणवाद

आधुनिकता को तार्किक एवं वैचारिक आधार प्रदान करने में मनोविश्लेषणवाद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्त्तक सिग्मंड फ्रायड हैं फ्रायड सिद्धान्त के अनुसार समस्त कलाओं के मूल में मनुष्य की अतृप्त एवं दमित इच्छाएँ काम करती हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य की चेतन से अधिक अवचेतन मनोवृत्ति प्रभावी व असरकारक होती है। ये कुंठित अवचेतन वृत्तियाँ कला के माध्यम से उदात्तीकृत होती हैं । इसी क्रम में फ्रायड का स्वप्न - सिद्धान्त भी काफी चर्चित हुआ। उन्होने बताया कि मनुष्य के स्वप्न उसकी दमित इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति हैं। मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अन्य विचारकों में एडलर, युंग, मैकडुगल, फ्रेम, होने, सलीवन, कार्डोनर एवं मार्गरेट मीड प्रमुख हैं। हिन्दी साहित्य पर मनोविश्लेषणवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा। अज्ञेय, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, 'अश्क', भगवतीचरण वर्मा, डॉ. देवराज, नरेश मेहता, मुक्तिबोध पर मनोविज्ञान का व्यापक असर है।

1.3.3.3 मार्क्सवाद

काल मार्क्स के दार्शनिक - राजनीतिक विचारों को मार्क्सवाद कहा गया है। मार्क्सवाद को समझने के लिए 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' आधार स्तम्भ है। इसके अतिरिक्त मार्क्स एवं एंगेल्स द्वारा लिखित 'दास कैपिटल' (पूँजी) भी मार्क्सवाद को समझने में महत्पूर्ण भूमिका निभाती है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज का बुनियादी आधार आर्थिक है। साहित्य, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, कानून आदि बुनियादी आधार के ऊपरी ढाँचे (सुपर स्ट्रक्चर) हैं। आर्थिक ढांचे में परिवर्तन आने पर समाज के ऊपरी ढाँचे भी परिवर्तित हो जाते है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को समझने के लिए मार्क्स ऐतिहासिक भौतिकवाद का आधार ग्रहण करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में इतिहास की विभिन्न मंजिलों - आदिम साम्य व्यवस्था, सामंतीय प्रणाली, पूँजीवादी व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था के आधार पर मार्क्स समाज की व्यवथा करता है। मार्क्सवाद का यह प्रसिद्ध सूत्र है कि अभी तक दार्शनिकों ने केवल समाज की व्याख्या की है, अब समय है उसे बदलने का । इस प्रकार मार्क्सवाद जीवन का क्रियात्मक दर्शन है। मार्क्स ने लिखा है मनुष्य की चेतना उसके जीवन को निर्धारित नहीं करती , बल्कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। लेकिन यह संबंध सरल - सीधा नहीं है, बल्कि द्वन्द्वात्मक संबंध है। इसीलिए मार्क्सवाद को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' भी कहते हैं। ट्राट्स्की, ब्रेश्ट, एडोर्नी, गिओर्खो प्लाइखानोव, जॉर्ज लुकाच, ब्लाक, फिशर, बैंजामिन, लूसिए गोल्डमन ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर व्यापक रूप से विचार किया है। हिन्दी साहित्य का प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी दर्शन का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। शिवदन सिंह चौहान, अमृतराय, रांगेय राघव, यशपाल, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन केदारनाथ अग्रवाल इत्यादि प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) निम्नलिखित के सही उत्तर को चिह्नित कीजिए -

1. किस दर्शन में प्रामाणिक जिन्दगी के प्रश्न को उठाया गया है ?

(मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, भाववाद)

2. किस दर्शन में आर्थिक तंत्र को प्रमुख माना गया है?

(मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, बुद्धिवाद)

3. किस दर्शन में मनुष्य के अवचेतन को महत्वपूर्ण माना गया है?

(मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, नवजागरण)

4. किस दर्शनिक ने समाज को बदलने की बात पर बल दिया?

(नीप्शे, सार्त्र, फायड, मार्क्स)

2) विकल्प में दिए गए शब्दों से रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिएं

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता .... के माध्यम से आया। (राजा राममोहन राय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दयानन्द सरस्वती)

2. हिन्दी कविता का प्रयोगवाद .... दर्शन से प्रभावित रहा है। (मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, भाववाद)

3. हिन्दी कविता का प्रगतिवाद ....दर्शन से प्रभावित रहा है। (मार्क्सवाद, नवजागरण, अस्तित्ववाद)

4. .... मार्क्सवादी साहित्यकार है। (यशपाल, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी)

1.4 आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि 1850 की तिथि सुविधाजनक होने के कारण तथा नवीन प्रवृत्तियों को संकेत प्रदान करने के कारण प्रायः विचारकों द्वारा आधनिकता के प्रस्थान बिन्दु के रूप में स्वीकृत की जा चुकी है। हिन्दी आधुनिकता के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म वर्ष भी यही है अतः इसे भेदक तिथि मानने में सुविधा हो जाती है। इसी क्रम में सन् 1857 की क्रान्ति वह घटना है जो राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना की संक्षिप्त चर्चा करना उचित होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का

साहित्य तो सीधे रूप में पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति है, इसके साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी, छायावादी आन्दोलन, जयशंकर प्रसाद के नाटक, प्रेमचन्द का कथा - साहित्य, रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना कृत्तियाँ, राष्ट्रीय - सांस्कृतिक आन्दोलन, प्रगतिवादी साहित्यान्दोलन व्यापक रूप में राष्ट्रीय चेतना की ही सांस्कृतिक - साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। साहित्य के संदर्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम जातीयता का समावेश किया । जातीयता की अभिव्यक्ति प्रायः भारतेन्दु मण्डल के सदस्य लेखकों की कृतियों में हुआ है। ‘निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल ’ भारतेन्दु के जीवन का सूत्र वाक्य बना। ‘निज भाषा’ की अवधारणा ही जातीयता का संकेत प्रदानकर रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ‘भारत दुर्दशा’ तथा ‘अंधेर नगरी ’ नाटक राष्ट्रीय बोध की ही प्रतिध्वनियाँ है। “अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा ।। ’’ ××× “अंग्रेज राज सुख साज सब भारी/ पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।’’ जैसी पंक्तियाँ बिना राष्ट्रीय चेतना के कैसे लिखी जा सकती थीं। स्वदेशी वस्तुओं के प्रति जागरूकता का कार्य यानी प्रतिज्ञा ’- पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 24 मार्च 1874 ई. को ‘कविवचन - सुधा’ में प्रकाशित किया था। इसी क्रम में बालकृष्ण भट्ट का प्रसिद्ध निबंध ’साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है’ तथा स्वंय भारतेन्दु का प्रसिद्ध बलिया व्याख्यान ‘भारतोन्नति कैसे हो सकती है ? सशक्त राष्ट्रीय प्रतिध्वनियाँ हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषा - साहित्य परिस्कार की निस्पत्ति अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरि ओध’ तथा मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य है। अगली कड़ी छायावाद युग का सांस्कृतिक जागरण है। इसी युग में प्रेमचन्द का जातीय साहित्य राष्ट्रीय साहित्य बनता है। जयशंकर प्रसाद के नाटक अपने पुनरूत्थानवादी चेतना के बावजूद राष्ट्रीय चेतना को व्यापक विमश के साथ उठाते हैं। छायावाद के बाद तो ‘राष्ट्रीय - सांस्कृतिक’ नामक एक आन्दोलन ही चलता है, जो साहित्य में ऐतिहासिक महत्व रखता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना का रूपान्तरण आधुनिकता के बौद्धिक विमर्श के रूप में हुआ। बौद्धिक विमर्श ने क्षणवाद, प्रामाणिक अनुभूति, भोगा हुआ यर्थाथ, मानववाद, लघुमानव, नक्सलवाड़ी, स्त्री - दलित - आदिवासी विमर्श, संप्रेषण, समानानुभूति, विरोधाभास, विसंगति, विडम्बना, मिथक, प्रतिबद्धता, प्रासंगिकता, तनाव तथा ईमानदारी जैसे पारिभाषिक को राष्ट्रीय चेतना का स्पर्श दिया।

1.5 आधुनिकता और साहित्य

आधुनिक काल से पूर्व साहित्य का स्वरूप धार्मिक - आदर्शवादी - भाववादी रूझानों से संचालित था । इस प्रकार के साहित्य में तर्क की जगह श्रद्धा और विश्वास की प्रमुखता थी। लेकिन यह कहना कि मध्यकालीन काव्य में तर्क के लिए गुंजाइश नहीं थी, अधूरा सच होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास की गोपियो की तर्कशक्ति के कायल हैं वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी और बाद के प्रगतिशील समीक्षक कबीर से बड़ा तार्किक रचनाकार किसी दूसरे को मानते ही

नहीं। फिर प्रश्न यह है कि कबीर, सूर के तर्क और आधुनिक कवियों के तर्क में क्या अंतर है ? जब हम आधुनिकता के संदर्भ में विचार करते हैं तो अनिवार्य रूप से हमारे विचार केंद्र में वर्तमान बोध, मानवाद तथा तार्किकता अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई होती है। जो समीक्षक या आलोचक कबीर को सबसे बडा तार्किक सिद्ध करना चाहते है, उन्हें स्मरण रखना होगा कि उनके तर्क की निष्पत्ति कहाँ होती है ? जबकि आधुनिकता की पहली शर्त है मानव केंद्रित होना। तब समझ में आता है कि मध्यकालीन चेतना और आधुनिक चेतना में क्या बुनियादी अंतर है। इसीलिए सही अर्थो में छायावाद के बाद के साहित्य को ही आधुनिक कहा गया है। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में जब हम आधुनिकता पर विचार करते हैं तो एक बात हमें स्मरण रखनी चाहिए कि पश्चिम की दार्शनिक, सामाजिक - सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं वैज्ञानिक स्थितियाँ क्या भारत में भी उपलब्ध थीं ? पश्चिमी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश सहज रूप में हुआ, जबकि हिन्दी साहित्य में इसका प्रवेश वैचारिक ज्यादा था। क्योंकि आधुनिक परिस्थितियाँ यहाँ बाद में आईं, दर्शन - विचार बाद मे आया। भारतीय वैचारिकी में आधुनिकता का प्रवेश बौद्धिक ज्यादा था, आनुभूतिक कम। अनायास नहीं कि 'नयी कविता'आन्दोलन में इसीलिए 'प्रामाणिक अनुभूति' की बार - बार बात उठाई गई है। इसी के साथ ही 'ईमानदारी' एवं 'भोगा हुआ यर्थाथ' की बार - बार चर्चा इस बात का संकेत है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक विचारक महसूस कर रहे थे कि उनकी बौद्धिकता कोरी शुष्क बौद्धिकता मात्र न रह जाए। हिन्दी साहित्य के इतिहास क्रम पर ध्यान दें आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1868 रचनाकाल) से होता है। भारतेन्दु युग का गद्य साहित्य आधुनिक विचारों का वाहक तो बना किन्तु कविता में भक्ति - नीति - श्रृंगार जैसे विषय ही प्रचलित रहे। कविता जबकि संवेदना का वाहक ज्यादा होती है, फिर भी आधुनिकता का प्रवेश हिन्दी में गद्य के माध्यम से ही हुआ। स्पष्ट है कि हमने आधुनिकता को वैचारिक रूप में ही ग्रहण किया था। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिओध' या स्वयं महावीर प्रसार द्विवेदी ने कविता में आधुनिकता को सीधे रूप में ग्रहण नहीं किया। मैथिलीशरण गुप्त, जो द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं, ने राष्ट्र परिवार, धर्म, और शोषित स्त्री की करूणा को ही केंद्र में रखा है। गुप्त जी का महाकाव्य 'साकेत' नारी करूणा का नवजागरण वादी उत्थान है। कह सकते है कि द्विवेदी युग तक सुधार वादी भावनाएँ प्रस्फुटित हो चुकी होती हैं। कम - से - कम "हम कौन थे,क्या हो गये हैं ओर क्या होंगे अभी / आओं, विचारें आज मिल कर ये समस्यायें सभी ।'' इस प्रकार का नवजागरणवदी बोध आ चुका था। यहाँ एक बात स्मरण रखने की है कि हमारी राष्ट्रीयता समाज सुधार के माध्यम से प्रस्फुटित हुई है। जबकि कई जगह देखा गया है कि राष्ट्रीयता के बाद समाज - सुधार की भावना का जन्म हुआ है।

हिन्दी साहित्य का छायावादी आन्दोलन, जिसे कई आलोचकों ने 'सांस्कृतिक नवजागरण' की संज्ञा दी है, जो आधुनिक हिन्दी कविता का 'स्वर्ण काल' कहा गया है तथा जिस काव्यान्दोलन में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकतांत त्रिपाठी 'निराला' , सुमित्रानन्दन पंत तथा महादवी वर्मा, शामिल

हैं, में भी आधुनिकता को भारतीय संदर्भों में ही अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किया गया। प्रसाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित हैं, निराला वेदांती हैं, महादेवी वर्मा के ऊपर बौद्ध दर्शन का प्रभाव है तथा सुमित्रानन्दन पंत भी रवीन्द्रनाथ तथा अरविन्द दर्शन से प्रभावित हैं। इस आन्दोलन की श्रेष्ठ कृति 'कामायनी' का समापन 'आनन्द' में होता है। वहीं निराला की श्रेष्ठ रचना 'राम की शक्ति पूजा' का अंत ''होगी जय , होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन/कह देवी हुईं राम के बदन में लीन। '' में। छायावाद के बाद रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा हरिवंशराय बच्चन की कविता में आधुनिकता के स्वर का माध्यम भावुक प्रतिक्रिया तथा आवेग बनकर रह जाता है। सही अर्थों में आधुनिकता का प्रवेश हिन्दी कविता में प्रगतिवादी आन्दोलन तथा प्रयोगवाद से होता है। हिन्दी साहित्य में अज्ञेय आधुनिकता के सच्चे प्रस्तोता हैं। आपने पश्चिमी सिद्धान्तों को अपने विवके के आधार पर जाँचा और उसे भारतीय संदर्भ प्रदान किया। 'अपने - अपने अजनबी' जैसे एकाध उपन्यासों को छोड़ दिया जाए तो अपने संपूर्ण रूप में अज्ञेय का साहित्य आधुनिकता को भारतीय संदर्भ में विश्लेषित करता है। 'साँप' , 'सोनमछली' जैसी कविताएँ आधुनिक सभ्यता की विसंगतियों का सटीक प्रत्याख्यान करती हैं। इसी प्रकार इतिहास एवं काल का त्रासद बोध बड़े तीव्र रूप में धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' एवं 'कनुप्रिया' में चित्रित हुआ है। इसी क्रम में मिथकों का सर्जनात्मक आधुनिक प्रयोग कुँवरनारायण के 'आत्मजयी' , नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' , भारतभूषण अग्रवाल के 'अग्निलीक' जैसी रचनाओं में व्यक्त हुआ है। समसायिक जीवन की विद्रुपता 'आत्महत्या के विरूद्ध' से होती हुई 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो' तक चली जाती हैं। रघुवीर सहाय के उपरोक्त रचनाओं में सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगति एवं विद्रुपता को बखूबी उभारा गया है। आधुनिकता को सामाजिक धरातल प्रदान करने का श्रेय मार्क्सवादी कवियों को है । आधुनिक जीवन के अंतर्विरोधों पर नागार्जुन ने कई श्रेष्ठ व्यंग्य कविताएँ लिखी हैं। मुक्तिबोध की कविता सामाजिक - राजनीतिक अंधकार को फैंटेसी, दिवास्वप्न, दुःस्वप्न, प्रतीकात्मकता के माध्यम से प्रकट करती है। भारतभूषण अग्रवाल की 'मै और मेरा पिट्ठू ' जैसी कविताएँ व्यंग्य रूप में युगीन विद्रुप को उभारती है। उदाहरण स्वरूप 'मै और मेरा पिट्ठू' कविता देखें -

''जब में दफ्तर में

सहब की घंटी पर उठता - बैठता हूँ,

मेरा पिट्ठू

नदी किनारे वंशी बजाता रहता है!''

अनुभव की सघनता के साथ ही मनुष्य और प्रकृति का संश्लिष्ट रूप शमशेर बहादुर सिंह की कविता में मिलता है। प्रकृति मनुष्य और अनुभव की सघनता को व्यक्त करती शामशेर की कविता देखें -

“एक पीली शाम

पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता

× × ×

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू

सांध्य - तारक - सा

अतल में। ’’

आधुनिक समाज की विषय स्थिति को व्यक्त करती भवानी मिश्र की कविता ’गीतफ़रोश’ देखें -

“जी हाँ हजूर , मैं गीत बेचता हूँ ,

मै तरह - तरह के गीत बेचता हूँ

× × ×

“जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान् ,

जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान - -’’

युग की विषमता को केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता ’फर्क नहीं पड़ता में पकड़ा है।

“पर सच तो यह है

कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता।

तुमने जहाँ लिखा है ‘प्यार’

वहॉ लिख दो - ‘सड़क’

फर्क नहीं पड़ता।

मेरे युग का मुहावरा है

फर्क नहीं पड़ता।’’

आधुनिकता की अवस्था अवसाद से होते हुए कहीं - कहीं अराजकता तक पहुँच जाती है। राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, धूमिल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्रमोहन इस धारा के कवि हैं। इन्हें पूर्णतः अराजकतावादी कहना अनुचित होगा। इनके विद्रोह की

अतिशयता मोहभंग से होते हुए अवसाद तक चली जाती है। इनके कविता के केंद्र में विद्रोह ही है। राजकमल चौधरी की कविता की पंक्ति देखें -

सबके लिए, सबके हित में अस्पताल चला गया है

राजकमल चौधरी

लिखने - पढ़ने, गाँजा - अफीम - सिगरेट पीने

मरने का अपना एकमात्र कमरा बंद करके

दोपही दिन के पसीने, पेशाब, वीर्यपात

मटमैले अँधेरे में लेटे हुए -

धुऑ क्रोध दुर्गंधियाँ पीते रहने के सिवा

जिसने को बड़ा काम नहीं किया अपनी देह

अथवा अपनी चेतना में

व्यवस्था की विसंगति का चित्र कैलाश बाजपेयी की कविता में देखें -

‘‘रक्त और बादल/सर्प और तितलियाँ / यज्ञ और वेश्या/सबको एक साथ जोड़ जाता हूँ/ मुझे कोई और नाम/ और नाम दे दो ! ’’

× × ×

‘‘मै देखता हूँ / कुछ लकड़बग्धे/ संसद से निकल कर/ पहुँच गए रखैल के / और उधर कोई सुकरात रोज -/अंधा हो जाता है सींखचे खिजते हुए जेल के।’’

व्यवस्था की विसंगति पर सबसे तीखा और आक्रामक व्यंग्य धूमिल की कविता में मिलता है। धूमिल की मुख्यचिंता कविता को सार्थक वक्तब बनाने की है । इसीलिए वे व्यवस्था परिवर्तन को आवश्यक मानते हैं क्योंकि आधुनिक व्यवस्था तो

‘अपने यहॉ संसद -/ तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है।’

× × ×

‘लहलहाती हुई फसलें .... / बहती हुई नदी .... / उड़ती हुई चिड़ियॉ .... / यह सब , सिर्फ, तुम्हें गँगा करने की चाल है।’

उपराक्त संक्षिप्त उद्धरणों के माध्यम से कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध ने हिन्दी साहित्य को नये तेवर प्रदान किया है। व्यंग्य , शब्दों का संयोजन विराम चिह्नों का मुखर प्रयोग, शब्दों की मितव्ययता, बिंबों और प्रतीकों का सार्थक प्रयोग, भाषा और रूप के प्रति सजगता, सामाजिक - राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति, अंतर्विरोध का अंकन, आधुनिक पारिवारिक एवं सामाजिक मनः स्थितियॉ जैसे क्षणवाद, अस्तित्ववाद का अंकन इत्यादि के संबंध में आधुनिक साहित्य ने सजगता का परिचय दिया है। यहाँ इसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की गई है।

अभ्यास प्रश्न 3)

क) निम्नलिखित में सही विकल्प का चुनाव कीजिए.

1. निम्नलिखित मे से कौन आधुनिकता का भेदक लक्षण नहीं है?

(आस्था, तर्क, वर्तमानबोध, मानववाद)

2. हिन्दी के किस काव्यान्दोलन में 'प्रामाणिक अनुभूति की बात उठाई गई है?

(छायावाद, भक्तिकाल, नयी कविता, प्रगतिवाद)

3. हिन्दी साहित्यमें आधुनिक काल का प्रारम्भ होता है? (1900, 1950, 1850, 1920)

4. भारतेन्दु युगीन कविता के विषय थे? (भक्ति, व्यंग्य, व्यवस्था यर्थाथ विसंगति)

5. आधुनिक हिन्दी कविता का 'स्वर्णकाल' किसे कहा गया है?

(प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, छायावाद)

2) 'क' और 'ख' वर्ग में दिए गए शब्दों का सही मिलान कीजिए :-

'क'	'ख'
(1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	अपने - अपने अजनबी
(2) मैथिलीशरण गुप्त	भारत दुर्दशा
(3) जयंशकर प्रसाद	फैंटेसी शिल्प
(4) गजानन माधव 'मुक्ति बोध'	साकेत
(5) 'अज्ञेय'	प्रत्यभिज्ञा दर्शन

1.5 सारांश

- अपने वर्तमान रूप में हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास लगभग 1000 वर्ष पुराना है। उसमें भी खड़ी बोली हिन्दी का इतिहास सन् 1857 के बाद शुरू होता है।
- भारतीय आधुनिकता राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधारों के माध्यम से आया/ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आधुनिकता को साहित्यिक धरातल प्रदान किया।
- आधुनिकता को सांस्कृतिक दृष्टि से नवजागरण या पुनर्जागरण भी कहा गया है। पुनर्जागरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है- 'पुनर्जागरण दो जातीय संसकृतियों की टकराहट से पैदा हुई वैचारिक ऊर्जा का नाम है।' यहॉं दो जातीय संस्कृतियों से तात्पर्य यूरोपीय इसाई संसकृति और भारतीय संस्कृति है।
- आधुनिक का शाब्दिक अर्थ है - इस समय, सम्प्रति, वर्तमान काल, हाल का , नया, वर्तमान समय का । इस दृष्टि से वर्तमान काल में लिखे गये एवं वर्तमान चेतना से युक्त साहित्य को ही हम आधुनिक साहित्य कह सकते हैं।
- आधुनिकता के भेदक लक्षण हैं - स्वचेतनता, तर्क का आग्रह, मानव केंद्रीयता, असम्प्रदायिक दृष्टिकोण एवं विचार - बुद्धि का आधार ।
- हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य को समाज की गति से जोड़ां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले घोषणा की – 'निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल ' । सन् 1873 में भारतेनदु ने हिन्दी भाषा के बदलते स्वरूप को लक्ष्य करके लिखा - हिन्दी नये चाल में ढली
- आधुनिकता हिन्दी साहित्य पर अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, एवं मनोविश्लेषणवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा। अस्तित्ववाद ने मनुष्य के होने पर जोर दिया । जीवन के बुनियादी प्रश्नों - स्वतंत्रता, अकेलापन, जीवन, मृत्यु , दुःख, निराशा , त्रास, अजनबीपन, अलगान, विसंगति, बिडम्बना, अंतर्विरोध , ऊब इत्यादि पर अस्तित्ववादी साहित्य ने संवेदनापूर्वक विचार किय। मनोविश्लेषण ने मानव मन की सुजनात्मकता एवं व्यक्तित्व पर बल देकर साहित्य को देखने की नई दृष्टि प्रदान की । मार्क्सवाद ने साहित्य को सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ा।

1.7 शब्दावली

- पुनर्जागरण - पूर्व समृद्ध परम्परा का रचनात्मक स्मरण

- सामंतवाद - कृषि - राजा केंद्रित दर्शन
- स्वचेतनता - स्वयम् को जानने की तीव्र उत्कंठा

- औद्योगिक सभ्यता - कल - कारखाने या मशीनीकृत व्यवस्था
- एकरसता - जीवन - समाज में जीवंतता का अभाव
- मिथक सत्य - कल्पना का मिश्रित रूप
- सापेक्षतावाद - आइंस्टीन का वैज्ञानिक सिद्धान्त, हर व्यक्ति - वस्तु का एक दूसरे से संचालित होना,
- दमित इच्छा - अवरूद्ध भाव
- अवचेतन - मन के अंदर छिपे गूढ़ भाव
- उदात्त - व्यापक, श्रेष्ठ भाव
- कामाध्यात्म - काम और अव्यात्म का संयोग काम के माध्यम से अध्यात्म

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) (क) (1) - राजा राममोहन राय (2) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (3) - दो (4) – मानव (5) - 1850 ई.

अभ्यास प्रशन 2) (क) (1) – अस्तित्ववाद (2) – मार्क्सवाद (3) -मनोविश्लेषणवाद (4) - मार्क्स

(ख) (1) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (2) – मनोविश्लेषणवाद (3) - मार्क्सवाद (4) - यशपाल

अभ्यास प्रश्न 3) (क) (1) – अस्थिा (2) - नयी कविता (3) - 1850 (4) – भक्ति (5) - छायावाद

(ख) (1) - भारत – दुर्दशा (2) – साकेत (3) - प्रत्यभिज्ञा

(4) - फेंटेसी शिल्प (5) - अपने - अपने अजनबी

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीच शब्द, वाणी प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

5. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, (सं) धीरेद्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. शर्मा, रामविलास, अस्था और सौन्दर्य।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिकता की पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।

2. आधुनिकता से प्रभावित हिन्दी साहित्य का संदर्भ स्पष्ट करें।

3. आधुनिकता के वौचारिक आधारको स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 प्रमुख काव्य-आंदोलन : परिचय एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रमुख काव्य आन्दोलन: परिचय एवं आलोचना
  2.3.1 प्रमुख काव्य आन्दोलन: काल विभाजन एवं नामकरण
  2.3.2 प्रमुख काव्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि
2.4 प्राचीन हिन्दी कविता
  2.4.1 आदिकालीन कविता
    2.4.1.1 काल विभाजन - नामकरण
    2.4.1.2 विभिन्न काव्य धाराएँ
  2.4.2 भक्तिकालीन कविता
    2.4.2.1 निगुर्ण कविता
    2.4.2.2 सगुण कविता
  2.4.3 रीतिकालीन कविता
    2.4.3.1 विभिन्न वर्गीकरण
    2.4.3.2 नामकरण
    2.4.3.3 प्रवृत्तियाँ
2.5 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रापूर्व
  2.5.1 काल विभाजन
  2.5.2 नामकरण
  2.5.3 प्रमुख काव्यान्दोलन
2.6 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रता पश्चात्
  2.6.1 काल विभाजन - नामकरण का औचित्य
  2.6.2 प्रमुख काव्यान्दोलन: प्रवत्ति
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/ उपयोगी पाठ सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाईयों – खण्डों में आप हिन्दी कविता और कवियों के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के महत्वपूर्ण कवियों के बारे में आपने पढ़ा। आपने प्राचीन एवं नवीन कविता के बारे मे भी पढ़ा। इस इकाई में आप संपूर्ण हिन्दी कविता के विकास क्रम को देखेगे। इसी इकाई में आप संपूर्ण हिन्दी कविताके काल विभाजन , नामकरण एवं प्रवृत्ति का अध्ययन करेंगे। हिन्दी साहित्य का इतिहास मुख्य रुप से विकासनशील मनोवृत्तियों से संचालित रहा है। यूरोपीय समाज में एक ही जागरण (रिनैसो) रहा है जबकि भारतीय समाज में भक्ति आन्दोलन, पुनजगिरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन संबंधी कई जागरण रहे हैं। भारतीय साहित्य सांस्कृतिक रूप सं अत्यन्त समृद्ध रहा है, जिसका पता हमें हिन्दी साहित्य देता हैं। यहाँ हम हिन्दी कविता के संदर्भ में भारतीय इतिहास - संस्कृति एवं उसकी जातीय चेतना को समझने का प्रयास करेंगे। हिन्दी साहित्य प्रारम्भ सें ही अपनी समतापूर्ण विचारधारा से जुटा रहा है। आदिकालीन साहित्य अपनी किन विशेषताओं के कारण विशिष्ट है ? भक्तिकालीन साहित्य के उदय की पृष्ठभूमि क्या है ? भक्तिकालीन साहित्य के बाद रीतिकालीन साहित्य क्यों आया तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य का मुख्य प्रवृत्तियाँ क्या थी? इन सभी प्रश्नों का सम्यक् उत्तर हमें तभी मिल सकता है जब हम संपूर्ण हिन्दी कविता के विकासक्रम एवं उसकी प्रवृत्तियों को समझें।

2.2 उद्देश्य

एम. ए. एच. एल. -103 की यह दूसरी इकाई है। यह इकाई प्रमुख काव्यान्दोलन: परिचय एवं आलोचना से संबंधित है। इस इकाई को अध्ययन के बाद आप -

- हिन्दी कविता के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी कविता के नामकरण के आधार को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कविता के प्रमुख काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

- प्राचीन हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेगे।
- प्राचीन और आधुनिक कविता का अंतर समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी कविता के आधार प्रत्ययो को समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी कविता के कालविभाजन एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- आधुनिक कविता के प्रमुख काव्यआन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- हिन्दी कविता के पारिभाषिक शब्दावलियोंसे परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिन्दी कविता की सामाजिक एवं जातीय चेतना को समझ सकेंगे।

2.3 प्रमुख काव्य आन्दोलन: परिचय एवं आलोचना

हिन्दी कविता का इतिहास गतिशील जीवन चेतना का प्रतीक है। 1000 वर्ष के लगभग से प्रारम्भ हुई हिन्दी कविता आज वैविध्य एवं प्रगतिशील चेतना का पर्याय है। हजार वर्षो के समय में हिन्दी कविता ने विभिन्न स्वरूप ग्रहण किये है। इस बीच विश्व इतिहास एवं भारतीय इतिहास में काफी परिवर्तन आ चुका है। सभ्यता-संस्कृति में आमूलचूल परिवर्तन उवस्थित हो चुके हैं। फलतः जीवन मूल्य और पुरूषार्थो का सामन्ती स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है। सामंतवाद के बाद आधुनिक काल, आधुनिकतावाद एवं उत्तर-आधुनिकतावाद तक की स्थितियाँ आ चुकी हैं। भारतीय समाज भी आज युगसंधिके मोड़ पर खड़ा हैं। एक और सामंती समाज है, दूसरी ओर आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाज । ऐसी स्थिति में अंतर्विरोधी स्थिति का आना स्वाभाविक हैं। भारतीय समाज के इस बदलाव को हिन्दी कविता ने बखूबी चिह्न्ति किया है। आगे के बिन्दुओं में हम इस बदलाव पर विस्तार से चर्चा करेगे। उसके पूर्व आइए हम हिन्दी कविता के प्रमुख काव्य आन्दोलन के काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या से अवगत हों।

2.3.1 प्रमुख काव्य आन्दोलन: काल विभाजन एवं नामकरण

जैसा कि रेनवेलेक ने कहा है कि इतिहास मूलतः मूल्यांकनपरक होतर है । तय है कि इतिहास का मूल स्वरूप आलोचनात्मक तेवर से ही विकसित होता है। लेकिन जब हम इतिहास लेखन प्रारम्भ करते हैं तो हमारे सामने यह समस्या उपस्थित होतीहै कि इतिहास लेखन का अधार किसे बनायें? अर्थात् हम किस सामग्री का चयन करें और किसे छोड़े ? इतिहास में सारे तथ्य - घटनाएँ यानी सब कुछ है लेकिन सब कुछ इतिहास नहीं है। इतिहास में तथ्य-घटनाएँ आधार सामग्री का कार्य करती है। वस्तुतः इतिहास में तीन मुख्य प्रक्रियाएँ काम करती हैं। विषय चयन, चयनित विषय का विश्लेषण एवं उसका देश-कालगत संदर्भ में मूल्यांकन । इन तीन बिन्दुओं के

आलोक में विभिन्न इतिहासकार अपने इतिहास को प्रस्तुत करता है। हर लेखक का विश्लेषण - मूल्यांकन उसकी जातीय चेतना परिवेश से नियंत्रित होता है, इसलिए हर इतिहास दूसरे इतिहास से भिन्न हो जाता है। शायद इसीलिए देश-काल परिवर्तन के बाद इतिहास के मून्लांकन करने का औजार बदल जाता हैं।

विश्लेषण करने की दृष्टि बदल जाती है ओर मूल्यांकन के निष्कर्ष पहले से भिन्न हो जाते है। इतिहास का यह नियम साहित्य के इतिहास पर लागू होता है। हिन्दी साहित्य विशेषकर कविता के विभिन्न आन्दोलन के काल विभाजन एवं नामकरण में मतवैभिन्नता के पीछे उपर्युक्त सिद्धान्त ही काम कर रहा है। हिन्दी कविता के काल विभाजन के संदर्भ में पहली समस्या यह उत्पन्न होती है कि हिन्दी साहित्य का प्रांरभ कब से मानें ? सातवीं शाताब्दी से या 10 - 11वीं शताब्दी से ? नामकरण के पीछे किस कारण को आधार बनायें ? क्या काल विभाजन एवं नामकरण कों निर्विवाद रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है ? इन प्रश्नों पर व्यावहारिक रूप से हम आगे अध्ययन करेंगे। यहाँ हम हिन्दी कविता के प्रमुख काव्य आन्दोलन के काल सीमांकन एवं नामकरण की रूपरेखा का अध्ययन करेंगे।

हिन्दी काव्य आन्दोलन		**सीमांकन**	**नामकरण**
आदिकाल	-	1000 -1400 ई. -	वीरगाथाकाल समेत कई नामकरण
भक्तिकाल	-	1400 - 1650 ई. -	भक्तिकाल/धार्मिक पनर्जागरण
रीतिकाल	-	1650-1850 ई. -	श्रृंगार काल' समेत कई नामकरण
आधुनिक काल	-	1850- से अब तक-	पुनर्जागरण समेत कई नामकरण

आधुनिक काल के बाद हिन्दी कविता में कई मोड़ आ चुके हैं। स्वचेतनता की वृत्ति ने क्षिप्रता को जन्म दिया। फलस्वरूप हिन्दी कविता में भी बदलाव के चिह्न देखने को मिलते हें। जिनकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार हम देख सकते हैं।

पुनर्जागरण काल	-	1850-1900
जागरण - सुधार काल	-	1900-1920
छायावाद	-	1920-1936
प्रगतिवाद	-	1936-1942
राष्ट्रीय-सांस्कृतिक	-	1935-1942

हालावाद	-	1935-1942
प्रयोगवाद	-	1943-1951
नयी कविता	-	1951-1959
अ- कविता	-	1960-1964
मोहभंग की कविता	-	1965-1975
जनवादी कविता	-	1975-1990
समकालीन कविता	-	1990 से अब तक

2.3.2 प्रमुख काव्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा कि हिन्दी काव्य युग-संदर्भ के अनुसार परिवर्तित - परिवद्धित होता रहा है। हिन्दी कविता आन्दोलन के विभिन्न मोड़ इस बात की सूचना देते है। हर युग-समाज-ससंकृति अपनी ऐतिहासिक आवश्यकताओं की देन होतो हैं। इसीलिए अपने योगदान के पश्चात वे दूसरे स्वरूप को ग्रहण कर लेते है। यह मानव सभ्यता-संस्कृति की विकास प्रक्रिया है। हर युग-साहित्य अपने पिछले युग की प्रतिक्रिया में अस्तित्व ग्रहण करता है। यह परम्परा क्रमश: चलती रहती है। समाज-साहित्य का यह द्वान्द्वात्मक संबंध चलता रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने समाज-साहित्य की इस अन्योन्याश्रिता को लक्ष्य करके लिखा है - ‘‘जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह स्वाभाविक है कि जनता की चित्रवृत्ति में परिवर्तन होता के साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ’’ (हिन्दी साहित्य का इतिहास) हम समझ सकते हैं कि किसी भी साहित्य-आन्दोलन की निर्मित में सामाजिक-ऐतिहासिक, धार्मिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मुख्य भूमिका निर्वाह करती है। आइए यहाँ हम हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों की पृष्ठभूमि जानने का प्रयास करें। आदिकालीन साहित्य का निर्माण काल 7 वीं से चौदह वीं शताब्दी के बीच का है। यह समय भारतीय इतिहास में केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार, केंद्रीय साहित्य सिद्धान्त के अस्वीकार का युग हैं। हर्षवर्द्धन के पश्चात् कोई भी हिन्दू राज्य बड़े भू-भाग पर शासन नहीं कर सका। 11 वीं शताब्दी में मुस्लिम सत्ता के स्थापना ने स्थिति और विकट कर दी। क्योंकि अपने प्रारंभिक दिनों में उनका लक्ष्य मंदिरों - खजानों को लूटना ही था। दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के पश्चात् कोई भी मौलिक दार्शनिक नहीं हुआ जो भारतीय चिंतन को नयी दिशा दे पाता। दर्शन के क्षेत्र में अराजकता व्याव्त होने लगी थी। बौद्ध दर्शन के विकृत रूप वज्रयान के तंत्रवाद ने शरीरिक सुख को ही केंद्रीयता प्रदान की। स्थापत्य शिल्प क्षेत्र में हिन्दू - बौद्ध धर्म की प्रतिस्पर्द्धा

में खजुराहो-कोर्णाक के मंदिर में संभोग के दृश्य निर्मित किये जाने लगे थे। साहित्य-सिद्धान्त में वक्रोक्ति - रीति - अलंकार- रस - ध्वनि सिद्धान्त के बीच यह होड़ चल रही थी कि काव्य की आत्मा क्या है ? ऐसी स्थिति में आदिकालीन साहित्य निर्मित हुआ। स्वाभाविक था कि आदिकालीन साहित्य, अनिर्दिष्ट प्रवृत्ति, धारण करता। आदिकालीन साहित्य की विभिन्न काव्यधाराएँ जैसे रासो साहित्य, जैन साहित्य, सिद्ध-नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य इत्यादि केंद्रीय स्तर पर केंद्रीय विचारधारा के अभाव की ही प्रतिध्वनियाँ है।

भक्तिकाल तक भारत में न केवल मुस्लिम सत्ता स्थापित हो चुकी थी, बल्कि हिन्दु-मुस्लिम कट्टरता सांस्कृतिक स्तर पर कम भी होने लगी थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि शासकों क धरातल पर नहीं किन्तु सामान्य जनता राम-रहीम का एकता मान चुकी थी। भक्तिकालीन साहित्य में सूक्ष्म रूप से भारतीय समाज की विसंगतियाँ चित्रित हुई हैं। भक्त कवि एक ओर तो सांकेतिक ढंग से अपने समय को अभिव्यक्त कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर समाज की समस्या का रचनात्मक प्रत्याख्यान भी प्रस्तुत कर रहे थे। कबीर की भक्ति केवल आनन्द प्राप्त करने वाली भक्ति नहीं है, बल्कि पंडा-मुल्ला को फटकारने वाली समतावादी उक्ति भी है। जायसी केवल रहस्यवादी कवि नहीं है बल्कि उनकी कविता स्त्री पीड़ा एवं साम्पदायिकता से इतर वैकल्पिक समाज की आकांक्षा भी हैं। सूरका गो-लोक चित्रण, रासलीला सामंती जकड़न से मुक्ति का प्रयास ही तो है। उसी प्रकार तुलसीदास एक ओर जहाँ 'कवितावली' में अपने समसामयिक यथार्थ को निर्मित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर रामराज्य की परिकल्पना भी कर रहे थे। कवितावली की पंक्ति - खेती न किसन को, भिखारी को न भीख । बनिस को बनी नहीं, चाकर करे न चाकरी । सीधमान सोंच कहै एक एकन सों, कहाँजाई का करी.......'' सामंती उत्पीड़न की पराकाष्ठा को ही तो व्यक्त कर रही हैं। मीरा का वियोग स्त्री -करूणा का ही तो प्रात्याख्यान है। रहीम के नीति वचन अनीति पूर्ण समाज की सांकेतिक अभिव्यक्ति ही हैं । कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिकता, सांमती घुटन एवं अनीतिपूर्ण समाज ही हैं, जिसकी प्रतिक्रिया में श्रेष्ठ साहित्य की रचना संभव हो पाई है।

रीतिकालीन साहित्य राजनीतिक स्थिरता के वातावरण में निर्मित हुआ हैं। रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में मुगलकालीन स्थिरता, संस्कृति -प्राकृत की श्रृंगारिक परम्परा, संस्कृति काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा, राजाओं की निश्चिंतता में उपभोग की ओर आकृष्ट होना, उइत्यादि वे कारण काम कर रहे थे, जिसने रीतिकालीन साहित्य को जन्म दिया। आधुनिक काल अपनी चेतना, मनोवृति , स्वरुप एवं प्रस्तुतीकरण में मध्यकालीन समाज से भिन्न समाज रहा है। मध्यकाल के केंद्र में आस्था, विश्वास, ईश्वर, मानवतावाद रहे हैं जबकि आधुनिकतावाद के केन्द्र में तर्क, मानववाद, बुद्धिवाद, व्यक्तिवाद, रहे हैं। वर्तमान बोध, स्वचेतना की वृत्ति एंव क्षिप्रता आधुनिक युग की पहचान है। कहने का तात्पर्य यह हैं कि मध्यकालीन मूल्य ईश्वर केंद्रित थे, जबकि आधुनिक समाज के मूल्य व्यक्ति और तर्क केंद्रित बने। यूरोपीय पुनर्जागरण से उत्पन्न

वैचारिक - सामाजिक ऊर्जा, ज्ञान - विज्ञान के आलोक में नये सत्य के अन्वेषण ने आधुनिक साहित्य के उत्पन्न होने में प्रमुख भूमिका निभाई।

अभ्यास प्रश्न 1)

क) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास 2000 वर्ष का हैं।

2. इतिहास में विषय चयन प्रारंभिक कार्य है।

3. आदिकाल का समय 1000-1400 ई0 तक का हैं।

4. रीतिकाल को श्रृंगार काल भी कहा गया है।

5. भक्तिकाल के अवान्तर विभाजन नहीं किए गए हैं।

ख) नीचे दिए गए समूहों का सही मिलान कीजिए।

काव्य आन्दोलन	नामकरण
1. स्वच्छन्दवाद	पुनर्जागरण
2. रीतिकाल	छायावाद
3. भक्तिकाल	वीरगाथा काल
4. आदिकाल	धार्मिक पुनर्जागरण
5. आधुनिककाल	श्रृगांर काल

2.4 प्राचीन हिन्दी कविता

प्राचिन साहित्य या कहें कि हिंदी कविता को समझने के लिए स्पष्ट रूप से दो विभाजन करने का चलन रहा है। प्राचिन कविता एवं आधुनिक कविता। इस विभाजन का आधार यह है कि प्राचीन कविता और आधुनिक कविता के विषय निरूपण एवं प्रतिपादन में काफी अन्तर हैं। प्राचीन कविता के विषय निरूपण में श्रृंगार, भक्ति, नीति, वीरता जैसे तत्व रहे हैं वहीं आधुनिक कविता के विषय निरूपण में सामाजिक सुधार, सौन्दर्य, प्रकृति, विद्रोह, बौद्धिकता, सामाजिक समस्याओं पर विमर्श, वर्ग - वैषम्य का चित्रण जैसे तत्व रहे है। प्राचीन कविता के प्रतिपादन या प्रस्तुतीकरण का तरीका भी आधुनिक कविता से भिन्न रहा हैं। प्राचीन कविता दोहा, चौपाई, सोरठा, सवेया, घनाक्षरी, कवित्त, पद, जैसे छन्दों में रची गई है। स्पष्ट रूप से प्राचीन हिंदी कविता

आधुनिक कविता से भिन्न रही है। प्राचीन कविता के अंतर्गत आदिकालीन एवं मध्यकालीन कविताओं को समाविष्ट करते हैं। आदिकालीन साहित्य पर आगे हम विस्तार से अध्ययन करेंगे। मध्यकालीन साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल एवं रीतिकाल की गणना की जाती है। यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि आदिकाल , मध्यकाल तथा आधुनिक काल की यह अवधारणा भारतीय इतिहास के प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल से भिन्न हैं। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा तथा गणपतिचन्द्र गुप्त जैसे अध्येताओं ने संपूर्ण हिंदी मध्यकाल को एक ही मनोवृति का माना हैं। वीरता -भक्ति - श्रंगार - नीति जैसे विषय भक्तिकाल एवं रीतिकाल दोनों में रहे हैं। हालाकि दोनों की मूल चेतना में काफी अंतर है। प्राचीन कविता की मूलवर्ती चेतना को समझने के लिए हम क्रमशः आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल का अध्ययन करेंगे।

2.4.1 आदिकालीन कविता

'आदिकाल' हिंदी साहित्य का प्रांरभिक काल है। आदिकाल हिंदी साहित्य का वह काल है जिससे आगे आने वाले काव्यान्दोलनों के बीच अंतरनिहित हैं। भारतीय इतिहास में यह समय भयानक रूप से उथल -पुथल का समय हैं। भारतीय समाज वर्ग, जाति, धर्म के रूप में बँटा हुआ समाज है, जिसमें मुस्लिम आक्रमण ने और उथल - पुथल मचाई। आदिकालीन समाज को इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'स्वतोव्याघातों का युग' कहा गया है। यानी आघात कई प्रकार के हैं। भारतीय इतिहास का यह प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा। इसलिए हिंदी साहित्य में किसी एक निश्चित प्रवृत्ति का अभाव मिलता है।इसी को लक्ष्य कार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल को 'अर्निष्ट लोक प्रवृति ' का युग कहा है। आइए अब हम आदिकाल के काल विभाजन नामकरण एवं विभिन्न काव्य धाराओं का अध्ययन करेंगे।

2.4.1.1 काल - विभाजन एवं नामकरण

जैसा कि प्रारंभ में ही संकेत किया गया कि आदिकाल के कालविभाजन संबंधी दो स्पष्ट मत रहे हैं। कुछ लोग आदिकाल का प्रारंभ सातवीं शताब्दी से मानते हैं तो कुछ 11 वीं शताब्दी से। राहुल सांकृत्यायन, मिश्रबंधु, रामकुमार वर्मा, डॉ0 नगेन्द्र जैसे विद्वान आदिकाल का सातवीं शताब्दी से मानते हैं।' जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे विद्वान हिन्दी साहित्य को लगभग 1000 ई0 से मानते हैं। इस मत भिन्नता का कारण यह प्रश्न है कि अपभ्रंश साहित्य को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल यह जो मानते हैं कि अपभंश साहित्य की चेतना का आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव पड़ा, लेकिन व्याकरणिक संरचना के स्तर पर वह भिन्न भाषा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल के समय को 993 ईसवी से 1318 ईसवी तक मानते हैं। लगभग 1000 ई0 के समय से हिंदी भाषा के चिह्न दिखने लगते हैं। आदिकाल के सीमांकन का प्रश्न भी विवादित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल की समाप्ति 1318 ईसवी मानते हैं, डॉ0 रमाशंकर शुक्ल 'रजाल' 1343 ई0, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी 1350 ई0, गणपति चंद्र गुप्त

1384 ई0, मिश्रबंधु 1387 ई0, तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी 1400 ई0, को आदिकाल की अंतिम तिथी निर्धारित करते हैं। विद्यापति का प्रश्न भी अनिर्णित है। विद्यापति का कालक्रम 1380 से 1460 ई0 के बीच निर्धारित किया गया है लेकिन प्रवृति क्रम में वे आदिकालीन मनोवृत्ति के ही ठहरते हैं। यानी कालक्रम से भक्तिकाल में और प्रवृति की दृष्टि से आदिकाल में। लगभग 1350 ई0 से भक्तिकालीन प्रवृत्ति का प्रारंभ होने लगता है। महाराष्ट्र के नामदेव की रचनाएँ इसी समय जनता के बीच प्रचलित होने लगती हैं। हिंदी साहित्य में लगभग 1400 ई0 से भक्तिकालीन रचनाएँ मिलने लगती हैं। अतः भारतीयता की दृष्टि से 1350 तथा हिंदी भक्ति काव्य की दृष्टि से 1400 ई0 से भक्तिकाव्य शुरूआत हम मानते हैं। इसी दृष्टि से आदिकाल की अंतिम सीमा 1400 निर्धारित की जा सकती है।

आदिकाल का नामकरण पर्याप्त विवादित रहा है। आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति की तरह इस पर स्पष्ट रूप से कोई निर्णय नही हो पाया है। प्रत्येक आलोचक ने अपने दृष्टिकोण के अनुरूप आदिकाल के नामकरण का प्रयास किया है। यहाँ हम प्रमुख नामकरण का अध्ययन करेंगे।

नामकरण		**नामकरणकर्ता**
आदिकाल	-	हजारी प्रसाद द्विवेदी
वीरगाथा काल	-	रामचंद्रशुक्ल
बीजवपन काल	-	महावीर प्रसाद द्विवेदी
सिद्ध –सामंतकाल	-	राहुल सांकृत्यायन
चारण काल	-	ग्रियर्सन
संधिकाल एवं चारणकाल	-	रामकुमार वर्मा
अपभ्रंश काल	-	बच्चन सिंह
वीरकाल	-	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आदिकाल संबधी विभिन्न मतों में अन्तर का कारण यह है कि प्रत्येक विद्वान ने आदिकाल की प्रवृति को अपने दृष्टिकोण से निर्धारित किया हैं। किसी के लिए आदिकाल के केंद्र में रासो

साहित्य है तो किसी के लिए सिद्ध तथा नाथ साहित्य। आइए अब हम आदिकाल के विभिन्न काव्यधाराओं का अवलोकन करें।

2.4.1.2 विभिन्न काव्य धाराएँ

आदिकालीन साहित्य, जैसा कि संकेत किया गया था, कि केंद्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण करना कठिन कार्य है। आदिकालीन इतिहास एवं समाज की तरह आदिकालीन साहित्य की एक केंदीय प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती। आदिकाल का साहित्य कई धाराओं में विभक्त है, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से समझ सकते हैं।

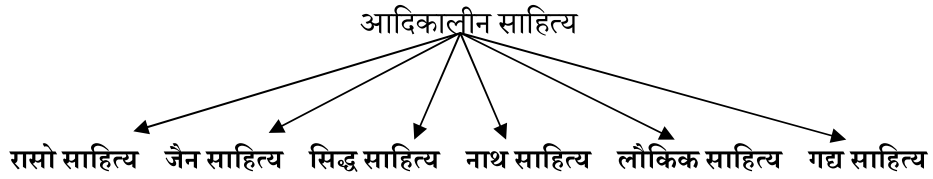

जैसा कि हमने आरेख के माध्यम से देखा कि आदिकालीन साहित्य के कई वर्गीकरण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जहाँ रासो साहित्य को केंद्रीयता प्रदान करते हैं वहीं राहुल सांकृत्यायन सिद्ध साहित्य को। इसी प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के लिए नाथ साहित्य, गणपतिचंद्र गुप्त के लिए जैन साहित्य तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के लिए रासों साहित्य केंद्रीय साहित्य हैं।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) उचित शब्द का प्रयोग कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. प्राचीन कविता का मुख्य तत्व .... रहा है।

2. आधुनिक कविता की मूलवर्ती प्रेरणा .... रही है।

3. प्राचीन कविता के अंतर्गत आदिकाल, भक्तिकाल एवं ....आते हैं।

4. संपूर्ण मध्यकाल की एक ही चेतना माना है- ....ने।

5. 'स्वतोव्याघातों का युग' ....को कहा गया है।

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. वीरगाथाकाल नामकरण भक्तिकाल का दूसरा नाम है।

2. आदिकाल नामकरण का श्रेय हजारी प्रसाद द्विवेदी को है।

3. आदिकाल की समय सीमा 1300 ई0 तक है।

4. बीजवपन काल नामकरण हजारी द्विवेदी का है।

5. ’सिद्ध सामन्त काल ’ नामकरण राहुल सांकृत्यायन का है।

2.4.2 भक्ति कालीन कविता

सन् 1400 से 1650 तक के समय को हिंदी कविता में ‘भक्तिकाव्य’ कहा गया है। इस समय के बीच कविता की केंद्रीय प्रवृत्ति भक्ति निरूपण की रही है। अन्य प्रवृतियाँ भी चलती रही हैं लेकिन मुख्य प्रवृत्ति भक्ति की ही रही है। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का ’स्वर्ण काल’ कहा गया है। विषय की गहनता एवं प्रस्तुतीकरण में यह साहित्य विश्व-साहित्य के समतुल्य है। भक्तिकान के काल विभाजन एवं नामकरण पर ज्यादा विवाद नहीं है। ग्रियर्जन ने इसे ’पन्द्रहवी’ शती का धार्मिक पुनजगिरण’ कहा है तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘भक्तिकाल’ । भक्तिकाल को रामचन्द्र शुक्ल ने ‘निर्गुण’ एवं ’समुण’ में विभाजित किया है। निगुर्ण काव्य को पुनः शुक्ल जी ने ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा में विभक्त किया है। उसी प्रकार सगुण काव्य को रामभक्ति शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा में विभाजित किया गया हैं। रामचन्द्र शुक्ल का यह विभाजन स्थूल रूप में स्वीकार का लिया है।

शाखाओं के नामकरण में थोड़ा संशोधन अवश्य हुआ है। ज्ञानाश्रयी को डॉ रामकुमार वर्मा ने ‘संत काव्य’ तथा प्रेमाश्रयी को ‘सूफी काव्य ’ कहा है। भक्तिकाल संबंधी विभाजन को आपने पढ़ लिया । आइए अब हम निगुर्ण कविता तथा सगुण कविता पर संझेप में चर्चा करें।

2.4.2.1 निगुण कविता

हिन्दी निगुण कविता से तात्पर्य उस कविता से है जिसमे कविता में ईश्वर के निगुण स्वरूप को स्वीकार कर भक्तिपूर्ण रचनाएँ की है। निगुण का तात्पर्य यहाँ गुणहीनता से नहीं बल्कि निराकार से है। निगुण कविता के कवियों का मूल लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना करना रहा है। इसीलिए इस काव्यधारा में जाति-पाँति का खण्डन, कुरीतियों-बाह्यआडम्बरों का पर्दाफाश, सादगी - सच्चारिता पर बल, अंतस्साधना पर बल, रहस्यावाद एवं प्रेम पर बहुत बल दिया है।

यह काव्यधारा ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को ज्यादा महत्व देती है। निर्गुण काव्यधारा के दो विभाग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है।

यहाँ आइए हम ज्ञानमार्गी काव्यधारा एवं प्रेममार्गी शाखा का अंतर समझ लें । जिस कविताधारा में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान को आधार बनाया गया, उसे 'ज्ञानमार्गी शाखा'कहा गया है। यह नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा इस काव्यधारा को 'संत काव्य' कहते हैं क्योंकि इस काव्यधारा में ईश्वर के सत् रूपी साक्षात्कार की अनुभूति की बात कही गई है। ज्ञानमार्गी शाखा महाराष्ट्र से होती हुई हिन्दी में आई। ज्ञानदेव-नामदेव की इस निर्गुण काव्यधारा की परम्परा हिन्दी मे कबीर के माध्यम से प्रकट हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निर्गुण कविता के प्रवर्त्तन का श्रेय नामदेव को दिया है किन्तु निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास जी को माना है। इस शाखा में कबीरदास, नानक, पीपा, धन्ना, मलूकदास, सुन्दरदास, रैदास, दादू, रज्जब, सहजोबाई, सुरसरि इत्यादि की गणना की जाती है। कबीरदास जी इस काव्यधारा के सबसे बड़े कवि है। कबीरदास पर वैस्णवों के प्रपत्तिवाद, सूफियों के प्रेमतत्व, मुस्लिम एकेश्वरवाद, शंकाराचार्य के अद्वैतवाद, नाथों के हठयोग का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'संतो आई ज्ञान की आँधी रे ......' कहकर कबीर दास ने ज्ञान के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाया है। हाँलाकि वही कबीर शास्त्र का खंडन भी करते है, जब वे कहते है- '' पोथि-पढ़ि-पढ़ि जग मुबा पंडित भया न कोय।।'' वस्तुतः निर्गुण काव्यधारा सम्पूर्ण बाह्याडम्बरों का खण्डन कर अन्तः सत्य पर बदल देने वाला कविता आन्दोलन था।

प्रेममार्गी निर्गुण काव्यधारा असाम्प्रदायिक आग्रह पर निर्मित कविता आन्दोलन था। प्रेममार्गी नामकरण आचार्य रामचनद्र का किया हुआ है। इस कविताधारा में ईश्वर प्राप्त करने के लिए प्रेम को आधार बनाया गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा इसें 'सूफी काव्य ' कहते हैं, क्योकि इस काव्यधारा के अधिकांश रचनाकार मुस्लिम इस काव्यधारा के अधिकांश रचनाकार मुस्लिम सुफी कवि थे। इस काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे। अन्य कवियों में कुतुबन, मुझन, शेख नबी, उसमान, नूर मुहम्मद आदि थे।

इस कविताधारा में ज्यादातर प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ हुई है। भाषा अवधी है। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि प्रेममार्गी काव्य का मूल स्वरूप असाम्प्रदायिक है क्योंकि इन्होंने अपने प्रबन्ध काव्यों के लिए कहानियाँ हिन्दू घरों की चुनी हैं। सारे काव्य फारसी की मसनवी शैली पर लिखे गये हैं । प्रेममार्गी शाखा की कविता भावात्मक रहस्यवाद को लिए हुए है। खंडन-मण्डन से दूर ईश्वर की सरस भक्ति प्रतिपादित करना इनका मुख्य लक्ष्य है।

भक्तिकाव्य का दूसरा विभाजन सगुण काव्य धारा के रूप में किया गया है। सगुण को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है। कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा । कृष्णभक्ति शाखा में कृष्ण की ऐकान्तिक भक्ति पर बल दिया गया है, जबकि रामभक्ति शाखा मे मुख्य बल रामभक्ति पर हैं । कृष्णभक्ति शाखा मे प्रेम पर ज्यादा बल है। कृष्ण के अतिरिक्त कवियों ने किसी अन्य

देवता की आराधना नहीं की है। प्रबन्ध का अभाव है तथा भाषा ब्रजभाषा है। जबकि रामभक्ति शाखा । मर्यादावादी, समन्वयवादी, काव्य आन्दोलन था। इस काव्यधारा में ज्ञान-भक्ति-मर्यादा पर बल है। भाषा ब्रज और अवधी दोनों रही है तथा प्रबन्ध काव्य ज्यादातर लिखे गये है। कृष्णभक्ति शाखा मे सूरदास सबसे बड़े कवि रहे है। सूरदास के अतिरिक्त कुंभनदास, नंददास, मीरा तथा रसखान जैसे कड़े कवि इस काव्यधारा में रहे हैं। रामभक्ति शाखा में तुलसीदास, नाभादास, रामानन्द जैसे कवि हुए हैं।

2.4.3 रीतिकालीन कविता

रीतिकालीन साहित्य 1650 से 1850 ईसवी के बीच की के समय की कविता है। यह समय हिन्दी इतिहास में मुगल काल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। रीतिकालीन कविता एक विशेष प्रकार की कविता रही है। रीति का तात्पर्य पद्धति से है। अर्थात् रचना की एक विशेष पद्धति। यह काव्यधारा तीन पद्धतियों विभक्त है, जिसे हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकते है।

2.4.3.1 विभिन्न वर्गीकरण

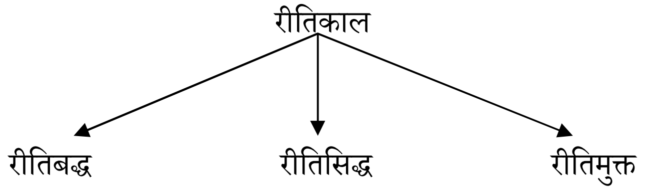

रीतिबद्ध से तात्पर्य है काव्य-लक्षण की विशेष पद्धति पर रचना करने वाले रचनाकार। अर्थात् पहली पंक्ति में लक्षण लिखना। फिर दूसरी पंक्ति में उदाहरणों की रचना करना। चिंतामणि, केशव, जसवन्तसिंह, भूषण, मतिराम, जैसे कवि इसी धारा के अंतर्गत आते हैं। रीतिसिद्ध से तात्पर्य है जिन कवियों ने रीतिलक्षणों को ध्यान में रखकर उदाहरणों की रचना की हो। बिहारी इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा को स्वच्छन्दतावादी धारा भी कहा गया है। इस धारा के कवियों ने लक्षण-उदाहरणों की बँधी परिपाटी से हटकर स्वच्छन्द रीति से प्रेम की कविताएँ लिखी हैं, इसीलिए इसे रीतिमुक्त काव्यधारा कहा गया है। इस धारा में धनान्नद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि कवि हुए हैं।

वस्तुतः रीतिकालीन कविता ऐसी कविता रही है जिसमें रीतिपद्धति, श्रृंगारिकता, आलंकारिकता, दरबारीपन जैसी पद्धतियाँ रही है। नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करना (जिसे 'नखशिख वर्णन' कहा गया है) इस काल के कवियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। प्रेम के परकीया स्वरूप का ही चित्रण इस काल के कवियों का लक्ष्य रहा है।

2.4.3.2 नामकरण

रीतिकालीन कविता के कई नामकरण आलोचकों द्वारा किये गये हैं, जिसे हम इस तालिका के माध्यम से देख सकते हैं

नामकरण	आलोचक
रीतिकाल	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
रीतिकाव्य	ग्रियर्सन
श्रृंगारकाल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कलाकाल	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
अलंकृत काल	मिश्रबन्धु
दरबारीकाल	राहुल सांकृत्यायन

जैसा कि नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन कविता का वर्ण्य विषय आलंकारिकता श्रृंगार, रीतिनिरूपण, दरबारीपन रहा है।

2.4.3.3 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हम पूर्व में अध्ययन का चुके हैं कि भक्तिकाव्य के ठीक विपरीत रीतिकालीन साहित्य का विकास हुआ। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्ति रीतिनिरूपण की रही है । प्रश्न यह है कि रीतिरिरूपण क्या है? 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य रचना की विशेष पद्धति को रीति-निरूपण कहा है। काव्य-रचना की विशेष पद्धति क्या है ? रीतिकालीन कवि मूलतः आचार्य कवि थे, अतः रचना करते समय वह सिद्धान्त ओर उदाहरण दोनों की रचना करते थे। यानी पहली पंक्ति में लक्षण और दूसरी पंक्ति मे उदाहदण । यही है रीति-निरूपण, जिसको लक्ष्य करके आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग को 'रीतिकाल ' कहा है। रस की दृष्टि से इस सुग में 'श्रृंगार' की बहुलता रही है, जिसक कारण इस युग को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र नें 'श्रृंगार काल' कहा है। श्रृंगार के साथ ही इस युग में अलंकारों के प्रयोग की भी बहुलता रही है जिसके कारण मिश्रबंधुओं नं इसे 'अलंकृत काल' तथा रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'कलाकाल' कहा है। इसी तरह 'दरबारीपन' की प्रवृत्ति समूची रीतिकविता के मूल में है। राहुल साकृत्यायान एवं रामविलास शर्मा जैसे विद्वान रीतिकालीन कविता की मूल प्रवृत्ति दरबारीपल ही मानते हैं। जाहिर है ऐसी कविता में कामकला, अलंकाण, अश्लीलता, दरबारीपन, वर्ण्य-विषय का संकोच, अलंकारों की अतिशयता जैसे तत्व होंगे ही।

लेकिन एक ऐसा तत्व है जिसके कारण रीतिकालीन कविता का अपना महत्त्व या मूल्य है। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि ‘‘रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है। ’’ तुलसी की घोषणा है- ‘कवि न होउँ नहि’ चतुर कहावउँ । मति अनुरूप राम गुन गावउँ। वहीं आचार्य भिखारीदास का कहना है -

‘‘आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई न तौ,

राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानो है।’’

इसी प्रकार कविता के धरातल पर रीतिकालीन कविता ने पहली बार हिन्दी साहित्य में धार्मिकता से हटकर शुद्ध कविता के धरातल पर काव्य रचना की है। डॉ. नगेन्द्र ने कवित्व के आधार पर रीतिकालीन कविता की प्रशंसा की है।

अभ्यास प्रश्न 3)

(क) नीचे दिये गए समूहों का सही मिलान कीजिए।

	काव्यान्दोलन	रचनाकार
1.	ज्ञानाश्रयी शाखा	नागार्जुन
2.	कृष्णभक्ति शाखा	तुलसीदास
3.	रामभक्ति शाखा	मीराबाई
4.	नयी कविता	राजकमल चौधरी
5.	प्रगतिवाद	सुन्दरदास
6.	मोहभंग की कविता	शमशेर

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. भक्तिकाल का वैज्ञानिक विभाजन सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया।

2. ‘सत काव्य’ नामकरण का श्रेय रामकुमार वर्मा को है।

3. ‘ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होई’ पंक्ति के लेखक कबीरदास जी है।

4. प्रेममार्गी शाखा के ज्यादातर ग्रन्थ प्रबन्धकाव्य में लिखे गये है।

5. रीतिसिद्ध परम्परा में केशवदास आते हैं।

2.5 आधुनिक हिन्दी कविताः स्वतंत्रता पूर्व

हिन्दी साहित्य का इतिहास वैसे तो लगभग वर्षो से पुराना रहा है किन्तु व्यापकता, विविधता एवं प्रवृत्तियों की दृष्टि से जितना वैविध्य एवं विस्तार आधुनिक हिन्दी कविता का हुआ है, उतना प्राचीन हिन्दी कविता का नहीं रहा है। वैविध्यता का उदाहरण है- इस समय पैदा हुए कई काव्यान्दोलन। सुविधा की दृष्टि से हम आधुनिक हिन्दी कविता को मुख्यतः कई कालों में विभाजित करते हैं। आइए हम आधुनिक कविता के हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को काल विभाजन के माध्यम से समझें।

2.5.1 काल - विभाजन

पिछली इकाइयों में संकेत किया गया है कि आधुनिक काल में स्वचेतनता की प्रवृत्ति के कारण सामाजिक परिवर्तन ज्यादा तीव्र गति से हुए। इसे हम हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन के संदर्भ में ज्यादा स्पष्ट ढंग से समझ सकते हैं। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास ' पुस्तक में स्वचेतन वृत्ति को व्यावहारिक उदाहरण के माध्यम से समझाया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार हिन्दी साहित्य स्वचेतन वृत्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसे हम इस प्राकर समझ सकते है।

1. आदिकाल - 400 वर्ष
2. भक्तिकाल - 250 वर्ष
3. रीतिकाल - 200 वर्ष
4. आधुनिक काल - कई छोटे-छोटे आन्दोलन

तलिका द्वारा हम देख सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के कालों का वर्ष अन्तर क्रमश: कम हुआ है। विकास की गति प्रक्रिया में, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच निरन्तर संपर्क की स्थिति में अनुभव में परिवर्तन की स्थिति जल्दी आती है। आधुनिक काल के काल विभाजन की क्षिप्रता की स्थिति समझने के पश्चात् आइए अब हम स्वतंत्रतापूर्व के आधुनिक कविता के काल विभाजन की चर्चा करें।

आधुनिक काल का प्रारंभ कब से माना जाये। यह प्रश्न हिंदी आलोचना में उठता रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार आधुनिक काल का प्रारंभ 1832 ई0 के बाद माना जा सकता है। डॉ0 रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के लिए यह समय 1842 के बाद हैं। डॉ0 नगेन्द्र के लिए आधुनिक काल 1843 से प्रारंभ होता है, किन्तु इसकी वास्तविक शुरूआत 1868 ई0 से होती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा0 बच्चन सिंह जैसे इतिहासकार आधुनिक काल का प्रारंभ 1850 ई0 से मानते है, जो सुविधाजनक आधार पर तय किया जाता है। डॉ0 रामविलास शर्मा 1857 ई0 की क्रान्ति के आधार पर आधुनिक काल का प्रारंभ 1857 ई0 मानते है। ज्यादातर

आलोचकों ने 1850 ई0 से आधुनिक काल का प्रारंभ मानते है। 1850 ई0 भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म काल भी है, इसलिए इस बिन्दु से आधुनिक काल का प्रारंभ मान सकते हैं।

2.5.2 नामकरण

स्वतंत्रता पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण से संदर्भ में जब हम चर्चा करते हैं कि नामकरण में साहित्यि प्रवृत्ति, व्यक्ति-महत्व एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति सभी आधार बनें हैं। भारतेन्दु कालीन कविता (1850-1900 ई.) के नामकरण पर हम विचार करें तो हम देखते हैं कि इस काल के चार नामकरण मुख्य रूप से मिलतें हैं - भारतेन्दु काल, पुनर्जागरण काल-नवजागरण एवं गद्यकाल। कविता की दृष्टि से मुख्यत तीन नामों को ही हम मान सकते हैं। इसमें से भी प्रथम नामकरण व्यक्ति केंद्रित है और अन्य नाम सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों पर केंद्रित। द्विवेदी युग (1900 - 1920 ई.) नामकरण महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व पर आधारित हैं। इस युग के अन्य नाम सुधार काल एवं 'इतिवृत्तात्मक कविता' मिलते हैं, जो साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर विकसित हुए है। 'छायावाद' नामकरण तो शुद्ध रूप से साहित्यिक धरातल पर विकसित हुआ हुआ है, जबकि इसी काव्यधारा का अन्य नाम 'स्वच्छन्दावाद' में सामाजिक-सास्कृतिक एवं साहित्यिक सभी आधार मिले हुए हैं। 'प्रगतिवाद' नामकरण के पीछे राजीतिक एवं सामाजिक आधार है, वहीं 'प्रयोगवाद' नामकरण साहित्य के आधार पर विकसित हुआ है। 'हालावाद' नामकरण के पीछे भी साहित्यिक प्रवृत्ति ही काम कर रही है, जबकि राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' सामाजिक - राजनीतिक- सांस्कृतिक आधार पर विकसित हुई है, अतः उसका नामकरण भी उसी का प्रतिनिधित्व करता है।

2.5.3 प्रमुख काव्यान्दोलन

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कविता के कई महत्ववूर्ण काव्यान्दोलन रहे है जिसने हिन्दी कविता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यहाँ हम स्वतंत्रता पूर्व प्रमुख काव्यान्दोलन को एक तालिका के माध्यम से देख सकते हैं-

पुनर्जागरण काल	-	1850-1900
जागरण - सुधार काल	-	1900-1920
छायावाद	-	1920-1936
प्रगतिवाद	-	1936-1942
राष्ट्रीय-सांस्कृतिक	-	1935-1942
हालावाद	-	1935-1942

प्रयोगवाद	-	1943-1951

2.6 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रता पश्चात्

आधुनिक शब्दका जिस अर्थो में हम आज प्रयोग करते है, वह स्वतंत्रता पश्चात् की कविताओं के संदर्भ में ज्यादा सार्थकता रखता है। 'आधुनिक' शब्द की व्यंजना उस स्थिति के लिए ज्यादा सार्थक है, जिसमें विडम्बना, विसंगति, संत्रास एवं अंतर्विरोध जैसी स्थितियाँ होती हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के स्वतंत्रता पश्चात् की स्थितियाँ बहुत कुछ आधुनिक बोध से युक्त रही है। स्वतंत्रता पश्चात् या पूर्व में कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खीचना बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्ति न तो एकाएक प्रारम्भ होती है और न समाप्त होती हैं स्वतंत्रता एक केंद्रीय बिन्द इसलिए बनता है क्योंकि यह आगे की कविता के लिए ऊर्जा का काम करता है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता में एक छटपटाहट है, जागरण का स्वर है, आदर्श है वहीं स्वातंत्रयोत्तर कविता में यथथि - बोध हैं। विसंगति-बोध है और इसे दूर करने का उपक्रम है। शायद इसी कारण स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् का यह सुविधाजनक विभाजन किया जाता है।

2.6.1 काल विभाजन - नामकरण का औचित्य

स्वातंत्रयोत्तर कालीन हिन्दी कविता के काल-विभाजन एवं नामकरण के औचित्य पर हम विचार करें इससे पूर्व आइये हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के काल-विभाजन एवं नामकरण को तथ्यात्मक रूप में देखें -

नयी कविता	-	1951-1959
अ- कविता	-	1960-1964
मोहभंग की कविता	-	1965-1975
जनवादी कविता	-	1975-1990
समकालीन कविता	-	1990 से अब तक

पूर्व में हमने अध्ययन किया कि काल-विभाजन एक सुविधाजनक मामला है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में या इतिहास में काल-विभाजन के माध्यम से इतिहासकार संपूर्ण सामग्री को व्यवस्था प्रदान करता है। इसलिए काल-वर्ष को हम इसी रूप में देखें। जहाँ तक नामकरण का प्रश्न है - 'नयी कविता' 'विमर्श केंद्रित कविता' , 'अकविता' इत्यादि साहित्यिक प्रवृत्ति के नामकरण को छोड़ दें तो लगभग सारे नाम राजनीतिक-सामाजिक-कालगंत सीमा के आधार पर तय हुए हैं। जनवादी कविता (राजनीति प्रेरित) साठोत्तरी कविता - (कालगत आधार), प्रथम दशक की

कविता (कालगत आधार) उत्तर - आधुनिकता (सामाजिक-सांस्कृतिक आधार) नामकरण इसी आधार पर विकसित हुए हैं।

2.6.2 प्रमुख काव्यान्दोलन: प्रवृत्ति

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के बारे में आप अगली इकाई में विस्तार से अध्ययन करेंगे। यहाँ हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का संक्षेप में अध्ययन करेगें। पूर्व में आपने देखा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कई काव्य आन्दोलन चलें। हर आन्दोलन अपने अंतर्निहित विशेषताओं के कारण अन्य काव्यान्दोलनों से भिन्न था। आइए हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों की प्रवृत्तियों का अध्ययन करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के चार वर्ष पश्चात् (1951 ई.) से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी का आरम्भ होता है। ऐसा क्यों ? वस्तुतः सन् 47 के बाद तक प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ चलती रहीं। सन् 47 में 'प्रतीक' पत्रिका के प्रकाशन के बाद से तो 'प्रयोगवाद' का आन्दोलन और तीव्र हुआ। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से कविता में वस्तु एवं रूप सम्बन्धी सन्तुलन की स्थिति आई। 'नयी कविता' आन्दोलन की प्रमुख प्रवृत्ति बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

- लघु मानव की प्रतिष्ठा
- मिथकों का आधुनिक संदर्भी में प्रयोग
- बौद्धिकता
- आधुनिक संदर्भी का प्रयोग

साठोत्तरी कविता में नकारवादी प्रवृत्तियों की ही अधिकता रही। प्रयोग के अत्यधिक आग्रह, नकारवादी दर्शन, विद्रोह की अतिशयता, काम-कुठां की अभिव्यक्ति इस आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्ति थी। मोहभंग की कविता के मूल में व्यवस्था विरोध की भावना थी। इस आन्दोलन में भाषा चुस्त, मुहावरेदार एवं व्यंग्यात्मक बनी। जनवादी कविता में वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ ही लोकतत्व की प्रधानता रही। 'उत्तर-आधुनिक कविता' में सिद्धान्त-प्रतिबद्धता की बजाय 'अनुपस्थित की तलाश' पर बल दिया गया। समकालीन कविता में समकालीनता का तो आग्रह है किन्तु व्यक्तित्व-निर्माण का नितान्त अभाव है।

अभ्यास प्रश्न) 4

क) कोष्ठक में दिये गये शब्दों मे से सही शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास लगभग .... वर्ष पुराना है। (1000/2000/3000)

2. भक्तिकाल का समय .... है। (1350-1650/250-1750/1500-1800)

3. डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक काल का आरम्भ .... से माना है। (1870/1868/1850)

4. छायावाद का अन्य नाम .... है। (प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/स्वच्छन्दतावाद)

5. हालावाद' के प्रवर्त्तक .... है। (नागार्जुन/हरिवंशराय बच्चन/जयशंकर प्रसाद)

2.7 सारांश

- साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन एवं नामकरण बहुत महत्व रखता है। काल-विभाजन से जहाँ सम्पूर्ण साहित्य को क्रमबद्धता मिलती है वहीं नामकरण से उस आन्दोलन की प्रवृत्ति का बोध होता है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन एवं नामकरण के संदर्भ में यह तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि इसमें स्वचेतन वृत्ति के कारण क्षिप्रता की वृत्ति मिलती है। यानी बदलाव की प्रक्रिया पहले से तेज हुई है।
- आदिकालीन कविता 'अर्निदिष्ट प्रवृत्ति' की कविता है। यह कई काव्यधाराओं को अपने मे समेठे हुए है। रासो काव्य, सिद्ध-नाथ, जैन काव्य, लौकिक काव्य इत्यादि इसकी विभिन्न अर्थ छायाएँ है।
- भक्तिकाल की कविता राजाश्रय से दूर लोक के बीच लिखी गई है। लोक ऊर्जा के काव्यात्मक उत्कर्ष के कारण ही इसे हिन्दी कविता का 'स्वर्णकाल' कहा गया है। निर्गुण -जगुन जैसे विभाजन के बावजूद भक्ति एवं लोकधर्मिता सम्पूर्ण भक्तिकावय के केंद्र में है।
- रीतिकालीन साहित्य मूलतः दरबारीचेतना और सामंती भोग-विलास की छाया से निसृत काव्य है।
- आधुनिक कालीन कविता पुनर्जागरण कालीन चेतना के विकास क्रम से संचालित है।

2.8 शब्दावली

1. पुनर्जागरण - दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक ऊर्जा

2. जातीय चेतना - गतिशील समाज की अर्ध्वगामी चेतना

3. सामन्तवाद - ऐसी व्यवस्था, जिसमें राजा और सामन्त निर्णायक भूमिका में रहते हैं

4. प्रगतिशीलता - समाज को आगे बढ़ाने वाली चेतना

5. द्वन्द्वात्मकता - कार्लमार्क्स का सिद्धान्त, दो वस्तुओं की टकराहट से आगे बढ़ने की प्रक्रिया

6. वज्रयान - बौद्ध धर्म का विकृत रूप , जिसमें तंत्र-चमत्कार की बहुलता है।
7. परिकल्पना - संभावनापूर्ण कल्पना
8. मानवतावाद - मानव केंद्रित दर्शन
9. स्वतोव्याघात - किसी भी समाज के अन्दर परस्पर विरोधी स्थितियाँ का होना।
10. अर्निदिष्ट प्रवृत्ति - किसी भी स्पष्ट प्रवृत्ति का न पाया जाना।
11. साम्प्रदायिकता - दूसरे धर्म के प्रति विद्वेष की भावना
12. रहस्यवाद - परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना
13. परकीया - दूसरे स्त्री/पुरूष के प्रति लालसा या संयोग
14. आधुनिकता - वर्तमानकालिक चेतना
15. स्वचेतन वृत्ति - स्व् के प्रति जागरूकता की भावना
16. इतिवृत्तात्मकता - स्थूलता, द्विवेदीयुगीन कविता की प्रवृत्ति

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क) 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

ख)1 – छायावाद 2 - श्रंगार काल 3 - धार्मिक पुनर्जागरण

4 – वीरगाथाकाल 5 - पुनर्जागरण

अभ्यास प्रश्न 2

(क) 1- भक्ति-श्रृंगार 2- पुनर्जागरण 3- रीतिकाल

4- गणपतिचन्द्र गुप्त 5- आदिकाल

(ख) 1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3)(क)

1- सुन्दरदास 2- मीराबाई 3- तुलसीदास

4- शमशेर 5- नागार्जुन 6- राजकमल चौधरी

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 4)

1- 1000 वर्ष 2- 1350-1650 ई 3- 1868

4- स्वच्छन्दतावाद 5- हरिवंशराय बच्चन

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नैशनल पब्लिशिंग हाउस।

5. (सं)डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नैशनल पब्लिशिंग हाउस।

2.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री

1. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1,2 ।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हिन्दी कविता के कालविभाजन एवं नामकरण पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

2. प्राचीन हिन्दी कविता एवं आधुनिक हिंदी कविता के मूलभूत अन्तर पर विस्तार से विचार कीजिए।

इकाई 3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य
3.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण
3.3.2 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर
3.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठ भूमि
3.3.3.1 राजतीतिक परिस्थिति
3.3.3.2 आर्थिक परिस्थिति
3.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति
3.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति
3.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ
3.4.1 राष्ट्रीयता
3.4.2 समाज- सुधार
3.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन
3.4.4 विमर्श केंद्रीयता
3.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

एम0ए0एच0एल0-103 के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई के अन्तर्गत आपने आधुनिकता का अर्थ एवं उसकी अवधारणा, आधुनिकता की पृष्ठभूमि, आधुनिकता का सीमांकन, आधुनिकता संम्बन्धी मतवैभिन्नता, आधुनिकता के आधार विचारक, आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना तथा आधुनिकता और साहित्य का अध्ययन किया। इस खण्ड के अन्तर्गत आप आधुनिक एवं समकालीन कविता का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की यह तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप आधुनिक हिन्दी कविता से परिचित होंगे। इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों से परिचित होंगे। इसके अतिरिक्त आप यह भी जान सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ कौन से रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर पद्य (कविता) की दृष्टि से विचार करने पर सबसे पहले यह बात स्मरण रखनी चाहिए की आधुनिकता का प्रवेश गद्य के माध्यम से हुआ, कविता तो बहुत समय तक पुराने ढंग की चलती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए आधुनिक काल को 'गद्य काल' कहा है। मध्यकालीन प्रवृत्ति के केन्द्र में भक्ति, आस्था विश्वास, नीति और श्रृंगार रहे हैं, जबकि आधुनिक प्रवृत्ति के केन्द्र में तर्क, विचार, वर्तमान बोध रहे हैं। विचार मूलतः गद्य में ही हो सकता है, कविता में नहीं। कविता मूलतः भाव को लेकर चलती है, संवेदना को लेकर चलती है, इसीलिए कम शब्दों में बिम्बात्मक रूप में उसे भावना का प्रसरण करना होता है। अतः कविता विचार पैदा करने का कार्य नहीं करती । विचार पैदा करने का कार्य गद्य की केन्द्रीय विशेषता है। आधुनिक काल का प्रवर्तन इसीलिए गद्य के माध्यम से हुआ। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि सारे ज्ञान-विज्ञान, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र के विषय, गणित गद्य में ही लिखे जाते हैं, पद्य में नहीं। यह गद्य और पद्य का मूलभूत अन्तर है। हिन्दी कविता के प्रारम्भ की दृष्टि से विचार करें तो खडी़ बोली हिन्दी कविता का इतिहास 'भारतेन्दु युग(1850) से होता है। लेकिन इस युग में कविता में ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही। कविता का विषय भी भक्ति, नीति और श्रृंगार बने रहे। खडी़ बोली कविता का प्रयास भारतेन्दु हरिचन्द्र ने किया, लेकिन उनका मूल चित्त भक्ति-नीति और श्रृंगार का ही था। 'द्विवेदी युग' (महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में इसे 'द्विवेदी युग' 1900-1920) में कविता खडी़ बोली हिन्दी में प्रारम्भ हुई, थोडी़ बहुत आधुनिक भी हुई। इसके पश्चात् छायावाद युग, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता मोहभंग की कविता, उत्तर-आधुनिक कविता जैसे कई मोडों से हिन्दी कविता गुजरी। हर युग की कविता अपने स्वरूप एवं प्रवृत्ति में अलग है। पिछली इकाईयों में आपने हिन्दी कविता और आधुनिकता पर विवेचन किया। इस इकाई में आप हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों का विश्लेषण करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आगामी चार इाकइयों की पृष्ठ भूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। इस इकाई के अन्तर्गत हम हिन्दी कविता के नामकरण, काल

सीमा निर्धारण, आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों को जानने से पूर्व हम आधुनिक साहित्य पद्य के काल विभाजन एवं नामकरण को जान लें।

3.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता का यह पहला खण्ड है। यह खण्ड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया हैं इसके पूर्व आपने आधुनिकता की अवधारणा, आधुनिकता के आधार विचारक एवं दर्शन, आधुनिकता की पृष्ठ भूमि तथा आधुनिकता के साहित्यिक संन्दर्भों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन पिछली इकाई में किया है। इस इकाई में आप आधुनिक कविता की मूलभूत विशेषता से अवगत हो सकेंगे। आधुनिकता के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- आधुनिक हिन्दी कविता के काल-विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- मध्यकालीन कविता एव खडी बोली कविता का मूल भूत अन्तर समझ सकेंगे।
- आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता के पारिभाषिक शब्दों एवं मुहावरों से परिचित हो सकेंगे।

3.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, विशेषतय: पद्य हिन्दी साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। प्रायः युग कविता के नामकरण पर ही रहे हैं। आधुनिक हिन्दी कविता का विकास क्रमशः हुआ लेकिन वह अपने युग-समाज की सार्थक अभिव्यक्ति सिद्ध हुई है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का खा़सतौर से पद्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके, इसके लिए आवश्यक हैं कि हम आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण और काल विभाजन को जान लें।

3.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण

आधुनिक हिन्दी साहित्य के पद्य का काल-विभाजन एवं नामकरण की समस्या उलझी हुई है। आधुनिक साहितय का प्रारम्भ जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 1900 (ईसवी में 1843, क्योंकि संवत् ईसवी से 57 वर्ष ज्यादा होता है) से मानते हैं, वहीं डॉ0 नगेन्द्र 1868 ईसवी से।

रामविलास शर्मा के लिए केन्द्रीय बिन्दु 1857 की क्रान्ति है, वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 1850 ईसवीं को सुविधाजनक तरीके से आधुनिकता का केन्द्र बिन्दु निर्धारित करते हैं। मिश्रबन्धुओं ने 1833 से 1868 तक के समय को परिवर्तनकाल कहते हैं वही डॉ0 नगेन्द्र 1843 से 1868 ईसवी तक के समय को 'पृष्ठभूमि काल'। तात्पर्य यह कि 1843 से भारतेन्दु के रचनाकाल (1868 ईसवीं) तक के समय में आधुनिकता का वैचारिक आधार स्पष्ट हुआ, अतः भारतेन्दु काल से हम आधुनिक कविता का प्रारम्भ मान सकते हैं। लकिन इस सन्दर्भ में हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि 1850 या 1868 से 1900 तक को समय पद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है, बल्कि गद्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पद्य की दृष्टि से तो 1900 ईसवी के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक काल का प्रारम्भ 1900 ईसवी से माना है, जिसे हम पद्य के सन्दर्भ में निर्धारित कर सकते है। अतः हम चाहें तो 1850 से 1900 ईसवी तक का समय आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। संक्षेप में हम यहाँ आधुनिक पद्य के विभिन्न मोड़ों की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

1850- 1900 (पृष्ठभूमि काल)

1900- 1918 (द्विवेदी युग)

1918-1936 (छायावाद युग)

1936- 1943 (प्रगतिवाद)

1943- 1951 (प्रयोगवाद)

1951- 1959 (नयी कविता)

1960- 1964 (अ- कविता)

1965- 1975 (मोहभंग की कविता)

1975-1990 (जनवादी कविता)

1990- अब तक(उत्तर-आधुनिक कविता'/ विमर्श केन्द्रीत कविता/समकालीन कविता)

काल विभाजन एवं नामकरण की यह रूपरेखा सुविधाजनक है। इतिहास में कोई समय/काल निश्चित हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे हिन्दी कविता के प्रारम्भ की हम बात करें तो 1850 से 1900 ईसवीं तक के समय को हमने 'पृष्ठभूमि काल' कहा है, जबकि इसी समय आधुनिक हिन्दी गद्य का समुचित विकास होता है। 1850 से 1900 ईसवी के मध्य की भी बात करें तो इसी समय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लगभग 70 कविताएँ खडी़ बोली हिन्दी में लिखीं थी। इसके पश्चात् श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से 1886

ईसवी में किया था। इसके अतिरिक्त श्रीधर पाठक की स्फुट कविताओं का संग्रह ‘जगत-सचाई-सार’ 1887 ईसवी में प्रकाशित होता है। स्पष्ट है कि 1900 ई0 से पूर्व खडी़ बोली हिन्दी में काव्य रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः इस युग को काव्य रचना की दृष्टि से ‘पृष्ठभूमि काल’ कहना सार्थक है। नामकरण के सन्दर्भ में ‘भारतेन्दु काल’ को पुनर्जागरण काल तथा द्विवेदी युग को ‘सुधार’ काल भी कहा गया है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में जागरण एवं सुधार की प्रवृत्ति मुख्य रूप से थी, इसलिए उपर्युक्त नामकरण किया गया। ‘छायावाद’ के सन्दर्भ में विचार करें तो इसे ‘स्वच्छंदतावाद’ भी कहा गया है। डॉ0 बच्चन सिंह ‘स्वच्छंदतावाद’ नामकरण को ज्यादा अर्थगर्भित मानते हैं, क्योंकि ‘छायावाद’ केवल कविता का सूचक है। जबकि ‘स्वच्छंतावाद’ में गद्य औेर पद्य दोनों आ जोते हैं। वस्तुतः ‘स्वच्छंदतावाद’ नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ है। शुक्ल जी पश्चिमी रोमैंटिसिज़्म के हिन्दी पर्याय के रूप में ‘स्वच्छंदतावाद’ शब्द का प्रयोग करते हैं। ‘छायावाद’ और ‘स्वच्छंदतावाद’ में बुनियादी अन्तर है, इसलिए हम यहाँ ‘छायावाद’ नामकरण को ही प्रमुखता दे रहे हैं।

कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या के सन्दर्भ में 1935 से 1945 तक के समय को ‘प्रगतिवादी एवं ‘प्रयोगवाद’ कहा गया है। इसी समय दो काव्यान्दोलन और चले। सन् 1935 के लगभग हरिवंशराय बच्चन के प्रतिनिधित्व में ‘हालावाद’ आन्दोलन आया, जो उनकी चर्चित कृति ‘मधुशाला’ के पश्चात् उत्पन्न हुआ। इसी समय ‘राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता’ नामक अन्य काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह, दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा, नीवन इत्यादि थे। अब समस्या यह हैं कि ‘हालावाद’, ‘प्रगतिवाद’, ‘प्रयोगवाद’, तथा ‘राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता’ का रचना काल प्रायः एक ही हैं, फिर किसे हम काल-विभाजन के केन्द्र में रखें। इतिहास में कभी-कभी दो धराएँ समानान्तर रूप में चलती हैं, हिन्दी की उपर्युक्त काव्यधाराओं के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है।

सन् 1960 के बाद की कविता को ‘साठोत्तरी कविता’ भी कहा गया है और अ-कविता’ भी। एक नामकरण में ‘काल’ को आधार बनाया गया है, दूसरे नामकरण में साहित्यिक प्रवृत्ति को। 1960 से 1965 के आस-पास 64 काव्यान्दोलनों की सूची जगदीश गुप्त जी ने दी है। इन्हें आन्दोलन कहना भी उचित नहीं है। ये मात्र मत-मतान्तर हैं। ‘नयी कविता’ के समय (1951-1959) के बीच सन् 1956 में ‘नकेनवाद’ नामक आन्दोलन भी चला, किन्तु इसमें भी व्यापक जीवन दृष्टि का अभाव था। इसी क्रम में ‘मोहभंग की कविता’ नामकरण भी निर्विवाद नहीं है। काई इसे ‘नक्सलवाडी़ कविता’ कहता है, कोई ‘भूखी पीडी़ आन्दोलन’। सन् 1990 के बाद के समय को कोई उत्तर- आधुनिक समय कहता है, कोई ‘समकालीन’। अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि काल-विभाजन एवं नामकरण का प्रश्न निर्विवाद हो, यह सम्भव ही नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आधुनिक चेतना लाने में गद्य का क्या योगदान है? लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक वर्ष निर्धारित करने की समस्या लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश पद्य के माध्यम से हुआ।

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'गद्य काल' कहा है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ 1900 ईसवी से मानते हैं।

4. आधुनिक साहित्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं।

5. छायावादी काव्यान्दोलन का समय 1900 से 1930 इेसवी तक है।

3.3.3 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर

जैसा कि पूर्व में आपने पढा़ कि मध्यकालीन हिन्दी कविता की दो धाराएँ रही हैं। पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा गया है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की सामाजिक चेतना में बुनियादी अन्तर है। भक्तिकाल के केन्द्र में ईश्वर-भक्ति है तथा रीतिकाल के केन्द्र में राजा-श्रृंगार। भक्तिकाल सामाजिक - ऐतिहासिक बोध से युक्त है तथा रीतिकाल ऐन्द्रिय सुखों के प्रति आग्रही। दोनो वर्गों की सामूहिक प्रवृत्ति को हम केन्द्रित करें तो पूरे मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता भक्ति-नीति-श्रृंगार निर्धारित होती है। वहीं आधुनिक पद्य के केन्द्र में ईश्वर की जगह मनुष्य, भावना-भक्ति की जगह विचार एवं तर्क, नीति की जगह कार्य-कारण भाव संबंध तथा अलंकार की जगह बिम्ब ले लेते हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति भक्ति के संदर्भ में ज्यादा होती है। श्रेष्ठ पुरूष या ईश्वर की हम अतिश्योक्ति पूर्ण प्रशंसा या स्तुति करते हैं। अतः स्तुति-प्रशंसा में अलंकार का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है। आधुनिक काल की कविताओं में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य एवं भाव की जगह विचार ने ले लिया। विचार का वहन अलंकार नहीं कर सकते। विचार के लिए बिंब की उपयोगिता बढी़। बिंब का काम चित्र निर्मित करता है। बिंब संवेदना से जुडे़ होते हैं। बिंब भावना का बिंब आन्तरिक रूप होते हैं। आधुनिक पद्य की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन आप आगे की इकाईयों में विस्तार से करेंगे। अतः यहाँ संझेप में यह

विवेचित किया गया कि मध्यकालीन कविता की चेतना में भक्ति एवं श्रृंगार केन्द्रीय विषय वस्तु रहे हैं तथा आधुनिक कविता की ऊर्जा तर्क एवं बुद्धि रहे हैं। इसीलिए आधुनिक पद्य में ईश्वर के स्थान पर 'मनुष्य' स्थापित होता है। पुराना 'मानवतावाद' अब 'मानववाद' के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। 'मानवतावादी' में ईश्वर, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्रकृति सबके लिए जगह है। सबके लिए सम्मान, स्नेह, प्रेम एवं आदर का भाव है, लेकिन 'मानववाद' मनुष्य केन्द्रित दर्शन है। प्रकृति के सारे मूल्य- नीति मानव की उपयोगिता से संचालित होते हैं, यानी मानव ही सारी चीजों का नियन्ता है। इन सारी अवधारणों का सम्बन्ध आधुनिक काल के पद्य पर पड़ता है, जिसके कारण यह मध्यकालीन पद्य से अलग हो जाती है।

3.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध व्यापक रूप में आधुनिकरण की प्रक्रिया से है। आधुनिकीकरण का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के आगमन से माना जाता है। (हाँलाकि रामविलास शर्मा इसको आधुनिक काल कें पूर्व से ही मानते हैं) अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज जड़, एकरस, बन्द समाज था। हिन्दू धर्म जड़ता, अंधविश्वास से घिरा हुआ था। मुगल वंश के हास के साथ ही मुस्लिम सत्ता भी छोटे-छोटे टुकडो़ं में विभक्त हो गई थी। हिन्दू और मुस्लिम धर्म सामंतीय समाज थे। जबकि अंगेज यानी ईसाई संस्कृति पूँजीवादी विकास का आग्रह लेकर भारत आई थी, इसलिए उसमें एक आकर्षण था। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों के रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-विचार, साहित्य-संस्कृति, शिक्षा-कला में परिवर्तन होने लगे। शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यवसाय, समाजिक नियम- कानून, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा आधारभूत भौतिक विकास जैसे- सड़क, नहर, रेल, तार, डाक सेवा आदि में मूलभूत परिवर्तन उपस्थित हुआ। सारे परिवर्तनों पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। शिक्षा-पद्धति, धर्म, प्रेस तथा कानून- प्रशासन पर दूरगामी प्रभाव पडा़। मुस्लिम धर्म के सत्ता में रहने पर भी हिन्दू धर्म पूर्ववत बना रहा, क्योंकि मूल रूप से दोनों संस्कृतियाँ पिछड़ी-सामंती संस्कृतियाँ थीं। लेकिन ईसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति की टकराहट से एक नयी ऊर्जा पैदा हुई, जिसे कुछ लोगों ने 'नवजागरण' कहा है तो कुछ ने 'पुनजागरण'। आधुनिक हिन्दी पद्य के स्वरूप निर्माण में इन बदली हुई परिस्थितियों को महत्वपूर्ण योगदान था। अतः यहाँ हम यूरोप से आ रही 'आधुनिकता' के कारणों को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

3.3.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। आधुनिकी करण की प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यापार से है। 1498 में वास्कोडिगामा के समुद्री मार्ग से भारत आने की घटना के पश्चात् व्यापार को और बढा़वा मिला। वास्कोडिगामा ने यहाँ के कई राजाओं से व्यापारिक संधि की और कई फैक्टरियाँ स्थापित की। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व

पुर्तगालियों का अधिकांश पश्चिमी समुद्र तट पर वर्चस्व स्थापित हो गया था। 1600 ईसवीं में अंग्रेजों द्वारा स्थापित ईस्ट इंडिया कम्पनी का शुरू में उद्देश्य तो व्यापारिक था किन्तु क्रमशः उन्होंने राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया। पुर्तगाली एवं अंग्रेजों को व्यापारिक-राजनीतिक लाभ लेते देखकर डच और फ्रांसीसीयों ने भी भारत आकर व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने लगे। प्रारम्भ में इन सभी का उद्देश्य व्यापार कर लाभ कमाना था किन्तु बाद में ये भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगीं। पुर्तगालियों ने गोवा, दमन और द्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित किया, फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी, चन्द्रनगर एवं माही में अपना उपनिवेश स्थापित किया। किन्तु इनमें सबसे अधिक सफलता मिली अंग्रेजों को। 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भ से लेकर 1757 ईसवीं के प्लासी युद्ध तक अंग्रेज इस स्थिति में आ चुके थे कि वे पूरे भारत पर शासन करने का स्पप्न देख सकें। सन् 1757 ई0 में जनरल क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रजों ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की लडा़ई में हराकर अपनी सैनिक ओर कूटनीतिक ताकत में काफी इजा़फा कर लिया था। सिराजुद्दौला की इस हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। सन् 1764 ई. में बक्सर युद्ध में मुगल सम्राट शाह आलम भी पराजित हुआ। इस युद्ध के बाद बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा अवध का नवाब उनके हाथों की कठपुतली बन गया। सन् 1765 इसवीं में शाह आलम के कडा़ के युद्ध में पराजय से उसी शक्ति पूरी तरह समाप्त हो गई। इस पराजय के पश्चात् मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उडी़सा की दीवानी अंग्रेजों को सुपुर्द कर दी। सन् 1793 ई0 में अंग्रेजों ने मैसूर शासक टीपू सुल्तान को पराजित कर आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक तक अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों को दो शक्तियों पर वर्चस्व स्थापित करना शेष था- वे शक्तिशाली साम्राज्य मराठे और सिक्खों का था। आपसी फूट-संघर्ष के कारण 1803 के उसी तथा लासवारी युद्ध में तथा 1818 के चार युद्धों के बाद मराठों की शक्ति क्षीण हो गई। 1849 ईसवी में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् तथा सिक्खों को पराजित करने के बाद लगभग सम्पूर्ण देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। रही-सही कसर लॉर्ड डलहौजी की विलय नीति ने कर दिया। विलय नीति की प्रतिक्रिया रूपरूप हुए 1857 के संघर्ष के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया।

1857 ईसवी तक सम्पूर्ण भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन चुका था। पराजय- बोध ने भारतीयों के मन में राष्ट्रीय बोध बन कर उभरा। हिन्दी साहित्य पहली बार तत्कालीन समस्याओं से जुडा़- यह जुडा़व गद्य के माध्यम से हुआ, पद्य के माध्यम से नहीं। यह सही भी था क्योंकि विचार जल्दी बदलते हैं, संवेदना बाद में ढलती है। लेकिन यह समझना भूल होगी कि पद्य में बदलाव की प्रक्रिया थोडे़ बाद में शुरू हुई। अनायास नहीं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र की कविता में राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति का इन्द्व देखने को मिलता है।

3.3.3.3 आर्थिक परिस्थिति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज में ग्रामीण- कृषि प्रधान व्यवस्था थी। भारत के गाँव आर्थिक रूप से स्वावलम्बी थे और अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे। भारतीय गॉवों की अपरिवर्तनीय स्थिति पर चार्ल्स मेटाकफ ने लिखा है- '' गाँव छोटे-छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जीती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे। ''

प्रारम्भ में अंग्रेज कम्पनी का उद्देश्य व्यापारकि था, किन्तु बाद में उन्होंने इस देश को अपना बाजार बनाया। भारत के उद्योग -धंधों और हस्तशिल्प को नष्ट करके अंग्रेजों ने यहाँ के बाजा़र को अपने अधीन कर लिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र तथा उनके सहयोगियों ने विदेशी आर्थिक शोषण का उल्लेख किया है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप् ब्रिटेन में कच्चे माल की खपत/ माँग बढी़। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना कच्चा माल इग्लैण्ड को देना पडा़। उसी कच्चे माल की खपत भारत के बाजारों में होने लगी। कच्चे माल से निर्मित वस्तुएँ भारतीय बाजा़रों में इंग्लैण्ड से दुगने दाम पर मिलने लगीं। शोषण के इस रूप की प्रतिक्रिया स्वदेशी आन्दोलन' के रूप में हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन का घोषणापत्र अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया। 1793 ईसवीं में कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उडी़सा में जमींदारी प्रथा लागू करने तथा 1830 में सर टॉमस मुनरो द्वारा इस्तमरारी बंदोबस्त लागू करने से मालगुजारी, लगान की नकारात्मक स्थितियाँ उत्पन्न हुई। रही- सही कसर देश में पड़े अकालों ने किया। लेकिन विश्लेषण का एक पक्ष और हो सकता है। कई विचारकों ने इस तथ्य की ओर संकेत किय है कि पुराने अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, वह शोषण पर आधारित होने के बावजूद, अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ गया।

डॉ0 नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में टिप्पणी की है- '' बहुत से शहरी उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा से काल कवलित हो गए। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया। उससे अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी। गाँव दूसरे गाँवों और शहर के सम्पर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बँधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 443)। उपर्युक्त उदाहरण का सार यह है कि अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह नष्ट किया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से लाभ यह हुआ कि भारतीय समाज व्यापार या दूसरे रोजगार के लिए गाँव से बाहर आया और उसमें एक राष्ट्रीय चेतना का जन्म हुआ।

3.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति

अंग्रेजों शासन के आधिप्य ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म को गहरे रूप में प्रभावित किया। अंग्रेज जब भारत आये तब हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों धर्म अपनी प्रगतिशीलता खो चुके थे। हिन्दू धर्म, जो कभी ज्ञान एवं समृद्धि का भण्डार माना जाता था, वह भी जाति-पात, छूआछूत एवं ब्राह्यआडम्बरों में सिमट कर रह गया था। नवीन धर्म-दर्शन की निष्पत्ति तो दूर की बात रही, पुराने ग्रन्थों की मौलिक व्याख्या भी प्रायः नहीं होती थीं। कहने का भाव यह है कि सामान्य हिन्दू जनता धार्मिक कर्मकाण्डों से तंग थी। उसी तरह मुस्लिम धर्म भी कई तरह की संकीर्णताओं के आबद्ध हो चुका था। हाँलाकि मुगल सत्ता के समय 'दीन-ए-इलाही' जैसी व्यापक अवधारणाएँ भी आई थीं, लेकिन वह पूरे धर्म को प्रभावित करने में असफल रहीं, ऐसी स्थिति में दोनों धर्मो की संकीर्णताओं का लाभ उठाकर ईसाई मिशनरियों ने हिन्दु तथा मुस्लिम धर्म पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बाइबिल के हिन्दी अनुवाद वितरित किये जाने लगे। अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने धन का प्रलोभन देना भी शुरू कर दिया। अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से घिरी हिन्दू जनता ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हुई। बहुत सी निर्धन जनता ने ईसाई धर्म स्वीकार की कर लिया। ईसाई धार्मिक प्रचार की कट्टरता ने हिन्दू पुनरूत्थान की भावना को विकसित किया। हिन्दू धर्म के गौरव पर नये सन्दर्भों में विचार किया जाने लगा। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर हिन्दू धर्म की आधुनिक संन्दर्भों में व्याख्या की। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी ने धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर हिन्दू धर्म तथा भारतीय समाज को गहरे रूप में प्रभावित किया। ईसाई धर्म के धार्मिक आक्रमण के फलस्वरूप हिन्दू चेतना से जुटे। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह के खिलाफ कानून इसी जागरूकता के प्रमाण थे। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो (अमरीका) वक्तृत्व ने हिन्दू धर्म को पूरे विश्व में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित किया। अंग्रेजों का धार्मिक प्रचार हिन्दू धर्म के पुनरूस्थान से जुडा। हिन्दू धर्म की जड़ता टूटी और वह गतिशील हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का साहित्य सेक्युलर दृष्टि से ओत प्रोत है, जिसके पीछे पुनजगिरण की भावना ही काम कर रही थी।

3.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है, अंग्रजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज परम्परागत रूप का समाज था। भारतीय रहन-सहन, खान-पान का स्तर एवं जीविकोपार्जन का साधन परम्परागत थे, उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का अभाव था। अंग्रेज आधुनिक विज्ञान के सम्पर्क में आते जा रहे थे। विज्ञान का उपयोग उन्होंने विश्व में वर्चस्व स्थापित करने में किया। रेल, यातायात के साधन, सड़कें, तार, डाक व्यवस्था जो आधुनिक प्रगति के वाहक थे, अंग्रजों के माध्यम से भारत में आये। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय समाज निर्धन था, या उनका आर्थिक स्तर निम्न था। क्योंकि आँकडे कहते हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में

भारतीय हिस्सेदारी कई सम्पन्न देशों से ज्यादा थी। यहाँ परम्परागत समाज कहने से तात्पर्य यही है कि भारतीय समाज ग्रामीण व्यवस्था के ढंग में रंगा था। छोटे से जगह में उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थीं, हाँलाकि उस समय भी भारतीय व्यापार कई देशों में फैला हुआ था। भारत पर आधिपत्य स्थापित कर अंग्रेजों ने यहाँ की भाषा एवं संस्कृति पर भी श्रेष्ठता स्थापित करने की पहल करनी शुरू कर दी। लॉर्ड मैकाले की भाषा नीति ने भारतीय भाषाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया। 1800 ई0 में स्थापिम फोर्ट विलियम कॉलेज का उद्देश्य भी भारतीयों को ब्रिटिश प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजी भाषा सीखाना था। लेकिन इसी के साथ ही विलियम जोंस, मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने भारतीय भाषाओं की महत्ता को स्वीकार भी किया तथा अनेक ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये या करवाये। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से भी अनेक अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा सीखी। भाषा के प्रति गौरव-बोध ने सांस्कृतिक बोध को जन्म दिया।

भारतीय संस्कृति आध्यिक, आध्यात्मिक रूप से विकसित संस्कृति थी। संस्कृति के दो स्तर होते हैं- एक स्तरहै। बाह्य और दसरा है आन्तरिक। बाह्य स्तर के अतिरिक्त रहन-सहन , वेश-भूषा, खान-पान आते हैं तथा आन्तरिक स्तर के अन्तर्गत आत्मिक- आध्यात्मिक -बौद्धिक चेतना आती है। किसी समाज-संस्कृति के प्रभाव से बाह्य स्तर पहले प्रभावित होता है। यह प्रभाव चिंतनीय नहीं है। लेकिन अगर कोई संस्कृति किसी अन्य संस्कृति की जातीय चेतना पर आधिपत्य करना शुरू कर देती है तो वह ज्यादा गंभीर एवं खतरनाक होती है। अंग्रेजों ने अपनी औपनिवेशिक मानसिकता का आधिपत्य भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं पर हमले करके स्थापित किया। इस सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम हुआ कि भारतीय सामंती संस्कृति में हलचल हुई। अपने 'निज भाषा' एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता का भाव पैदा हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने घोषणा की - ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।'' जाहिर है सब उन्नति में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी शामिल है। यह निजता का भाव आधुनिक हिन्दी पद्य की पीठिका बनता है।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थान की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

1. भक्तिकाल............................बोध से युक्त है। (भौतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक)

2. मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता......................... निर्धारित होती है। (तर्क, भक्ति-श्रृंगार, कार्य-कारण सम्बन्ध)

3. ....भावना का संवेदनात्मक शब्द-चित्र है। (अलंकार, प्रतीक, बिंब)

4. मानवतावाद में ईश्वर, मनुष्य, प्रकृति, पशु-पक्षी सबके लिए जगह है, जबकि 'मानववाद'......................केन्द्रित दर्शन है। (ईश्वर, मानव, प्रकृति)

5. आधुनिकीकरण का मख्य सम्बन्ध .... के भारत आगमन से जुडा़ हुआ है। (पुर्तगाली, फ्रांसीसीयों, अंग्रेजों)

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. अंग्रजों के आगमन का प्रारंभिक उद्देश्य व्यापारिक था।

2. प्लासी का युद्ध सन् 1757 ई0 में हुआ।

3. वारेन हेस्टिग्ंज ने भारत में विलय-नीति प्रारम्भ की।

4. स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सबसे पहले भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जागरूकता दिखाई

5. ब्रह्म समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

3.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि आधुनिक पद्य का सम्बन्ध पुनजगिरण वादी चेतना से हे। पुनजगिरण का अर्थ करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- '' पुनजगिरण का एक चिह्न यदि दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट है तो दूसरा चिह्न यह भी कहा जाएगा कि वह मनुष्य के सम्पूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज, और उसका परिष्कार करना चाहता है'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ 80)।

आधुनिकता के केन्द्र में मनुष्य रहा हैं हिन्दी साहित्य में मनुष्य की अवधारणा कई बार बदली हैं। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इंगित किया है आदिकाल में मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जब कि भक्तिकाल में ईश्वर का चित्रण मनुष्य के रूप में हुआ है।

रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण हुआ है। तथा आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बनता है, और ईश्वर की धारण व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कि कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता। (चतुर्वेदी, रामस्वरूप, पृष्ठ 78-79) रामस्वरूप चतुर्वेदी के तर्क का सरल रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दी कविता में मनुष्य की बदलती अवधारणा

आदिकालः	मनुष्य	ईश्वर
भक्तिकालः	ईश्वर	मनुष्य
रीतिकालः	ईश्वर+मनुष्य	मनुष्य
आधुनिककाल:	मनुष्य	मनुष्य

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का तर्क मोटे रूप में सही है। लेकिन इसे पूरी तरह मान लेना भी संगत नहीं है। जैसे आधुनिक काल की हम बात करें तो हम देखते हैं इस युग में मनुष्य के साथ ईश्वर का चित्रण भी हुआ है तथा रहस्वादी प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है। यह अलग बात है कि पौराणिक- ऐतिहासिक संन्दर्भों की आधुनिक व्याख्या आधुनिकता की देन है। यहाँ इस बात का संकेत करके हम आधुनिक की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप चर्चा करेंगे। चूँकि यह इकाई आधुनिक पद्य की पृष्ठ भूमि के रूप में है इसलिए आगे की कविता-प्रवृत्तियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

3.4.1 राष्ट्रीयता

आधुनिक हिन्दी पद्य का प्रारम्भ राष्ट्रीय भाव बोध से हुआ है। राष्ट्रीय भावबोध का प्रारम्भ भारतेन्दु के गद्य के माधम से हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पंक्ति देखें-

''अँगरेज राज सुख साज सजै सब भारी

पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।''

इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य के शोषण का संकेत भारतेन्दु ने अप्रत्यक्ष तरीके से इस प्रकार किया कि ''अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।।''

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ''भात-दुर्दशा'' नाट्क की यह पंक्ति भी राष्ट्रीय बोध की ही निष्पत्ति हैः

''रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।

हा ! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

यहाँ भारतेन्दु हरिशचन्द्र की चिन्ता कबीर की चिन्ता से मिल जाती है। 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै' कहने वाले कबीर भारतेन्दु की पूर्ववर्ती प्रेरणा बनते हैं, यह ठीक ही है। भक्तिकाल जहाँ सांस्कृतिक जागरण है वहीं पुनजगिरण भौतिक-सामाजिक-ऐतिहासिक-सांस्कृति सभी प्राकर का जागरण है। 'प्रेमधन' ने भी अंग्रेजी सरकार के शोषण पर कटाक्ष करते हुए लिखा है- 'राओं सब मुंह बाया बाय हाय टिकस हाय हाय।'

राष्ट्रीयता की भावना 'द्विवेदी युग' में और तेज हुई, क्योंकि उस समय तक स्वतंत्रता आन्दोलन में और गति आ चुकी थी। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य राष्ट्रीय भाव-बोध से विशेष रूप से संचालित है। ''भारत-भारती'' काव्य अपने राष्ट्रीय बोध के कारण विशेष रूप से चर्चित हुआ। जिसके कारण उसे ब्रिटिश सत्ता ने प्रतिबंधित कर दिया था। 'भारत-भारती' का केन्द्रीय उद्बोधन है-

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।''

द्विवेदी युग के बाद छायावादी आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक बोध का आन्दोलन कहा गया है। छायावादी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक जागरण के तत्वों से अनुस्यूत है। 'कामायनी' की प्रसिद्ध पंक्तियाँ देखें-

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, जो निरूपाय,

समन्वय उसका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।''

हिन्दी कविता में सही रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत होती है- 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक'क कविता आन्दोलन से। रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओं 'दिल्ली', 'हाहाकार', 'विपथगा', तथा 'समर शेष है' में राष्ट्रीय भाव बोध की प्रबलता है। इसके अतिरिक्त उनके विचार-प्रधान काव्य 'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी' भी राष्ट्रीय भाव बोध से अछूती नहीं है। 'दिनकर' ने 'हुँकार' को राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह कहा है।- 'तिमिर ज्योति की सरमभूमि का मैं चारण' में वैताली।' यह 'दिनकर' का मूल स्वर है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता काफी लोकप्रिय हुई थी। सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त' और 'दैनिकी' राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच की कविताएँ हैं। बालकृष्ण शार्मा 'नवीन' की पंक्ति - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये' राष्ट्रीय भावधारा की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार सुभ्रदाकुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' तो राष्ट्रीय भावधारा का केन्द्रीय गीत ही बन गया। बुन्देलखण्डी लोकशैली में लिखी गई कविता- ''बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी। खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी। '' राष्ट्रीय आन्दोलन के समय काफी लोकप्रिय हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कविता में राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया। राष्ट्रीय चेतना की कविता का सम्बन्ध प्रायः पराधीनता की स्थिति हुआ करती है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विद्रोह- प्रतिकार का केन्द्र बदल गया। पहले विद्रोह क केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्य था, अब व्यवस्था आ गई। तय था कि अपने भीतर का संघर्ष बाहरी संघर्ष से

ज्यादा जटिल होता है। फलतः कविता में भी सांकेतिकता, बिंब, अंतर्विरोध, तनाव, विसंगति, बिडम्बना का प्रयोग होने लगा। कह सकते हैं प्रगतिवादी धारा तक राष्ट्रीय भाव बोध की खुली अभिव्यक्ति होती रही किन्तु उसके बाद राष्ट्रीयता का स्वरूप सूक्ष्म हो गया। इस पर आगे की इकाइयों में विस्तार से विचार किया जाएगा।

3.4.3 समाज -सुधार

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय पुनजगिरण का शुरूआती स्वरूप सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित रहा है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे ''समाज'' सुधारवादी प्रवृत्ति से ही संचालित रहे हैं। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह अधिनियम, बाल-विवाह निषेध कानून जागरण-सूधार की ही व्यावहारिक निष्पत्तियाँ हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने स्त्री शिक्षा के प्रचारार्थ 'बालाबोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की थी। आधुनिक हिन्दी पद्य का सम्बन्ध सुधारवादी चेतना से है। जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है भारतेन्दु युग तक पद्य में आधुनिकता का संस्पर्श नहीं हो पया था, लेकिन स्वंय भारतेन्दु 'निजभाषा' की आवश्यकता एवं महत्व को महसूस कर रहे थे। भारतेन्दु की चेतना का विकास महावीरप्रसाद द्विवेदी के माधम से पद्य में फलीभूत हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए''। उपदेशजनक एवं नीतियुक्त प्रकृति के कारण ही 'द्विवेदी युग' की कविता को जागरण -सुधार नाम दिया गया है। द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं- मैथिलीशरण गुप्त। मैथलीशरण गुप्त के ऊपर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-

''हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।'' 'भारतेन्दु' के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारतभारती' में मिलता है। इधर के राजनीतिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसक पूरा आभास पिछली रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यवाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान, सबकी झलक हम पाते है।'' गुप्त जी का 'साकेत' ग्रन्थ व्यापक रूप से भारतीय नवजागरण के प्रभाव तले लिखा गया है। स्त्री संबधी सुधार या करूणा उनके काव्य की केंन्द्रीय विशेषताओं में से एक है। 'यशोधरा' खण्डकाव्य की पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

''अबला हाय तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी युग में सुधारवादी भावना सौन्दर्यवादी चेतना से आप्लावित हुई। छायावाद ने कल्पना का व्यापक प्रयोग किया। द्विवेदी युग में जो नारी 'अबला' थी छायावाद में- 'देवि, माँ, प्राण, सहचरि प्रिये हो तुम।' वह कई रूपों में स्वीकार की गई। निराला ने इसी प्रकार वर्ग-वैषम्प का विरोध करते लिखा है- 'अमीरों की हवेली होगी/ आज होगी गरीबों की पाठशाला।' सामाजिक रूढ़ियों पर चोट करते हुए निराला ने लिखा है- 'तुम करो व्याह, तोड़ता

नियम/ मैं सामाजिक योग के प्रथम।' श्रम सौन्दर्य पर निराला ने 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' कविता लिखकर प्रगतिवादी धारा का सूत्रपात कर दिया था। प्रगतिवादी साहित्य में कविता का स्वर प्रचारात्मक बना। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', अमृतराय, रांगेय राघव की कविता तत्कालीन व्यवस्था विसंगतियों पर चोट करती है। प्रगतिवाद के बाद का पद्य समाज सुधार के स्थूल आवरण से हटकर सूक्ष्म रूप से विसंगति-विडम्बना के माध्यम से पहल करता चाहता है। अतः हिन्दी पद्य जो समाज सुधार की भावना से प्रारम्भ हुआ था, क्रमशः वैचारिक होता गया। आज का पद्य तो दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श को अपने में समेटे हुए है। इस दृष्टि से हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के प्रति पर्याप्त सजग रही है।

3.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ व्यवस्था यर्थाथ के उद्घाटन से ही हुआ है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का 'भारत-दुर्दशा' तथा 'अंधेरे नगरी' नाटक व्यवस्था यर्थाथ उद्घाटन के ही तो प्रयास है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है भारतुन्दु युगीन कविता 'कहाँ करूणानिधि केशव सोये,' से आगे नहीं जा पाई थी, लेकिन उस युग का गद्य पयप्ति रूप से अपने युग के प्रति सजग था। द्विवेदी युगीन कविता पर भारतीय नवजागरणवादी चेतना का प्र्याप्त प्रभाव है। और सुधारवादी रूझानों से भी संयुक्त है, लेकिन व्यवस्था-उद्घाटन की तीव्रता का उसमें अभाव है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' कृति, जो युवा क्रान्तिकारियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई थी, उसे भी हम जागरण- कृति कह सकते हैं, व्यवस्था उद्घाटन की कृति नहीं। प्रश्न है जागरण कृति एवं व्यवस्था उद्घाटन कृति में क्या अन्तर है? वस्तुतः जागरण की भावना पूर्ववर्ती भावना है, जबकि व्यवस्था उद्घाटन की भावना पश्चवर्ती। जागरण होने के पश्चात् ही हम व्यवस्था की विसंगतियों, अंतर्विरोध या यर्थाथ को देख-समझ सकते हैं। अतः जागरण एवं व्यवस्था उद्घाटन एक ही प्रक्रिया की पूर्व एवं पर स्थितियाँ हैं। 'भारत-भारती' का जागरण व्यवस्था के यर्थाथ के कारण पैदा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि पहले व्यवस्था के यर्थाथ का बोध होता है, फिर जागरण की भावना आती है तत्पश्चात् व्यवस्था के यर्थाथ का उद्घाटन होता है। व्यवस्था के यर्थाथ की विसंगति इसका अगला चरण है। द्विवेदी युग तक राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से जागरणवादी भावना का आगमन हो चुका था। छायावाद युग में व्यवस्था की विसंगति के पर्याप्त चित्र हमें देखने को मिलते हैं। निराला की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चाहे वह 'भिक्षुक' हो या 'तोड़ती पत्थर' या 'कुकुरमुत्ता'। लेकिन अन्य रचनाकारों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। जयशंकर प्रसद एवं महादेवी वर्मा का साहित्य व्यापक रूप से सौन्दर्यवादी-दार्शनिक रूझानों से गतिशील है वहीं सुमित्रानन्दन पन्त का साहित्य सौन्दर्य -चित्रों से होते हुए यर्थाथ के अंकन तक पहुँचा है। पन्त जी की कविता की पंक्ति देखें-

''साम्राज्यवाद था कंस, वन्दिनी

मानवता पशु बलाक्रांत

श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु

निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत

निराला ने इसी प्रकार लिखा है-

''रूद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,

अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक अंक पर काँप रहे हैं

धनी, वज्र-गर्जन से बादल

त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर

हे विप्लव के वीर! ''

या ' देखता रहा में खडा़ अपल

वह शरक्षेप, वह रणकौशल,

या ' ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,

खाकर पत्तल में करें छेद, ''

× × ×

'दुःख ही जीवन की कथा रही/क्या कहूँ आज जो नहीं कही! '

जैसी पंक्तियाँ व्यक्तिगत जीवन से होती हुई सामाजिक - राष्ट्रीय यर्थाथ को बखूबी व्यक्त करती हैं। लेकिन छायावाद तक कविता का मूल स्वर आदर्शवादी एवं सौन्दर्यवादी ही था। प्रगतिवादी आन्दोलन के घोषणापत्र से एक नये प्रकार की चेतना की जन्म हुआ, जिसने व्यवस्था की विसंगति का पर्याप्त पर्दाफा़श किया। प्रगतिवादी साहित्य तथा मोहभंग की कविता इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं प्रगतिवादी धारा में नागार्जुन अपने व्यंग्यपरक रचनाओं, जो व्यवस्था की

विसंगति पर आधारित हैं, के कारण विशेष रूप् से चर्चित रहे हैं। नागार्जुन की कविता के कुछ उदाहरण देखें-

''बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

सकल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के! ''

× × ×

'कई दिनों तक चल्हा रोया/चक्की रही उदास/

कई दिनों तक काली कुतिाया/ सोई उनके पास

× × ×

'धुन खाये शहतीरों पर बारहखडी़ विधाता बाँचे

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे,

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें-

'काटो, काटो , काटो, कदबी

मरो, मारो, मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

× × ×

'मिल के मालिकों को

अर्थ के पैशाचिकों को

भूमि के हड़पे हुए धरणीधरों को

मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ''

× × ×

'मैंने उसको जब भी देखा/ लोहा देखा/

लोहा जैसे गलते देखा/ लोहा जैसे ढलते देखा/

लोहा जैसे चलते देखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक व्यवस्था चित्रण का स्वरूप अलग किस्म का था और स्वतंत्रता पश्चात् व्यवस्था चित्रण का स्वरूप दूसरे प्रकार का। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व व्यवस्था के केन्द्र में ब्रिटिश सत्ता थी, जबकि उसके पश्चात् केन्द्र में शासन कर रही व्यवस्था, जिसमें कार्यपालिका, विद्यायिका एवं न्यायपालिका सभी आते हैं, आ जाती है। केन्द्र बदलते हैं तो परिधियाँ भी बदल जाती है। प्रारम्भ में कवियों का लक्ष्य सामाजिक यर्थाथ का चित्रण करना था, फिर राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति पर ध्यान गया उसके पश्चात् विसंगति के प्रति क्रान्ति की भावना तक कवि दृष्टि गई। गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की लम्बी कविता 'अंधेरे में' इस दृष्टि से प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। पूरी कविता जन-संगठन के क्रान्तिकारी तत्वों से आबद्ध है। ''अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। '' कविता की केन्द्रीय पंक्तियाँ हैं। इसके बाद हिन्दी कविता में 'व्यवस्था से मोहभंग' की बात सीधे-सीधे उठने लगी। मुक्तिबोध ने लोक युद्ध का सपना तो देखा लेकिन उन्होंने इसके लिए फैंटसी शिल्प (स्वप्न शैली) का सहारा लिया। लेकिन मोहभंग की कविता के सामने ऐसे किसी शिल्प की मजबरी न रह गई। अमरीकी कवि एलेन गीन्सवर्ग से प्रभावित कवियों का एक वर्ग उभरा, जो व्यवस्था की विसंगतियों पर खुलकर चोट करता था। इस धारा में राजकमल चौधरी, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', लीलाधर जगूडी, चंद्रकान्त देवताले मगलेश डबराल इत्यादि प्रमुख कवि शामिल थे। इस धारा की अगुआई कवि राजकमल चौधरी ने तथा सबसे सशक्त कवि थे 'धूमिल'। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए/ दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

× × ×

'अपने यहाँ संसद/तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है' इसी क्रम में धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'रोटी और संसद' देखें- 'एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है और न रोटी खाता है/ वही सिर्फ रोटी से खेलता है/ वह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है।'

3.4.4 विमर्श केन्द्रीयता

कविता अपने मूल रूप में भाव का परिष्कार एवं विस्तार करने वाली छांदिक एवं लययुक्त भाषा-विधान है। कविता सबसे पहले भाव निर्माण करती है। भाव निर्माण का कार्य कविता बिंब निर्माण करके करती है। युग-सन्दर्भ के अनुसार हाँलाकि कविता के औजार भी बदलते रहते हैं। 'विमर्श' शब्द उत्तर-आधुनिक युग की देन है। यह 'डिस्कोर्स' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रयोग होता है, जिसका अर्थ चर्चा-परिचर्चा के समतुल्य होता है। कविता और विमर्श का क्या सम्बन्ध है? कविता के लिए विमर्श की क्या आवश्यकता है? इन प्रश्नों को जानना जरूरी हो जाता है,

क्योंकि कविता युगानुरूप अपने तेवर विमर्श से ही प्राप्त करती रहती है। 'विमर्श' आलोचना की पृष्ठभूमि है। समकालीन घटनाओं पर जन-प्रतिक्रिया का बौद्धिक हस्तक्षेप है। भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ या काव्य गोष्ठियाँ विमर्श के ही प्रकार थे। संस्कृत साहित्य में राजेशेखर द्वारा वर्णित 'कविचर्चा' या ' विदग्ध गोष्ठी' विमर्श के ही प्राचीन नाम थे। अतः विमर्श साहित्य को तत्कालीन घटनाओं से जोड़ने का साधन हैं । भारतेन्दु का 'पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।'' समकालीन विमर्श का साहित्यिक रूपान्तर ही तो है। भारतेन्दु के 'अंधेरनगरी' का रूपक विमर्श नहीं तो और क्या है। मैथिलीशरण गुप्त की नवजागरणवादी साहित्यिक पंक्ति देखें- 'राम तुम मानव है? ईश्वर नहीं हो क्या? / विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?/ तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें,/ तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

× × ×

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।,'

मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्ति बदलते युगीन संवदेना को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त करती है। छायावाद का मूल स्वर सांस्कृतिक पुनरूत्थान या सांस्कृतिक जागरण का बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक हों यो प्रसाद, निराला की लम्बी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण को बखूबी व्यक्त करती है। अनायास नहीं कि छायावाद युग में सर्वाधिक जागरण गीत लिख गये। जयशंकर प्रसाद के 'प्रथम प्रभात', 'आँखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री'!, निराला के 'जागो दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धनिके,'! सुमित्रानन्दन पन्त के 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत', तथा महादेवी वर्मा के 'जाग बेसुध जाग' तथा जाग तुझको दूर जाना' जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण-विमर्श की रचनात्मक प्रतीतियाँ हैं। जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' खण्डकाव्य में ' जोगो, मेरे मधुवन में ' तथा निराला के 'तुलसीदास' के इन पंक्तियों में (जागो, जागो, आया प्रभात,/बीती वह, बीती अंध रात') जागरण का ही स्वर है। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि व्यवस्था चित्रण और विमर्श में स्वरूपगत भेद है। व्यवस्था चित्रण तत्कालीन घटना क्रम की सीधी अभिव्यक्ति है तो 'विमर्श' तत्कालीन घटना क्रम की साहित्यिक- सामाजिक पृष्ठभूमि। प्रगतिवादी साहित्य का वर्ग - वैषम्य उद्घाटन व्यापक रूप से 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक विमर्श से जुड़ता है। 'प्रगतिशील लेखक संध (1936) के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचन्द्र के अध्यक्षीय संबोधन 'साहित्य का उद्देश्य' पूरे प्रगतिवादी साहित्य का विमर्श ही है। इसी प्रकार प्रयोगवाद का आधुनिक बोध पश्चिमी विचारधाराओं

(मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद आदि का) के विमर्श का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। धूमिल जैस कवि पर नक्सलवादी आन्दोलन का कितना प्रभाव पडा़ है, यह ध्यान देने वाली बात है। नागार्जुन जैसे कवि पर राजनीतिक घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव हम देख सकते हैं। सन् 1990 के बाद के साहित्य को हमने विमर्श केन्द्रित साहित्य का नाम ही दे दिया है। सन् 90 के बाद कई विमर्श भारत और विशेषकर हिन्दी साहित्य में उभरे। जैसे भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर-आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। पहले के मुकाबले आज की राजनीतिक-भौतिक स्थिति में परिवर्तन आ चुका है। आत का युग संचार का युग है। संचार माध्यमों के प्रभाव से आज ढेरों घटनाएँ हमारे मन -मस्तिष्क का हिस्सा बनती है, किन्तु कम घटनाएँ ही हमारी संवेदना का हिस्सा बनती हैं। विमर्श के लिए संवेदना को घटना तक पहुँचना अनिवार्य है।

आधुनिक पद्य प्रवृत्तियों में ‘विमर्श केन्द्रियता’ मुख्य है। आधुनिक पद्य में स्वचेतन वृत्ति के कारण बदलाव की प्रक्रिया मध्यकालीन कविता से तीव्र रही है। आदिकाल एवं मध्यकालीन कविता शताब्दियों तक एक ही धारा में बहती रही हैं। आधुनिक काल के पश्चात् सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया भी तीव्र हुई। इस काल को सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर उत्तर-आधुनिकता कहा गया है। विचारधारा के स्तर पर इसे भूमंडलीकरण- वैश्वीकरण कहा गया है। इसी दौर में विचारधारा का अन्त’ ‘लेखक की मृत्यु’, कविता की मृत्यु’ जैसी नकारवादी अवधारणाएँ भी सामने आई। ‘विचारधार का अन्त’ प्रतिबद्धता हीन समाज की विलय का ही संकेत समझना चाहिए। उपर्युक्त नकारवादी दर्शनों में आंशिक सच्चाई थी। ये ज्यादातर पश्चिमी देशों का सच था। ‘नकारवादी दर्शन’ में सब कुछ नकारात्मक हो, हम यह भी नहीं कह सकते। उत्तर-आधुनिक सैद्धान्तिकी (हांलाकि यह किसी भी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं मानता) दबे हुए समाज/ हाशिये के समाज के लिए किसी वरदान से कम नहीं हुआ। अनुपस्थित की तलाश उन सारे सिद्धान्तों को चुनौती देता है जो श्रेष्ठता के मानदण्ड से स्थिर किये गये थे। अनुपस्थिति की तलाश का ही वैचारिक रूप ‘विमर्श’ है, जिसे पश्चिमी देशों में ‘डिस्कोर्स’ कहा गया। ‘विमर्श की केन्दीयता के दबाव के चलते ही स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श , आदिवासी विमर्श, भाषा-विमर्श, संस्कृति-विमर्श इत्यादि नये रूप में हमारे साने आये। सन् 1990 के बाद भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य में उपर्युक्त विमर्श नये ढंग से विश्लेषित किये जाने लगे।

अभ्यास प्रश्न 3

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-छह पंक्तियों में दीजिए-

1. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

....

....

....
....
....
....
....

2. हिन्दी कविता में मुनष्य की बदलती अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गय विकल्पों में से कीजिए।

1. 'भारत दुर्दशा न देखी जाई' पंक्ति के लेखक.. हैं। (मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

3. सांस्कृतिक जागरण......................की विशेषता है। (भारतेन्दु काल, द्विवेदी युग, छायावाद)

3. राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से .... उल्लेखनीय काव्यान्दोलन है। (छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक, प्रयोगवाद)

4. 'साकेत' ग्रन्थ के रचनाकार.. हैं। (जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त)

5. 'दुःख ही जीवन की कथा रही' पंक्ति के लेखक.............................. है। (नागार्जुन, दिनकर, निराला)

3.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व

अभी तक आपने हिन्दी कविता के सम्पूर्ण इतिहास का विस्तार से अध्ययन किया। इसी क्रम में आपने मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य के अन्तर का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि मध्यकालीन पद्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं। मध्यकालीन समाज-संस्कृति और काल को देखते हुए इसे पिछडा़ हुआ नहीं कहा जा सकता । मध्यकाल के अन्तर्गत 'भक्तिकाल' एवं रीतिकाल' दोनों आते हैं। कथ्य, संवेदना, लोकधर्मिता की दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण है। फिर भी अपनी सारी लोकधर्मिता और ऐहिक दृष्टि के बावजूद भक्तिकाल और रीतिकाल के सारे मूल्य ईश्वर एवं सामन्तों से संचालित होते हैं और यही मध्यकाल की सीमा है। आधुनिक काल के केन्द्र में मानव केन्द्रित मूल्य, तर्क केन्द्रित वैज्ञानिक दृष्टि एवं वर्तमानकालिक चेतना रही है। आधुनिक कालीन हिन्दी कविता ने क्रमशः ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित किये। रामस्वरूप ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित कये। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''आधुनिक काल में मनुष्य सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केन्द्र में हैं, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।'' प्रियप्रवास की भूमिका में 'हरिऔध ' ने लिखा है- ''मैने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरूष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।'' हिन्दी के अन्य महत्वपूर्ण महाकाव्य 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ले 'ईश्वर' की भूमिका को लेकर उनर्मूल्यांकन का प्रयत्न किया है- 'राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?' मानव केंद्रित मूल्य में काव्य की अभिव्यक्ति शैली ही बदल दी/ वर्तमानकालिक चेतना सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का आधुनिक संदर्भों में मल्यांकन करने की चेतना प्रदान की। हिन्दी पद्य ने नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप् सामंती मूल्यों का बहिष्कार कर लोकधर्मी मूल्य विकसित किये।

3.6 सारांश

- आधुनिक काल नवजागरणवादी चेतना से निसृत वैचारिक एवं प्रायोगिक दर्शन है। नवजागरणवादी चेतना सांस्कृतिक ऊर्जा से उत्पन्न चेतना है। अपनी जातीय चेतना, अस्मिता एवं संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन का सृजनात्मक प्रयत्न ही नवजागरण या पुनर्जागरण है।
- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य के माध्यम से आया। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'गद्य काल' कहा है। गद्य विचार प्रधान रूप है, जबकि पद्य संवेदना प्रधान। पहले विचार बदलते हैं फिर संवेदना। इस दृष्टि से हिन्दी पद्य का विकास हिन्दी गद्य के पश्चात् हुआ।

- प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता का काव्य प्रवाह कई वर्षों तक एम-सा ही चलता रहा है, लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता बदलती काव्य चेतना के कारण कई प्रवृत्तियों से होकर गुजरी है।
- आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न नामकरण को बदलती हुई साहित्यिक यात्रा का ही संकेत समझना चाहिए। नामकरण में भी कहीं साहित्यकार व्यक्तित्व (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग) कहीं साहित्यिक प्रवृत्ति (छायावाद, नयी कविता, हालावाद, प्रयोगवाद, मोहभंग की कविता इत्यादि) कहीं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थिति (पुनजगिरण, प्रगतिवाद, उत्तर-आधुनिकता इत्यादि) का मुख्य योगदान रहा है।
- खडी़ बोली हिन्दी कविता का आगमन अकस्मात नहीं हुआ है कि इसके पीछे सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक -सांस्कृतिक परिस्थितियों की मुख्य भूमिका थी।
- हिन्दी कविता आधुनिक बोध से युक्त रही है। आधुनिक बोध से युक्त होने का अर्थ है वर्तमानकालिक, तर्क केन्द्रित दृष्टि सम्पन्न होना।
- आधुनिक हिन्दी पद्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन एवं विमर्श केन्द्रीयता मुख्य रहे हैं।

3.7 शब्दावली

1. वर्तमानबोध - अपने समय की गति से परिचित होना।
2. स्वच्छंदतावाद- रूढ़ियों से मुक्ति का आन्दोलन
3. ऐंद्रियता - इस लोक के प्रति चेतना का भाव।
4. सेक्युलर - धार्मिक कट्टरता से परे का दर्शन
5. संश्लिष्ट - सम्पूर्ण, व्यापक रूप
6. विसंगति - सामाजिक व्यवस्था में संगति न होना
7. बिडम्बना - जीवन/समाज की चिन्तनीय स्थिति
8. लोकधर्मिता - लोक संवेदना का अनुभव।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 (ख)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2 (क)

1. ऐतिहासिक 2. भक्ति श्रृंगार 3. बिम्ब 4. मानव 5. अंग्रजों

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3 (ख)

1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. छायावाद 3. राष्ट्रीय- सांस्कृतिक

4. मैथिलीशरण गुप्त 5. निराला

3.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिका सभा।

3. (सं) डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, सं, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन

2. तिवारी, रामचन्द्र, रामचन्द्र शुक्लः आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि पर निबन्ध लिखिए।

2. मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

इकाई 4 - आधुनिक हिंदी कविताः भारतेन्दु युग

इकाई का स्वरुप
4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग
4.3.1 जीवन परिचय
4.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व
4.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ
4.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ
4.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ
4.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ
4.4.2 नवीन विषय वस्तु की कविताएँ
4.4.2.1 राष्ट्रीयता
4.4.2.2 सामाजिक चेतना
4.5 शिल्प पक्ष
4.5.1 भाषा
4.5.2 काव्य शिल्प
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व की इकाई 'हिन्दी साहित्य का आधुनिककालः पद्य का अध्ययन कर लिया है उस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना है कि आधुनिक काल की पृठभूमि क्या थी तथा वह कौन सी परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण आधुनिकता का विकास हुआ। तत्कालीन राजनीतिक,

आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थितियों से किस प्रकार आधुनिक काल का पद्य निर्मित हुआ, आपने पिछली इकाई में यह जाना। इसके अतिरिक्त आधुनिक पद्य का काल विभाजन एवं मुख्य प्रवृत्तियों को भी आपने अध्ययन किया। आधुनिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया गया है। क्योंकि समाज की विकसनशील स्थितियों से साहित्य को पहली बार भारतेन्दु ने ही जोड़ा। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में टिप्पणी की हैः ‘‘ भारतेन्दु हरिचन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों का बड़ा (दोनों पर) गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महता को सब लोगों ने मुम्तखंड से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गये। .... भाषा का निखरा हुआ सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्यभाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाये। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चुकी थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था........... भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।’’ (‘हिंदी साहित्य का इतिहास ’,पृष्ठ 404) । तय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। लेकिन कविता की दृष्टि से भी उनका साहित्य कम मूल्यवान नहीं है। काव्य में भी भारतेन्दु ने कम प्रयोग नहीं किए हैं।

इसके अतिरिक्त पत्र- पत्रिकाओं के प्रकाशन से भारतेन्दु ने कविता को समसाकयिक विषयों से जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से समूह हैं। कवि के रूप में उन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में कविताएँ लिखी हैं। जिनमें स्वरूपगत भेद है। भारतेन्दु हरिश्चन्दु के काव्य में व्यक्त राष्ट्रीयता, समाज सुधार, राजभक्ति, भक्ति ,नीति, श्रंगार आदि विविध विषयों से संबन्धित कविताओं को अध्ययन कर हम उनके रचना -कर्म को जानेंगे तथा यह समझने को प्रयत्न करेंगे कि हिन्दी साहित्य-संस्कृति में भारतेत्दु का क्या महत्व है। आइए हम भारतेन्दु कृतित्व के आस्वादन-अवलोकन से पूर्व उनकी जीवनी संक्षेप में जानें।

4.2 उद्देश्य

इसके पूर्व आपने खण्ड - 1 की इकाई 2 का अध्ययन किया। इकाई 2 में आपने आधुनिक हिंदी पद्य के स्वरूप एवं विकास का अध्ययन कर लिया है। पिछली इकाई में आपने

मध्यकालीन पद्य ओर आधुनिक पद्य का काल - विभाजन, आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियों आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। आधुनिक पद्य की शुरूआत भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से होती है। अब आप आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय नवजागरण की पीठिका को समझ सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के स्वरूप से परिचित हों सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के साथ भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के अन्र्तसम्बन्ध को जान सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य की मूल अंतः संबंधों को जान पायेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के सामाजिक साहित्यिक प्रदेय से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कविता की पारिभषिक शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।

4.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग

4.3.1 जीवन - परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर सन् 1850 ई0 में हुआ था। आप 18 - 19 वीं शताब्दी के जगत् - सेठों के एक प्रसिद्ध परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। आपके पूर्वज सेठ अमीचन्द का उत्कर्ष भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय में हुआ था। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष होने पर अमीचन्द ने अंग्रजों की सहायता की थी, यह अलग बात है कि उसके बाद भी अंग्रेजों ने उनके साथ प्रतिकूल आचरण किया । उसी परिवार में सेठ अमीचन्द के प्रपौत्र गोपानचन्द (उपनाम गिरिधरदास, 1844 जन्म) का जन्म हुआ । गिरिधरदास जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि तथा कवियों - लेखकों के आश्रयदाता थे। गिरिधरदास जी का लिखा नहुष काव्य नाटक ब्रज भाषा में लिखा, हिन्दी के प्रारंभिक नाटकों में से एक है। इन्ही गिरिधरदास जी के ज्येष्ठ पुत्रके रूप में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। इस प्रकार हम देखते है कि भारतेत्दु को दो चीजें विरासत में मिलीं । एक उनके घर का साहित्यिक संस्कार दूसरे, धन की उपलब्धता। धन की उपलब्धता ने ही ' भारतेत्दु - मण्डल ' के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतेत्दु हरिश्चन्द्र जी का पारिवारिक जीवन दुखमय रहा। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता पार्वती देवी तथा दस वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। विमाता के तिक्त व्यवहार से भी उन्हें बहुत कष्ट हुआ। पिता की अकाल मृत्यु के कारण भारतेन्दु जी की शिक्षा व्यवस्थित रूप से संपन्न नहीं हो पाई। पिता की मुत्यु के पश्चात् उन्होने काशी के क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन किया, लेकिन अध्ययनको क्रमिकता प्रदान नहीं कर सके। कॉलेज छोड़ने के पश्चात् भारतेत्दु जी ने स्वाध्याय से हिन्दी, संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस समय काशी के राजा शिवप्रसाद सिंह 'सितारे हिंद' प्रतिष्ठित विद्वान थे भारतेत्दु जी ने सितारे हिंद से भी शिक्षा ग्रहण की। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह काशी के लाला गुलाबराय की पुत्री मन्ना देवी से हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में भारतेत्दु जी सपरिवार जगन्नाथ यात्रा पर गये। इस यात्रा का भारतेत्दु जी के व्यक्तित्व पर दूरगामी प्रभाव पड़ा । जगन्नाथ यात्रा के पश्चात् भारतेत्दु जी कानपुर, लखनऊ, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृमसर, दिल्ली, अजमेर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, वेद्यनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानों की यात्रा पर गये। इन यात्राओं से भारतेत्दु का साहित्यिक ओर सांस्कृतिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। विशेषतौर से भारतेत्दु की बंगाल यात्रा ने उनको नवीन विषयों - विधाओं की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1880 में पं0 सुधाकर द्विवेदी पं. रधुनाथ तथा पं0 रामेश्वरदत्त व्यास के प्रयासों से उन्हे ' भारतेत्दु ' की उपाधि प्रदान की गई। 6 जनवरी 1885 ई. को अल्पायु में ही भारतेत्दु जी का देहावसान हो गया।

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी बहुमुखी प्रंतिभा के धनी थे। नाटक निबंध, कविता के क्षेत्र में आपका अमूल्य योगदान तो है ही, इसके अतिरिक्त आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, इतिहास, कहानी जैसी साहित्यिक विधाओं के प्रवर्तक भी बने। भारतेन्दु जी का पूरा जीवन दूसरों की सहायता करने में तथा साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ। साहित्य की तरह ही आपका पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण योगदान है। भारतेन्दु ने चार पत्रिकाओं प्रकाशन संपादन किया था। साहित्य - पत्रकारिता के अतिरिक्त सामाजिक - सांस्कृतिक सुधार के कार्यो में भी आप अग्रणी थे। चाहे वह धर्म के प्रचारार्थ स्थापित 'तदीय समाज' हो या महिला शिक्षार्थ प्रकाशित 'बालाबोधिनी' पत्रिका । इस प्रकार भारतेत्दु हिरश्चन्द्र का जीवन-विवके ऐतिहासिक आवश्यकता की माँग के कारण निर्मित हुआ था। प्राचीन और नवीन काव्यधाराओं का मणिकांचन योग भारतेत्दु के व्यक्तित्व में उपस्थित हुआ है। भारतेत्दु अपनी भक्ति - नीति, देश - प्रेम एवं भाषा - साहित्य प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहे है। भारतेत्दु में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व भी देखने को मिलता है। यहाँ हमने भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी के कृतित्व को समझने के लिए उनके जीवन का संक्षिप्त अध्ययन किया । अब हम भारतेत्दु हिरश्चन्द्र के कृतित्व की संक्षिप्त रूपरेखा देखेंगे।

4.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अल्पायु को देखते हुए उनका विपुल साहित्य आश्चर्यचकित करता है। न केवल परिमाण की दृष्टि से वरन गुणवता की दृष्टि से भी भारतेनदु जी का कृतित्व 2 लाघनीय है। भारतेन्दु जी के कृतित्व संबंधी विशेषताओं का विश्लेषण हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे, यहॉ हम उनके साहित्य की एक झलक मात्र का एक अवलोकन करेंगे।

गद्य साहित्यः भारतेन्दु हरिश्चन्द् का गद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक निधि है। चाहे वह नाटक हो, निबंद्य हो या पत्रकारिता। सर्वत्र उनके मौलिक विचारों का दर्शन हमें होता है। गद्य साहित्य में सर्वप्रथम भारतेत्दु जी ने नाटकों की रचना की। उनकी नाट्य कृतियो को तीन भागों में विभक्त किया गया है - अनुदित, मौलिक और अपूर्ण। विषय की दृष्टि से इन्हें ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पौराणिक में विभक्त किया गया है -

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अनुदित रचनाओं में है।

- ‘विद्यासुन्दर’(1868 ई, संस्कृत रचना ’चौरपंचाशिका’ के बंगला संस्करण का अनुवाद)
- ‘पाखण्डविडम्बन’ (1872 ई, कृष्ण मिश्रकृत ’प्रबोध चन्द्रोदय’ के तृतीय अंक का अनुवाद)
- ‘धनंजय - विजय (1874 ई, कंचन कविकृत व्यायोग’ का अनुवाद)
- ‘कर्पूर - मंजरी’ (1875 ई, राजशेखर कविकृत प्राकृत सट्टक का अनुवाद)
- ‘भारत जननी’ (1877 ई, नाट्य गीत)
- ‘मुद्राराक्षस’(1878 ई, विशाखदत्त कृत ’मुद्राराक्षस’ का अनुवाद)
- ‘दुर्लभ बंधु’ (1880 ई, में प्रथम दृश्य ’हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ और ’मोहन चन्द्रिका मे प्रकाशित हुआ। यह कृति शेक्सपियर के ‘मर्चेण्ट आर्फ वेनिश’ का अनुवाद है, रमाशंकर व्यास तथा राधाकृष्णदास ने इस कृति को पूर्ण किया।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मौलिक नाट्य रचनाएँ -

- ‘वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1874 ई.,प्रहसन)
- ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ (1875 ई,)
- ‘श्री चन्द्रावली’ (1876 ई,नाटिका)
- ‘विषमौषधम्’ (1876 ई, भ्राण)
- ‘भारत-दुर्दशा (1880 ई, नाट्य रासक)

- 'नीलदेवी' (1881 ई, प्रहसन)
- 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण, 1875 ई. नाटिका, प्रथम अंक के केवल चार दृश्य का लेखन)
- 'सती प्रताप' (1875 ई, (1875 ई, गीतिरूपक, केवल चार अंक)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कई आधुनिक गद्य विधाओं के भी प्रवत्तक रहे है। भारतेन्दु ने उपन्यास, नाटक, इतिहास, जीवनी, आत्मकथा जैसी विधाओं की शुरूआत भी की थी। भारतेन्दु का उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' मराठी उपन्यास के आधार पर लिखा गया है। भारतेन्दु की अन्य गद्य रचनाएँ हैं -

- भाषा संबंधी - 'हिन्दी भाषा'
- नाट्यशास्त्र - 'नाटक'
- इतिहास और पुरातत्त्व - कश्मीर कुसुम
- महाराष्ट्र देश का इतिहास
- रामायण का समय
- अग्रवालों की उत्पत्ति
- खत्रियों की उत्पत्ति
- बादशाह दर्पण
- बूंदी का राजवंश
- उदय पुरोदय
- पुरावृत्त संग्रह
- चरितावली
- पंच पवित्रात्मा
- दिल्ली दरबार दर्पण
- कालचक्र
- पत्र - पत्रिकाएँ: कविवचन सुधा
- हरिश्चन्द्र मैगजीन
- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
- बालाबोधिनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य साहित्य विपुल है, यहॉं उसकी केवल संक्षेप में सूची प्रस्तुत की गई है, क्योंकि यहाँ हमारे अध्ययन का विषय भारतेन्दु की काव्य रचनाएँ हैं। आइए अब हम भारतेन्दु जी का काव्य रचनाओ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें -

परम्परानुरूप् साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गोय रचनाएँ :-

- भक्ति सर्वस्व (1870 ई.)
- कार्तिक स्नान (1872 ई.)
- वेशाख माहात्मय (1872 ई.)
- देवी छद्म लीला (1874 ई.)
- प्रातः स्मरण मंगल पाठ (1874 ई.)
- तन्मय लीला (1874 ई.)
- दान लीला (1874 ई.)
- रानीछद्मलीला (1874 ई.)
- प्रबोधिनी (1874 ई.)
- स्वरूप (1874 ई.)
- श्रीपंचमी (1875 ई.)
- श्रीनाथ स्तुति (1877 ई.)
- अपवर्गदाष्टक (1877 ई.)
- अपवर्ग पंचक (1877 ई.)
- प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877 ई.)
- वैष्णव सर्वस्व
- वल्लीभ सर्वस्व
- तदीप सर्वस्व
- भक्ति सूत्र वैजयन्ती आदि।

भक्ति तथा दिव्य-प्रेमसंबंधी रचनाओं में

- प्रेम मालिका (1871 ई.)
- प्रेम सरोवर (1874 ई.)

- प्रेमाश्रु-वर्णन (1874 ई.)
- प्रेम माधुरी (1875 ई.,यह भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के कवित्त सवैयों का एकमात्र संग्रह है। यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का रीतिवादी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भारतेन्दृ ने धनानंद, ठाकुर, बोधा, रसखान द्वारा वर्णित प्रेम विरह के समान ही विरह की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।)
- प्रेम-तरंग (1877. ई यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि यह पदों की नही बल्कि गानों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में, जनता में प्रचलित लोक गीतों को साहित्यिक रूप दिया गया है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, पंजाबी, आदि कई भाषाओं की रचनाओं का समावेश है।)
- प्रेम प्रलाप (1877 ई.)
- होली (1879 ई.)
- मधु मुकुल (1880 ई.)
- वर्षा विनोद (1880 ई.)
- विनय प्रेम-पचासा (1880 ई.)
- फूलों का गुच्छा (1882 ई.)
- प्रेम फुलवारी(1884 ई., 'प्रेम फुलवारी' 94 पदों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दैन्य भाव के विरह संबंधी, प्रीति संबंधी एवं राधा-स्तुति तथा कृष्ण-स्तुति के पद हैं यह पदों की विशुद्ध शैली में रचित भारतेन्दु जी के प्रोढ़ ग्रन्थौ में है। 'चन्द्रावली नाटिका मे। इस ग्रन्थ्र के अनेक पद रखे गये हैं।)
- कृष्णचरित्र (1884 ई.)
- जैन कुतूहल (1874ई.)

परम्परागत रचनाएँ :-

- उत्तर भक्तमाल (1876-1877 ई.)
- गीत गोविन्दानन्द (1877-1878 ई.)
- सतसई श्रृंगार (1875-1878 ई.)

नवीन प्रकार की रचनाएँ :-

- स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तर्लायिका (1861 ई.)
- श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र (1869 ई.)

- सुमनांजलि (1871 ई, प्रिंस आर्फ वेल्स के पीड़ित होने पर)
- मुह दिखावनी' (1874 ई.)
- श्रीराम कुमार शुभागमन वर्णन' (1875 ई.)
- भारत भिक्षा' (1875 ई.)
- मानसोपायन' (1875 ई.)
- मनोमुकलमाला' (1877 ई.)
- भारत वीख्य'(1878 ई.)
- विजय वल्लरी' (1881 ई.)
- विजयिनी-विजय पताका या वैजयन्ती' (1882 ई.)
- नये जमाने की मुकरी' (1884 ई.)
- जातीय संगीत' (1884 ई.)
- रिपनाष्टक' (1884 ई.)

ऊपर हमने भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ की सूची देखी । इसके अतिरिक्त भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के भक्ति, प्रेम, श्रृंगार और नवीन विषयों पर स्फुद दोहे, कवित, सवैया, पद, गजल, भी मिलते हैं। व्यंग्य और हास्य की दृष्टि से उर्दू भाषा में लिखित 'स्यापा' (1874 ई.) तथा 'बंदर सभा'(1879 ई.) उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र कृत रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि जीवन क्षेत्रों को स्पर्श कर सकी है। भारतेन्दु के काव्य साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर उन्होंने जहाँ परम्परागत विषयों पर अपनी लेखनी चलाई वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं का समावेश करते हुए नवीन काव्य प्रयोग भी किये। आगे की बिंदुओ में हम भारतेन्दु हरिशचन्द्र के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिन्ह लगाएँ।

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक हैं। ( )

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जीवन और साहित्य के विच्छेद को दूर किया, यह कथन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। ( )

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म ९ सितम्बर १९५0 ई. को हुआ था ( )

४. भारतेन्दु उपाधि हिरश्चन्द्र को १८८0 ई. में दी गई। ( )

५. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने चार पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। ( )

(ख) सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का .... की अल्पायु में स्वर्गवास हो गया।

(३४, ३७, ४0, ४५)

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का प्रथम नाटक .... था।

(भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, विद्यासुंदर, दुर्लभ बंधु)

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी के पिता .... भाषा के अच्छे कवि थे।

(मराठी, बंगला, ब्रजभाषा, अवधी)

४. .... नाटक शेक्यपियर के नाटक का अनुवाद है।

(अंधेर नगरी, प्रेम योगिनी, दुर्लभ बंधु, भारत दर्दशा)

4.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ

किसी भी युग-समाज में या कहें कि इतिहास में बदलाव की प्रक्रिया अनायास नहीं होती। उसके ठोस भौतिक कारण होते है। सामाजिक-राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियांे में हुए परिवर्तन से साहित्य भी प्रभावित होता है, क्योंकि साहित्य अंततः सांस्कृतिक क्रिया ही है। जैसा कि कहा गया इतिहस में बदलाव न तो अचानक प्रकट हाता है, न ही उसकी प्रक्रिया यकायक होती है। बदलाव या परिवर्तन लम्बे राजनीतिक – सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम होता है। 1850.ई. के लगभग समय भी इतिहास में कुछ ऐसा ही ’पार्ट’ अदा करता है। एक ओर रीतिकाल की समाप्ति की समय दूसरी ओर आधुनिक नवजागरण की उत्पत्ति का समय। नये युग का साहित्य नये रूप् की मागँ भी करता है।इसलिए यह सोचना गलत होगा कि विषय वस्तु और रचना-शैली में कोई अंतर नहीं है। या रचना शैली व्यक्तिगत होती है। यह सही है कि हर लेखक अपनी भाषा एवं शैली में विशिष्ट होता, किन्तु उसेक व्यक्तिगत शैली पर भी युगीन रचना एंव लेखक के परिवेश का गहरा असर होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य का साहित्यिक महत्व इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो उठता है कि हिन्दी साहित्य में पहली बार विषय वस्तु के बदलाव के साथ काव्यरूप का चुनाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। हालांकि उन प्रयोगों का काव्य में वे

उतना व्यवस्थित नहीं कर पाये, लेकिन उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद रूप से उच्चे स्थान का अधिकारी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जब रचनाक्षेत्र में आये, तब ब्रजभाषा के संबंध में यह दृढ़ मान्यता थी कि वह भक्ति - नीति -श्रृंगार की भाषा है। ब्रजभाषा में जो मधुरता, सरलता एवं प्रवाह है वह किसी दूसरी भाषा में नही है, ऐसे समय मे खड़ी बोली में कविता करना आसान काम नहीं था। भारतेन्दु हरिचन्द्र जी के लिय यह आसान रहा भी नहीं। स्वंय भारतेन्दु ने मात्र सत्तर कविताएँ खड़ी बोली में लिखीं । लेकिन खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है, यह ऐतिहासिक कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया। जैसा कि कहा गया भारतेन्दु के साहित्य में पर्दापण के समय रीतिवादी कविता का प्रचलन था। स्वय। भारतेन्दु जी के पिता गिरिधरदास जी पुराने ढंग के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार वैष्वव भक्ति का था। अतः

भक्ति -नीति का संस्कार उनके ऊपर परम्परा से ही पड़ गया था। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा के दबाव के कारण उन्होंने कविता में राष्ट्रीयता समाज-सुधार जैसे विषयों को शामिल भी किया। काव्य-प्रयोग की दृष्टि से भी भारतेन्दु ने कई प्रयोग किए। चाहे लोक गीतों को साहित्य में ढालने का कार्य हो या छन्द संबंधी प्रयोग सर्वत्र भारतेन्दु जी की काव्य सजगता देखी जा सकती है। भारतेन्दु के काव्य संबंधी संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद आइए हम भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृतियों को जानें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की कविता के मुख्य दो स्वरूप् स्वीकार किये गए हैं। एक मे उनके प्राचीन ढंग की कविताएँ हैं। दूसरी नई प्रवृतियों से संचालित कविताएँ हैं।

4.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि भारतेन्दु प्राचीन एवं नवीन के संधिस्थल पर खड़े थे। अतः उन्में परम्परा और नवीनता दोनों के तत्व मिलते हैं। परम्परागत प्रवृतियों में भी उनकी कविता में वैविध्य देखने को मिलता है। एक ओर वे वैष्णव भक्ति की कविताएँ लिखते हैं, दूसरी ओर रीतिकालीन मनोवृति की यहॉ हम भारतेन्दु हरिश्चन्दु के परम्परागत कविताओं को स्वरूप् देखेंगे तथा उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।

4.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का परिवार वैष्णव भक्ति से संबंधित था। स्वंय भारतेन्दु जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। भारतेन्दु जी की पुरी यात्रा के संदर्भ को हमने पढ़ा, उस यात्रा का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी, जैसा कि टी.एस.इलियट ने लिखा है कि श्रेष्ठ साहित्यकार की मज्ना में उसकी परम्परा अनुस्यूत रहती है। भारतेन्दु में पूर्ण मध्यकालीन परम्परा को हम देख सकते है। वल्लभ संप्रदायके अतिरिक्त भारतेंन्दु ने राम काव्य, जैन काव्य पर भी कविताएँ लिखी हैं। भक्ति के पदों में भी एकरसता नहीं मिलती, उसमें भी भावों एवं अनुभूति-अभिव्यक्ति की विविधता

देखने को मिलती है। भारतेन्दु के ऊपर सूर, तुलसी, मीरा, कबीर का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु का विनय पद देखिय, जिस सूर तुलसी का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है -

''हरि लीला सब विधि सुखदाई।''

× × ×

नहि ईश्वरता अँटकी वेद में

तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद में।।''

× × ×

'हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? '

× × ×

''खोजत वसन ब्रज की बाल

निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल

सुनत चेचलहित चुहँ दिसि चकित निरख्तनारि

मधुर बैननि हिओ फरकत जानिकै बनवारि

कदम पर ते दरस दीनो, गिरिधरन धनश्याम ''

उपर्युक्त उद्धरण देखने से सहज ही संकेत मिलता है कि भारतेन्दु जी के भक्ति पद कही देन्य-विनय के हैं, कहीं प्रेमाभक्ति के।

4.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को रीतिकाल की श्रृंगारिकता परम्परा से या कहें कि विरासत में मिली थी। भारतेन्दु जी के पिता का दरबार लगा करता था। स्वंय भारतेन्दु जी के यहाँ साहित्यकारों का जमघट लगा करता था। 'भारतेन्दु-मण्डल' का इस दरबार से घनिष्ठ संबंध था। हम कह सकते हैं कि 'भारतेन्दु-मण्डल' के निर्माण में इस दरबारी मनोवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ था। 'भारतेन्दु के समय कविता का एक स्वरूप् समस्यापूर्ति भी था। समस्यापूर्ति का संबंध ज्यादातर श्रृंगार से ही है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताएँ मतियम, घनानन्द, देव, पद्माकर, की परम्परा में है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

'ब्रज के लता पता मोहि कीजे

गोपी - पद -पकंज पावन की रज जामेसिर भीजे।।'

× × ×

'सिसुताई अजों न गई तन तें, तऊ जोबन जोति बटोरे लगी।
सुचि के चरचा हरिचन्द की, कान कछूक दे, भौहं मरोरे लगी।
बचि सासु जेठानिनि सौ, पियते दुरि घुंघट में दृग जोरे लगी।
दुलही उलही सग अंगन तें , दिन द्वै तै पियूस निचारे लगी।

× × ×

कूकें लगी कोइलें कदम्बन पै बैठि फेरि
कि धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगै।
बोले लगे दादुर मयूर लगे नाचे फेरि
देखि के सँयोगी जन हिय हरसै लगे।
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि हरिचन्द फेर प्रान तरसे लगे।
फेरि झूमि झूमि बारसा की रितु आई फेरि
बदर निगोरे झूकि झूकि बरसै लगै।।
यह संग में लागिये डोले सदा बिन देखे न धीरेज आनती हैं।
छिन हू जो वियोग परै न झपै उझपैं पल में न समाइबो जानती है।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया डुखियॉ नही मानती है।

× × ×

लाज समान निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये।
जानन दीजिये लोगन को कुलटा कहि मोहि पुकारन दीजिये।।
प्यों हरिचन्द सबै भय टारि के लालन घूँघट टारन दीजिये।

छांड़ि संकोचन चन्द मुखै भरिलोचन आज निहारन दीजिये।।

4.4.2 नवीन विषयक्स्तु की कविताएँ

हमने पूर्व में अध्ययन किया कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। साहित्य -समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने की दृष्टि से आपका महत्व ऐतिहासिक एवं युगान्तकारी है। इस दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य विशेष महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली पद्य भारतेन्दु ने बहुत कम लिखा है, कारण यह कि भारतेन्दु जी का क्व्र्य - विषय (भक्ति-नीति-श्रृंगार) ब्रजभाषा के निकट ज्यादा रहे है। बावजूद इसके भारतेन्दु के काव्य में आधुनिकता के दर्शन य़त्र-तत्र हो ही जाते है। देशभक्ति भारतेन्दु साहित्य का मुख्य विषय रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार आपकी रचनाओं की मुख्य विषय वस्तु है। भारतेन्दु के व्यंग्य, उनकी भाषा-शैली सब कुछ अपने ढंग की अलग विशेषता रखते हैं। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य की प्रमुख विशेषता से परिचय प्राप्त करें।

4.4.2.1 राष्ट्रीयता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता को लेकर कई तरह के भ्रम फैलाये गये हैं (देखें रस्साकस्सी-वीरभारत तलवार की पुस्तक)। कुछ लोगों की नजर में भारतेन्दु राजभक्त हैं तो कुछ की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रभक्त। इस संबंध में हमें पूर्वाग्रह मुक्त होकर भारतेन्दु साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता सरकारी कर्मचारी थे। इसलिए सवभावतः भारतेन्दु जी राजभक्ति की ओर झुके, लेकिन क्रमशः उन्हे विक्टोरिया साम्राज्य की वास्तविकता का भान होने लगां। राष्ट्रीयता के चित्रण में भारतेन्दु जी कई बार पौराणिक इतिवृतों से प्रेरणा लेते हैं और कई बार तत्कालीन समस्याओं से । भारतेन्दु ने अतीत को प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया है। प्रबांधिानी' में लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ये छन्द देखिए -

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवन केवल।

पसु समाज सब अन्न खात पीउत गंगा जल।।

धन विदेस चलि जात तऊ पिय होत न चंचल।

जड़ समान हवे रहत अकिल हत रच न सकल कल।

जीवन विदेस की वस्तु लै ता बिनु कक्षु नहिं कर सकत।

जागो - जागो अब साँवरे सब कोउ रूख तुमरो तकत।।

× × ×

कहां गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिके थिर

कहँ क्षत्ती सब मरे जरे सब गए किते गिर

कहां राज को ताने साज, जेहि जानत है चिर

कहं दुर्ग सन - धन, बल गयों, धुरहि धूर दिखात जग

जागो अब तो खले बल दलन रक्षहु अपुनी आर्य मग।''

अतीत को स्मरण करना पुनजगिरणवादी चेतना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने इसीलिए विभिन्न कविताओं के माध्यम से अपने गोरवशाली अतीत को स्मरण किया है। अतीत के गोरवशाली परम्परा को भारतेन्दु जी ने कई बार-बार स्मरण किया है, किन्तु कई बार वे सीधे - सीधे भारत - दुर्दशा को स्मरण करते है, यहाँ अकी लेखकी ज्यादा समसामयिक है -

जो भारत जंग में रहयो सबसों उत्तम देश

तहि भारत में रहयो अब नहिं सुख को लेस।

× × ×

रोअहु सब मिलके आवहु भारत भाई

हा। हा। भारत दुर्दशा ने देखी जाई

× × ×

कठिन सिपाही द्रोह अनज जा जन बल नासी।

जिन भय सिर न हिलाइ सकट कहुँ भारतवासी।।

× × ×

हाय सुनत नहि, निठुर भय क्यों परम दयाल कहाई

उठहु वीर तलवार खीचं माऊ धन संगार।

× × ×

वीरो की प्रशंसा - कहा तुम्है नहि खबर जय की छूट ग्वाई।

जीति मिसर में शत्रु - सेन सब दई भगाइ।

तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह।

भारत सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह।

× × ×

''अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।

लेहु करन करवालि काढ़ि रन - रंग समोए।

चलुह बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ायो।

लेहु म्यान सों खंडा खींचि रन रंग जमाओ।

अपने सिंहनाद से शत्रुओं के ह्रदय को दहला दो।

मारू बाजे बजे कहो धौसां घहराहीं

उडहि पताका सत्रु - ह्रदय लसि लखि थहराहीं। ''

4.4.2.2 सामाजिक चेतना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नवजागरणवादी चेतना के रचनाकार थे। नवजागरण एक प्रकार से सांस्कुतिक जागरण लेकर आया। समाज और संस्कुति का गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक चेतना राष्ट्रीयता की ही अभिव्यक्ति होती है। जिस व्यक्ति में राष्ट्रीय भाव बोध जितना गहरा होगा, उसकी ही तीव्र होंगे। उसकी कविता में सामाजिक परिस्थितियों के चित्र उतने ही तीव्र होगे। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है हक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में राजभक्ति - राष्ट्रभक्ति दोनों के तत्व है, इसलिए उनकी सामाजिक चेतना पूरी तरह क्रान्तिकारी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक है। भारतेन्दु की सामाजिकता में सामाजिक – सांस्कृतिक - आर्थिक - राजनीतिक सुधार की आकांक्षा व्यक्त की गई है। कुछ उदाहरण इष्ट्रवय है -

(आर्थिक) ''अंग्रेज राज सुस साज सजे सब भारी ।

पे धन विदेश चलिजात इहै अति खारी।। ''

× × ×

मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम

परदेशी जुलाहन के मानहुँ भए गुलाम

(विदेशीवस्तुं) वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौन आदि

आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि

× × ×

(सामाजिक व्यवहार)

यहि असार संसार में चार वस्तु है सार
जुआ मदिरा मांस अरू नारी संग विहार

× × ×

(कूपमंडूकता)

रोकि विलायत गमन इप मंडूक बनायो
ओरन को ससंर्ग घुड़ाई प्रचार घटायो।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) रिक्त स्थानो में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पिता का नाम .... था।

2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य मे पर्दापण के समय .... प्रवृत्तिया प्रचलित थीं।

3) भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार .... भक्ति का था।

4) ’हमन है .... क्या ?

5) ’ब्रज के लता .... मोहिं कीजै,

(ख) टिप्पणी लिखिए: नीचे दिये गये शब्दो पर 5 पंक्तियों मे टिप्पणी लिखिए।

1) भारतेन्दु - मण्डल

----

2) आधुनिक गद्य विधाएँ

----

3) राष्ट्रीयता

4.5 शिल्प पक्ष

साहित्य में विषय वस्तु एवं रूप - गठन दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। विषय वस्तुका संबंध जहाँ बदलती सामाजिक प्रवृत्तियों से है वहीं रूप का संबंध बदलती सामाजिक अभिरूचियों की स्थिरता से है। अर्थात् रूप् तभी बदलते हैं जब सामाजिक रूप से समाज में आधार भूत परिवर्तन उपस्थित हो जाते हें। ज्यादातर ऐसा होता है कि कथ्य रूप - निर्माण में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता है या विधान वर्ण्य - वस्तु को संयोजित करने में अपनी भूमिका निभाये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय संधिकाल का समय है। एक ओर ब्रजभाषा का संस्कार (भक्ति - नीति - श्रृंगार की प्रवृत्तियाँ) तो दूसरी ओर आधुनिकता (नवजागरण) का आभास । एक ओर विचार दूसरी ओर संस्कार । स्वाभाविक था कि ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया साहित्य संकान्तिकालीन चेतना से युक्त होता। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य को समझने के लिए उनके शिल्प - विधान का संक्षिप्त रूप में अवलोकन करें।

संरचना या शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ परम्परागत तत्वों का प्रयोग किया और कुछ नवीन प्रयोग किये। संरचना के अंतर्गत मुख्यतः भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार इत्यादि की गणना की जाती है। आइए हम भारतेन्दु काव्य संरचनागत विशेषताओं का अध्ययन करें -

4.5.1 भाषा

भारतेन्दु युग के काव्य की सर्वप्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा उस युग के साहित्य की भाषा थी। हर युग के समाज में मुख्यतः दो भाषाएँ अनिवार्य रूप से होती ही है । एक उस समाज के आभिजात्य वर्ग की भाषा या साहित्य की भाषा और दूसरे जन सामान्य के दैनिक कार्य - व्यवहार की भाषा । भारतेन्दु काल में ब्रजभाषा काव्य की भाषा थी और खड़ी बोली बोलचाल की। इसी बीच गद्य खड़ी बोली में लिखा जाने लगा था। इस द्वैतपूर्ण स्थिति में कविता करना कठिन कार्य था। भारतेन्दु की काव्य भाषा में भी यह द्वैतपूर्ण स्थिति हमें देखने को मिलती है। उन्होने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में काव्य रचना की है। बावजूद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

विनम्रतावश यह लिखते हैं कि उनकी अभिरूचि खड़ी बोली कविताओं के अनुकूल नहीं है। सन् 1881 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने खड़ी बोली की कविताएँ 'भारत मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजी थी। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मे उनकी प्रसिद्ध कविता 'मंद मंद आवे देखे प्रात समीरन' छपी थी। 'हिंदी भाषा ' निबन्ध के नई भाषा की कविता में उन्होने अपना दोहा उद्धृत किया है -

भजन करो श्रीकृष्ण का मिल कर सब लोग।

सद्ध होयगा काम और छुटेगा सब सोग।।

पर इस टिप्पणी देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है - अब देखिए, कैसी भौंडी कविता है ! आगे भारतेन्दु ने लिखा है 'जो हो, मैने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे चिन्तानुसार नही'। भारतेन्दु की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बावजूद उन्होने लगभग 70 कविताएँ खड़ी बोली में लिखी हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि भरतेन्दु हरिष्चन्द्र के काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही है । भारतेन्दु ने साहित्य के रूप् में स्वीकृत ब्रजभाषा को और परिष्कृत किया। भारतेन्दु के काव्य में कई भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं, जैसे अंग्रेजी (पोर्ट, शैंपेन, ब्रांडी), उर्दू (खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम इत्यादि) भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भोजपुरी शब्दों को प्रयोग भी मिलता है।

4.5.2 काव्य – शिल्प

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने व्यवस्थित रूप से प्रबन्ध काव्य तो नही लिखा लेकिन प्रबन्ध एवं मुक्त काव्य रूप के क्षेत्र में उन्होने काफी प्रयोग किये है। भारतेन्दु जी के काव्य रूपों में निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य, विवरणात्मक काव्य एवं मुक्तक काव्यों की गणना की जाती है। निबंध काव्यों में बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक, वर्णनात्मक काव्यों में होली लीला, मधुमुकुल छंद, हिंडोला, विवरणात्मक काव्यों में विजयिनी विजय वैजयंती, भारत वीरत्व, भारत शिक्षा, मुक्तक काव्यों में प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्णन, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविदानंद, होली , मुधु मुकुल, राग सग्रहं वर्षा विनोद, विनय - प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, दैन्य प्रलाप, तन्मय लीला, बोधगीत, भीष्मस्वराज इत्यादि रचनाएँ शामिल हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य क्षेत्रं में कभी परम्परागत रूप - विधान का परिपालन किया है और कभी अपनी ओर से नवीन प्रयोग किया हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रयुक्त छंद - विधान, रस एवं अलंकारों के प्रयोग से हम उनकी शिल्प - कला को ओर बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

छंद :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुख्य काव्य भाषा ब्रजभाषा थी। स्वाभाविक था कि वे ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त विविध काव्य - छंद का प्रयोग करते । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य के दोहा,

कवित्र, सवैया, चौपाई, पद, छप्पय, घनाक्षरी, कुण्छलियाँ, सरोठा के साथ ही लोकगीतों के लावनी, कजली, होली इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अधिकांश पद्य साहित्य प्रगीत मुक्तक रूप में है। इनकी रचनाओं में अधिकांश विषम मात्रिक छंद का प्रयोग मिलता है।

अलंकार:

ब्रजभाषा काव्य परम्परा के अनुकूल भारतेन्दु ने अपने काव्य में कई अलंकारो का प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति प्रकाश , उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

अभ्यास प्रश्न 4

(क) निर्देश : नीचे दिये गए कथन में कुछ सही हैं ओर कुछ गलत। वाक्य के सामने उपयुक्त चिह्न लगाइए।

1) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र का समय संधिकाल का है। ( )

2) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता की मुख्य भाषा खड़ी बोली है। ( )

3) मन्द मन्द आवे देखो प्रात समीरन 'कविता हरिष्चन्द्र चन्द्रिका में छपी थी। ( )

4) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। ( )

5) बकरी विलाप रचना वर्णनात्मक काव्य रूप में है। ( )

(ख) 'क' और 'ख' वर्गों का सही मिलान कीजिए।

'क'	'ख'
1) कविवचन सुधा	काव्य
2) अंधरे नगरी	पत्रिका
3) दानलीला	इतिहास
4) कश्मीर कुसुम	उपन्यास
5) पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा	नाटक

4.6 सारांश

- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्न्तक हैं। नवजागरणवादी चेतना से पहली बार साहित्य को जोड़ने का काम भारतेन्दु जी ने ही किया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि भारतेन्दु ने साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे षिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वालें हरिश्चन्द्र ही हुए।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी का जन्म काषी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। आपके पिता ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित कवि थे। इस प्रकार साहित्यिक माहौल भारतेन्दु जी को बाल्यकाल से ही मिला।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी सहित्यकार थे। 45 वर्ष की अल्पायु में ही आपने हिन्दी साहित्् को जो सेवा की है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। आपने हिन्दी की कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया । उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, आलोंचना,यात्रा - साहित्य जैसी विधाएँ आपके कारण हिन्दी साहित्य में आई।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी साहित्यिक पत्रकारिता के भी जनक हैं। 'कविवचन सुधा', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', हरिश्चन्द्र मेगजीन' एवं ' बालावोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आपने साहित्य को तत्कालीन समस्याओं से जोड़ा ।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य को हम मुख्यत: दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । भाषा की दृष्टि से भी आपने दो भाषाओं का प्रयोग किया है। प्राचीन या परम्परागत विषयों भक्ति - नीति - श्रृंगार की रचनाएँ आपके कविता ससहितय का मूल हैं । इसके अतिरिक्त तत्कालीन समस्याओं विदेशी वस्तु के प्रयोग, देश के धन का बाहर जाना, लूट - खसोट, सामा्रज्यवादी नीति का विरोध भी आपकी रचनाओं की मख्य विशेषता है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त आपने खड़ी बोली कविता में भी रचनाएँ की हैं, लेकिन खड़ी बोली गद्य की तरह वह महत्वपूर्ण नहीं है।
- हिन्दी कविता के विषय भक्ति - नीति - श्रृंगार ही माने जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी कविता के अंतर्गत राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार जैसे विषयों को शामिल कर दिया। यह आपकी हिंदी कविता को युगान्तकारी देन है।

4.7 शब्दावली

- संस्कार -किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार को परिष्कृत, शुद्ध करने की क्रिया
- विच्छेद - अलगा
- प्रवृत्त - झुकाव, करने की दिशा
- समसामयिक - अपने युग का
- बहुमुखी प्रतिभा - किसी व्यक्ति में कई विशेषताओं का पाया जाना
- मणिकांचन योग - सुन्दर संयोग
- द्वन्द्व - दो विरोधी वस्तुओं के बीच संघर्ष
- श्लाघ्यनीय - श्रेष्ठ प्रयत्न
- निर्विवाद - बिना किसी विवाद के
- पर्दापण - आगमन
- अनुस्यूत - लगा रहना, साथ होना
- संधिकाल - बीच का समय
- संक्रान्तिकालीन चेतना - अवरुद्धपूर्ण समय

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख) (१) – 44 (२) – विद्यासुन्दर (३) – ब्रजभाषा (४) - दुर्लभ बंधु

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) (१) – गिरिधरदास (२) – रीतिकालीन (३) - वैष्णव

(४) - हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? (५) - 'ब्रज के लता पता मोहिं कीजे'

अभ्यास प्रश्न 4)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख)(1) – पत्रिका (2) – नाटक (3) – काव्य (4) – इतिहास (5) - उपन्यास

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।

2. शर्मा, (सं.)हमेन्त, भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक संस्थान।

3. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।

4. आधुनिक काव्य (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी) – इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विष्वविद्यालय, नई दिल्ली।

4.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृतित्व का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य प्रवृत्तियों का विशेषता बताइए।

इकाई 5 : हिंदी कविता का द्विवेदी युग : परिचय एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय
    5.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन
    5.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त
5.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ
5.5 मैथलीशरण गुप्त : रचनागत संदर्भ
5.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ
    5.6.1 राष्ट्रीयता
    5.6.2 सुधार
    5.6.3 नवजागरण
    5.6.4 इतिवृत्तात्मकता
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर
5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस युग का नामरकण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान एवं सम्मान को ध्यान में रखते हुए किया गया है। हिंदी कविता में भारतेन्दु युग के बाद के काल को 'द्विवेदी युग' कहा गया है। नामकरण के संबंध में आपने पूर्व में अध्ययन किया कि इसके कई आधार होते है। रचनाकार-व्यक्तित्व, युग की प्रवृत्ति और सामाजिक-राजनीतिक कई कारण होते हैं जिससे नामकरण स्थिर किया जाता है। पिछले खण्ड में आपने आधुनिकता की विशेषता एवं उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन

किया। आपने देखा कि आधुनिकता की अवधारणा के मूल में आधुनिक वैचारिक और ज्ञान-विज्ञान की महती भूमिका रही है। आधुनिकता तर्क, बुद्धि एवं मानव केंद्रित चिंतन से विकसित हुआ प्रत्यय है। आधुनिकता की अवधारणा पश्चिम में सर्वप्रथम विकसित हुई। पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के घात-प्रतिघात से भारतीय आधुनिकता का उदय हुआ है, जिसे भारतीय संदर्भों में पुनर्जागरण कहा गया है। पुनर्जागरण को हिंदी साहित्य में लाने का श्रेय भारतेन्दु हरिशचंद्र को है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की सृजनात्मक परम्परा के वाहक महावीर प्रसाद द्विवेदी बनते है। भारतेन्दु युग गद्य की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है लेकिन उसकी कविता का पक्ष उतना सशक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में इस अभाव की पूर्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक एवं युगप्रवर्त्तक व्यक्तित्व के माध्यम से हुआ, इसीलिए उनके योगदान को बाद के सभी प्रगतिशील रचनाकारों ने स्मरण किया है। भारतेन्दु की परम्परा और महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परा एक ही है। दोनों के मूल में भारतीय नवजागरण की भूमिका ही काम कर रही है। इस इकाई में हम द्विवेदी युग के रचनाकारों, उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों एवं भारतीय चिंताधारा के संदर्भ में उनके योगदान का रचनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

5.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता शीर्षक प्रश्न पत्र की यह 5 वीं इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृत्तिव से परिचित हो सकेंगे।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्य (कविता) में किये गए योगदान को समझ सकेंगे।
- द्विवेदी-युग के प्रमुख रचनाकार मैथिलीशरण गुप के रचनात्मक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- द्विवेदी युग के रचनात्मक प्रदेय का मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.3 हिंदी कविता का द्‌विवेदी युग : परिचय

हिंदी कविता का द्विवेदी युग इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसी युग में आकर भाषागत-द्वैत समाप्त हुआ। भारतेन्दु-युग तक हिंदी कविता में दो भाषाएँ चलती रहीं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के द्वैत और संघर्ष से भारतेन्दुकालीन कविता प्रभावित और संचालित हुई है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जब हिंदी साहित्य के रचना क्षेत्र में आये तो उन्होंने सर्वप्रथम यह महसूस किया कि भाषाई-द्वैत

को बिना समाप्त किये हिंदी कविता का वास्तविक विकास संभव नहीं है। ब्रजभाषा की समाप्ति केवल भाषाई मुक्ति नहीं थी। भाषा और संस्कार, भाषा और संस्कृति अविभाज्य हैं। साहित्यिक संस्कृति बिना सांस्कृतिक चेतना के संभव नहीं है और सांस्कृतिक उन्नति बिना साहित्यिक दाय से पूरी नहीं हो पाती। हिंदी कविता का प्रारम्भिक समय भारतीय जनजागरण से सीधे प्रभावित होता है। कम-से-कम छायावाद तक का काव्य भारतीय नवजागरण की प्रेरणा से सृजित हुआ है, जबकि उसके बाद का काव्य तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं आधुनिक विचारधारा से। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन की मूल आत्मा को हम आलोचनात्मक ढंग से समझने का प्रयास करेंगे।

5.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को लक्ष्य करके इस युग को 'द्विवेदी युग/काल' कहा गया है। नामकरण के संदर्भ में हमें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि साहित्यिक नामकरण में उस युग की रचनात्मक प्रवृत्ति ही सबसे ज्यादा उपयुक्त होती है। रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर नामरकण उस काल के साहित्य से सीधे जुड़ता है। जबकि किसी रचनाकार-व्यक्तित्व के प्रभाव से किया गया नामरण ऐतिहासिक चेतना से सीधे नहीं जुड़ता बल्कि वह रचनाकार-व्यक्तित्व के माध्यम से जुड़ता है। इसे हम इस प्रकार समझा सकते हैं –

ऐतिहासिक चेतना

↓

रचनाकार-व्यक्तित्व

↓

प्रवृत्ति निर्धारण

लेकिन यदि साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की घटना घटे कि किसी रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग की प्रवृत्ति से बड़ा दिखे तो दो बातें ध्वनित होती है। एक, उस युग की प्रवृत्ति से कहीं बड़ा रचनाकार का व्यक्तित्व है। और दूसरे, युग की प्रवृत्तियॉं अपने विकासमान स्थिति में हैं। अधिकांश ऐसा देखा गया है कि किसी विधा के आरंभिक दौर में उस विधा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग में केंद्रीय हो उठता है। किसी विधा के पर्याप्त विकसित होने के उपरान्त बड़े रचनाकार उसे विकसित करने में और बढ़ाने में अपना योगदान देने के बाद केन्द्रिय भूमिका से हट जाते हैं और रचनागत प्रवृत्ति केंद्र में आ जाती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी कविता साहित्य में स्थापित होती है, अत: यह नामकरण उचित ही है। इस युग का एक नामकरण 'जागरण-सुधार काल' भी किया गया है (देखें –डॉ0 नगेन्द्र का 'हिंदी साहित्य का इतिहास') जो महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की ही एक प्रमुख विशेषता है। केन्द्र में जिस प्रकार परिधि सम्मिलित हो जाती है। उसी प्रकार महावारी प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व में जागरण-सुधार सम्मिलित हो जाते हैं। जागरण का तात्पर्य जहॉं नवजागरणवादी मनोवृत्ति है, वहीं जागरण के पश्चात् पैदा हुई सामाजिक-साहित्यिक सुधार की भावना ही, 'जागरण-सुधार' है।

द्विवेदी युग का काल मोटे तौर पर 1900 ई0 से लेकर 1918 या 1920 ईसवी तक निर्धारित किया गया। हालांकि कुछ जगह काल सीमा की समाप्ति सन् 1925 तक भी स्थिर की गई है। ''द्विवेदी-युग उनके सम्पादन काल के प्रारम्भ (1903 ई0) से 1925 ई0 के लगभग तक माना जाता है।'' (देखें-हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ 264) यहॉं द्विवेदी-युग का समय 1903 से 1925 तक स्थिर किया गया है, जो व्यावहारिक नहीं है। आधुनिक इतिहासकारों ने 1901 से 1920 तक के समय को 'द्विवेदी युग' कहा है। कुछ इतिहासकारों ने 18 वर्ष की एक पीढ़ी के आधार पर का तर्क देकर तथा 1918 से छायावादी प्रवृत्तियों की शुरूआत देखते हुए इस काल को 1901 से 1918 ईसवी तक स्थिर किया है। हम जानते हैं कि इतिहास में किसी खास तिथि से कोई प्रवृत्ति न प्रारम्भ होती और न समाप्त होती है। ईसवी या तिथि इतिहास में लचीलेपन से युक्त होने चाहिए क्योंकि वे सुविधापूर्ण ढंग से विश्लेषित किये जाते हैं। 1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बनते हैं और 1920 तक वे अनवरत सरस्वती का संपादन करते हैं। उसके पश्चात् कुछ अंतराल के बाद पुन: संपादन कर्म से जुड़ते हैं और 1925 तक वे 'सरस्वती' से जुड़े रहते हैं। तो क्या 'द्विवेदी काल' का प्रारम्भ 1903 से माना जाए। सरस्वती पत्रिका 1900 ई0 से विधिवत रूप से प्रकाशित होना प्रारम्भ होती है। 1900 से 1902 ईसवी तक श्यामसुंदर दास 'सरस्वती' का सम्पादन करते हैं। हमने पहले ही कहा कि काल-विभाजन में सुविधा एवं लचीलापन होना चाहिए। सन् 1901 से 'द्विवेदी काल' मानने से दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। 1920 ईसवी तक छायावादी प्रवृत्तियॉं उभार लेने लगती हैं और यही वह वर्ष है जब द्विवेदी जी सरस्तवी के सम्पादन कार्य से मुक्त होते हैं, अत: सन् 1901 से 1920 ईसवी के बीच के समय को 'द्विवेदी काल' कहा जा सकता है।

5.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त

जिस प्रकार ग्रह के प्रभाव से उपग्रह निर्मित हो जाते हैं, उसी प्रकार बड़े रचनाकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व से लेखकों का एक वर्ग निर्मित हो जाता है। हिंदी कविता में मध्यकाल तक इस प्रकार का रचनात्मक वलय धार्मिक-दार्शनिक नेताओं के इर्द-गिर्द निर्मित होता था, जैसे – रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंद, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि। चूँकि मध्यकाल तक रचनात्मक ऊर्जा के मूल में धार्मिक्-आध्यात्मिक प्रेरणा मुख्य हुआ करती थी, इसलिए धार्मिक

नेतृत्वकर्त्ता एक रचनात्मक मण्डल तैयार किया करते थे। आधुनिक कालीन कविता में धर्म हट गया, उसका स्थान नवजागरणवादी चेतना ने ले लिया। इस युग में जो रचनाकार नवजारगण की सृजनात्मक ऊर्जा को जितने अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सका, वह अपने आस-पास रचनाकारों का मण्डल निर्मित करने में उतना ही समर्थ हुआ है। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के रचनात्मक व्यक्तिव के प्रभाव से 'भारतेन्दु मण्डल' निर्मित हुआ, ठीक उसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक अनुशासन एवं सृजन ने 'द्विवेदीवृत्त' को जन्म दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में कवियों का कइ वर्ग सम्मिलित था। कुछ तो द्विवेदी जी के प्रभाव से रचना कर रहे थे तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक रचनात्मकता के प्रभाव वश। यहॉं हम द्विवेदीकालीन प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। श्रीधर पाठक वैसे तो भारतेन्दु कालीन कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविताऍं जगत सच्चाई सार, उजड़ग्राम, श्रांतपथिक एकान्तवासी योगी 1886 ई0 के लगभग ही प्रकाशित हो चुकी थी, लेकिन उनका रचनात्मक कर्म द्विवेदी-युग में भी सक्रिय रहा। श्रीधर पाठक ने मुख्यत: प्रकृति प्रेम की कविताऍं लिखी हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त आपने सामाजिक सुधार से संबंधित भी कई रचनाऍं की है। पं0 अयोसिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी-युग में सर्वाधिक बड़े कवियों में से एक है। आप भारतेन्दु-युग से ही रचना क्षेत्र में सक्रिय थे, लेकिन आपकी महत्वपूर्ण कृत्तियाँ द्विवेदी युग में ही सृजित हुई हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन उनका महाकाव्य 'प्रियप्रवास' है, जो सन् 1914 में प्रकाशित हुआ। ग्रंथ की भूमिका में हरिऔध ने विस्तार से खड़ी बोली के विरोधियों के इस तर्क का उत्तर दिया है कि खड़ी बोली में कविता नहीं लिखी जा सकती। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों में आधुनिक संदर्भों को पिरोया है। महाकाव्य की विशेषत इस दृष्टि से भी है कि इसकी नायिका राधा है। यहॉं राधा का चित्रण प्रेमिका रूप में नहीं है, बल्कि लोकसेविका रूप में है। 'वैदेही वनवास', चौखे चौपदे चुभते चौपदे, मधुकलश आपकी अन्य महत्वपूर्ण काव्य-कृत्तियॉं हैं। मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इस युग की समस्य संभावनाऍं एवं सीमाएँ गुप्त जी के काव्यों में प्रकट हुई हैं। रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरूकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा इत्यादि आपके प्रसद्धि काव्य है। साहित्यिक प्रयोग एवं विषयवस्तु दोनों दृष्टियों से मैथिली शरण गुप्त जी द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मैथिली शरण गुप्त जी की साहित्यिक विशेषताओं पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। रामचरित उपाध्याय द्विवेदी-युग के पुरानी परम्परा के कवि माने जाते हैं। इनका परिचय देते हुए रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है ''ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे और पहले पुराने ढंग की हिंदी कविता की ओर रूचि थी। 'सरस्वती' में जब खड़ी बोली की कविताऍं निकलने लगी तब वे नये ढंग की रचना की ओर बढ़े..... 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', देवसभा' 'देवी द्रौपदी', 'भारत भक्ति' 'विचित्र विवाह इत्यादि अनेक कविताऍं उन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं। पं0 गिरिधर शर्मा नवरत्न की कविताऍं, सरस्वती तथा अन्य पत्रिकाओं

में बराबर प्रकाशित होती रही है। ये ब्रजभाषा, संस्कृत ओर अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। इनकी कविताऍं इतिवृत्तात्मक शैली में ही प्राय: लिखी गई हैं। लोचन प्रसाद पाण्डेय द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने प्रबन्ध काव्य तथा मुम्तक काव्य दोनों की रचना की है। आपकी काव्य-संवदेना विस्तृत है।

उपर्युक्त कवि द्विवेदी-वृत्त के कवि है। ये वे कवि है जिनकी रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में बराबर प्रकाशित होती रहीं या जिन पर महावीर प्रसाद द्विवेदी का पर्याप्त प्रभाव रहा है। लेकिन इसके अतिरिक्त द्विवेदी-युग में कवियों का एक वृत्त ऐसा भी है जो भिन्न-भिन्न धारा की कविता लिखते रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों 'द्विवेदीमंडल के बाहर की काव्यभूमि' की संज्ञा दी है। इन कवियों में मुख्य रूप से राय देवी प्रसाद 'पूर्ण, पं0 नाथूराम शंकर शर्मा, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', पं0 सत्यनारायण कविरत्न, लाला भगवान दीन, पं0 रामनरेश त्रिपाठी, पं0 रूपनारायण पाण्डेय आदि है।

5.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ

महाविर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1864 ई. में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1938 ई. में हुई। भारतेन्दु के बाद किसी एक व्यक्तित्व ने आधुनिक हिंन्दी साहित्य को प्रभावित किया है तो वो है –महावीर प्रसाद द्विवेदी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला, उन्नाव एवं फतेहपुर में हुई। उसके उपरान्त आप बम्बई चले गये। यहीं पर आपने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। अध्ययन समाप्ति के उपरान्त आपने रेलवे विभाग की नौकरी कर ली। इस विभाग के अनुशासन बहुत योग दिया। बाद में अपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से साहित्य की सेवा करते रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवदान उनके भाषा संबंधी सुधार कार्य एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा निर्देशित करने में है। फिर भी आपकी कविताएँ अपने ढंग से ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। यहाँ हम द्विवेदी जी की प्रमुख काव्य-कृतियों की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनुदित:

- विनय विनोद-1889 ई. भर्तृहरि के वैराग्य शतक का दोहों में अनुवाद
- विहार वाटिका – 1890 ई. गीत गोविन्द का भावनुवाद
- श्री महिम्न स्तोत्र – 1891 ई. संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद।
- गंगा लहरी- 1891 ई. पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' की सवैयों में अनुवाद।
- ऋतुतरंगिणी – 1891 ई. कालिदास का ऋतुसंहार का छायानुवाद

- सोहागरात (अप्रकाशित) – बाइरन के ब्राइडल नाईट का छायानुवाद।
- कुमारसंभवसार- 1902 ई. कालिदास के कुमारसंभव के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

मौलिक कृतियाँ :

- देवी-स्तुति-शतक – 1892 ई.
- कान्यकुब्जावलीव्रतम् – 1898 ई.
- समाचार पत्र सम्पादक स्तव – 1898 ई.
- नागरी- 1900 ई.
- कान्यकुब्ज- अबला विलाप- 1907 ई.
- काव्य मंजूषा – 1903 ई.
- सुमन – 192 ई.
- द्विवेदी काव्य – माला -1940 ई.
- कविता कलाप- 1909 ई.

रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

हिंन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी के मूल्यांकन से पूर्वहमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जिस युग में द्विवेदी जी रचना कर रहे थे वह अपनीसंपूर्ण मानसिकता में ब्रजभाषा के सामंती संस्कारों से आच्छन्न युग था। उस समय के साहित्यिक माहौल एंव स्थिति पर हिंदी साहित्य कोश में लिखा गया है। "वह समय हिंदी के कलात्मक विकासका नहीं, हिंदी के अभावोंकी पूर्ति का था। अपने ज्ञान के विविध क्षेत्रों – इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञा, पुरातत्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी, आदि से सामग्रीलेकर हिंदी के अभावोंकी पूर्ति की।" (पृष्ठ-439) महावी प्रसाद द्विवेदी युग प्रवर्त्तक रचनाकार हैं। उनका बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य में फैली शीतकालीन संस्कारों से हिंन्दी कविता की मुक्त कर उसका वर्ण्य- क्षेत्र विस्तृत किया। स्वयं 'रसज्ञांजन'की भूमिका में कविता का आदर्श महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकारव्यक्त कियाहै- "कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त ..... सभी पर कविता हो सकती है। " आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक

योगदान को इस प्रकार स्मरण किया है- "महावीर प्रसाद जी द्विवेदी को पद्यरचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं ...... पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आयी। बहुत-से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी और कई लोग ब्रज और अवधी आदि का मेल भी कर देते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत-से कवियों की भाषा साफ हो गई। उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी आपना सुधार किया।" मराठी के प्रभाव से द्विवेदी जी की कविता में गद्य का पदविन्यास आ गया। इसके अतिरिक्त वे वडर्सवर्थ के इस सिद्धान्त से भी प्रभावित थे कि गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। इस प्रभाव का दुष्परिणाम यह हुआ कि द्विवेदी जी की कविता और उस मंडल के कवियों की कविताएँ प्राय: इतिवृत्तात्मक हो गईं हैं। उनमें वह सूक्ष्मता, कोमलता एवं कल्पना की उड़ान नहीं मिलती जो छायावादी कवियों की विशेषताएँ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- "आचार्य द्विवेदी मूलत: व्यवस्थापक हैं, जो उस समय नये-नये बनते खड़ी बोली हिंन्दी भाषा और साहित्य के विकास की ऐतिहासिक आवश्यकता थी।"

5.5 मैथिलीशरण गुप्त : रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

आपने पूर्व में अध्ययन किया कि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी इस दृष्टि से द्विवेदी युग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि वह कौन सी विशेषताएँ थी जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त का काव्य इस युग का प्रतिनिधि काव्य बना। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के आलोचनात्मक मूल्यांकन पूर्व आइए हम उनके जीवन परिचय एवं रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा से परिचित हों।

जीवन एवं काव्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1964 ई. में हुई। मैथिलीशरण गुप्त के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलनेवाले 'वैश्यापारक' पत्र में प्रकाशित होती थीं। द्विवेदी जी की प्रेरणाएवं प्रभाव से मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक प्रतिभा में काफी उभार आया। 'रंग में भंग' कृति के प्रकाशनके पश्चात गुप्त जी चर्चित हुए। लेकिन जिस कृति के कारण में 'राष्ट्रकवि' कहलाये, वह थी- 'भारत भारती' जागरण गीत है। 'हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होंगे अभी/आओ, विचारों आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।' इस ग्रंथ का केंद्रीय प्रतिपाद्य है।

मैथिलीशरण गुप्त की अन्य रचनाओं में साकेत, यशोधरा, अनघ, विकटभट, किसान,विष्णुप्रिया, द्वापर, जयभारत, नहुष, पंचवटी, हिडिम्बा, सिद्धराज इत्यादि हैं। इन कृतियों में 'साकेत' महाकाव्य रामभक्तिशाखा में तुलसीदास के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया है।

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक क्षमता का सर्वाधिक उज्जवल नक्षत्र है। इस ग्रन्थ के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त को रामभक्ति शाखा का कवि कहा गया है। प्रश्न यह है कि क्या मात्र रामभक्ति शाखा के अनुकरण से ही गुप्त जी बड़े कवि हुए हैं ? बड़ा कवि वही होता है जो परम्परा के हाय को स्वीकार करते हुए भी उसे समृद्ध करता है। तुलसीदास से हटकर रामभक्ति शाखा में नया जोड़ना एक प्रकार से चुनौती ही थी, जिसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने सफलतापूर्वक साधा है। प्रश्न कियाजा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का नयापन क्या है ? तुलसीदास के राम संपूर्ण चराचर जगत को धारण करने वाले ब्रह्म हैं किन्तु मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप राम को मानव रूप में ही देखने का प्रस्ताव/आग्रह किया है-- "राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?/विश्व में रमे हुये नही सभी कहीं हो क्या ?/ तब में निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे/तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।" आगे 'साकेत'की ही पंक्तियाँ है--

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,

संदेश यहाँ में नहीं स्वर्ग का लाया,

उस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

नवजागरणवादी चेतना के तहत ईश्वर का मानव रूप में चित्रण एक बिन्दु था, जो मैथिलीशरण गुप्त को बड़ा कवि बनाता है। एक दूसरा बिन्दु है गुप्त जी का नारी चित्र। 'साकेत' महाकाव्य में यदि वे चाहते तो राम या सीता को प्रतिनिधि व्यक्तित्व प्रदान कर सकते थे। लेकिन 'साकेत'की नायिका 'उर्मिला'है जो आधुनिक नवजागरण के अनुरूप ही पुनर्मूल्यांकन के योग्य है। कैकेई, उर्मिला,विष्णुप्रिया, यशोधरा जैसी स्त्री चरित्रों को जितनी करूणा मैथिलीशरण गुप्त ने प्रदान किया है, उतना कोई आधुनिक साहित्यकार नहीं। नारी के सम्बनध में मैथिलीशरण गुप्त का बीज वक्तव्य तो प्रसिद्ध है ही-

"अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी,

आँचन में है दूध और आँखों में पानी।"

मैथिलीशरण गुप्त के नारि-चित्रण पर डॉ बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है: "जहाँ-तहाँ नारी की विद्रोह वाणी भी सुनाई पड़ती है किन्तु उसमें तेजस्विता नहीं है। ये सारी नारियाँ पारिवारिक

मार्यादाओंके भीतर सब कुछ सहती हैं। विष्णुप्रिया कहती है- ‘सहने के लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी।’’ वस्तुत: मैथिलीशरण गुप्त से यह आशा करना कि वे विद्रोही चरित्रों की सृष्टिकरें, यह उचित नहीं है। ‘‘गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बृड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमताअर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहणकर चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।’’

5.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियॉ

हिंदी कविता में महावीर प्रसाद का महत्व उनके द्वारा किये गये भाषा-सुधार; सरस्वती’ पत्रिका का प्रकाशन, रीतिवाद विरोधी अभियान चलाने एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा-निर्देशन के चलते है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचना-कर्म अपने शिष्य मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कमजोर है। द्विवेदी जी महत्व हिंदी साहित्य में कविता की श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना नहीं है, जितना श्रेष्ठ रचना निर्मित करने की प्रेरणा से है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महावी प्रसाद द्विवेदी का कवित्व श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना ऐतिहासिक दृष्टि से। इस दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता प्रवृत्ति को हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व की ही छाया कह सकते हैं। आइए, हम संक्षेप में द्विवेदी कालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास करें।

5.6.1 राष्ट्रीयता

महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान प्रारम्भ में अंग्रेजी प्रशासन के अंग थे, या कहें कि सरकारी कर्मचारी थे। इसीलिए स्वयम् द्विवेदी जी और ‘सरस्वती’ के प्रारम्भिक लेखों में राष्ट्रीयता के तत्व नहीं पाये जाते। सरस्वती के शुरूआती अंकों में द्विवेदी जी अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ लेख छापने से बचते रहे। बल्कि शुरूआती कुछ लेख ब्रिटिश हुकुमत के पक्ष में भी छपे। लेकिन क्रमश: द्विवेदी –युग की कविता राष्ट्रीयता की ओर झुकती चली गई। द्विवेदी जी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने ‘भारत-भारती’ की रचना की, जो राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखती है। ‘भारत-भारती’ कुछ पंक्तियॉं देखें –

है ठीक ऐसी ही दशा हत-भाग्य भारतवर्ष की।/ कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।

× × ×

दृढ़-दुख दावानल इसे सब ओर घेर जला रहा, तिस पर अदृश्टाकाश उलटा विपद-वज्र चला रहा। यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र-जल इस आग को, पर धिक् हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी/ आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याऍं सभी।/ यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं, हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।

'भारत-भारती' उद्बोधन परक शैली में लिखी गई है। इसी कारण इसने तत्कालीन समय में युवाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'साकेत' की कथा पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रची गई है, लेकिन जगह-जगह उसमें भी राष्ट्रीयता की झलक मिल जाती है। जैसे –

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में

सिंधु पार वह बिलख रही व्याकुल मन में।

× × ×

आओ, यदि जा सको रौदं हमको यहॉं

यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहॉं

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सियारामशरण गुप्त की कविता पंक्ति भी उल्लेखनीय है –

कवि के स्वतंत्र देश

तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊं मैं

मेरे घट में हो आज गंगा-जमुना का नीर,

भक्ति हो संगम का तीर्थ-तीर,

रेवा, शोप, वैत्रवली, पंचनद गोदावरी

उल्लसित प्रेम-प्रेमी

शिक्षा, सिंधु सरयु, पवित्र कृष्णा, कावेरी

सबके पुनीत अमिभज्जन से

नव-अभिषेक करूँ आज के सुदिन का,

आऊं मातृभूमि के चिरन्तर से

एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय भाव बोध की

पंक्ति देखें –

द्वार-द्वार पर जाकर विजया

करूणा प्रेम-निधान।

सबको लगी जगाने गाकर

देशभक्ति-भय गान।।

उसके गान अतीत काल के
थे सुख रूप-ललाम।

सुनकर के आहें भरते थे

कृषक कलेजा थाम।।

उसके गान हृदय में भरते
थे साहस उत्साह।

बतलाते थे स्वतंत्रता को

सुख पाने की राह।।

× × ×

एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है।

पलभर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तर है।

5.6.2 सामाजिकता

द्विवेदी जी की कविता समाज सुधार या सामाजिकता की व्यापक भावना से संचालित रही है। सामाजिक की भावना कहीं सामाजिक सुधार में अभिव्यक्त हुई है तो कहीं समाज को आगे बढ़ाने की गत्यात्मकता में। यहॉं हम द्विवेदी युग की कविता में अभिव्यक्त कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पस्ट करेंगे।

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल/जो सबका है वहीं हमारा भी है मंगल/मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर/हिंसा का है एवं अहिंसा ही प्रप्युत्त (अहिंसा का आग्रह – सिया राम शरण गुप्त)

× × ×

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद-व्यवधान यहां सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहॉं।

× × ×

जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं व्यवहार यहॉं,

राम-रहीम, बुद्ध,-ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहॉं।

× × ×

नारी पर नर का कितना अत्याचार है

लगता है, विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।

× × ×

आ पहुँचा नवयुग सभी समक्ष तिहारें,

धन वारें धनी, दरिद्र दीनता वारें। (मैथिली शरण गुप्त)

× × ×

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई।

प्रलयवाही सी वही आज चारों दिशा छाई।

× × ×

बाल विवाह रोक हम देते यदि हमको मिलते अधिकार।

वृद्ध व्याह का किन्तु देश में कर देते हम खूब प्रचार।

× × ×

सामाजिक कतिपय कुप्सित नियम।

अति संकुलित छूतछात के विचार।

हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व। (अयोध्या सिंह आध्याय हरिऔध)

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि द्विवेदी कालीन कविता अपनी सामाजिक चेतना में किसी भी कविता धारा से तुलनीय है।

5.6.3 नवजागरण

रामविलास शर्मा ने द्विवेदी युग के साहित्य को नवजागरण की 'द्वितीय मंजिल' कहा है। कारण यह है कि इस युग का साहित्य अपने मूल रूप में नवीन चेतना से आप्लावित है। पूर्व में कहा गया कि-साकेत और 'प्रियप्रवास' की नाभिकाएँ उर्मिला और राधा मात्र विरहिणी प्रेमिका रूप में यहॉं चित्रित नहीं हुई हैं बल्कि वे लोकसेविका रूप में चित्रित हुई हैं। 'प्रियप्रवास' की यह पंक्ति देखे –

अत: सबों से यह श्याम ने कहा

स्व जाति उद्धार महान् कर्म है।

चलों करें पावक में प्रवेश औ।

स धेनु लेवें निज जाति का बचा।

× × ×

बिना न त्यागे ममता स्व-प्राण की
बिना न जोखों-ज्वालादाग्नि में पड़े।

न हो सका विश्व महान् कार्य है।

न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

× × ×

बढ़ों करो वीर स्वजाति का भला,

अपार दोनों विध लाभ है हमें।

किया स्व कर्तव्य उबार भी लिया।

सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये।

5.6.4 इतिवृत्तात्मकता

द्विदेवी युगीन कवता की एक बड़ी विशेषता इसकी इतिवृत्तात्मक शैली रही है। प्रश्न है कि इतिवृत्तात्मकता क्या है ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी की कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – ''उनका जोर बराबर इस बात पर रहता था कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए...........परिणाम यह हुआ है कि उनकी भाषा बहुत अधिक गद्वत् (Prosaic) हो गयी।.........उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact) हुई। उनमें वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम आ पायी जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन का आकर्षित करती है। 'यथा', 'सर्वथा', 'तथैव' ऐसे शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और भी अधिक गद्य का स्वरूप दे दिया।' द्विवेदी युगीन कविता की पंक्तियॉ देखें, सर्वत्र गद्य का आभास मिलता है, 'दिवसावआन का समय था' पंक्ति में था, शब्द का प्रयोग वाक्य को गद्यवत बना रहा है या मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्तियॉं देखें –

क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को भेंट दो। निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो।।

× × ×

पहले ऑखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे। छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे ?

× × ×

मुझे फूल मत मारो

× × ×

वेदने ! तू भी भली बनी

× × ×

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

× × ×

हम कौन थे , क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी

संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से हम यह कहना चाह रहे हैं कि द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली उसकी विशिष्ट पहचान बन गई।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजि।

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म..............ई0 में हुआ था।
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने..........पत्रिका का संपादन किया।
3. प्रियप्रवास महाकाव्य के रचयिता.........हैं।
4. 'भारत-भारती'..........बोध की रचना है।
5. मैथलीशरण गुप्त..............शाखा के अंतर्गत आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) सत्य/असत्य बताइए।

1. साकेत के रचनाकार महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं।
2. यशोधरा हरिऔध जी की रचना है।
3. 'भारत-भारती' राष्ट्रीय भाव बोध की रचना है।
4. इतिवृत्तामकता द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता है।
5. दिवस का अवसान समीप था 'पंक्ति मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचना है।

5.7 सारांश

आधुनिक एवं समकालीन कविता 'शीर्षक प्रश्न पत्र के अंतर्गत आपने 5वीं इकाई हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय एवं मूल्यांकन का अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- 'द्विवेदी युग' नामकरण के मूल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचनात्मक व्यक्तित्व रहा है, जिसने हिंदी कविता को एक नयी दिशा दी।

- महावीर प्रसाद द्विवेदी युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य को सामंती चरित्र से मुक्त कर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ने की दिशा प्रदान की।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण सम्मत सुधार कर भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया।
- द्विवेदी युग का साहित्य व्यापक रूप से नवजागरणवादी चेतना के तले रचा गया है। इस नवजागरण को सांस्कृतिक बोध एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति से भली-भॉति समझा जा सकता है।
- द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीयता, समाज सुधार, नवजागरणवादी चेतना एवं इतिवृत्तात्मकता रही है।
- द्विवेदी युगीन साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वाले कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरऔध, तथा मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

5.8 शब्दावली

- नवजागरण – अतीत के गौरव का रचनात्मक स्मरण
- इतिवृत्तात्मकता – द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता, कविता का गद्यावत होना।
- रीतिकालीन संस्कार – श्रृंगार-स्तुति जैसे मनोभावों की प्रचुरता
- आधुनिक प्रवृत्ति – नवीन वस्तु, विचार को सृजित करने वाला व्यक्तित्व

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन
2. शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, डॉ – हिंदी साहित्य का इतिहास (सं0), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
4. सिंह, बच्चन – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन

5.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) क)

1. 1864 ई0 2. सरस्वती 3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

4. राष्ट्रीय 5. रामभक्ति शाखा

अभ्यास प्रश्न 2) क) 1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, रामविलास, - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
2. सिंह, उदयभानु – महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ? विवेचन कीजिए।
2. द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृत्तियॉं स्पष्ट कीजिए।

इकाई 6 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ: प्रयोग एवं समस्या

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ: प्रयोग एवं समस्या

 6.3.1 भाषा और समाज

 6.3.2 कविता की भाषा: प्रयोग एवं समस्या

 6.3.3 हिंदी कविता की भाषा

6.4 हिंदी कविता की भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

 6.4.1 प्राचीन कालीन हिंदी कविता की भाषा

  6.4.1.1 आदिकालीन कविता की भाषा

  6.4.1.2 भक्तिकालीन कविता की भाषा

  6.4.1.3 रीतिकालीन कविता की भाषा

 6.4.2 आधुनिक हिंदी कविता की भाषा

  6.4.2.1 स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कविता की भाषा

  6.4.2.2 स्वतंत्रता पश्चात हिंदी कविता की भाषा

6.5 हिंदी कविता की भाषा का आलोचनात्मक संदर्भ

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास क्रम में मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार है - भाषा। भाषा ही वह माध्यम है जो हमें अभिव्यक्त करता है। किसी व्यक्ति की पहचान इससे हो सकती है कि वह किस भाषा (शब्द , प्रतीक , विंब, मुहावरें - लोकोक्तियां) का प्रयोग करता है। किसी जाति (संस्कृति) की मुख्य पहचान यह हो सकती है कि वह किस भाषागत प्रत्ययों का प्रयोग करता है यानी अभिव्यक्तिकरण का मुख्य साधन भाषा ही है। इस दृष्टि से किसी समृद्ब साहित्य की मुख्य पहचान यह हो सकती है कि वह भाषागत दृष्टि से कितना समृद्ध है। उस साहित्य में उस देश - प्रदेश के सपने - आकांक्षा , हर्षोल्लास, आनंद -उमंग, जीवनेच्छा किस हद तक अभिव्यक्त हो सके हैं। समाज - संस्कृति- साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी तय होती है भाषा से। भाषा सांस्कृतिक - कर्म है। कह सकते हैं कि साहित्य संस्कृति का उच्च अंश है, समृद्ध अंश है। अतः साहित्य की भाषा के संदर्भ पर विचार करना अपने आप में महत्वपूर्ण बिन्दु है।

6.2 उद्देश्य

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष (एम0ए0एच0एल0-103) के तृतीय प्रश्न पत्र: आधुनिक एवं समकालीन कविता की यह 6वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- भाषा और समाज के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- सामान्य भाषा और साहित्य की भाषा का अन्तर समझ सकेंगे।
- हिंदी कविता की भाषा के सामान्य एवं विशिष्ट स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिदीं कविता के प्राचीन एवं नवीन स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी कविता के भाषागत प्रयोगो की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी कविता के भाषागत प्रदेश को समझ सकेंगे।
- हिंदी कविता के विभिन्न प्रयोगों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ

प्रयोग एवं समस्या किसी भी समृद्ब समाज एवं संस्कृति की एक मुख्य पहचान हो सकती है कि वह परिवर्तन शीलता को कितना धारण किए हुए है। क्योंकि अपने मूल रूप में समाज -संस्कृति परिवर्तनशीलता प्रक्रिया है।

कार्ल मार्क्स और फेड्रिक एंगेल्स को ऐतिहासिक भौतिकतावाद के तहत अब तक के समाज को विकसनशील क्रम मे कई मंजिलों में विभाजित किया है। और दिखाया है कि हर युग के अन्दर ही भावी युग के विकास के चिह्न मौजूद होते हैं। पिछले युग के अंतविरोध के बीच अगले युग का जन्म होता है। विकास की यह प्रक्रिया इतिहास में हमशा चलती रहती है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को हम भाषा के माध्यम से सबसे अच्छी तरह समझ सकते है। उसमें साहित्य की भाषा का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इतिहास की भाषा तथ्यों पर आधारित होती है साहित्य , की भाषा सर्वाधिक सृजनात्मक होती है क्योंकि साहित्य की भाषा संवेदना पर आधारित होती है। साहित्य में भी कविता की भाषा में कम - से - कम शब्दों में अधिक -से - अधिक अर्थ ग्रहण करने की क्षमता होती है। एक युग के बदल जाने पर साहित्य - कविता का आना स्वाभाविक है। साहित्यिक अध्ययन के दौरान समस्या तब पैदा होती है जब युग समाज की बदली हुई मनोवृत्ति को कविता की भाषा में पूरी तरह संगति नहीं दिखाई देती । कविता बदले हुए युग - समाज की मनोवृत्ति को पकड़ने की सृजनात्मक प्रयास है। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में संक्रान्तिकाल की भाषा अस्पष्टता लिए हुए होती है। कभी -कभी खुद लेखक /कवि के विचार अस्पष्ट होते है। कभी कविता में युग-संदर्भ का सांकेतिक प्रयोग होता है तो कभी बोली - भाषा का गूढ़तम प्रयोग। कभी ऐसी भी स्थिति आती है जब भाषा में लेखक निजी प्रयोग करता है और वह प्रयोग अस्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार कविता की भाषा प्रयोगों की अनवरत श्रृंखला है। प्रयोग की विविधता उसे वैविध्य और विस्तार दोनों करती है।

6.3.1 भाषा और समाज

भाषा और समाज का संबंध अनिवार्य रूप से एक दूसरे की विकास प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। अपने प्राथमिक रूप में भाषा सम्प्रेषण का साधन है, अपने व्यावहारिक रूप में भाषा मानसिक संकल्पना है। अपने उद्देश्यपरक रूप में भाषा सामाजिक गतिविधियों को संचालित करने वाला माध्यम है तथा अपने उच्च रूप में भाषा संस्कृति को धारण करने वाली क्रिया। भाषा न केवल व्याकरणिक इकाई है बल्कि संस्थागत प्रतीक होने के साथ ही सामाजिक अस्मिता का सशक्त माध्यम भी है। हर भाषा में निश्चित समुदाय के व्यक्तियों की भावना , चिंतंन और जीवन-दृष्टि के धरातल पर एक-दूसरे के नजदीक लाती है और उन्हें जोड़ती है।कह सकते है कि हर समाज की संस्कृति को प्रतिविम्बित करने वाली वस्तु भाषा ही है।

6.3.2 कविता की भाषा: प्रयोग एवं समस्या

बेलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा में मूलतः कोई अंतर नहीं है।दोनों का आधार समान है और उनका उद्देश्य सम्प्रेषण ही है। लेकिन अपनी प्रक्रिया और अभिव्यक्ति में काव्यभाषा सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न हो जाती है। सामान्य बोलचाल के शब्दों को अधिक अर्थवान , सार्थक ,सृजनात्मक , अर्थगर्भी , क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया में कविता की भाषा का जन्म होता है।इस प्रकार दोनो का मूल स्रोत समाज ही है , लेकिन दोनों में बहुत अन्तर है।

सामान्य बोलचाल की भाषा स्थूल ,तथ्यात्मक होती है। वह अर्थ के धरातल पर बहुरूपता को धारण नहीं करती । जबकि काव्य भाषा सूक्ष्म, अनुभवधर्मो तथा बहुअर्थी होती है। आनन्दवर्द्धन तथा अभिनवगुप्त ने काव्यभाषा का प्राण व्यंजना को माना है, जिसके अनुसार काव्यभाषा अर्थ की वृहत्तर छवियों को अपने आप में धारण किए हुए होती है। भामह अलंकार के तत्व को प्रधान मानते है वहीं कुन्तक वक्रोक्ति को काव्यभाषा का प्रधान गुण मानते हैं। वामन ने काव्य भाषा का प्रधान गुण रीति को माना है। संस्कृत काव्यशास्त्र में अदोष कविता को ही महत्वपूर्ण समझा गया है। काव्यगुणों की परिकल्पना इसी संदर्भ में की गई है। काव्यगुण का अर्थ है- कविता की भाषा में मार्धुय , ओज और प्रसाद गुणों की उपस्थिति । यानी कविता की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मधुरता , ओजत्व एवं व्यपकत्व के गुणों को अपने मे धारण कर सके। आनन्दवर्द्धन ने काव्य भाषा का प्रधान गुण झटिति भासित को माना है। झटिति भासित का अर्थ तुरन्त समझ में आ जाए , ऐसे काव्यगुण ये है। आई.ए रिचर्डस ने काव्य भाषा को चार गुणों से युक्त् माना है - अभिधेयार्थ ,भावना , पाठक के प्रति वक्ता की अभिवृत्ति तथा उद्देश्य आचार्य विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्यभाषा में चमत्कार को मुख्य माना है। चमत्कार के तत्वों में उन्होंने विस्मय , चित्त-विस्मय, तीव्र भावबोध , लोकोतरत्व , रमणीयत्व , अलंकारित्व , रसाप्मकता ,अंतश्चमत्कार रूप आननदानुभूति , आह्लादजनक, वक्रता और उक्ति वैचित्य को माना है। काव्य भाषा के संदर्भ में ही काव्य दोषों पर भी विचार किया गया है। काव्य भाषा के परम्परागत रूपों के अतिरिक्त आधुनिक युग में साहित्य शास्त्रियों ने भाषा पर नये ढंग से विचार किया है। काव्यभाषा के संदर्भ में अग्रगामिता शब्द का प्रयोग शैली विज्ञान में किया गया है। कवि जब सामान्य भाषा की घिसी-पिटी अभिव्यक्तियों और संप्रेषण के नियम को तोड़ता हुआ कवि ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, तब उसे अग्रगामिता कहा जाता है। कथन की भंगिमा का महत्व ही इसके केंद्र में है। इसके पैटर्न में सामानान्तरता सर्वाधिक उल्लेख है। काव्यभाषा की समझ के लिए एक दूसरा शब्द दिया गया है। - अनेकार्थता / अस्पष्टता का । इसे समीक्षात्मक शब्दावली बनाने का श्रेय विलियम एम्पसन को है। उन्होंने सन् 1930 में ‘ सेविन टाइम्स ऑफ एम्बिग्युइटी ‘ नामक पुस्तक में इस शब्द पर विचार किया है। अरन्तु ने इसे दोष माना है। भाषागत अस्पष्टता को भारतीय काव्यशास्त्र में भी दोष ही माना गया है। भाषा -वैज्ञानिकों ने साहित्यक भाषा के सामान्यतः दो स्तर माने हैं।- उपरली संरचना (सरफेस स्ट्रक्चर) और आंतरिक संरचना (डीप स्ट्रक्चर) ,एम्बिग्युइटि का संबंध आन्तरिक संरचना के विभिन्न अर्थ - स्तरों से है। अनेकार्थता का संबंध भारतीय काव्यशास्त्र की शब्द शक्तियों से काफी साम्य रखता है। आधुनिक समीक्षा में इल्लॉजिकल मीनिंग की चर्चा की गई है। हिंदी मे इसे ‘ काव्य न्याय ’ कहा गया है। वस्तुतः काव्य का न्याय शास्त्र के न्याय से भिन्न होता है। काव्यन्याय का मूल आधार डॉ0बच्चन सिंह ने वक्रोक्ति’ को माना है , किन्तु इसमें बदली हुई युग संवेदना की अभिव्यक्ति मुख्य होती है न कि कथन - भंगिमा की।

इसी संदर्भ में ' ग्रामर ऑफ पोएट्री ' की चर्चा भी हुई है। श्रेष्ठ कविता केवल व्याकरणिक रूप से ही उत्तम नहीं होती बल्कि शब्दों में प्रयोजन की गरिमा भी होनी चाहिए। काव्य भाषा के संदर्भ में नाद एव लय की चर्चा भी होती रही हैं। नाद के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - ' नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढती है। नाद का अर्थ ध्वनि से ही है। भाषा के संदर्भ में लय का प्रयोग आचार्य अभिनवगुप्त ने भी किया है। काव्य भाषा के संदर्भ में लय पर नये ढंग से छायावादी कविता मे विचार किया गया है। पंत के 'पल्लव' की भूमिका तथा निराला के ' गीतिका' में 'नवगति ,नवलय ,ताल, छंद नव' का प्रश्न उठाया गया है। पश्चिम और बंगला मे भाषा के संदर्भ में लय और संगीत के काफी प्रयोग हुए हैं। काव्य के संदर्भ में 'तनाव' पर भी लम्बी चर्चा हुई है। जान डेवी , हूल्मे , कॉलरिज , हेनरी जेम्स ने भी इस सम्बन्ध मे विचार किया है। एलेन टेट ने तनाव की सैद्वान्तिकी गढ़ी है। तनाव का अर्थ है - टकराहट , संघर्ष। काव्य भाषा में कवि एक अभिधार्थ का प्रयोग करता है, दूसरे एक आन्तरिक अर्थ की भी सृष्टि करता है। अभिधार्थ को एलेट टेट 'एक्सटेंशन' कहता है तथा आन्तरिक अर्थ को 'इन्टेंशन' । 'एक्सटेंशन' तथा 'इन्टेंशन' भारतीय काव्यशास्त्र के अभिधार्थ तथा व्यग्यार्थ के जैसे ही हैं , किन्तु युगीन संरचना में भाषा का कार्य बदल गया है ।

काव्य भाषा की सैद्वान्तिकी पर संक्षिप्त चर्चा के बाद आइए अब हम कविता की भाषा के प्रयोगात्मक समस्या पर निर्भर करें । हम जानते हैं कि साहित्य की भाषा सामाजिक गतिशीलता के कारण नित्य नये-नये रूप ग्रहण करती रहती है । कविता भाषा की प्रयोगशीलता सप्य के अन्वेषण का मार्ग है। कविता का विषय और कविता की भाषा का संबंध गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। विषय के अनुसार रूप या भाषा का निर्माण होता है तथा भाषा विषय को संयोजित करती है। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। समस्या तब खड़ी होती है जब बदली हुई विषय वस्तु को भाषा पूरी तरह सम्प्रेषित नहीं कर पाती । कभी - कभी ऐसा भी होता है कि भाषा बनने की प्रक्रिया में हो और उसमें अस्पष्टता रहे । किसी कवि या लेखक के व्यक्तिगत प्रयोगों के कारण भी भाषागत समस्या होती है । हर युग में काव्य के प्रयोग पाठक के सामने समस्या उत्पन्न करते है।

6.3.3 हिन्दी कविता की भाषा -

हिंदी कविता की भाषा के संदर्भ में प्रयोग एवं समस्या पर विचार करना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता की भाषा अपने प्रारम्भिक समय ये ही कई प्रकार की बोलियों - भाषाओं से प्रेरणा - ऊर्जा ग्रहण करती रही है। सही ढंग से कहा जाय तो यह कि हिंदी कविता लम्बे सांस्कृतिक संपर्क का परिणाम हैं। हिंदी भाषा के विकास क्रम को देखने से यह बात और स्पष्ट हो जाती है

हिंदी भाषा का विकास क्रम

1500 ई.पू.	**-**	**500 ई.पू.**	**-**	**संस्कृत**
500 ई.पू.	**-**	**1 ई.**	**-**	**पालि**
1 ई.	**-**	**500 ई.**	**-**	**प्राकृत**
500 ई.	**-**	**1000 ई.**	**-**	**अपभ्रंश**
1000	**-**	**1200ई0**	**-**	**अवहट्ट/पुरानी हिन्दी**

पुरानी हिन्दी वस्तुतः संधिकाल की भाषा है, जब अपभ्रंश हिंदी में ढल रही थी। कहने का अर्थ यह है कि हिंदी भाषा और हिंदी कविता कोई एक विषय नहीं हैं, यह एक संस्कृति है। वैसे तो हर समृद्ध भाषा एक संस्कृति का ही प्रतिनिधित्व करती है , किन्तु हिंदी भाषा सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिंदी भाषा की इसी व्यापकता को ध्यान में रखकर ही डॉ0रामविलास शर्मा जैसे उद्धट विद्वान हिंदी को मात्र एक भाषा तक सीमित न रखकर उसे एक 'जाति' की संज्ञा देते हैं और 'हिंदी जाति' कहते हैं। यह 'हिंदी जाति' जातीय चेतना का प्रतीक भी है और सांस्कृतिक कृतित्व का परिचायक भी है।

प्रयोग की दृष्टि से भी हिंदी कविता पर्याप्त समृद्ध रही है। हर वह व्यक्ति , जाति , समाज ,राष्ट्र उन्नित के शिखर को छूता है जो प्रयोगशील होता है। भाषा के संदर्भ में भी यही नियम लागू होता है। प्रयोगशीलता भाषा के संदर्भ में बहुत महत्व रखती है , क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में मानवीय अनुभूतियों की बदलाव प्रक्रिया भी चलती रहती है। अनुभूति के बदलाव प्रक्रिया भी चलती रहती है अनुभूति के बदलाव प्रक्रिया को समृद्ध भाषा ही पकड़ सकती है। हिंदी भाषा के लगभग 1000 वर्षो का इतिहास प्रयोग वैविध्य का सुन्दर नमूना हैं। आगे के बिन्दुओं में हम हिंदी कविता के भाषा परिवर्तन एवं वैविध्य का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1-

(क) सत्य/ असत्य बनाइए :-

(1) भाषा सांस्कृतिक - कर्म हैं।

(2) सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए भाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है।

(3) कविता की भाषा के निश्चित अर्थ होते है।

(4) कविता की भाषा सांकेतिक होती है।

(5) आई0ए0 रिचर्ड्स ने काव्य भाषा के गुणों पर विचार किया है।

(ख) निचे दिये गये वाक्यों को सही शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1) भारतीय काव्यशास्त्र में मुख्यतः........................गुणों पर विचार किया गया है।

2)................................ ने काव्यभाषा का प्रधान गुण 'झटिति भासित' माना है।

3)................................. ने काव्यभाषा में चमत्कार को मुख्य माना है।

4) 'अग्रगामिता' शब्द का प्रयोग .... में किया गया है।

5) 'सेविन टाईम्स ऑफ एम्बिग्युइटी' पुस्तक के लेखक.............................. हैं।

6.4 हिंदी कविता की भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

पिछले विन्दु में आपने हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पीठिका का अध्ययन कर लिया है। इस विन्दु में आइए हम हिंदी कविता की भाषा को उसके ऐतिहासिक संदर्भो में समझें और विश्लेषित करें। अब तक आपको ज्ञात हो चुका है कि हिंदी कविता का इतिहास लगभग 1000 वर्षो का है। इतने लम्बे समय मे भारतीय समाज राजपूत काल से लेकर सल्तनत काल , लोदी वंश ,गुलाम वंश ,मुगल वंश के अतिरिक्त ब्रिटिश औपनिवेशिक दासता का साक्षी रहा है। सामाजिक- घात-प्रतिघात की इस प्रक्रिया में भाषाई बदलाव कम नहीं हुए हैं। मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद जहॉ भारतीय भाषाओ के ऊपर अरबी-फारसी भाषा का प्रभाव पड़ा है, वहीं अंग्रेजी शासनकाल के प्रभाव से यूरोपीय भाषाओं ,विशेषकर अंग्रेजी भाषा , के शब्द भी बहुतायत आ गये है। सन्1990 के बाद भूमण्डलीकरण -वैश्वीकरण के प्रभाव से अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग का प्रयोग ज्यादा ही तेज हो गया है। भाषाई चिन्ह्रों में आये बदलाव की यह प्रक्रिया सांस्कृतिक बदलाव की ही सूचक हैं। आगे हम हिंदी कविता के व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से हिंदी कविता की भाषा के सृजनात्मक अंशों का साक्षात्कार करेंगे।

6.4.1 प्राचीन कालीन हिंदी कविता की भाषा

हिंदी साहित्य या कविता के काल विभाजन के संदर्भ में मोटे तौर पर प्रथमतः दो विभाजन किये जाते हैं - प्राचीन साहित्य या कविता का और आधुनिक साहित्य या कविता का। इस विभाजन के पीछे तर्क यह है कि विषयवस्तु, रूप तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से नयी कविता या आधुनिक कविता प्राचीन कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। प्राचीन कविता संबंधित इसी अवधारणा के चलते ही हमने आदिकालीन , भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविता को प्राचीन कालीन हिंदी कविता के अंतर्गत रखा है। कुष्ठ लोग आदिकाल को प्राचीन कविता तथा

भक्तिकाल एवं रीतिकाल की कविता को मध्यकालीन कविता के अंतर्गत रखते हैं। 'मध्यकाल' की जगह हमने 'प्राचीन' शब्द रखा है। आधुनिक कालीन कविता की संवेदना और अभिव्यक्ति कई दृष्टि से प्राचीन कविता से भिन्न रही है। प्राचीन कविता की वह कौन सी अंतर्निहित विशेषता रही है , जिसके कारण अलग किस्म की , अलग मूड की कविता दिखती है , आइए अब हम प्रमुख कविता आन्दोलन की भाषा के संदर्भ से भारतीय समाज को समझने का प्रयास करें।

6.4.1.1 आदिकालीन कविता की भाषा

आदिकाल का समय लगभग 1000 वर्ष से 1400 ईसवीं तक का माना जाता है। कुछ लोग 1350 ईसवीं तक भी समाप्त काल स्थिर करते हैं। हमे स्मरण रखना चाहिए कि यह काल भयानक रूप से अशान्ति का काल रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे ' स्वतोन्याघातों का युग ' कहते हैं। अस्थिरता की इस प्रवृत्ति का आदिकालीन कविता की भाषा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। काव्यगत प्रवृत्ति की ही तरह आदिकालीन कविता की भाषा को भी हम स्थिर नहीं कर सकते। सिद्धों की भाषा अपभ्रंश के निकट है तो नाथों की राजस्थानी - पंजाबी के। जैन कवियों की भाषा पर गुजराती प्रभाव है तो रासो काव्य पर दिल्ली और राजस्थान का संयुक्त प्रभाव। इन सबके साथ लोकभाषा तो चल ही रही थी। फिर आदिकाल के काल-विभाजन के संदर्भ में विद्वानों में एक साथ नहीं है। रामकुमार वर्मा , डॉ0 नगेन्द्र,मिश्रबन्धु , राहुल सांकृत्यायन जैसे अहयेता 7वीं शताब्दी से आदिकाल की शुरूआत मानते हैं जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामस्वरूप चतुर्वेदी,रामविलास शर्मा जैसे विद्वान 10-11 वीं शताब्दी से। इस मत- भिन्नता के मूल में यह प्रश्न है कि अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। रामकुमार वर्मा, डॉ0नागेन्द्र , मिश्रबन्धु ,राहुल सांकृत्यायन जैसे अध्येता 7वीं शताब्दी से आदिकाल की शुरूआत मानते हैं जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी ,रामस्वरूप चतुर्वेदी,रामविलास शर्मा जैसे विद्वान 10 वीं 11वीं शताब्दी से। इस मत भिन्नता के मूल मे यह प्रश्न है कि अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। 7वीं शताब्दी से आदिकाल का प्रारम्भ करने वाले अध्येयता अपभ्रंश को आदिकाल में समाविष्ट करते हैं जबकि 10-11वीं शताब्दी से आदिकाल मानने वाले अध्येता खड़ी बोली से हिंदी साहित्य का प्रारम्भ मानतें है। आदिकाल की भाषा के संदर्भ में हम महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान खोजनें की कोशिश करें , उससे पूर्व आइए , हम आदिकाल की भाषा - विभिन्नता को एक तालिका के माध्यम से देखें -

आदिकाल की कविता: भाषाई भिन्नता

सिद्ध साहित्य	नाथ साहित्य	जैन साहित्य	रासो साहित्य	लौकिक साहित्य
↓	↓	↓	↓	↓
अपभ्रंश भाषा	अपभ्रंश प्रभावित राजस्थानी	गुजराती	अपभ्रंश राजस्थानी	पूर्वी भाषा

6.4.1.2 भक्तिकालीन कविता की भाषा

पिछली इकाईयों में आपने भक्तिकालीन साहित्य के भेद एवं उपभेदों का अध्ययन कर लिया हैं। अब हम भक्तिकालीन कविता के संदर्भ में उसकी भाषाई भिन्नता का अध्ययन करेंगे। भक्तिकालीन कविता का समय मोटे तौर पर 1350 या 1400 ई0से लेकर लगभग 1650 ई0तक माना गया हैं । इस लम्बें समय में आन्तरिक समाज में बदलाव की प्रक्रिया तो चल ही रही थी , बाहर के देशों से शब्दों का आयात भी हो रहा था। थी, बाहर के देशों से शब्दों का आयात भी हो रहा था। जैसा कि आपने भक्तिकाल की प्र-शाखाओं का अध्ययन कर लिया है। हम देखते है कि भक्तिकाल की विभिन्न शाखाएँ केवल प्रवृत्तिगत दृष्टि से ही एक दूसरे से अलग नहीं है , बल्कि क्षेत्रगत एवं भाषागत दृष्टि से भी उनमें अंतर है।ज्ञानमार्गी कविता जिसे संतकाल भी कहा गया है, में काव्यभाषा का सर्वाधिक वैविध्य देखने को मिलता है। चूकिं 'संत कवि' घुमक्कड़ वृत्ति के थे , इसलिए उनकी भाषा में /कविता मे कई भाषाओं के शब्द मिलते है। राजस्थानी , पंजाबी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी एवं पूर्वी प्रयोग इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर मे मिलते हैं। कबीरदास के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- 'पूरब में भोजपुरी से लेकर पश्चिम में राजस्थानी तक उनका भाषिक - संवेदनात्मक विस्तार है।' कुल मिलाकर संत काव्य भाषा की रचना है। जैसा कि कबीरदास जी ने लिखा भी है -संस्किरित है कूप- जल,भाषा बहता नीर ।शायद इसीलिए लोक तत्व से युक्त होने के कारण संत काव्य सर्वाधिक जीवंत काव्य है। प्रेममार्गी कविता की भाषा मुख्यतः अवधी रही है। अवधी मे भी इस धारा के कवियों ने ठेठ अवधि का प्रयोग किया हैं । जबकि तुलसीदास ने संस्कृतिक अवधि का प्रयोग किया है।जबकि तुलसीदास ने संस्कृतिक अवधी का प्रयोग किया है। प्रेममार्गी कवियों ने अवधी के साथ ही दकनी का भी प्रयोग किया है चूँकि ज्यादातर सूफी कवि मुस्लिम धर्म को माननेवाले थे, इसलिए संस्कार और लोक-आग्रह के कारण उन्होंने दोनों भाषा का प्रयोग किया है। रामभक्ति शाखा का मुख्य क्षेत्र अयोध्या या अवधमण्डल था ,इसलिए उस क्षेत्र की भाषा 'अवधी' को उन्होंने अपनी रचना का विषय बनाया । इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' गीतावली, कृष्णगीतावली, जैसी रचनाएँ ब्रजभाषा में भी कीं। प्रबन्ध के लिए तुलसी ने अवधी भाषा को अपनाया और मुक्तको के लिए ब्रजभाषा को। कृष्णभक्ति शाखा के रचनाकारों ने मुख्यतः ' ब्रजभाषा' को अपनी अपनी रचना का आधार बनाया ।अष्टछाप के कवियों ने (सूर, कुंभन, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, धीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, नन्ददास) केवल ब्रजभाषा का प्रयोग किया, क्योंकि उनकी रचना-भूमि ब्रजमण्डल है, लेकिन कृष्णभक्ति शाखा की महत्वपूर्ण कवियित्री मीराबाई ने सफलतापूर्वक राजस्थानी (छुसमण,वैठ्यॉ) ब्रजभाषा,पंजाबी (जुल्फॉ, करियॉ) एवं गुजराती भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

भक्तिकाल की काव्यभाषा के विस्तार का रहीम बखूबी प्रतनिधित्व करते हैं। रहीम ने अपने काव्य में संस्कृत,फारसी एवं हिंदी भाषा का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। हिंदी भाषा में भी

.... ब्रजभाषा ,अवधी एवं खड़ी बोली को कुशलतापूर्वक रहीम ने साधा है। रहीम के दोहे ब्रजभाषा में, बरवै अवधी में एवं मदनाष्टक खड़ी बोली में है।

6.4.1.3 रीतिकालीन कविता की भाषा -

रीतिकाल के संदर्भ मे आपने अध्ययन किया है कि इस युग की कविता में 'वाग्धारा बॅंधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी।' वर्ण्य - विषय के संकोच के वातावरण में यह स्वाभाविक था कि कवियों का ध्यान भाषा एवं शैली पर टिक जाता। रीतिकालीन कवियों ने काव्यभाषा का विस्तार किया। उसे उन्होंने ललित कलाओं के संस्पर्श और और जीवंत बनाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को हांलाकि रीतिकालीन कविता से यह शिकायत है कि इस समय तक काव्यभाषा का रूप स्थिर हो जाना चाहिए था जो नही हो पाया । शायद इसका कारण यह भी रहा था कि रीतिकाल तक आते-आते काव्यभाषा के रूप में केवल ब्रजभाषा ही रह गई। भक्तिकाल में जैसे ब्रजभाषा और अवधी भाषा दो भाषाएँ मानक काव्यभाषाओं के रूप में स्वीकृत थीं, वैसा रीतिकाल में नहीं हुआ। रीतिकाल में केवल ब्रजभाषा ही मानक काव्यभाषा के रूप में स्वीकृत रही इस युग तक ब्रजभाषा सामान्य काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। लेकिन इस संदर्भ में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि ब्रजभाषा में रचने करने वाले अधिकांश कवि ब्रजभाषा क्षेत्र से बाहर के थे। जैसा कि इस तथ्य का संकेत करते हुए 'काव्य निर्णय' ग्रन्थ में आचार्य भिखारी दास ने लिया है-

''ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ ,

ऐसे ऐसे कविन की वानी हूँ सों जानिए ।''

भाषा - क्षेत्र - विस्तार के वावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि रीतिकालीन कविता की भाषा का रूप क्रमशः स्थिर और शास्त्रीय होता गया ।

अभ्यास प्रश्न -2)

(क) सही मिलान कीजिए।

समय	भाषा
1. 1500 ई.पू. -500 ई.पू.	पालि
2. 500 ई - 1000 ईसवीं	ब्रजभाषा
3. 1000-1200ईसवीं	संस्कृत
4. 1650 - 1850 ईसवीं	अवहट्ट
5. 500 ई.पू. - ईसवीं तक	अपभ्रंश

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1) लौकिक संस्कृति में वेदों की रचना हुई हैं।

2) अवहट्ट को ही कुछ लोगों ने पुरानी हिंदी कहा है।

3) हिंदी भाषा के लिए‘ हिंदी जाति ‘ शब्द का प्रयोग रामविलास शर्मा ने किया हैं।

4) आदिकाल का समय 1000-1400 ईसवीं तक है।

5) कृष्णभक्ति काव्य अवधी में लिखे गये हैं।

6.4.2 आधुनिक हिंदी कविता की भाषा

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं अपितु संस्कृति भी होती है। मध्यकाल तक काव्यभाषा का माध्यम ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, बुन्देली, बिहारी, भोजपुरी इत्यादि चलते रहे है। खड़ी बोली के शब्द तो बीच -बीच मे मिल जाते है किन्तु काव्यभाषा के व्यापक स्वरूप के धरातल पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित नहीं हो पाई थी । हर युग अपने कथ्य के अनुरूप ही भाषा चुनता है। वेद की भाषा संस्कृत, बौद्ध साहित्य की पाली, जैन काव्य की प्राकृत, बौद्ध धर्म के संक्रान्ति काल (हिन्दू धर्म के भी) की भाषा अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्य भाषा काल की भाषा क्षेत्रीय बोलियाँ बनती है। ये क्षेत्रीय बोलियॉ हिंदी भाषा की ही क्षेत्रीय अभिव्यक्तियॉ है। आधुनिक काल अपनी संपूर्ण चेतना में अखिल भारतीय स्वरूप लेकर विकसित हुआ (राष्ट्रीय आन्दोलन - 1857 का स्वतंत्रता संग्राम) इसलिए अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता भी पहली बार महसूस की गई । लेकिन खड़ी बोली हिंदी कविता को अपनाने में लगभग 50 वर्ष समय लगा। भारतेन्दु काल में खड़ी बोली का माध्यम गद्य बना , पद्य नहीं। पद्य का माध्यम ब्रजभाषा बनी रही । भाषा संबंधी यह द्वैत क्यों बना ? आधुनिक काल (1850 तक) आते-आते विचारधाराएँ बदलने लगी थी । विचार धाराओ के निर्वहन के लिए ब्रजभाषा अपूर्ण सिद्व होने लगी, क्योंकि ब्रजभाषा की संरचना मूल तौर पर नायिका - भेद, नीति, भक्ति, श्रंगार इत्यादि के ज्यादा अनुकूल थीं। जबकि खड़ी बोली गद्य की भाषा बनी । गद्य में विचार व्यक्त होता है, जबकि पद्य में भाव । भारतेन्दु कालीन साहित्य में गद्य खड़ी बोली में लिखा गया जबकि पद्य ब्रजभाषा में । एक में विचार है दूसरे मे भाव । स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लिखा- ‘‘ जो हो, मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं ।’’ भारतेन्दु काल में खड़ी बोली कविता में पहल करनेवाले सर्वप्रथम श्रीधर पाठक हुए ।

श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में ‘एकान्तवासीयोगी (1886) ‘जगत सचाई सार’ को अनुवाद कर खड़ी खड़ी बोली कविता को बढ़ावा दिया। 1887 ई. में अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली की

पॉच स्टाइल का जिक्र किया। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रयोग को लेकर ‘ हिन्दुस्तोस्थान ‘ पत्रिका में नवम्बर 1887 से अप्रैल 1888 तक वाद-विवाद चलता रहा। इस सबके बावजूद भारतेन्दु युग तक खड़ी बोली कविता को लेकर संशय की स्थिति बनी रही। भाषा संबंधी यह द्वैत द्विवेदी युग में समाप्त हुआ। डॉ0बच्चन सिं ने लिखा है- गद्य -पद्य की भाषा खड़ी बोली हो गयी। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। आगे बच्चन सिंह ने भारतेन्दुकाल एवं द्विवेदी काल की कविता की तुलना करते हुए लिखा - ‘‘ भारतेन्दु मंडल के लोगों ने खड़ी बोली में जो पद्य रचनाएं की , उनमें ब्रजभाषा का मिश्रण तो था ही , संज्ञाओं और क्रियापदों के रूप भी बिगाड़ दिया गया था। उदाहरणार्थ - दुनिये (दुनिया),असिल (असली),नेंव (नींव), इस्से जिस्सें (इससे, जिससे) आदि शब्दों को देखा जा सकता है। भाषा संबंधी इस अव्यवस्था को दूर करने का जो प्रयास द्विवेदी जी ने किया, वह स्मरणीय रहेगा। छायावाद तक आते-आते हिंदी कविता की भाषा समृद्व हो चली थी। द्विवेदी युग में ‘हरिऔध’ को प्रियप्रवास महाकाव्य के साथ लम्बी भूमिका लिखनी पड़ी, केवल यह सिद्व करने के लिए कि खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है। इसी प्रकार का प्रयास सुमित्रानंदन पंत ने ‘पल्लव की भूमिका’ (1926 ई.) में किया । छायावाद की भाषा तत्सम निष्ठ ज्यादा है। उसके बाद की कविता की भाषा जैसे प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में लोकान्मुख है।

6.5 हिंदी कविता की भाषा का आलोचनात्मक संदर्भ -

किसी भी भाषा की आलोचना का सही आधार यह हो सकता है कि उस भाषा ने अपने युग की संवेदना को सही पकड़ा है या नही ? किसी समृद्व भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह भी हो सकती है कि उस भाषा ने सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता के अनुरूप अपने को ढाला कि नहीं ? किसी भी समृद्व भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह हो सकती है कि उसकी शब्द - सम्प्रदा समृद्व है की नहीं । किसी भी समृद्व भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह हो सकती है उस भाषा में श्रेष्ठ साहित्य है या नहीं । किसी समृद्व भाषा की कसौअी और भी हो सकती है। इस संदर्भ में एक मानक हो सकते हैं और एकाधिक भी । किसी एक देश के भाषा सिद्धान्त दूसरे देशों के संदर्भ में हम हू-ब-हू लागू कर सकते है, यह बात भी नहीं है। हर जाति, प्रान्त,देश की भाषा वहॉ की सामाजिक - सांस्कृतिक -ऐतिहासिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है। इसलिए भाषा संबंधी भाषा-वैज्ञानिक कारणों के इतर भी सामाजिक कारण होते है जो किसी भाषा को अन्य भाषा से अलग करते है और महत्वपूर्ण बनाते हैं। आदिकालीन कविता की भाषा अपभ्रंश -अवहट्ट-पुरानी हिंदी के क्रम से चली है। आदिकाल के केंद्र में धार्मिक -राजनीतिक परिस्थितियॉ मुख्य रूप से रही है। धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित बौद्ध-जैन एव नाथ काव्य रहा है, जबकि राजनीतिक परिस्थितियॉ से प्रभावित रासों साहित्य। भारत पर आक्रमण राजस्थान की ओर से ही ज्यादा हुए हैं और उसका केंद्र दिल्ली और उसके आसपास का क्षेत्र रहा है, जहॉ रासो काव्य सृजित हुए हैं। पूरे आदिकालीन परिस्थितियों का संकेत आदिकालीन

भाषा करती है इसी भक्तिकाल के मूल में प्रपत्ति, दैन्य, त्याग, नीति , सत्चरित्र की भावना व भावनात्मक उद्देश्य रहा है। चाहे निर्गुण कविता हो या सगुण कविता दोनों में भाषा अपनी भूमिका बखूबी निभाती है। कबीरदास की कविता में विविध भाषाएँ उनकी विविध मनोदशाओं के कारण ही पाई जाती हैं। भक्तिकाल के सगुण काव्य की भाषा ब्रज एवं अवधी रही है। अवधी प्रबंध के लिए अनुकूल रही है और ब्रज मुक्तक के। अवधी भाषा राम के व्यक्तित्व से जुड़ी हुई है जबकि ब्रजभाषा कृष्ण के। इसलिए रामभक्तिशाखा ने अवधी को अपनाया और कृष्णभक्तिशाखा ने ब्रजभाषा को। रीतिकालीन साहित्य में केवल ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा के इस विस्तार का फल यह हुआ कि ब्रजभाषा के ही क्षेत्रीय भेद इस काल की कविता में हमें देखने को मिलते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3)

क) नीचे दिये वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. भारतेन्दुकालीन कविता की भाषा .... है।

2. द्विवेदीयुगीन कविता की भाषा ....है।

3. छायावादी कवि .... ने ब्रजभाषा को सांमती अवधारणा का प्रतीक बताया।

4. रासो काव्य .... परिस्थितियों से प्रभावित रहा है।

5. राम काव्य अधिकांश .... रूप में लिखे गये हैं।

6. कृष्ण काव्य अधिकांश .... रूप में लिखे गये हैं।

7. रीतिकालीन साहित्य की भाषा .... रही हैं।

6.6 सारांश

- किसी समृद्ध भाषा की यह पहचान हो सकती है कि उसमें उस प्रदेश ,जाति,राष्ट्र के सपने, आकांक्षा, हर्षोल्लास,आनन्द,जीवनेच्छा किस हद तक अपने उच्च रूप में अभिव्यक्त हो सके हैं।
- साहित्य उच्च सांस्कृतिक - कर्म है। इस दृष्टि से साहित्य की भाषा का अध्ययन अपने आप में महत्वपूर्ण है। कविता की भाषा सर्वाधिक सृजनात्मक अर्थ को अपने में समेटे हुए होती है।

- कविता की भाषा युग-समाज की बदलती हुई संवेदना को पकड़ने का सृजनात्मक प्रयास है।
- परिवर्तनशील समाज की मनस्थिति को पकड़ने के प्रयास में कविता की भाषा में भी कई प्रयोग करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति मे कभी काव्य भाषा में अस्पष्टता आ जाती है, कभी भाषा का सांकेतिक प्रयोग होता है। प्रयोगत वैविध्यता से काव्यभाषा समृद्ध होती है।
- सामान्य भाषा और काव्य -भाषा में अन्तर होता है सामान्य भाषा सरल, एक अर्थो एवं उक्ति–वैचित्र्य से हीन होती है , जबकि काव्य भाषा जटिल, विंब -प्रत्यय से युक्त , बहुअर्थी होती है।
- हिंदी भाषा का विकास-क्रम संस्कृत -पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-अवहट्ट एवं पुरानी हिंदी से होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त हुआ है।
- भाषा की दृष्टि से हिंदी कविता को मुख्यतः दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है- प्राचीन हिंदी कविता एवं आधुनिक कविता । कविता सम्बन्धी इस विभाजन के पिछे मुख्य तर्क यह है कि प्राचीन कविता का प्रतिपाद्य विषय भक्ति, नीति, श्रंगार एवं वीरता है, जबकि आधुनिक कविता का प्रतिपाद्य मानववाद, बौद्विकता, तर्क, नवजागरणवादी चेतना इत्यादि रहे हैं।
- आदिकालीन कविता से लेकर आधुनिक कालीन कविता तक हिंदी जातीय को बखूबी व्यक्त करती हैं।

6.7 शब्दावली

1. अभिव्यक्त - मनोभाव को प्रकट करना
2. संक्रान्तिकाल - बीच की अवस्था,जिसमें भाषा – प्रवृत्ति स्पष्ट न हो ।
3. अलंकारवादी - भारतीय काव्यशास्त्र का सिद्वान्त वाला सम्प्रदाय, काव्य में अलंकारों को मुख्य मानने वाला
4. आनन्दानुभूति - कविता/साहित्य पढ़ने के बाद उत्पन्न अनुभूति ।
5. 'झटिति भासिति'- तुरन्त समझ मे आने वाली कविता
6. अग्रगामिता - शैली विज्ञान का पारिभाषिक शब्द

7. काव्य न्याय - भामह द्वारा प्रयुक्त शब्द, उचित शब्द चुनाव ही काव्य न्याय हैं

8. नाद - ध्वनि, काव्य में संगीतात्मक ध्वनि का प्रयोग

9. अभिधार्थ - काव्य की प्रथम शब्द शक्ति, प्रत्यक्ष कथन,वक्ता के कथन का सीधा अर्थ निकालने वाली उक्ति

10. व्यंग्यार्थ - काव्य की तीसरी शब्द शक्ति

11. स्वत्रोव्याघात- किसी युग, साहित्य के भीतर परस्पर विरोधी स्थितियों का पाया जाना

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1) (क)

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

(ख) 1. तीन 2. आनन्दवर्द्धन 3. पण्डितराज जगन्नाथ 4. शैली विज्ञान

5. विलियम एम्पसन

अभ्यास प्रश्न 2) (क)

1. संस्कृत 2. अपभ्रंश 3. अवहट्ट 4. ब्रजभाषा 5. पालि

(ख) 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3)1. ब्रजभाषा 2. खड़ी बोली 3. सुमित्रानंदन पंत

4. राजनीतिक 5. प्रबन्ध 6. मुक्तक 7. ब्रजभाषा

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,काशी।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली।

4. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, नाथ-सिद्बों की बानिंया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

6.10 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री-

1. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,मुबंई।

2. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।

3. सांकृत्यायन, राहुल, हिंदी काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद।

4. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पव्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न -

1. भाषा और समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

2. भाषिक प्रयुक्तियों पर चर्चा कीजिए।

3. हिंदी कविता की भाषा पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 7 - जयशंकर प्रसाद: पाठ एवं आलोचना (आशा, श्रद्धा, लज्जा और आनन्द सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 कवि परिचय (व्यक्तित्व और कृतित्व)
7.3.1 जीवन-परिचय, परिवेश और व्यक्तित्व
7.3.2 कवि-कर्म
7.4 कामायनी : संक्षिप्त परिचय
7.5 काव्य-वाचन और ससन्दर्भ व्याख्या
7.6 प्रसाद-काव्य का संवेदनागत पक्ष
7.6.1 ऐतिहासिक और अतीत के गौरव के प्रति श्रद्धा
7.6.2 प्रकृति सौन्दर्य
7.6.3 प्रेम भावना
7.6.4 नारी भावना
7.6.5 नियति निरूपण
7.6.6 मैत्री और करूणा का स्वर
7.6.7 आनन्दवाद और समरसता की अभिव्यक्ति
7.6.8 वसुधैव कुटुम्बकम
7.7 काव्य का शिल्पगत पक्ष
7.7.1 काव्य-भाषा
7.7.2 अप्रस्तुत विधान
7.7.3 बिम्ब विधान
7.7.4 छन्द विधान
7.8 सारांश
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

द्विवेदी युग आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक ओर समाज-सापेक्षता को प्रश्रय दे रहा था, दूसरी ओर देश-प्रेम की रागिनी अपने मादक स्वरों में जन-मन को आप्लावित करने लगी थी। और दूसरी ओर ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ले रही थी। यह एक प्रकार से रीतिकालीन काव्य की प्रतिक्रिया थी और तत्कालीन परिस्थितियों की सहज पुकार। द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी काव्य साहित्य ने एक अभिनव काव्य-विधा के दर्शन किये जो छायावाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधा में हम विषय-विष्ठता से हटकर आत्मनिष्ठ हुए। रूप विवरण के स्थान पर भावाभिव्यंजना की ओर प्रवृत्त हुए और सामान्य अलंकारिकता की अपेक्षा शब्दों में नवीन अर्थ, अर्थो में नवीन चेतना, चेतना में अभिनव हार्दिक अनुभूतियों और हार्दिक अनुभूतियों को समाविष्ट करने लगे। कविवर प्रसाद के काव्य में हमें छायावाद की यही विशेषताएं विशेष रूप परिलक्षित होती हैं। जयशंकर प्रसाद छायावाद के उद्भावक, युग के नियामक और असाधारण व्यक्तित्व के धनी बनकर काव्य जगत में अवतरित हुए। प्रसाद जी ने हिन्दी कविता को द्विवेदीयुगीन कविता की रूखी एवं उपदेशात्मक काव्य शैली से मुक्त करे सरस एवं अनुभवजन्य बनाया। उनका सम्पूर्ण काव्य हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है जिसमें प्रेम एवं सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी काव्य-संवेदना का मुख्य गुण है।

उनके काव्य में जातीय बोध विद्यमान है। उन्होंने अतीत की परम्परा का सार्वजनिक एवं युग-संदर्भों के अनुरूप उपयोग करते हुए छायावाद को हमारी जातीय परम्परा का काव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

प्रसाद की प्रतिभा का उत्तमांश 'कामायनी' के रूप में हमारे सामने है। यह माना कि वह छायावाद का उपनिषद और जीवन काव्य है। उसमें प्रतिपादित चिन्तन हमें राह दिखाता है और आज अपनाये जा रहे जीवन-क्रम पर पुनर्विचार के लिए आमंत्रण देता है। प्रसाद का काव्य विविधता लिये हुए है। हिन्दी गीति काव्य-परम्परा को उन्होंने युगानुरूप नवीनता एवं सरसता से सम्पन्न किया। गीत, प्रगीत, आख्यानपरक लम्बी कविताओं के साथ ही प्रबन्ध एवं मुक्तक सभी तरह की काव्य-शैलियों को अपनाते हुए उन्होंने हिन्दी कविता का फलक व्यापक बनाया। काव्य और संगीत का समन्वय प्रसाद की काव्यकला का एक विशेष गुण है। इस प्रकार प्रसाद का काव्य भाव, रस, रचना-विधान, काव्यभाषा, बिम्ब, प्रतीक, संगीत और लय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में अद्वितीय है। उन्होंने युगीनपरिस्थितियों से काव्य के निर्माणकारी तत्वों का संकलन करके, पारिवारिक संस्कारशीलता से शैव दर्शन का मंत्र पाकर, इतिहास, दर्शन और संस्कृति से गृहीत जीवन के निर्मायक तत्वों को भावना के रंग में रंगकर जिस मानवता की विजयगाथा हिन्दी पाठकों को सुनाई है वह उनके काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यास

साहित्य में आद्यन्त विद्यमान है और उनकी परम्परा का विकास आगे चलकर अनेक कवियों में विविध रूपों में होता देखा जा सकता है। इस इकाई के माध्यम से हम जयशंकर प्रसाद के काव्य की प्रमुख विशेषताओं से परिचित होंगे।

7.2 उद्देश्य

आप एम.ए. हिन्दी पूर्वार्द्ध के प्रश्न पत्र आधुनिक काव्य के अन्तर्गत इकाई संख्या 6 का अध्ययन कर रहे हैं, जो जयशंकर प्रसाद के पाठ और आलोचना विषय पर केन्द्रित है। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- कविवर जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- जीवन परिवेश व साहित्यिक पृष्ठभूमि रचनाकर्म को प्रभावित करती है, प्रसाद के काव्य के अध्ययन से इस तथ्य को समझ सकेंगे।
- प्रसाद कृत कालजयी कृति कामायनी के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कामायनी के महत्वपूण सर्गों से व्याख्या योग्य पदों की भावात्मकता व कलात्मकता को समझ कर व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रसाद काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
- छायावाद कवियों में प्रसाद के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

7.3 कवि परिचय

7.3.1 जीवन परिचय परिवेश और व्यक्तित्व

छायावाद शिरोमणि प्रसाद जी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार 'सुंघनी साहू' में माघ शुक्ला दशम् सं. 1946 वि. (सन् 1889 ई.) को हुआ। कलाकारों और साहित्यकारों का इनके परिवार में विशेष मान था। काशी-राजघराने से भी प्रसाद के परिवार के अच्छे सम्बन्ध थे। जयशंकर और हर-हर महादेव का अभिवादन काशीराज के अलावा लोग इन्हीं के परिवार वालों से करते थे। अपने बचपन में प्रसाद जी ने बहुत वैभव का जीवन देखा था। प्रसाद जी ने काशी के क्वींस कॉलेज में आठवीं तक की शिक्षा विधिवत् रूप में प्राप्त की थी। उन्होंने कई शिक्षकों से संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसाद

जी बचपन से ही प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था में ही 'लघु-कौमुदी' और अमरकोश जैसे ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिए थे और उन्होंने बचपन से ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।

प्रसाद जी अन्तर्मुखी एवं सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्हें काव्य-संस्कार कुछ अपने परिवार के अभिजात एवं सुसंस्कृत वातावरण से तथा कुछ शिक्षकों-मित्रों के साहचर्य से प्राप्त हुए थे। अपना व्यवसाय करते हुए अवकाश मिलने पर वे सदा कुछ न कुछ लिखते-पढ़ते रहते थे। उनकी दुकान पर साहित्यिक मित्रों की बैठकें होती रहती थी।

सुख-दुख, धूप-छांव की तरह होते हैं। प्रसाद जी ने भी अपने जीवन में जितना सुख भोगा उतने ही अभाव भी उनके साथ रहे। पिता कि मृत्यु के पश्चात चाचा से संयुक्त परिवार की संपत्ति के बंटवारे को लेकर उनके भाई को मुकदमा भी लड़ना पड़ा। बढ़ते हुए घर खर्च एवं व्यापार में घाटे के कारण प्रसाद जी के परिवार पर कर का बोझ बढ़ गया। इसी बीच उनकी माता का देहान्त हो गया। उन्हें अपने तीन विवाह भी स्वयं के प्रयासों से ही करने पड़े। ऐसी विषम परिस्थितियों में सृजन कर्म निरन्तर चलता रहता था। एक प्रकार से प्रसाद जी का संपूर्ण जीवन संघर्ष और विडम्बनाओं की करूण कथा ही था।

7.3.2 कवि-कर्म

प्रसाद जी का रचनाकर्म प्रेम-सौन्दर्य नैतिकता, आनंद उदात्तता, रहस्यवाद, मानववाद उच्च आदर्शों से सराबोर था। प्रसाद जी ने बाल्यावस्था में ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1906 में भारतेन्दु पत्रिका में उनकी प्रथम कविता का प्रकाशन हुआ था लेकिन उनकी कवि प्रतिभा की वास्तविक पहचान सन् 1909 में प्रकाशित 'इन्दु' पत्रिका से हुई जो उनके भान्जे अम्बिकादत्त गुप्त द्वारा सम्पादित होती थी। उनकी ब्रजभाषा व खड़ी बोली की आरम्भिक कविताओं का स्वरूप और उनके प्रारम्भिक लेख 'इन्दु' पत्रिका में ही प्रकाशित हुए थे।

प्रसाद मूलतः कवि हैं और इस इकाई में भी उनके काव्य पर ही चिन्तन किया गया है। प्रसाद जी का कवि-कर्म प्रेम सौन्दर्य प्रकृति-चित्रण, संस्कृति, दर्शन, कल्पना और अनुभूति का विनियोजन है। चित्राधार (1975 वि. सं.), काननकुसुम (1918 ई.), झरना (1918 ई.), आंसू (1926 ई.), लहर (1935) और कामयनी (1936) उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह है। उनकी प्रारम्भिक काव्य यात्रा का सोपान है - चित्राधार और कानन-कुसुम। 'झरना', 'आंसू' 'लहर' और सर्वप्रमुख काव्य 'कामायनी' उनके विकसित और प्रौढ़ कृतित्व परिचायक है।

प्रसाद जी का पहला प्रकाशित संग्रह 'चित्राधार' था जिसमें उनकी ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली-दोनों ही तरह की रचनाएं संगृहीत थी। चित्राधार कविता संग्रह की कविताए उनके मध्यम मार्ग को दर्शाती है। कभी अतीत और कभी वर्तमान की ओर झुकाव है तो वे कभी परम्परा के प्रति आसक्त और उससे विद्रोह करते हुए नए पथ की ओर अग्रसर होते है और कभी

इन सबसे उबकर स्वच्छंद प्रगीत रचना की ओर। वस्तुतः प्रसाद की भावी रचनाओं के लिए मनोभूमि यहीं से प्राप्त होती है।

'कानन-कुसुम':- प्रसाद की काव्य मात्रा का द्वितीय सोपान है। 'कानन-कुसुम' सहज स्वाभाविक और प्राकृतिक रूप रचना की प्रतीक कविताएं हैं और ये काव्य संग्रह के नाम को सार्थक करती है। यह खड़ी बोली की कविताओं का पहला स्वतंत्र संग्रह है। इस संकलन में प्रकृतिपरक, भक्तिपरक, विनयपरक और आख्यानपरक कविताएं संकलित है। 'चित्रकूट', 'भरत' 'कुरूक्षेत्र', 'वीर बालक' और श्री कृष्ण जयन्ती, आदि पौराणिक व आख्यानपरक कविताओं में प्रमुख है। इनकी कविताओं में सौन्दर्य, श्रृंगार व प्रकृति के बिम्बांकन में मर्यादा व शालीनता सदैव चित्रित होती हैं शिल्प में पूर्व संग्रह से किंचित परिवर्तन दिखाई देता है। भावमयी कल्पना के साथ विनयभाव, प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की नवीनता 'कानन-सुसुम' की कविताओं की विशेषताएं थीं, जिनसे आगे चलकर छायावाद के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि का अंदाज लग सकता है।

इसी दौर में प्रसाद जी ने 'करूणालय', महाराणा का महत्व, और प्रेमपथिक जैसी आख्यानक रचनाएं लिखी। 'करूणालय गीतिनाट्योपरक काव्य है। यह प्रथम गीतिनाट्य माना जाता है। काव्य में अभिव्यक्त 'करूणा' की भावना के दर्शन इस कृति में होते है। नर-बलि का विरोध करते हुए तत्कालीन समाज की विविध स्थितियों का चित्रण करने की भावना इस काव्य में है। इसमं कला-शिल्प की दृष्टि से अतुकांत छन्द का प्रयोग है। 'महाराणा का महत्व' का प्रकाशन सन् 1914 में हुआ। ऐतिहासिक आख्यानक खण्डकाव्य में प्रसाद ने महाराणा प्रताप, रहीम और अकबर से सम्बद्ध कथानक लेकर पांच दृश्यों में विभक्त कथा को पूर्णतः नियोजित एवं सुसम्बद्धित किया है। नाटकीयता, चरित्रोद्घाटन क्षमता, वातावरण निर्माण और कलात्मक स्वच्छंदता के वरण के कारण इस कृति का महत्व सर्वाधिक है। प्रेमाख्यानक के आधार पर रचित प्रेमपथिक भी एक उल्लेखनीय रचना है जिसमे प्रेम के पावन और निष्कलुष रूप को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें कवि का जीवनदर्शन और सत्य भी कलात्मक शैली में अभिव्यक्त हुआ है।

परम्परागत भावबोध एवं काव्यशिल्प को तोड़ते हुए प्रकृति, प्रेम एवं सौन्दर्य-दृष्टि से ओतप्रोत स्वच्छंदतावादी काव्य चेतना को प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाला प्रसाद जी का पहला छायावादी काव्य-संग्रह 'झरना' (1918 ई.) था, जिसमें छायावादी गीतिशैली से ओतप्रोत रचनाएं संगृहीत थी। इसी कारण आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसे छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार माना है। 'झरना' प्रेम व सौन्दर्य की अनुभूतियों के अनवरत् प्रवाह को ध्वनित करता है। छायावाद के समस्त लक्षण इस संकलन में है।

छायावादी काव्य चेतना की स्वच्छन्दतावादी मुक्तक शैली की प्रसाद की एक और रचना 'आंसू' है। जिसमें वेदना की घनीभूत अनुभूति व्यक्ति हुई है। 'झरना' में प्रणयानुभूति का

अविरल प्रवाह था तो आंसू में प्रेमजनित घनीभूत पीड़ा की मादक तरंगे। आंसू में अभिव्यक्त वेदना की घनता के मूल में जो रूप-सौन्दर्य है, वह यौवन के मद की लालिमा से रंजित और काली जंजीरों से बंधे हुए विधु का सौन्दर्य है तभी तो ''अभिलाषाओं की करवट फिर सुस्त व्यथा का जगना, सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना'' जैसी पंक्तियां लिखी गयी हैं। वेदना-विचलित काव्य का शिल्प-सौष्ठव भी अनुपम है। भाषा में लक्षणा व्यंजना चित्रोपम शब्द और संवेद्यता विद्यमान हैं। प्रसाद जी का 'लेवल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे' जैसे वैयक्तिक बोध की गीतिपरक मुक्तक कविताओं का संग्रह 'लहर' है। इनमें वैयक्तिकता होते हुए भी तटस्थता का भाव विद्यमान है। अशोक की चिंता, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण पेशोला की प्रतिध्वनि तथा प्रलय की छाया आदि इतिहास विषयक कविताएं इसमें संकलित है। रागात्मकता लयात्मकता, संगीतात्मकता के साथ अनुभूतियों की संवेदनात्मक व्यंजना लहर के गीतों की विशिष्टताएं है।

कामायनी (1936) प्रसाद जी कृत अंतिम महाकाव्यात्मक रचना है। इसमें कवि ने एक प्राचीन मिथक के माध्यम से मानव जीवन और मनोविज्ञान की जटिलताओं को कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। इस कृति का परिचय इसी इकाई में अगले शीर्षक में दिया जा रहा है।

7.4 कामायनी : संक्षिप्त परिचय

प्रसाद जी ने अपने इस महाकाव्य द्वारा जहां अमूर्त जगत को मूर्तिमान किया है वहां उसने मानवता को एक संदेश भी दिया है। आज का मानव संघर्ष के घोर रूप का अनुभव करता है। विषमता, उच्च नीच का भेद, रंग का उत्कर्षाकर्ष मानव-मानव के बीच में गहरी खाई खोद रहे हैं जिसके कारण नित नूतन समस्याएं हमारे सम्मुख उपस्थित होकर जीवन के संहार में तत्पर हो रही है। आज का पीड़ित मानव यदि समन्वय और साम्य की भित्ति पर अपना जीवन यापन करने लगे तो उसे शीघ्र ही कष्टों से त्राण मिल सकता है।

सब भेद भाव भुलवा कर
सुख दुख को दृश्य बनाता।
मानव कह रे यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।

इस प्रकार काव्य में कुल 15 सर्ग है और उनका नामकरण भी एक विशेष क्रम से हुआ है जिसमें 'चिन्ता' सर्ग से काव्य का सूत्रपात होता है - वैसे 'चिन्ता' भाव विकास की प्रथम भावभूमि भी है। यही भावभूमि क्रमशः आशु, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वद, दर्शन, रहस्य आदि परिणत होती हुई अपनी समान्वित क्रिया के परिणाम

स्वरूप अन्त में आनंदवाद में पर्यवसित हो जाती है। मनोभावों का इतना सफल चित्रण इस युग के अन्य किसी कवि की कृति में परिलक्षित नहीं होता। यहां कथा-वस्तु सूक्ष्म पात्रों की संख्या भी कम है परन्तु कवि का चेतन-मानस प्रमुख रूप से जागरूक है जो, आदि से अन्त तक पाठकों की चेतना को भी जगाए रखता है।

काव्य वस्तु का प्रारम्भ जलप्लावन की घटना से होता है। यह जलप्लावन एक प्रकार का खण्ड प्रलय था जिसमें देवजाति समाप्त हुई। केवल मनु बचे। यह मनु श्रद्धा के संयोग से आगामी मानव वंश के निर्माता हुये। खण्ड प्रलय का जो चित्र कामायनी के प्रथम सर्ग में खींचा गया है वह अत्यन्त भयावह है। देवजाति सुख समृद्धि में लीन होकर असीम विषय विलास की आखेट बनी। कवि ने देव जाति के इस विलास का भी सम्पूर्ण चित्र अंकित किया है। देव जाति का उत्कर्ष ज्ञान-विज्ञान का उत्कर्ष था और जैसे आज वैज्ञानिक जगत प्रलय की कगार पर खड़ा है, अणुबम, परमाणु बम जैसे संहारात्मक अस्त्रों का विपुल भण्डार निकट प्रलय की सूचना दे रहा है, वैसा ही देव जाति के इतिहास में भी कोई समय आया था। प्रसाद जी ने लिखा है- ''सुख केवल सुख का वह संग्रह केन्द्रीभूत हुआ इतना। छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।।' जिन देवों और अप्सराओं के हृदयों में मणियों के दीपक जलते हों, दम्भ परकाष्ठा पर पहुँच गया हो, विलास की बाढ़ आ गई हो उसका सर्वस्व यदि प्रलय यज्ञ का हविष्य बनता है जो इसमें आश्चर्य ही क्या?

प्रसाद ने जिस जलप्लावन का इतना भयंकर वर्णन चिन्ता सर्ग में किया है उसका ऐतिहासिक आधार है। शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा कई पुराणों में जलप्लावन का वर्णन मिलता है। सम्भवतः जलप्लावन की घटना भूमण्डल की सभी जातियों को विदित थी और सभी ने उसका अपने-अपने ढंग से वर्णन भी किया है। इस जलप्लावन का ऐतिहासिक तथा पौराणिक आधार तो है ही, भूगर्भशास्त्रीय आधार भी उपलब्ध हो रहा है। हिमालय की निर्मिति में कुछ ऐसे तत्व पाये गये हैं जो उसके निर्माण से पूर्व की अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। प्रसाद ने इन सभी उपलब्ध सामग्री का काव्याचित प्रयोग अपनी 'कामायनी' में किया है। जिस सारस्वत प्रदेश की चर्चा कामायनी के स्वप्न सर्ग में है वह सरस्वती तटवर्ती प्रदेश था। सरस्वती अब भूगत है, परन्तु उसका प्रदेश पंचनद के नाम से आज भी विख्यात है। मनु ने इस प्रदेश को वैज्ञानिक आधारों पर धनधान्य सम्पन्न बनाया और प्रजातंत्र का बीजारोपण किया।

प्रसाद जी ने कामायनी में जिस महामत्स्य द्वारा मनु की नौका को हिमगिरि तक ले जाने और मनु को कतिपय उपकरणों के साथ बचाने का वर्णन किया है, उसका उल्लेख हमारे प्राचीन साहित्य में कई स्थानों पर है। प्रसाद ने मनु के साथ उत्तर गिरि के स्थान को ही सम्बद्ध किया है और गान्धार प्रदेश का उल्लेख भी है। श्रद्धा कामायनी है, काम की पुत्री अथवा काम गोत्रजा है और गान्धार प्रदेश की रहने वाली है।

महाकाव्य का प्रारम्भ चिन्ता सर्ग में जिस जलप्लावन और विभीषिका से हुआ आशा सर्ग में धीरे-धीरे जल-प्लावन समाप्त हुआ। हिमालय तटवर्ती सामुद्रिक जल वाष्प बन-बन कर उड़ने लगा और जहां जल था, वहां स्थल के दर्शन होने लगे। मनु भी देव-दम्भ का प्रायश्चित करने के लिये वासना जगत से निकलकर तपश्चर्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। यज्ञ साधना का प्रतिफल उन्हें श्रद्धा के रूप में प्राप्त हुआ जिसने मनु के साथी के रूप में भावी मानव-संतति का बीजारोपण किया।

देवों की संस्कृति को विनष्ट करने वाले असुर भी जीवित थे। किलात और आकुलि उन्हीं के पुरोहित थे। असुर और दानव, राक्षस और पिशाच हिसा में विश्वास रखते थे, वन्य मृगों पर उनकी दृष्टि गई एक मृग श्रद्धा ने भी पाल रखा था। किलात और आकुलि ने मनु को हिंसा के लिए उकसाया। यज्ञ में इस पालित पशु का मांस आहुति के रूप में डाला गया। मांस-लोलुप किलात और आकुलि के साथ मनु भी मांसाहारी बन गये। बस, यहीं से मनु और श्रद्धा के हृदय पृथक हुए, जिसकी चरम परिणति कुमार के उत्पन्न होने पर हुई। श्रद्धा कुमार की देख-रेख में अधिक समय देने लगी। मनु को अपनी ओर से यह अपकर्षण खला और वे एक दिन चुपचाप श्रद्धा को सोती छोड़कर चल दिये। मनु की यह मानसिक स्थिति उसे सारस्वत प्रदेश में पहुंचाती है, जहां इड़ा का राज्य था। प्रसाद ने वर्णन किया है कि इड़ा का सारस्वत प्रदेश मनु के द्वारा विज्ञान-विधियों पर समुन्नत हुआ। यन्त्रों के आधार पर कृषि-कर्म आगे बढ़ा, उद्योग-धन्धे विकसित हुए, प्रजा धन धान्य से सम्पन्न बनी और नियमों की कर्कश श्रृंखला में सभी अधीन हो गये। परन्तु मनु अपनी प्रवृति के अनुसार अपने लिए अनियंत्रित एवं अबाध अधिकार चाहते थे। परिणामस्वरूप विद्रोह हुआ और मनु घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। श्रद्धा मनु को तलाश करते हुए सारस्वत प्रदेश पहुँच गयी। मनु और श्रद्धा का पुनःमिलन होता है। श्रद्धा अपने पुत्र मानस को सारस्वत प्रदेशवासियों की सेवा के लिए छोड़ने को तत्पर होती है। प्रसाद ने इस स्थल पर वत्सल रस की भी झलक दिखा दी है। श्रद्धा अपने पुत्र से कहती है -

’’सबकी समरसता कर प्रचार,

मेरे सुत सुन मां की पुकार‘‘।।

मनु पश्चाताप-सा करते हुए कहते हैं - ‘अचिते, तुमने अपना सब कुछ खो दिया और अपने एकांकी पुत्र को भी ऐसे मनुष्यों के हाथों में सौंप दिया, जो क्रूर हैं, हिंसक हैं और जिनसे मैं अपने प्राण बचा कर भागा था। श्रद्धा प्रत्युत्तर देती है कि सारस्वत प्रदेश के तुम ऋणी थे अब तुम्हारा कुमार सारस्वत प्रदेश को अपना ऋणी बना लेगा। तुमने सारस्वत प्रदेश छोड़ा और मैंने कुमार को सारस्वत प्रदेश की सेवा में समर्पित कर दिया। अब हम दोनों ही मुक्तात्मा जैसी स्थिति में हैं। प्रसाद ने इसी स्थल पर परमशिव के दर्शन करने वाले मनु और श्रद्धा का का चित्र अंकित किया है।

अन्तिम सर्ग आनन्द में प्रसाद जी इड़ा, कुमार और सारस्वत प्रदेश के निवासियों को वहां ले जाते हैं जहाँ श्रद्धा और मनु मानसरोवर के समीप एकान्त-शान्त कैलास पर्वत पर आनन्दमग्न अवस्था में विराजमान हैं। महाकाव्य में वर्णित है कि तीर्थयात्रा में वृषभ साथ है जो धर्म का या पुण्य का प्रतीक माना गया है। यात्रियों का दल श्रद्धा के समीप पहुंचता है और कहता है कि हम यहां अपने पाप धोने के लिये आये हैं।

कामायनी का यह दृश्य जिसमें श्रद्धा की गोद में बैठकर कुमार एक अभाव को पूर्ण कर रहा है और इड़ा का सिर श्रद्धा के चरणों में झुका है, अत्यन्त रोचक और प्रेरणास्पद है। प्रसाद ने यहाँ श्रद्धा व इड़ा के मिलन में माध्यम से हृदय और बुद्धि का संगम दर्शाया है जो कामायनी का आधार स्थल है।

प्रसाद का यह कथन सत्य है कि ''जब तक मानव इड़ा या बृद्धि के विकास तक पहुंचता है, तब तक पाप उसका पीछा नहीं छोड़ते। पर, जब बुद्धि दैवी और यज्ञिय बन जाती है, तब वह पापीयसी नहीं रहती। बुद्धि के ऊपर मेघा तथा प्रज्ञा के स्तर हैं। प्रज्ञा विशुद्ध प्रकाश की पवित्र अवस्था है। श्रद्धा का पूरा सहयोग प्रज्ञा के साथ ही रहता है।''

वस्तुतः कामायनी हिन्दी का एक युगान्तरकारी महाकाव्य है। वह इड़ा और श्रद्धा के सम्मिलन द्वारा आज की विशद-जर्जर मानवता को जो समरसता का संदेश दे रहा है, वह अपने में एक अद्भुत क्रांतिकारी संदेश है। आज नहीं तो कल, मानवता इसी समरसता-श्रद्धा तथा बुद्धि अथवा हृदय और मस्तिष्क के समन्वय द्वारा ही सुख एवं शान्ति का अनुभव कर सकेगी।

7.5 काव्य वाचन और ससन्दर्भ व्याख्या

उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई;

उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यावतरण छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की अमर कृति कामायनी के आशासर्ग से उद्धृत है। इससे पूर्व महाकाव्य के प्रथम सर्ग चिन्ता में जलप्लावन की घटना का चित्रण है, जिसमें देव जाति समाप्त हुई। खण्ड प्रलय का जो चित्र कामायनी के प्रथम सर्ग में चित्रित है वह अत्यन्त भयावह व यर्थाथ लगता है। देवजाति सुख में लीन होकर असीम विषय विलास की आखेट बनी। यह सत्य कथन है कि दुःख के बाद ही सुख का आगमन होता है। जलप्लावन समाप्त हुआ। प्रस्तुत पद्यांश में नवीन सूर्योदय के साथ आस्था वादी भाव का चित्रण है।

शब्दार्थ : सुनहले तीर: सुनहरी किरणें, जय-लक्ष्मी: विजय की देवी, कालरात्रि: प्रलय का अंधकार, पराजित: हारी हुई, अंतर्निहित: छिपजाना।

व्याख्या : कामायनी के चिन्तासर्ग के अंतिम पद में जयशंकर प्रसाद लिखते है कि हिमालय तट का भीषण जलसंघात वाष्प बनकर उड़ने लगा और जहां जल था वहां स्थल के दर्शन होने लगे और प्रलय निशा की समाप्ति प्रतीत हो रही थी। आशा सर्ग के इस प्रथम पद में चित्रित है कि जलप्लावन की समाप्ति के बाद अंधकार छट गया। प्रातःकालीन सूर्योदय या उषा सुनहले तीर बरसती विजय की देवी के समान प्रकट हुई है और उधर प्रलय की रात्रि (अंधकार) हार मानकर धरती के भीतर जल में विलीन हो गयी। जल में भी अंधकार है तो इस प्रकार अंधकार अंधकार में विलीन होकर अस्तित्वहीन हो गया।

विशेषः कवि ने यहां युद्ध का चित्रण किया है। एक पक्ष कालरात्रि है तो दूसरा पक्ष उषा। प्रातःकालीन सूर्य की सुनहरी किरणें मानो तीर है, उषा ने किरणों के नुकीले तीर बरसाकर कालरात्रि को पराजित कर दिया और अंत में वह जल में डूब मरी इस प्रकार उषा विजयिनी हो गई।

- उपमा अंलकार द्वारा कवि ने उषा को जयलक्ष्मी के समान माना है और रात्रि को शत्रु योद्धा के रूप में।
- इस पद में अंधकार पराजय का और प्रकाश विजय का प्रतीक है।

देव न थे हम और न ये है, सब परिवर्तन के पुतले;

हाँ कि गर्व-रथ में तुरंग सा; जितना जो चाहे जुत ले।

प्रसंग : आशा सर्ग के इस पद में मनु की चेतना आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होती है। मनु सोचते है कि इस सृष्टि को संचालित करने वाला कोई ऐसा परम पुरूष है जिसके आगे सूर्य, चन्द्र, पर्वत और वरूण सब नगण्य है। पर वह है कौन? इस संदर्भ में मनु का विस्मय व चिन्तन बढ़ता जाता है।

व्याख्या : मनु चिन्तन करते है कि हम जो स्वयं को देवता कहते थे वह सत्य नहीं, फिर प्रलय क्यों हुआ? सूर्य, चन्द्र-वरूण आदि को भी देवता समझते थे वह भूलवश ही। न तो आकाश में दिव्य शक्तियाँ अमर है और न हम देवजाति। सब परिवर्तनशील, अस्थिर और नश्वर है। हाँ यह दूसरी बात है कि जैसे रथ को खींचने वाला थोड़ा यह समझ ले कि रथ उसकी ताकत से चल रहा है उसी तरह हम अपने अभिमानवश यह समझ बैठे कि संसार हमारी शक्ति पर निर्भर है। हम इस अभिमान रूपी रथ में घोड़े के समान जुते हुए हैं।

विशेष :

- परिवर्तनशीलता व नश्वरता शाश्वत सत्य है।
- यहाँ पर परम सत्ता की ओर संकेत है जो ब्रह्मण्ड का शासक है। घोड़ो को जैसे चाबुक चलाता है उसी प्रकार इन सब को भी किसी महाशक्ति के नियंत्रण में रहना पड़ता है उसकी इच्छानुसार ही हम कर्म से संचालित होती है। शासक देव नहीं वरन् वह परम सुन्दर सत्ता है।
- यहाँ पर प्रसाद ने नियति का निरूपण और उसकी सही व्याख्या की है।

आह! वह मुख पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम;

अरूण, रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।

प्रसंग : प्रस्तुत काव्य पंक्तियां छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित महाकाव्य कामायनी के श्रद्धा सर्ग से उद्धृत है। महाप्रलय के उपरान्त परम सत्ता का चिन्तन करते हुए चिन्ताग्रस्त मनु के मन में आशा का संचार होता है। तपस्या यज्ञ के कार्य को सम्पन्न कर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में मनु को अपने अभावपूर्ण जीवन नजर आता है और वे एक साथी की कल्पना करने लगते हैं। एक दिन गांधार देश की युवती श्रद्धा घूमती हुई अचानक मनु की गुफा के पास पहुँच जाती है और मनु से परिचय प्राप्त करने लगती है। उस अनुपम सुन्दरी को एकान्त स्थल पर अप्रत्याशित रूप से उपस्थित हुई देखकर मनु चकित हो जाता है। उसके रूप सौन्दर्य को देखकर उनके मन में जो कल्पनाएं जगती है उन्हीं का बिम्बग्राही चित्रण यहाँ हुआ है।

शब्दार्थ : व्योम - आकाश, अरूण - लालिमायुक्त, छविधाम - सौन्दर्य महल

व्याख्या : आह! श्रद्धा के उस सुन्दर मुख का वर्णन कैसे किया जाए। सूर्यास्त अर्थात संध्या समय पश्चिम के आकाश में जब काले बादल घिर आते है और उन्हें चीरता हुआ लालिमा से युक्त सूर्यमण्डल झाँकता हुआ सौन्दर्य महल जैसा प्रतीत होता है वैसा ही श्रद्धा के काले बालों के बीच झाँकता हुआ उसका चेहरा था - दैदीप्यमान कामनापूर्ण और मोहक।

विशेष :

- अरूण रवि श्रद्धा के मुख के लिए तथा घनश्याम उसके बालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। शब्द संयोजन व बिम्ब प्रस्तुतीकरण प्रभावी है।
- आह! शब्द यहां श्रद्धा के मुख की अनन्त छवि और उसके दर्शन के उपरान्त व्याप्त सकून की ओर संकेत करता है।

- इस वर्णन में श्रद्धा के मुख की तुलना एक विस्फोट रहित लघु ज्वालामुखी से की हैं श्रद्धा का लालिमा मुक्त तेजोमय धीर गम्भीर मुख का विम्ब उभरता है।
- उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अनित्य यौवन........................ गोद।

शब्दार्थ : नित्य यौवन छवि-चिर यौवन का सौन्दर्य। दीप्त-दैदीप्यमान। करूणा कामनामूर्ति-करूणा से भरी हुई कामना की मूर्ति। कान्त लेखा-उज्ज्वल किरण। तारकद्युति - तारों की आभा।

प्रसंग : पूर्ववत्

व्याख्या : श्रद्धा का सौन्दर्य दिव्य था। उसे देखकर ऐसा प्रतत होता था जेसे श्रद्धा अनन्त काल तक रहने वाले यौवन के सौन्दर्य से सुशोभित है। उसके मुख पर छाई हुई करूणा के कारण वह कामना की सौम्य एवं साकार मूर्ति सी प्रतीत होती थी। उस श्रद्धा की छवि में कठोर हृदय-व्यक्ति के हृदय में भी जागृति उत्पन्न करने की क्षमता थी। नवयौवना श्रद्धा के सहज लालिमा से युक्त मुख पर उज्ज्वल मुसकान छाई हुई थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो माधुर्य में डूबी हुई, उल्लास एवं प्रसन्नता से युक्त, स्वच्छन्दता एवं लज्जा से पूर्ण उषा की सबसे शुभ्र किरण प्रभातकालीन ताराओं की गोद में सुशोभित हो रही हो।

- अलौकिक सौन्दर्य वाली श्रद्धा को यहां ”विश्व की करूण कामना मूर्ति“ कहा गया है अर्थात् श्रद्धा को विश्व की समस्त इच्छाओं को देने वाली देवी माना है। श्रद्धा के दूसरे नाम ‘कामायनी’ का अर्थ भी कामना का अयन या आश्रय है।
- कामना - मूर्ति में रूपक अलंकार हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार का भी प्रयोग हुआ हैं यहां शब्द-चित्र द्रष्टव्य है।

दुःख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात।

एक परदा यह झीना नील छिपाऐ है जिसमें सुख गात।।

प्रसंग : श्रद्धा निर्जन वन में यज्ञ से बचे को देखकर किसी व्यक्ति के जीवित होने के अनुमान से घूमती हुई मनु से मिलती है और उसकी निराशःक्लान्त स्थिति को देखकर समझाती है

व्याख्या : कि सुख और दुःख साथ-साथ चलते है। दुःख की विगत रात्रि के बाद सुख का अगला नया सवेरा उदय होता है। जैसे रात्रि के बाद सवेरा होना स्वाभाविक क्रिया है इसी तरह

दुःख के बाद सुख का आगमन भी स्वाभाविक है। सुख का शरीर अन्धकार (दुःख) के झीने (हल्के) परदे से ढका रहता है जैसे उषा का शरीर अंधकार के हल्के पट से ढका रहता है। दुःख की स्थिति आने पर ही सुख की महत्ता का पता लगता है।

विशेष :

- दुःख में ही सुख के छिपे रहने से ही मनुष्य उसे देख नहीं पाता। मनुष्य की व्यापक दृष्टि होनी आवश्यक है। यहाँ सुख-दुख की सुन्दर व्याख्या है।
- सुख-दुख के क्रम का वर्णन प्राचीन कवियों ने भी किया है। महाकवि भास ने 'स्वप्न वासवदन्तक' नाटक में लिखा है कि ''चक्र इव परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च'' अर्थात् दुःख और सुख चक्र के समान बदलते है।
- प्रतीकात्मकता दृष्टव्य है। दुःख रात्रि का तो सुख प्रभात का प्रतीक है।

पुरातनता का यह निर्मोक, सहन करती न प्रकृति पल एक;

नित्य नूतनता का आनन्द किये हैं परिवर्तन में टेक।

शब्दार्थ : पुरातनता - प्राचीन, अनुपयोगी, निर्मोक - केंचुली, टेक -टिकना, छिपना - गुप्त।

सन्दर्भ : मनु की मनःस्थिति विरक्ति की हो गई है। प्रलय के समय जीवन की सफलता व अस्तित्व का विनाश मनु ने देखा है, वे स्मृतियाँ और जीवनानुभव से अभी भी ग्रस्त है जबकि श्रद्धा ने पूर्व पदों में सुख-दुःख की व्याख्या से मनु के भीतर सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास भी किया है। मनु संसार से विरक्ति को जीवन सत्य समझ बैठे है, जबकि श्रद्धा कहती है संसार में इच्छाओं से परिपूर्ण आनन्द देने वाली आशाएं छिपी पड़ी है, उन्हे उभारने की आवश्यकता है। इसी संदर्भ में श्रद्धा आगे बढ़ती है और मनु को समझाती है कि जिसे तुम परिवर्तन करते हो, वह नित्य नवीनता है।

व्याख्या : जब प्रकृति भी पुराना आवरण या केंचुली सहन नहीं करती है तो मानव को भी सीख लेनी चाहिए। जिस तरह साँप पुरानी केंचुली उतारकर नई केंचुल धारण करता है, उसी तरह प्रकृति भी पुरातनता का परित्याग करती है। पल-पल में यहाँ परिवर्तन होता है इस परिवर्तन में नित्य नूतनता सामने आती रहती है। पतझड़ आने पर पत्ते गिरते हैं परिवर्तन होता है नये कोंपल फूटते हैं, नये पत्ते व फूल खिलते हैं इस तरह नवीनता का संचार होता है। परिवर्तन से ही विकास सम्भव है। मनुष्य शिशु रूप में जन्म लेकर यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था तक पहुँचता है फिर मृत्यु का दर्शन। परन्तु पुरानी नष्ट तो नई का पुनःसृजन भी होता है। पुरातनता/नवीनता या दुःख सुख का क्रम चलता रहता है।

विशेष : जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, जो वस्तु जीर्ण हो चुकी है या अनुपयोगी है उसका मिट जाना ही श्रेयस्कर है। सृष्टि विकासशील है इसी से वह दिन प्रतिदिन एक से एक अच्छी वस्तु का निर्माण करती बढ़ती रहती है। परिवर्तन को नित्य नवीनता के रूप में देखना चाहिए।

लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती।

कुंचित अलकों सी घुंघराली मन की मरोर बनकर जगती।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश कामायनी में लज्जा सर्ग से अवतरित है। श्रद्धा अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तन के अन्तर्द्वन्द्व में थी तभी छायारूप में एक नारी जो रति की प्रतिकृति लज्जा का ही प्रतिरूप होती है, प्रकट होती है और श्रद्धा को अपनी प्रकृति, महत्त्व व प्रभाव क्षेत्र के बारे में बताते हुए कहती है।

व्याख्या : मेरे कारण युवतियों व रमणियों के सुन्दर व सरल गाल लाल हो जाते हैं अर्थात् लज्जा में प्रकट होने पर गालों की लालिमा के रूप में मैं दिखाई देती हूँ। युवतियों की आँखों में काजल न होने पर भी मेरी अनुभूति में ऐसा लगता है जैसे वह लगा हुआ हो। मेरे प्रभाव से आँखों में एक विशेष चमक व अदभुत शोभा आ जाती है। बल खाती हुई घुंघराली लटों के समान मैं रमणियों के मन में ऐंठन उत्पन्न कर दर्शकों के मन में वासना उत्पन्न करती हूँ।

विशेष :

- लज्जा को लाली, ‘अंजन’, घुंघराली, और मरोर के समान कह कर मालोपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- ‘लज्जा’ भाव की व्याख्या की गई है।

चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली।

मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।।

शब्दार्थ : किशोर सुन्दरता-किशोरावस्था का सौन्दर्य, मसलन-अंगुलियों से किसी वस्तु को दबाते हुए मलना या रगड़ना।

प्रसंग : पूर्ववत् प्रसंग

व्याख्या : लज्जा अपना स्वरूप बताते हुए कहती है कि मैं सुन्दर किशोरियों के चंचल मन की रखवाली करती हूँ। लज्जा भाव के कारण ही उनका मन नियंत्रण में रहता है। कहते है कि लज्जा स्त्री का आभूषण होता है परन्तु यहाँ लज्जा स्त्री का भूषण ही नहीं अपितु सुरक्षा कवच भी है। चंचलता व मस्ती के आवेग और यौवन के उन्माद वश भटक जाने वाली किशोरियों के सौन्दर्य की रक्षा लज्जा के कारण ही हो पाती है। लज्जा के कारण चंचलता वश जो विकार उत्पन्न होते हैं वे नहीं उठ पाते और यदि उठते हैं तो शान्त हो जाते है इस प्रकार सौन्दर्य की रक्षा हो जाती है। जिस तरह से कानों को हल्के-हल्के मसलने पर वे लाल हो जाते है इस क्रिया से थोड़ी पीड़ा तो होती है परन्तु सीख भी मिलती है और सुन्दरता भी बढ़ती है उसी तरह लज्जा के नियंत्रण में रहने वाली स्त्री थोड़ी क्षुब्ध तो रहती है पर उस संयम से उसके सौन्दर्य में विलक्षण दीप्ति झलकने लगती है।

विशेष :

- कवि ने लज्जित आनन्द के सौन्दर्य को चुना है। इसके लिए उसने दो सौदर्य प्रकारों की कल्पना की है, प्रथम है किशोर सुन्दरता और द्वितीय है - मतवाली सुन्दरता। मतवाली सुन्दरता रतिमूलक है और उसका मनुहार व मान लज्जा का प्रीति धर्म करता है। किशोर सुन्दरता चंचल है और उसका भार वहन लज्जा के नियन्त्रण में है। इस तरह शालीनता से सुन्दर लज्जित मुख लावण्यमय होता है। इस प्रकार दो लघु सौन्दर्य भेदों का सौन्दर्य तत्व व्यक्त किया गया है।

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था;

चेतना एक विलसती आनंद अखंड घना था।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यावतरण छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की अमर काव्य-कृति ‘कामायनी’ के आनन्द सर्ग से लिया गया है। श्रद्धा के द्वारा फैलाई गई इस अलौकिक प्रेमज्योति को देखकर पर्वत पर उपस्थित संपूर्ण जड़-चेतन एवं प्राणी एक विशेष आनंद की अवस्था में जिस समरस भाव की अनुभूति करते हैं, इसी की सुन्दर प्रस्तुति उपर्युक्त पंक्तियों में हुई है।

व्याख्या : श्रद्धा के फैलाए प्रेम एवं अलौकिक ज्योति के रूप का दर्शन कर उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ - चाहे वे जड़ थे या चेतन, एक समान आनंद में लीन थे। लगता था मानो सौन्दर्य ने साकार रूप धारण कर लिया है। सभी एक ही विराट चेतना शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीड़ारत देख रहे थे। चारों ओर अखंड आनंद का साम्राज्य छाया हुआ था।

विशेष : काव्यभाषा में व्यंजकता और दार्शनिकता है। यहां आनन्द के साथ ‘अखण्ड’ विशेषण समष्टि-बोध या विश्व बोध का द्योतक है। क्योंकि आनन्द (व्यापक भाव) भाव विषयगत है जब

यह निर्विषय होगा तभी अखण्ड होगा। सविषय या व्यक्तिगत आनन्द 'घना' भी नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि अखण्ड आनन्द की उपलब्धि व्यक्तिगत हित को विश्वहित में समाहित करने में है। हम सब एक है, 'वसुधैव कुटुम्बकुम' यही कामायनी का संदेश है।

7.6 काव्य का संवेदनागत पक्ष

7.6.1 ऐतिहासिक और अतीत के गौरव के प्रति श्रद्धा भाव

प्रसाद जी को भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति अटूट आस्था रही है। इतिहास की गौरवशाली परम्परा - चरित्र से कथानक ढूंढ़ कर प्रसाद जी ने काव्य मे ही नहीं अपितु नाटक, उपन्यास व कहानी लेखन में इनका प्रयोग किया है। यथार्थवाद, व्यक्तिवाद और ऐतिहासिक तत्व उनकी कृतियों में प्रथम बार इतने सशक्त रूप में प्राप्त होते है। 'प्रेमराज्य' उनकी पहली काव्य कृति है जो प्रसाद के मन में स्थित सांस्कृतिक, राष्ट्रीय ऐतिहासिक गौरव के प्रति श्रद्धा-भावना को व्यक्त करती है।

प्रेम राज्य में प्रकृति, पौरूष और वीरभावों की व्यंजना आकर्षक पद्धति पर की गई है। इसमें मार्मिकता भी हैं-वह मार्मिकता जो प्रबन्ध के लिये जरूरी होती है।

डॉ. शान्तिस्वरूप के शब्दों में इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसका महान संदेश जो आगे चलकर कामायनी में पूरा हुआ। युद्ध से आरम्भ होने वाला यह काव्य अन्त में मानवतावाद, विश्वप्रेम और समन्वयवाद का संदेश देता है। 'महाराणा का महत्व' रचना भी खड़ी-बोली के कारण ऐतिहासिक महत्व रखती है। प्रसाद 'महाराणा' जैसे ऐतिहासिक व्यक्तित्व के माध्यम से उनके चारित्रिक महत्व का उद्घाटन कर वीरता व देशप्रेम का स्वर प्रदान करते है। प्रसाद जी के 'काननकुसुम' काव्य संग्रह में जो भी रचनाएं है वे प्रायः सभी पौराणिक और ऐतिहासिक आधार लेकर तैयार की गई है। कामायनी का भी ऐतिहासिक व पौराणिक आधार है।

7.6.2 प्रकृति सौन्दर्य

प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उदात्त चित्रण मिलता है। उनके विविध काव्यसंकलनों की प्रकृति परक कविताएं - प्रकृति के विविध चित्र प्रस्तुत करती है। उन्होंने अनेक कविताओं के माध्यम से प्रकृति और मानव को एक दूसरे के निकट लाने का यत्न किया है। प्रकृति का मानवीकरण, इसके अतिरिक्त प्रकृति का उपदेश, आलम्बन उद्दीपन, रहस्य, अप्रस्तुत विधान, पृष्ठभूमि, अन्योक्ति प्रतीक आदि रूप भी चित्रित हुए हैं। झरना काव्य संग्रह के पावस प्रभात का यह दृश्य जिसमे उषा का मानवीकरण मधुर और सजीव है-

रजनी के रंजक उपकरण बिखर गए।

घूंघट खोल उषा ने झांका और फिर।।

अरूण आपांगों से देखा, कुछ हंस पड़ी।

लगी टहलने प्रापी प्रांगण में तभी।

लहर काव्य संकलन के प्रकृति गीत मे प्रकृति का आलम्बन व दार्शनिक विचार देखने को मिलता है।

''बीती विभावरी जाग री

अम्बर-पनघट में डूबो रही

तारा-घट उषा नागिरी (लहर)

प्रभातकालीन प्राकृतिक शोभा का उषा के सौन्दर्य, पक्षियां के कलरव, लता किसलयों की सुमधुर गति, और मंद-मंथर पवन आदि का बड़ा हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत है। इन गीतों में कोई न कोई दार्शनिक विचारण मिलता है।' 'बीती विभावरी' में यदि कवि जागरण का संकेत देता है तो कहीं कोई कविता परमात्मा के चित्रण को लक्ष्य करके लिखी गई है।

इसी तरह प्रसाद जी ने आंसू में विरह जनित तीव्र वेदना से पूर्ण प्रकृति-रमणी की मनोरम छटा अंकित की है। कहीं रात्रि रोती, कलपती लगातार आंसू टपका रही है।

आंसू में कवि ने मानव जीवन में व्याप्त विरोध वैषम्य और पीड़ा को भी प्रकृति के माध्यम से व्यक्ति किया। वेदना के साथ-साथ संयोग के क्षणों में भी सहचरी प्रकृति का चित्रण दृष्टव्य है।

''हिलते दुमदल कल किसलय देती गलवांही डाली

फूलों का चुम्बन छिड़ती मधुपों की तान निराली''

7.6.3 प्रेम भावना

छायावादी कवि प्रसाद प्रेम व सौन्दर्य के कवि है। प्रसाद के प्रेम में न तो मांसलता है और न इन्द्रियों का आवेग ही। रूपाकर्षक के सहारे किया गया प्रेम उनकी दृष्टि में मोह भर है, प्रेम ही है। प्रसाद के प्रेम मे गाम्भीर्य है- प्रसाद जी का काव्य प्रेम पथिक केवल भावना और प्रेम का काव्य ही नहीं है अपितु इसमे प्रेम की ऊंचाई व दर्शन पक्ष भी काफी मात्रा में उभरा है। ''करूणा-यमुना, प्रेम-जाहनवी का संगम है भक्ति प्रयाग, जहां शान्ति अक्षय-वट बनकर, युग-युग तक परिवर्धित हो।''

वैयक्तिक प्रेम यदि विश्व में वितरित कर दिया जाये तो मानव को सुख मिलता है। प्रेम भी असीम और अपरिमेय है, ठीक सन्दर्य की तरह। डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में 'प्रेम पथिक' हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण रचना है, इसमे प्रसाद ने प्रेम और श्रृंगार का आदर्शवादी रूप प्रस्तुत किया है, हिन्दी में यह श्रृंगार का नव निर्माण था।

प्रसाद के काव्य संग्रह 'झरना' में भी प्रेम अजस्त्र स्त्रोत प्रवाहित हुए है। प्रेम का पवित्र झरना उसके तनःमन के प्रवाहित है और वह उसके भाव तटौ को स्पर्श करता हुआ एक जीवन स्पंदन और स्फूर्ति से भर उठा है।

कवि कहता है -

''सत्य स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में,

मन पवित्र उत्साहपूर्ण सा हो गया,

विश्व विमल आनन्द भवन सा हो गया,

मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।''

प्रसाद जी का आंसू काव्य संग्रह प्रेमी की वेदनानुभूति और अतीत की स्मृतियों की अभिव्यक्ति है। ''आंसू'' में प्रेमानुभूति निम्न चार स्तर पर अभिव्यक्त हुई हैं।

1. अतीत के मिलन क्षणों की मादक स्मृति और प्रेमी की मनोदशा।
2. प्रिय के अलौकिक सौन्दर्य का निरूपण
3. प्रेम-वेदना की हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति
4. पीड़ामय विश्व के प्रति हार्दिक सहानुभूति।

कवि के प्रिय के रूप सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण दृश्य है -

बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से

मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा आज हीरों से।।

काली आंखों में कितनी यौवन के मद की लाली

माणिक मदिरा से भरदी किसने नीलम की प्याली।।

कोमल कपोल लाली में सीधी साधी स्मित रेखा।

जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा।।

विदुरम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ?

है हंस न शुक वह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे ?

प्रसाद जी सृष्टि-विकास की मूल शक्ति प्रेम मानते हैं और प्रेम का मूल आधार श्रद्धा है। प्रसाद जी का साहित्य प्रेम व्यक्ति प्रेम, पारिवारिक प्रेम तथा विश्व-प्रेम के रूप मे दिखाई देता है।

7.6.4 नारी भावना

प्रसाद जी का प्रेम भाव पावन और दैहिक आकर्षण से परे है इसीलिए उन्होंने नारी के जिस रूप की कल्पना की है वह भी विशुद्ध और पावन है। प्रसाद जी ने नारी के भीतरी सौन्दर्य को परखा जो वासना का नहीं वरन, अर्पण का विषय है, जो पुरूष मे प्रेरणा, शक्ति और स्फुरण उत्पन्न करे।

नारी जागृति का स्वरूप भी प्रसाद काव्य में सर्वत्र लक्षित होता है। श्रद्धा के रूप में प्रसाद की नारी भावना को विशेष बल मिलता है। उनके काव्य में एक ओर नारी स्वातन्त्रय को समर्थन प्राप्त है तो दूसरी ओर उसके चरित्र का सूक्ष्म, विस्तृत और मनौवैज्ञानिक विवेचन भी पूरी गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रसाद जी का साहित्य नारी संदर्भ में उसकी स्वतंत्रता और जागृति का इतिहास है। लज्जा सर्ग में नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण इस प्रकार अभिव्यक्त है।

क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प अश्रु जल से अपने

तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

नारी जागृति व सृजनाशक्ति का स्वरूप भी प्रसाद काव्य में सर्वत्र लक्षित होता है। श्रद्धा के रूप में प्रसाद की नारी भावना को विशेष बल मिलता है। उनके काव्य में एक ओर नारी स्वातन्त्र को समर्थन प्राप्त है तो दूसरी ओर उसके चरित्र का उत्पन्न सूक्ष्म, विस्तृत और मनौवैज्ञानिक विवेचन भी पूरी गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रसाद जी का साहित्य नारी संदर्भ में उसकी स्वतंत्रता और जागृति का इतिहास है।

7.6.5 नियति निरूपम

प्रसाद भाग्यवादी तो थे, किन्तु भाग्य के सहारे रहकर निष्क्रियता और निश्चेष्टता से सर्वथा दूर थे। उनकी इसी भावना को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। ''अहम तो

मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं नियत कर्म-रूप में कूद सकता हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर भी क्यों बनूं-कर्म से क्यों विरक्त हूं", कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसाद की नियतिवादी धारणा केवल निठल्ले बने रहकर भाग्य के सहारे जीने का दूसरा नाम नहीं है। यह ठीक है कि जीवन में उत्थान, पतन, दुख और सुख, हास और अश्रु विद्यमान हैं और इनके सहारे ही विश्व-जीवन प्रकृतिशील रह पाता है। 'आंसू' की परिणति इसी सत्य को सम्मुख रखती है।

प्रसाद जी का नियति सम्बन्धी दृष्टिकोण हिन्दूधर्म, बौध धर्म, ईसाई धर्म, चीनी धर्म और ग्रीक धर्म इन सबसे विशिष्ट व अलग है। हिन्दू धर्म में कर्म स्वतंत्रता को स्थान है। किन्तु प्रसाद की नियति को व्यक्ति का कोई कर्म परिवर्तित नहीं कर सकता। उसके समक्ष क्या देवता, क्या असुर, सबकी शक्तियाँ पराजित हो जाती है। इसका स्वरूप विश्वात्मक है। इसमें वैयक्तिक प्राकृतिक व सामाजिक सभी कर्म आ जाते है।

7.6.6 मैत्री और करूणा का स्वर

प्रसाद ने 'बुद्ध' के मैत्री और करूणा के संदेश को भी ग्रहण किया है। क्षणिकवाद और दुखवाद प्रसाद के इस करूणावाद की पृष्ठभूमि हैं। यहां सभी कुछ नश्वर है, क्षणिक है। 'करूणा' ही व्यक्ति का सहारा है। मैत्री का साधन इसी आधार पर प्रसाद ने 'करूणा' को मानव जीवन की एकमात्र इकाई बनाने का प्रयास कया। 'अशोक की चिन्ता, में प्रसाद ने हिंसा और पीड़ा से दुखी मानव के लिए करूणा का ही संदेश दिया है:

संसृति के विक्षत पग रे।

यह चलती है डगमग रे।

अनुलेप अद्दश तू लग रे।

मृदु दल बिखेर इस मग रे।

कर चुके मधुप मधुपान भंग।

भुनती वसुधा, तपते मग,

दुखिया है सारा अग-जग।।

कंटक मिलते हैं प्रति मग

जलती सिकता का यह मग,

.... वह जा बन करूणा की तरंग!

7.6.7 आनन्दवाद और समरसता की अभिव्यक्ति

प्रसाद के जीवन के अन्तिम और महत्वपूर्ण उपलब्धि आनंदवाद है। 'कामायनी' तो 'आनंदवाद' की छांह में बैठकर लिखी गई है। इस आनंदवाद का दार्शनिक आधार शैवाद्वैत है। उन्होंने कामायनी में शिव-शक्ति के रूपक के माध्यम से अद्वैतवाद को विशद् पृष्ठभूमि प्रदान की है। श्रद्धा और मनु कैलाश पर तप करते हैं और उनकी तपस्या और श्रद्धा ही जीवन के सत्य की उपलब्धि है।

उदाहरणार्थः-

कोई भी नहीं पराया।।

हम अन्य न और कुटुम्बी

हम केवल एक ही हमीं हैं

तुम सब मेरे अवयव हो,

जिसमें कुछ नहीं कमी हैं।।

जीवन प्रसाद की दृष्टि में एक चेतन सागर है जो अखण्ड, अविचिछन्न और समरसता का प्रतीक हैं आनंद ही सृष्टि का मूल है और वही जीवन का मूल है। अद्वैतवादी के लिये सुख दुखात्मक संसार उस चेतन पुरूष का ही शरीर है:

'अपने दुख सुख से पुलकित, वह मूर्त विश्व सचराचर,

चित का विराट वपु मंगल, वह सत्य सतत चिर सुन्दर'

यही भाव कामायनी में जन-सेवा की भित्ति बन जाता है:

सब की सेवा न पराई

वह अपनी सुख संसृति हैं,

अपना ही अणु-अणु कण-कण

द्वयता ही तो विस्मृत है।

× × ×

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था;

चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।

यह अद्वैत भावांकित जन-सेवा का आनंद मार्ग 'प्रसाद' की हिन्दी को सबसे बड़ी देन है। इसमें उपनिषदों के अद्वैत, शैवागमों के आनंदवाद और आधुनिक युग के कर्मवाद (जनसेवा) का पूर्ण समन्वय हो जाता है", 'कामायनी' में इसी का पोषण हैं। मानव जीवन का चरम लक्ष्य परम प्रेम आनन्द धाम तक पहुंचना है। परम प्रेम आनन्द धाम तक पहुंचने का एक मात्र साधन, शुद्ध सात्त्विक प्रेम है। प्रेम के इस परम लक्ष्य को प्रसादजी ने अपनी प्रारम्भिक रचना 'प्रेम पथिक' में स्पष्ट कर दिया था।

''इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।

किन्तु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं।

7.6.8 वसुधैव कुटुम्बुकम

प्रसाद का समष्टिगत भाव उत्तरोत्तर विकास-शील पथ पर चलता है। वह सीमा से अनन्त की ओर, सम से असीम की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर, निरन्तर विकसित होता रहता है। इस पवित्र प्रेम की उच्च भूमि में व्यष्टि प्रेम भी इतना विशाल तथा विशद क्षेत्र रखता है कि इसमें कहीं भी मानसिक संकोच, हृदय-दौर्बल्य या आत्मिक संकीर्णता का स्थान नहीं। श्रद्धा मनु से अनन्य प्रेम रखते हुए भी विश्व के अन्य प्राणियों से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करती। उसका व्यष्टि प्रेम उसे समिष्ट प्रेम से अलग नहीं करता प्रत्युत उसी ओर अग्रसर करता है।

प्रसाद जी व्यष्टि प्रेम तथा कौटुम्बिक प्रेम को विश्व प्रेम की सीढ़ी मानते हैं। व्यक्ति, व्यष्टि प्रेम से ही अपने स्व से बाहर निकलना प्रारम्भ करता है; उसका त्याग, पर के लिए बढ़ने लगता है, उसका आत्म-विस्तार शनैः शनै विकसित होने लगता है। और विश्व को कुटुम्बवत् देखने लगता है। श्रद्धा में विश्व-प्रेम इसी प्रकार विकसित हुआ है। श्रद्धा के अनन्य प्रेम में मोह या ममता कभी उसे कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं करती। वह श्रद्धा राष्ट्र-कल्याण के लिए अपने इकलौते पुत्र मानव को सारस्वत प्रदेश में इड़ा के पास छोड़ने में तनिक भी मोह या दुःख नहीं करती। श्रद्धा की इस विश्व मूर्ति को देखकर मनु स्वयं कह उठते हैं

''कुछ उत्पन्न थे वे शैल-शिखर,

फिर भी ऊंचा श्रद्धा का सिर।

वह लोक अग्नि में तप गल कर,

थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर।

मनु ने देखा कितना विचित्र,

वह मातृमूर्ति थी विश्वमित्र।।"

इस प्रकार प्रसाद जी श्रद्धा के चरित्र के माध्यम से विश्वप्रेम को व्यक्त करते हैं।

7.7 प्रसाद काव्य का शिल्पगत पक्ष

7.7.1 काव्य-भाषा

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु प्राणभूत चेतना है। भाषा भाव और इच्छा भी है। भाषा का निर्माण शब्दों के माध्यम से ही होता है। शब्द भाषा में संश्लिष्टता, अर्थकत्ता, स्फुरण एवं रागात्मकता पैदा करता है। प्रसाद जी की काव्य-भाषा का सर्वाधिक महत्व उसकी शब्द समाहार शक्ति और चित्रमय प्रस्तुति में है।

प्रसाद की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली हैं। यद्यपि उन्होंने पहले-पहल ब्रजाभाषा में 'चित्राधार' की रचना की थी और 'प्रेम पथिक' को भी ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत किया था, किन्तु बाद में वे खड़ी बोली के सफल कवि प्रमाणित हुए। उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त हैं। कामायनी, आंसू, लहर और झरना जैसी श्रेष्ठ कृतियों में प्रसाद ने तत्सम भाषा का ही प्रयोग किया है। जहां तक प्रसाद की ब्रजभाषा का प्रश्न है, वह संस्कृत के तत्सम रूपों के सहयोग से ही निर्मित हुई है। 'चित्राधार' की अधिकांश कविताओं में ब्रजभाषा का संस्पर्श दिखाई देता हैं। हां, प्रसाद ने ब्रज प्रदेश में प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया हैं उनकी ब्रज की रचनाओं में 'लसत', 'भीति', 'निवारि', 'ठांवा', 'पसीजत', 'ठिठकी', चकचूर, टेरो, उछाह, गोइये, तातो, ठौर और चेतो आदि ब्रज के प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग मिल जाते हैं। ब्रजभाषा में ही आये दिन प्रयुक्त होने वाले उर्दू, फारसी के शब्द भी प्रसाद के शब्द-भण्डार में देखे जा सकते है।

यह ठीक है कि उनके काव्य में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, किन्तु ध्यान रहे ये तत्सम शब्द भी दो प्रकार के हैं। दार्शनिक और साहित्यिक। दार्शनिक तत्समों का प्रयोग कामायनी में मिलता है। चिति, समरस, लीला, कला, उन्मीलन, काम, श्रेय, विषमता, भूमा, नियति और त्रिपुट ऐसे ही दार्शनिक तत्सम शब्द हैं। साहित्यिक शब्द तो सर्वत्र हैं ही। एक तीसरे प्रकार के तत्सम शब्द भी प्रसाद के काव्य में उपलब्ध होते हैं। ये वे शब्द हें जो हिन्दी में न केवल अप्रचलित हैं, अपितु दुष्प्राप्य भी हैं यथा-श्वापद, आवर्जना, नाराच, अलम्बुषा, ब्रज्या, ज्योतिरिंगणों और तिमिंगलों आदि। इस प्रकार की तत्सम शब्दावली विविधवर्णी है।

ध्वन्यात्मकता प्रसाद की भाषा की अन्यतम विशेषता है। अरराया, रिमझिम, झिलमिल, छपछप, थर-थर, सन-सन और धू-धू आदि शब्दों का प्रयोग ऐसा ही है। ''बिजली माला पहने फिर मुस्कराता सा आँगन में, हाँ कौन बरस जाता था रस बूंद हमारे मन में' पंक्तियों में वाच्यार्थ से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक ही की यात्रा तय कर ली गयी है।

कामायनी और आंसू ही क्यों, झरना और लहर में भी लाक्षणिक भाषा का प्रचुर प्रयोग हुआ हैं 'रक्त की नदी में सिर ऊंचा छाती कर तैरते थे' में साध्यवसना लक्षण का वैभव है, तो 'मेरे जीवन के सुख निशीथ जाते-जाते रूक जाना' में प्रयोजनवती लक्षणा का सौंदर्य समाहित है। 'शीतल ज्वाला जलती थी ईंधन होता दृग जल का' में 'ज्वाला' का लक्ष्यार्थ वेदना है, तो 'झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी 'नीरद-माला' में 'झंझा' भावों की तीव्रता की, बिजली पीड़ा की और 'नीरदमाला' निराशजनित भावों की संकेतिका बनकर आई हैं।

नूतन अर्थ के द्योतक स्वच्छंद प्रतीकों का प्रयोग भी प्रसाद के काव्य में बहुतायत से हुआ है - पतझड़ (नीरस), सूखी फुलवारी (शुष्क जीवन), किसलय (सरसता), क्यारी ; (हृदय), किरण (आशा-उत्साह), बसन्त (यौवन), तपन (व्यथा), आकाश (अदृष्ट और हृदय), उषा (सुख), शशिलेखा (कीर्ति), कुसुम सुमन (मन, भावनाएं), कुसुम (तारागण), स्तूप अचेत (लड़ता), बयार (जीवनदायिनी) आदि ऐसे ही प्रतीक है। प्रसाद जी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि श्रुति सुखदता। इसी विशेषता के कारण कामायनी की भाषा माधुर्य-गुण प्रधान हो गई है।

7.7.2 अप्रस्तुत विधान

प्रस्तुत तो वह कहलाता है जो वर्ण्य-विषय है या साक्षात् हमारे सामने उपस्थित होता हैं, अप्रस्तुत पक्ष प्रस्तुत कथन को प्रभावशाली अथवा अधिकाधिक मार्मिक या आकर्षक बनाता है। यही कारण है कि रचनाकार अपने भावों को श्रोता एवं पाठकों तक तद्वत् पहुंचाने के लिए जिन उपकरणों का सहारा लेता है, उन्हें ही काव्य के अप्रस्तुत कहते है। अलंकारों में उपमान या अप्रस्तुत सबसे प्रमुख एवं प्रभावोत्पादक है।

प्रसाद के काव्य में भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उनके प्रिय अलंकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय हैं, जिन्हें उनके सभी काव्य-ग्रंथों में देखा जा सकता है। उनकी उपमाएं ललित, मार्दवयुक्त, प्रभावी और अर्थ-गरिमा से दीप्त हैं तो उत्प्रेक्षाएं उनकी कल्पनाशक्ति की परिचायिका हैं और रूपक भाव की सघनता और संश्लिष्टि के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ: 'करूणा की नव अंगड़ाई सी', मलयानिल की परछाई-सी, उषा-सी ज्योति रेखा, अवशिष्ट रह गयी अनुभव में अपनी अतीव असफलता-सी, अवसादमयी श्रम दलिता-सी, छायापथ में तारक द्युति-सी, घनश्यामखण्ड-सी आंखों में और 'पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो' आदि प्रयोगों में उपमा का वैभव है। कामायनी में प्रयुक्त उपमाओं को हम चार भागों में बांट सकते हैं।

मूर्त से मूर्त की उपमा:-

उधर गरजतीं सिन्धु-लहरियां कुटिल काल के जालों सी।

चली आ रहीं फेन उगलतीं न फैलाये व्यालों सी।।

अमूर्त से अमूर्त का उपमा :-

निकल रही थी मर्मवेदना करूणा विकल कहानी सी

मूर्त उपमान से अमूर्त उपमेय की तुलना :-

अरी नीच कृतध्नते! पिच्छल शिला संलग्न।

मलिन काई सी करेगी हृदय कितने भग्न।।

अमूर्त उपमान से मूर्त उपमेय की उपमा :-

आ गया फिर पास क्रीड़ाशील अतिथि उदार।

चपल शैशव सा मनोहर भूल का ले भार।।

उपमाओं में लाक्षणिकता प्रायः सर्वत्र मिलेगी। रूपक अलंकार का प्रयोग अधिकतर प्राकृतिक दृश्य चित्रण या नारी रूप वर्णन में हुआ है। प्रसाद में तुलसी के समान बहुत लम्बे रूपक नहीं मिलते। उत्प्रेक्षा अलंकार अधिकतर व्यंग्य रूप में है। संदेह तथा उदाहरण लंकारों की छटा भी देखने को मिलती है।

7.7.3 बिम्ब विधान

बिम्ब विधान मूलतः काव्य का चित्र धर्म है। कल्पना बिम्ब के रूप में ही मूर्तित होती है। भाव अभिव्यंजना की दृष्टि से बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान हैं कामायनी, आंसू, लहर, और झरना आदि सभी में सफल बिम्बों की योजना हुई है। प्रसाद जी के काव्य में बिम्ब योजना के अन्तर्गत तीन प्रकार के चित्र मिलते है:- शब्दचित्र, वस्तुचित्र और भावचित्र।

शब्दचित्र इस काव्य में स्थान-स्थान पर मिलते है। ‘अरी आंधियों! ओ बिजली की दिवारात्रि तेरा नर्तन’। ‘बिजली की दिवारात्रि’ में चित्रोपमता की पराकाष्ठा है। वस्तुचित्रों के उदाहरण प्रायः रूप-वर्णन या प्रकृति-वर्णन में मिलते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि प्रसादजी ने वस्तु-चित्रों के अंकन में व्यंजनात्मक शैली से अधिक काम लिया है। ये किसी वस्तु के मार्मिक अंश का चित्र इस प्रकार खड़ा करते हैं कि व्यंजना द्वारा उसका अवशिष्ट अंश पूरा हो जाता है।

धवल मनोहर चन्द्रबिम्ब से, अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ।

जिसमें शीतल पवन गा रहा, पुलकित पावन हो उद्गीथ।

कामायनी के भावचित्रों की रमणीयता और प्रभुविष्णुता देखने को मिलती है। भावों को मूर्तरूप देने में कवि ने लक्षणा-शक्ति का अधिक आश्रय लिया है, जिससे भाव सुग्राह्य होकर हृदय से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। चिन्ता नामक भाव का एक चित्र देखिए

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा!

हरी भरी-सी दौड़ धूप ओ, जलमाला की चल रेखा।

इसी प्रकार झरना, आंसू और कामायनी के अन्तर्गत जो बिम्ब उपलब्ध हैं वे न केवल अलंकृत बिम्ब हैं, अपितु संवेद्य, भावोपम और संश्लिष्ट बिम्ब भी। कामायनी का तो प्रत्येक सर्ग बिम्ब- विधान की दृष्टि से अद्वितीय बन पड़ा है। आशा सर्ग में आई हुई ये पंक्तियां देखिए जो एक उत्कृष्ट बिम्ब की वाहिका बनी हुई है -

सिन्धु सज पर धरा वधू अब, तनिक संकुचित बैठी-सी

प्रलय-निशा की हलचल स्मृति, मान किए सी ऐंठी-सी।

इस प्रकार चिन्ता सर्ग, आशा सर्ग, श्रद्धा सर्ग, लज्जा सर्ग और इड़ा सर्ग बिम्ब विधान की दृष्टि से विशेषोल्लेख्य है। 'आंसू' जैसा मानवीय विरह का काव्य भी बिम्ब-विधान की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित करता है।

उदाहरणार्थः-

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से

मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?

7.7.4 छन्द विधान

काव्य का प्रमुख गुण गेयता व छन्द आधारित होना भी है। काव्य में प्रयुक्त चयनित स्वर-व्यंजन विशेष रूप में बद्ध होने के कारण उसे संगीतात्मक रूप देते हैं। छन्द भावाभि व्यंजन में सहायक हैं। श्रद्धा में श्रृंगार छन्द, काम और लज्जा सर्ग में 'पदपादाकुलन' वासना सर्ग में 'रूपमाला', कर्म सर्ग मे 'सार', संघर्ष में 'रोला' ईर्ष्या तथा दर्शन सर्ग में पद-पादाकुलन व पद्धरि, छंद का प्रयोग करने का प्रयास कया है। आंसू में प्रयुक्त 'आंसू' छन्द आनन्द सर्ग में भी प्रयुक्त हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नांकित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

(क) उषा सुनहले तीर .... जल में अन्तर्निहित हुई।

(ख) दुःख की पिछली .... सुख मणिगात।

(ग) समरस थे जड़ .... अखंड आनंद घना था।

2. प्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेख कीजिए।

3. ''प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख प्रतिनिधि कवि है'' उनके काव्य-सृजन के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

4. प्रसाद काव्य में भावानुभूति की तीव्रता का विश्लेषण कीजिए।

5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए।

(क) प्रसाद काव्य में अप्रस्तुत विधान

(ख) प्रसाद काव्य में प्रेमानुभूति

7.8 सारांश

प्रसाद छायावाद के मार्गदर्शक और विशिष्ट कवि थे। द्विवेदी युगीन प्रतिक्रिया में जिस छायावादी भाव व शैली का जन्म हुआ, उसके पारम्भ करने वालों में प्रसाद जी का सर्वप्रमुख स्थान है। प्रसाद जी मानवीय जीवन की सम्पूर्णता - अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष तक के सफल व्याख्याता है। मानव के मनोमय कोष के विश्लेषण मे उनकी रूचि अधिक रही है। उनका व्यक्तित्व व कृतित्व इस बात का प्रभाण है।

प्रसाद का काव्य प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक चेतना और मानवतावादी मूल्यों का परिचायक रहा है। उनके काव्य का एक पक्ष जीवन की वेदन और करूणा को उभारता प्रतीत होता है तो दूसरा पक्ष जीवन की विषमताओं और कोलहलभरी दुनिया से अलग एक कल्पनालोक की छवि अंकित करता प्रतीत होता है जिसमें समरसता और शांति का साम्राज्य है।

छायावाद शिरोमणि प्रसाद के काव्य में भाव अनुभूति तीव्रता तथा मार्मिकता की अभिव्यक्त हुई है जिसमें छायावादी काव्याभिव्यक्ति के सभी निर्माण-कारी तत्व अपने चरम वैभव के साथ विद्यमान है। जैसे, भावावेशभरी प्रगीत शैली, वैयक्तिक आवेगों की आयासहीन सहजाभिव्यक्ति, वस्तु के वस्तु के असाधारण भावात्मक रूप की व्यंजन, प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छया के रूप में अप्रस्तुत का कथन; कल्पना का लालित्य, अमूर्त उपमेयों के लिए मूर्त तथा मूर्त उपमेयों के लिए अमूर्त उपमानों की सुन्दर संयोजना, भाव तथा सान्द्र बिम्बो के रमणीय विधान, प्रकृति का मानवीकरण, सादृश्य मूलक अलंकारों का सहज प्रयोग, भाषा में सर्वत्र रागात्मकता चित्रात्मकता तथा संवेदना के पुट, जगह-जगह नये शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति, पुराने शब्दों में नये अर्थों को संयोजित करने की वृत्ति, साभिप्राय विशेषणों तथा क्रियाविशेषणों के प्रयोग, भावानुकूल वर्णविन्यास तथा शब्द-विधान, शब्द-गुम्फन की सूक्ष्मता, परिष्कृत, सरस, मधुर, सुकुमार, ललित पदावली के सुष्ठु प्रयोग विद्यमान है।

छायावादी काव्य प्रवृत्ति के अनुसार प्रसाद के काव्य में भारतीय संस्कृति के सूक्ष्म तत्वों-समरसता, उदारता, मानवतावाद, करूणा, त्याग, आनन्द, विश्वबन्धुत्व, प्रेम और सौन्दर्य, नारी महत्ता और प्रकृति चित्रण के अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर हुई है।

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्त, गणपति चन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास(2004), लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

2. मेघ, डॉ. रमेश कुन्तल, कामायनी और मनस्सौन्दर्य एवं सामाजिक भूमिका(2008), यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

3. वाजपेयी, डॉ. नन्ददुलारे, जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

4. तिवारी, भोलानाथ, कवि प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

5. बाहरी, डॉ. हरदेव, प्रसाद साहित्य कोश, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

6. गुप्त, डॉ. हरिहर प्रसाद, प्रसाद काव्य प्रतिभा और संरचना(1982), भाषा साहित्य संस्थान, इलाहाबादा।

7. शर्मा, डॉ. पद्माकर, प्रसाद साहित्य में नियतिवाद(1978), रचना प्रकाशन इलाहाबाद।

8. मुक्तिबोध, गजानन माधव, कामायनीः एक पुनर्विचार(2002), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

9. शर्मा, राजकुमार, जयशंकर प्रसाद और कामायनी(2006), विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

10. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ(1971), लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

7.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शंकर, प्रेम, जयशंकर प्रसाद का काव्य।

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कामायनी आधुनिक युग का श्रेष्ठ काव्य है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

2. ‘‘प्रसाद काव्य व्यष्टि प्रेम से समष्टि प्रेम (विश्वप्रेम) की ओर अग्रसर हुआ है’’ प्रसाद की काव्य कृतियों के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

3. ‘सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीयता का मिला जुला स्वर प्रसाद काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है।’ इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

4. प्रसाद रचित महाकाव्य कामायनी का उदाहरण सहित भावगत और शिल्पगत विवेचन कीजिए।

इकाई 8 - सुमित्रानन्दन पन्त : पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 व्यक्तित्व

8.4 कृतित्व

8.4.1 काव्य रचनाएँ

8.4.2 काव्य का क्रमिक विकास

8.5 काव्य-पाठ और संसदर्भ व्याख्या

8.6 काव्य में संवेदना

8.6.1 कोमल व समधुर कल्पना और सहज भावानुभूति

8.6.2 प्रकृति चित्रण

8.6.3 प्रेम व नारी सौन्दर्य

8.6.4 वेदना और निराशा

8.6.5 लोकहित चिन्तन और अरविन्द दर्शन

8.6.6 प्रगति चेतना

8.6.7 गाँधी चेतना

8.7 काव्य में शिल्प विधान

8.7.1 भाषा विधान

8.7.2 अलंकार विधान

8.7.3 छन्द विधान

8.7.4 बिम्ब विधान

8.7.5 प्रतीक विधान

8.7.6 काव्य-रूपक

8.8 सारांश

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की तुलना में छायावादी युग अपनी नवीनता के कारण काव्य-संवेदना और शिल्प दोनों की दृष्टि से अधिक प्रगतिशील है और इसमें पंत की रचनाओं व विचारधाराओं का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि छायावाद का प्रारम्भ एवं प्रवर्तन करने का श्रेय कवि जयशंकर प्रसाद को है परन्तु छायावादी रचना शैली और छायावादी अनुभूति का प्रचार-प्रसार का सर्वाधिक श्रेय सुमित्रानंदन पंत को प्राप्त है। पंत ने अपनी रचनाओं की भूमिकाओं में इस सम्बन्ध में व्यापकता से लिखा है। काव्य-क्षेत्र में पर्दापण के दौरान पंत ने द्विवेदी युगीन प्रभाव के दर्शन किए थे। जिस प्रकार प्रसाद, हरिऔध आदि पहले ब्रजभाषा की कविताएँ लिखा करते थे और फिर खड़ी बोली की ओर अग्रसर हुए, वैसे पंत ने नहीं किया। उनकी प्रगतिशील दृष्टि ने ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली हिन्दी को चित्र-भाषा और चित्र-राग से पूर्ण करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। उसे सस्वर शब्दों के साथ अभिनव पदावली से अलंकृत किया और बंग्ला व अंग्रेजी के नूतन प्रयोगों को हिन्दी में लाकर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि की।

आप लम्बे समय (लगभग सत्तर वर्षों) तक निरन्तर सृजनरत रहे। पंत की रचनाओं, उनके पाठ और विद्यमान कथ्य, संवेदना और शिल्प को एक सीधी-सपाट रेखा द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अपनी इस लम्बी रचना-यात्रा में उनके व्यक्तित्व व जीवन-सत्य की कई विचार धाराओं और भाव धाराओं के संदर्भ में अभिव्यक्ति होती रही है। विषय वस्तु की भिन्नता के बावजूद छायावादी प्रकृतिगत समस्त विशेषताओं का प्रतिनिधित्व पंत का काव्य करता है। पंत ने समस्त काव्य में कल्पना की स्वच्छ उड़ान, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य चित्रण, जिज्ञासावृत्ति, सहज भावानुभूति, लोकहित चिन्तन, प्रगतिशील चेतना और गाँधी चिन्तन सभी तत्व उनके संवेदना पक्ष को समृद्ध करते हैं। छायावादी संस्कारों के अनुरूप अपने काव्य में कल्पना के महत्व को रेखांकित करते हुए कवि लिखते हैं ''मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है।'' कवि ने वीणा से लेकर ग्राम्या तक की सभी रचनाओं में कल्पना को ही वाणी दी है और इनमें भाव-विचार व शैली भी कल्पना की पुष्टि के लिए साधन रूप में कार्य करते रहे हैं। बाद की रचनाओं जैसे परिवर्तन, लोकायतन, युगवाणी और ग्राम्या आदि में पंत की यह विचारधारा परिवर्तित होकर प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख हुई। काव्य-चेतना का यह प्रयास उल्लेखनीय है। पंत काव्य ने भाषा, अलंकार, छन्द, बिम्ब और काव्य-रूप की दृष्टि भी छायावादी काव्य-शिल्प को समृद्ध किया है। प्रस्तुत इकाई में कवि पंत के व्यक्तित्व और कृतित्व, रचनाओं के पाठ के साथ-साथ उनके काव्य में विद्यमान संवेदना और शिल्प के अलग-अलग बिन्दुओं को आप आसानी से समझ सकते हैं।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप:

1. सुमित्रानन्दन पंत के व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. पंत की काव्य-रचनाओं के क्रमिक विकास को समझ सकेंगे।

3. कवि पंत की महत्वपूर्ण रचनाओं से संकलित काव्य-पाठ को पढ़ कर उनकी व्याख्या-विश्लेषण करने की क्षमता का अभिवर्धन कर सकेंगे।

4. पंत के काव्य में विद्यमान विविध भाव-संवेदनात्मक अनुभूतियों का अध्ययन कर सकेंगे।

5. पंत काव्य के शिल्प-सौन्दर्य का अध्ययन-विश्लेषण कर सकेंगे।

6. छायावादी काव्यधारा में पंत के योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

8.3 व्यक्तित्व

कविवर सुमित्रानन्दन पंत का जन्म हिमालय की गोद में अल्मोड़ा नगर के पास कौसानी नामक एक छोटे से ग्राम में एक जमींदार परिवार में दिनांक 20 मई, सन् 1900 के दिन हुआ। इनके पिता का नाम श्री गंगादत्त पंत और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। इनका पालन-पोषण हिन्दू परम्परा के वातावरण में हुआ। इनके जन्म के समय ही इनकी माता का देहान्त हो गया था। दादी ने मातृत्व सु,ख देने में कोई कमी नहीं रखी। सुमित्रानन्दन पंत ने 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' पुस्तक में लिखा है: ''आँखें मूँदकर जब अपने किशोर जीवन की छायावीथी में प्रवेश करता हूँ, तो पहाड़ी का घर .... छोटा-सा आँगन पलकों में नाचने लगता है .... चबूतरे पर बैठा मैं पढ़ता हूँ और .... गौरी बूढ़ी दादी की गोद में सिर रखकर, साँझ के समय, दन्तकताएँ और देवी-देवताओं की आरती के गीत सुनता हूँ। बड़ी परिहासप्रिय है मेरी दादी। उनकी क्षीण, दंतहीन कंठ-ध्वनि .... पहाड़ी झुटपुटे में अब भी ...... गूँज रही है।'' पुश्किन की दाई या गोर्की की दादी के समान सबसे पहले पंतजी की दादी ने ही इस संवेदनशील बालक के सम्मुख लोक कथाओं, दन्तकथाओं एवं पौराणिक कथाओं का वह ऐन्द्रियजालिक संसार उद्घाटित कर दिया, जिसकी सृष्टि अतिसमृद्ध लोक-कल्पना ने की थी। राम-लक्ष्मण, कृष्णार्जुन तथा अन्य अनेक देवी-देवताओं एवं बीर-नायकों के आदर्शों, उनके पराक्रमों तथा जन-कल्याण के हेतु उनके द्वारा किए गए महान् संग्रामों और अद्भुत रमणीय काव्यपूर्ण आख्यानोपाख्यानों ने बालक पंत की कल्पना-शक्ति पर प्रभाव डाला, उसकी चेतना में भारतीय

जनता की अतिसमृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जीवंत रूचि को जाग्रत कर दिया। भावी कवि के लिए यह ग्रन्थ बचपन से ही चिरसहचर और संगी-साथी बन गए।

प्रकृति ने बालक पंत को सौन्दर्य की अनुराग मयी गोदी में खिलाकर बड़ा किया। पंत लिखते है ''कोसानी की गोद मुझे माँ की गोद से ज्यादा प्यारी रही है।'' कवि 'अंतिमा' संकलन में लिखते है

''माँ से बढ़कर रही धत्रि तू, बचपन में मेरे हित,

धत्रि कथा रूपक भर; तू ने किया जनक बन पोषण।

मातृहीन बालक के सिर पर वरद हरस्त धर गोपन।''

पहाड़ी झरनो-स्रोतों की तेज दौड़, जल-प्रपातों की ध्वनि, पर्वतीय चरागाहों की रंगबिरंगी मनोहारिणी क्रीड़ा और आँखों को चौंधियाने वाले दूरस्थ रजत हिम-शिखरों के श्रवण-दर्शन से प्रभावित भावी कवि बचपन से ही प्रकृति-सौन्दर्य के रहस्यों को समझने-बूझने और उनका उद्घाटन करने में प्रयत्नशील रहा!

पिता के घर का वातावरण भी साहित्य एवं कला के प्रति पंत जी की प्रारम्भिक रूचि को जाग्रत कराने में सहायक रहा। भावी कवि अपने बड़े भाई के ग्रंथ-संग्रह में उपलब्ध ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते न अघाता। पंतजी के यह भाई बड़े ही प्रतिभाशाली थे।

पिता के घर में बराबर लोगों का ताँता बँधा रहता। अनेकानेक सगे-संबंधी और इष्ट-मित्र, साहित्यक और संगीतज्ञ, विद्वान और धर्म-सेवक महीनों-महीने गंगादत्त पंत के यहाँ डेरा डाले रहते। घर में समय-समय पर विविध तीज-त्यौहार मनाए जाते। इन अवसरों पर पारिवारिक साहित्य-संगीत सभाओं, लोकनृत्यों, गीतपाठों आदि का आयोजन किया जाता। पंत जी के बड़े भाई कालिदास रचित 'मेघदूत' एवं 'शाकुन्तलम' का पाठ करते और स्वरचित कविताएँ भी सुनाते। पंत जी के पिता बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। उनके घर में 'भगवद्गीता' तथा 'रामायण' का पाठ नित्यप्रति हुआ करता था। घरेलू उत्सव-त्यौंहारों के दिन कौसानी-निवासी और आसपास के पहाड़ी युवक-युवनियाँ आकर समूहगीत, नाच-गान, खेलकूद आदि प्रस्तुत करते। पंतजी ने लिखा है:'' कौसानी में पिताजी के घर के वातावरण में भी मुझे एक संगीत तथा लय मिलती रही है जिसने, समभवतः, मेरे भीतर उन संस्कारों का पोषण किया जो आगे चलकर मेरे कवि-जीवन में सहायक हुए।''

सन् 1950 में पंत जी कोसानी गाँव की पाठशाला में दाखिल हुए और अंग्रेजी का अध्ययन घर पर ही शुरू किया। वहाँ से चौथी कक्षा पास करके 1910 में अल्मोड़ा आ गए। हाई स्कूल पास कर वे प्रयाग गए और प्रयाग ही उनकी काव्य-साधना का मुख्य केन्द्र बना। ''साठ

वर्ष ' एक रेखांकन'' पुस्तक में कवि स्वयं लिखते हैं - ''प्रयाग आने के पश्चात् मेरे संस्कृत साहित्य के ज्ञान में अधिक अभिवृद्धि हुई। कालिदास की कविताओं का मुझ पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। कालिदास की उपमाओं में तो एक विशिष्टता तथा पूर्णता मिली ही, उसकी सौन्दर्य-दृष्टि ने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट किया। कालिदास के सौंदर्यबोध की चिर-नवीनता को मैं अपनी कल्पना का अंग बनाने में लिए लालायित हो उठा। उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ तथा टैनिसन में मुझे गंभीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्डसवर्थ के प्रांजल प्रकृति-प्रेम, कालरिज की असाधरणता तथा टैनिसन के ध्वनिबोध ने मेरे कविता संबंधी रूप-विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर-ही-भीतर प्रयत्न करता रहा।''

पंत जी ने साठ वर्षों तक निरन्तर लेखन कार्य किया और 29 दिसम्बर, 1977 को इस संसार से विदा हो गए।

8.4 कृतित्व

पंत का कवि-कर्म उनके रचनाकार व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। पंत के व्यक्तित्व निर्माण में बीसवीं सदी के सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण, अरविन्द दर्शन, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी का दर्शन, हिन्दी का मध्ययुगीन काव्य, अंग्रेजी का स्वच्छन्दतावादी साहित्य, भारतीय रचनाकारों में वाल्मिकी, कालीदास, सूरदास, घनान्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर तो पश्चिमी कवियों में गेटे और वर्डसवर्थ, कॉलरिज व टैनीसन के सृजन की गहरी छाप पड़ी है। रीतिवादी रूढ़ियों व सली गढ़ी परम्पराओं के वे जन्मजात विद्रोही रहे और परिवर्तन के आकांक्षी। इसी कारण अपने सृजन व चिन्तन में पंत का समस्त रचनाकर्म इन्हीं विशेषताओं को व्यंजित करता है।

8.4.1 काव्य रचनाएँ

कविवर पंत का रचनाकाल सन् 1916 से लेकर 1977 ई. तक लगभग साठ वर्षों तक फैला हुआ है। 'वीणा' (1918 में प्रकाशित) उनका आरम्भिक काव्य-संग्रह तथा 'ग्रंथि' (1920 में) प्रकाशित हुआ। पंत की काव्य रचनाएँ प्रकाशन क्रम में इस प्रकार उल्लेखित हैं -

'वीणा' (1918), ग्रन्थि (1920), पल्लव (1922-1926 तक की रचनाएँ), 'गुंजन' (1926 से 1932 तक की रचनाएँ), ज्योत्सना (1934), युगान्त (1935), युगवाणी (1937), ग्राम्या (1939-40), स्वर्ण-किरण (1947), स्वर्ण धूलि (1947), मधुज्वाल, उमर खैय्याम का भावानुवाद और युग पथ (1948 ई.), खादी के फूल (1948), रजत शिखर (1951), शिल्पी,

अतिमा, सौवर्ण, वाणी, 'कला और बूढ़ा चांद' है। 'लोकायतन' प्रथम महाकाव्य (1964)। इसके बाद किरण वीणा, पुरूषोत्तम राम, पौ फटने से पहले, गीता हंस, पतझर, शंख ध्वनि, रश्मिबन्ध (1971), शशि की तरी, समाधिता, आस्था, सत्यकाम, चिदम्बरा, गीत-अगीत, गीता हंस (1977) जैसे कई काव्य-संग्रह छपते रहे।

प्रबन्ध-काव्य - 'लोकायतन'

प्रतीक नाटक - ज्योत्सना

आत्म कथा - साठ वर्ष: एक रेखांकन

उपन्यास - हार (अप्रकाशित)

आलोचना: महादेवी संस्मरण ग्रन्थ, छायावाद का पुनर्मुल्याकंन

8.4.2 काव्य का क्रमिक विकास

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने अपने ग्रन्थ हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि में सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का क्रमिक विकास विस्तार से विश्लेषित किया है। कवि की रचनाओं की सम्यक जानकारी के लिए उन्हें निम्नलिखित चार युगों में विभिक्त किया गया:

1. प्राकृतिक सौन्दर्यवादी युग: (1918 से 1934 तक की कविताएं) जिनका पूर्व में उल्लेख कर दिया गया है, इसमें संकलित हैं। सभी कविताएं तत्कालीन छायावीद प्रकृतियों के अन्तर्गत आती है। इस युग में कवि ने खड़ी बोली को बंगला और अंग्रेजी के नूतन स्वच्छन्दतावादी प्रयोगों से समृद्ध किया, उसमें कलात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति का सचेतन सौन्दर्य, कोमल कल्पना के रंग भरे हैं।

2. यथार्थवादी युग: इस युग में 1935 से 1945 ई. तक की कविताओं का समावेश है। कवि नवीन आदर्शों, नवीन विचारों एवं नवीन भावना के सौन्दर्य-बोध की ओर अग्रसर होकर यर्थावाद की विचारधारा से प्रभावित होने लगता है। इसका आभास 'परिवर्तन' कविता में ही मिलने लगता है।

इस समय कवि जहाँ मार्क्सवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित हुआ था, वहाँ वह गांधीवाद से भी प्रभावित था।

कविवर पन्त की 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक की सम्पूर्ण यथार्थवादी युग की कविताओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने स्पष्ट रूप से प्राचीन विचारों एवं पुरातन मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह प्रकट किया है और नूतन विचारों एवं नवजागरण के लिए, नवीन क्रान्ति का समर्थन किया है। यहाँ आते-आते कवि की कोमल एवं सुकुमार प्रकृति कुछ-कुछ

पौरूषपूर्ण हो गई है और वह शोषण एवं अन्याय को समूल नष्ट करने के लिए साहित्य में नूतन प्रवृतियों को जन्म देने लगा है। इन कविताओं में कवि ने प्राचीन रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों के प्रति, प्राचीन संस्कृतियों के जड़ बन्धनों के प्रति तथा पुरातन रूढ़िवादिता के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया है।

3. अन्तरश्चेतनावादी युग: इस युग में आकर कवि का बहिर्मुखी दृष्टिकोण सहसा अन्तर्मुखी हो जाता है। अभी तक वह मार्क्सवाद से अधिक प्रभावित रहने के कारण समाज की आर्थिक समता को ही सर्वाधिक महत्व देता था और इस आर्थिक समता को लाने के लिए वह हिंसात्मक क्रांन्ति के लिए ही प्रेरणा, दे रहा था, किन्तु अरविन्द-दर्शन का प्रभाव पड़ते ही कवि के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। अब वह यह विश्वास करने लगा कि आर्थिक अथवा बाह्य समता ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके लिए मानसिक अथवा आन्तरिक समता की अधिक आवश्यकता है और इस मानसिक समता के लिए प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में तप, संयम, श्रद्धा, आस्तिकता या एक ईश्वर में विश्वास आदि परमावश्यक है। इस तरह कवि बाह्य साम्य के साथ-साथ आन्तरिक साम्य पर अधिक बल देने लगा।

4. नवमानवतावादी युग: 'उत्तरा में कवि का 'गीत-विहंग' स्पष्ट ही ''मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता'' कहकर इस युग की घोषणा कर रहा है। इसी कारण उत्तरा के उपरान्त कवि का नूतन काव्य संग्रह 'कला' और 'बूढ़ा चाँद' प्रकाशित हुआ था, जिसमें कवि की 1969 ई. तक की कविताएँ संकलित हैं। ये सभी कविताएँ प्रयोगवादी शैली पर लिखी गई हैं और इनमें बौद्धिकता का प्राधान्य है। इसके साथ ही 1955 ई. में 'अतिमा' नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ और 1961 में कविवर पन्त का सुप्रसिद्ध वृहत् काव्य 'लोकायतन' प्रकाशित हुआ, जो 650 पृष्ठों का लोकजीवन का एक महान् काव्य है, इसमें कवि ने लोक चेतना का प्रतिनिधित्व किया है। इस नवमानवतावादी युग की रचनाओं में कवि ने मानवतावाद को समुन्त बनाने एवं मानव-चेतना के अन्तर्गत सृजन-शक्ति को कूट-कूट भरने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। वर्तमान युग के जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर अपने मन की प्रक्रियायें व्यक्त की हैं!

8.5 काव्य पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

प्रथम रश्मि का आना रंगिणी .... बतलाया उसका आना

प्रथम रश्मि का आना, रंगिनी।

तूने कैसे पहचाना?

कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनी।

पाया तू ने यह गाना?

सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में

पंखों के सुख में छिप कर

झूम रहे थे घूम द्वारा पर

प्रहरी से जुगनू नाना

शशि किरणों से उतर उतर कर

भू पर काम-रूप नभचर

धूम नवल कलियों का यह मुख

सिखा रहे थे मुस्काना

स्नेहहीन तारों के दीपक,

श्वास शून्य थे तरू के पात

विचर रहे थे स्वप्न अवनि में

तम ने था मंडप ताना

कूक उठी सहसा तरू-वासिनी

गा तू स्वागत का गाना

किसने तुझको अर्न्यामिनी

बतलाया उसका आना

शब्दार्थ : रश्मि - किरण (सूर्य-किरण), रंगिनी - विविध रंगों वाली, विहंगिनी - चिड़िया, स्वप्न-नीड़ - सपनों का घोंसला, प्रहरी - पहरेदार, भू - पृथ्वी, नभचर - राक्षस, मृदु - मधुर, तरू - पेड़, अवधि - पृथ्वी, तरू - वासिनी - कोयल या चिड़िया, अंतर्यामिनी-भीतर की बात जानने वाली।

प्रसंग : सुमित्रानन्दन पंत के ‘वीणा‘ काव्य संग्रह में संकलित कविता ‘प्रथम रश्मि‘ का यह कवितांश है। यह पंत की प्रारम्भिक कविताओं में से एक है। जब वे प्रकृति सौन्दर्य के प्रति पूर्ण रूप से आसक्त थे। छायावाद की मूल प्रवृत्ति कल्पनाशीलता-जिज्ञासा-वृत्ति और भावनात्मक नवजागरण की चेतना का प्रतिनिधित्व यह कविता करती है। पंत के लिए प्रकृति सदा रहस्यमयी

रही है। कवि यह जानने के लिए उत्सुक है कि जब सम्पूर्ण संसार निन्द्रा और अंधकार में खोया-खोया हुआ था तो मासूम चिड़िया को जागरण के प्रकाश का ज्ञान कैसे हुआ। कवि चिड़िया की इस चेतना पर विमुग्ध है और उसी से प्रश्न करते हैं।

व्याख्या : मुग्ध और मस्त कवि चिड़िया से पूछते हैं कि हे रंगिणी! तू ने सूर्य की प्रथम किरण अर्थात 'भोर' के आंगमन को कैसे पहचान लिया? और चींचीं करके वातावरण को गुंजायमान करने लगी, हे बाल विहंगिनी! तू ने यह गाना कहाँ से प्राप्त किया? रात्रिकालीन साम्राज्य के पाश में समस्त चर-अचर जगत बँधा था। तू स्वयं स्वप्न रूपी घोंसले में, अपने पंखों को समेटकर उनकी गर्माहट की सुखानुभूति में खोकर-सो गई थी। तेरी रक्षा के लिए अंधकार में चमकने वाले जुगनूँ पहरेदार की तरह झूम-झूम कर विचरण कर रहे थे। जूगनू कोमल कलियों पर जाते तो ऐसा लगता या मानों उन्हें चूम कर मुस्काना सिखा रहे हों। जुगनू चन्द्रमा की किरणों से उतर कर कामरूप धरण करते हुए धरती पर उतर कर कोमल-कलियों का मुख चूमकर उन्हें मुसकाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। प्रकृति प्रशांत थी आकाश में तारे-रूपी दीपक, जिन्हें प्रकाश का ज्ञान प्राप्त हुआ था, वे स्नेह-हीन से घूम रहे थे। वृक्षों के पŸो मौने थे और चेतन जगत अपने स्वप्नों की मधुर मादकता में निमग्न था। रात्रि ने अंधकार का मण्डप तान रखा था, ऐसे प्रशान्त, नीरव वातवरण में हे तरूवासिनी! तू किसके स्वागत में प्रसन्न होकर चहक उठी? हे अन्तर्यामिनी! तेरी चेतना कैसे विस्तरित हुई कि अंधकार को बेंधकर सूर्य की किरणे धरती की ओर आ रही है अर्थात् पराधीनता के अंधकार के बाद मुक्ति का प्रकाश हो रहा है।

विशेष:

1. छायावाद में कल्पना, जिज्ञासा और रम्यता का समावेश रहता है। कोमल कान्त पदावली में यह विशेषता यहाँ विद्यमान है।

2. संज्ञा से विशेषण बनाने की प्रवृत्ति पंत की काव्य-भाषा में यत्र तत्र दिखाई देती है। इस पद में भी रंगिणी, बाल विहागिनी, तरूवासिनी आदि शब्दों के कवि ने प्रयोग किये हैं।

3. सोई थी तू स्वप्न नीड़ में, पंखों के सुख में छिपकर, रेखांकित पंक्ति स्वप्न नीड़ में लक्षणा मूला व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग है। स्वप्न नीड़ का वाच्यार्थ भावनाओं का पुंज और व्यंग्यार्थ है 'विचारों' की ऊहापोह' या भविष्य के सुखद सपने।

4. प्रथम रश्मि आ आना 'रंगिणि' कविता में कवि बाल विहंगिनि के रूप् में स्वयं ही नयी सुबह की इस नयी किरण के आने की पहचान कर रहा है। यह कविता मात्र प्रकृति चित्र नहीं है वह अपने भीतर विगत यानी रात यानी सामन्तवादी व्यवस्था की सारी जड़ता, एकरूपता, अन्धविश्वास तथा आगत यानी सुबह यानी पूँजीवादी चेतना की जीवंतता, गतिशीलता और विविध छविमयता का भी चित्र है।

5. प्रकृति चेतना व परिवर्तन को पक्षी स्वाभाविक रूप से पहचानता है। दर्शन में पक्षी को ज्ञान चेतना का प्रतीक कहा गया। छायावादी चेतना का प्रेम भाव 'धूम नवल कलियों' से व्यक्त हुआ है।

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ .... ताना बाना।

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से
छाया-तन बहु छायाहीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक, टोना-माना।
छिपा रही थी मुख शशि बाल
निशि के श्रम से हो श्री-हीन
कमल क्रोड़ में बंदी था अलि
कोक शोक से दीवाना;
मूर्छित थी इन्द्रियाँ, स्तब्ध-जग,
जड़-चेतन सब एकाकार
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना-जाना!

तूने ही पहिले बहु-दर्शिनी
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का नभचारिणी
गूंथ दिया ताना बाना!

प्रसंग: पूर्ववत्।

शब्दार्थ: अंध-गर्भ: अंधेरा गर्भ (गुह्य), छाया-हीन: मायावी, खल: दुष्ट, निशि: रात्रि, श्री-हीन: शोभा हीन, क्रोड़: गोद, अलि: भँवरा, उर: हृदय।

व्याख्या: कवि रात्रि के अंधकार में प्रभावशाली निशिचर के क्रिया कलापों और अचर जगत् की कोमल भावनाओं की ओर संकेत करता है कि सृष्टि के अँधेरे गर्भ से निकल छायातन और छायाहीन दृष्टब् नभचर षड़यन्त्र रच रहे थे, जादू-टोना कर रहे थे। रात्रि समाप्त होने की स्थिति में चन्द्रमा थक कर डूबने जा रहा था। कलम के कोश में भौंरा अभी बन्द था और कोक पक्षी शोक में डूबा हुआ था, इन्द्रियाँ मुर्छित अवस्था में थी, जड़-चेतन एकाकार हो गया था। सुप्त-शून्य विश्व के हृदय में सिर्फ साँसों का आवागमन महसूस होता था अर्थात् रात्रि में नीरव और निस्तब्ध वातावरण व्याप्त था। ऐसी अवस्था में हे बहुदर्शिनी सबसे पहले तूने ही जागृति की आहट सुनी, जागरण के गीत गाकर तूने सम्पूर्ण विश्व में कल्याण-और सुख का ताना-बाना गूँथ दिया। तेरी दूर दृष्टि ने जगत के कल्याण व सूख की कामना को पहचानकर वातावरण में स्वर-लहरियाँ छोड़ दी।

विशेष:

1. इस पद में रात का चित्र प्रकारान्तर से सामन्तवादी जीवन का ही चित्र हे। स्वाधीनता आन्दोलन में आती हुई शक्ति व मुक्ति चेतना की किरण दिख रही है जिसकी पहचान रंगिणी (चिड़िया) ने की, अंधकार के भीतर से आशा की किरण-प्रथम रश्मि इसी भाव चेतना का संशिलष्ट है।

2. कविता छायावादी प्रगीत शैली का उदाहरण है, भाषा में परिष्कृति के साथ चित्रात्मक व लाक्षणिक सौन्दर्य विद्यमान है।

निराकार तुम मानो .... यह स्वर्गिक गाना?

निराकार तुम मानो सहसा,

ज्योति-पुंज में हो साकार,

बदल गया द्रुत जगत-जाल में,

धर कर नाम-रूप नाना!

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल

सुप्त समीरण हुआ अधीर,

झलका हास् कुसुम अधरों पर

हिल मोती का-सा दाना!

खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,

जयी सुरभि, डोले मधु-बाल,

स्पन्दन, कम्पन और नव जीवन,

सीखा जग ने अपनाना।

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणी।

तू ने कैसे पहचाना?

कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनी।

पाया यह स्वर्गिक गाना?

शब्दार्थ: द्रुम-दल: वृक्षों का समह, द्रुत: तीव्र, समीरण: वायु, हास: हँसी, कुसुम-अधरों: पुष्प रूपी होठ, स्वर्गिक: स्वर्ग के समान

प्रसंग: पूर्ववत

व्याख्या: कवि का कथन है, सम्पूर्ण चरराचर जगत जो अब तक मौन और निराकार था प्रथम रश्मि के आगमन के उल्लास से ब्रह्म रूपी प्रकाश में बदल गया। दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति के परिवर्तन शील कार्य व्यापार को उद्धटित करते हुए कवि का कथन है कि रात के प्रशांत अंधकार में नाना-रूपात्मक जगत अपने अस्तित्व को लीन किए मौन था - वही जगत सहसा प्रथम रश्मि के स्पर्श से निराकार ब्रह्म से मानो साकार ब्रह्म रूपी प्रकाश में बदल गया। इस नाना नाम रूपतामक जगत की सही पहचान प्रकाश ही देता है। यदि प्रकाश न होता तो सृष्टि अंधकार की अक्षय सत्ता होती - जिसका ज्ञान सम्यक नहीं था। प्रकाश के स्वागत में वृक्ष प्रसन्नता से झूमने लगे, सोई हुई वायु जगकर उमंग से उछल पड़ी। कलियाँ किरन का स्पर्श पाकर चटकने लगीं या खिलने लगीं। फूलों के ओठों पर हँसी फूट पड़ी और ओंसकण जैसे मोती चमकने लगे। फूलों के साथ ही सोया हुआ पूरा संसार जग गया, चारों ओर प्रभात की स्वर्णिम आभा फैल गइर्ग। मधुपान करते हुए भ्रमर झूमते-मंडराते हुए दृष्टिगत होने लगे। प्रकृति के इस अपूर्व उल्लास से सम्पूर्ण जगत में नवजीवन का स्पन्दन हो उठा।

विशेष:

1. छायावादी चेतना के अनुभूतिगत और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य की सभी विशेषताएँ इस पद में विद्यमान हैं। स्पन्दन, कम्पन, मधुबाल, सुप्त समीरण, कुसुम-अधरों जैसी कोमल और भाव-अर्थबोधक शब्दावली ने काव्यात्मकता में वृद्धि की है।

2. प्रकृति के सौन्दर्यबोध को कवि ने फूल, भ्रमर, समीर से मूर्त व विम्बित किया है। अमूर्त को मूर्त उपमानों से अभिव्यक्त कर प्रत्यक्ष किया है।

3. छायावाद की अनेक कविताओं में सीधे या प्रकारान्तर से यही स्वर ध्वनित होता है कि आरम्भ में सृष्टि अंधकार में डूबी थी, उसने बाद में अव्यक्त से व्यक्त किया, इस व्यक्त करने की प्रक्रिया में सगुण साकार विश्व प्रत्यक्ष हुआ। दर्शन के इस सत्य की इस पद्यांश में कवि ने अभिव्यक्ति की है। कवि जय शंकर ने भी 'कामायनी' के प्रथम सर्ग 'चिन्ता' में सृष्टि को जल में डूबा हुआ बताया है।

4. पूर्व पदों की भाँति प्रथम रश्मि का व्यंजना पूर्ण प्रयोग है। इस कविता का एक संदर्भ प्रातः काल के सूर्योदय से जुड़ा है और दूसरा देश के जागरण से, स्वतंत्रता के भाव से।

बिना दुख के सब .... गति-क्रम का हास् ।

बिना दुख के सब सुख निस्सार

बिना आँसू के जीवन भार;

दीन दुर्बल है रे संसार

इसी से दया, क्षमा औ-प्यार,

आज का दुख कल का आह्लाद

और कल का सुख, आज विषाद,

समस्या स्वप्न गूढ़ संसार,

पूर्ति जिसकी उस पार।

जगत जीवन का अर्थ विकास

मृत्यु गति-क्रम का हास ।

शब्दार्थ: निस्सार: व्यर्थ, आह्लाद: हर्ष, विषाद: दुख, हास : पतन।

प्रसंग: यह काव्य पंक्तियाँ सुमित्रानन्दन पंत की लम्बी कविता 'परिवर्तन' से ली गई है। दुखवाद और मध्ययुगीन निराशा बोध से यह कविता संचालित है। कवि इस कविता के माध्यम से संदेश देते है कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है ओर जीवन की एकरसता को ताड़ने के लिए आवश्यक है। प्रकृति और जीवन के अनेक उदाहरणों से कवि जीवन और जगत में परिवर्तन को रेखांकित करते हैं।

सर्वप्रथम कविता में क्षोभ और वेदना का भाव है। सुख का दुख में आह्लाद का विषाद में, आर्द्रता का शुष्कता में परिवर्तन होने से यह वेदना पैदा होती है। अतः कवि पुनः दुख से सुख की ओर बढ़ता है और अंत में इस निर्णय पर पहुँचता है कि परिवर्तन ही जीवन का सत्य है। इसी भाव की विवेचना व्याख्या खण्ड में की गई है।

व्याख्या: कवि का संकेत है कि संसार में सुख-दुख का क्रम चलायमान रहता है। सुख और दुख परस्पर सम्बद्ध है। बिना दुख के सुख का महत्व आँका नहीं जा सकता। दुखों की आधारभूमि में ही सुखों की सारता नजर आती है। आँसू के बिना जीवन भी भार युक्त हो जाता है अर्थात् जड़ हो जाता है। सुख जीवन को जड़ बना देता है और जड़ता जीवन की गतिहीन अवस्था है। दुख एक प्रकार से सृजनात्मक होता है। सुख की अपेक्षा दुख के भाव की व्यापकता है। इसीलिए संसार दीन दुर्बल है। संसार में क्षमा, दया और प्यार जैसे उदाŸा मानवीय भाव का जन्म दुख से ही होता हे। इन्हीं मानवीय भावों की महिमा संसार में हैं

कवि लिखता है कि काल की विविधता में सुख और दुख का द्वन्द्व सदैव विद्यमान रहता है। आज जो दुख के क्षण है, वही कल आनन्द में बदल जाएगा और अतीत का जो हर्ष था, वही वर्तमान में विषाद में बदल जाएगा। सुख-दुख की अनुभूति से संसार पीड़ित है। इस संसार की समस्या का समाधान स्वप्न के समान गूढ़ रहस्यमयी है। इसका निदान इस लोक जीवन से परे आध्यात्मिक लोक में सम्भव है। वहाँ राग और विषाद की अनुभूति नहीं होती। वास्तविक जीवन का अर्थ विकास है। विकास की प्रक्रिया में सुख-दुख से ही जीवन क्रम गतिमान रहता है सुख-दुख के क्रम का ह्रास होने पर मृत्यु गति निश्चित है। संसारी जीवन का अर्थ है निरन्तर गतिशीलता और परिवर्तन। मृत्यु जीवन के इस गतिक्रम के रूकने या ठहरने का नाम है।

विशेष:

1. सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक अनुभूतियों का वर्णन है। दुख सृजनात्मक भावों का मूल आधार है।

2. इस पद्यांश में आधुनिक चिन्तपरक भाव विद्यमान है। सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक चेतना आधुनिकता की पहचान है। 'जगत जीवन' का अर्थ विकास कहकर कवि ने आधुनिक चेतना को व्यक्त किया है।

3. छन्द में आंतरिक लय और संयोजन है, प्रसादगुण युक्त शब्दावली है।

4. जय शंकर ने भी कामायनी में सुख-दुख यही विकास का क्रम, यही 'भूमा का मधुमय दान कहकर सुख-दुखात्मक द्वन्द्व को व्यक्त किया है।

सुख भोग खोजने .... प्रणत शान्त

''सुख भोग खोजने आते समब, आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के मन के मनोज।
जड़ता हिंसा स्पर्धा में भर, चेतना अहिंसा नम्र ओज;''
''साम्राज्यवाद था कंस, बंन्दिनी मानवता पशु बलाक्रान्त
श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन पद शक्ति-भ्रान्त
काराग्रह में दे दिव्य जन्म, मानव आत्मा को मुक्त, कान्त
जन शोषण की बढ़ती यमुना, तुमने की नत पद प्रणत शान्त।''

शब्दार्थ: मनोज: मन (आत्मा) का प्रकाश, दूसरा अर्थ: कामदेव, स्पर्धा: होड़, पंकज: कीचड़ में उत्पन्न होने वाला (कमल), सरोज: कमल, बलाक्रन्त: बल से पीड़ित।

प्रसंग: प्रस्तुत कवितांश पंत ग्रन्थावली खण्ड 2 में 'युगपथ' काव्य संग्रह में संकलित 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता से अदृधृत है। इस कविता में कवि ने गाँधी जी के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं।

व्याख्या: 'बापू के प्रति' कविता में पंत जी ने गाँधी जी के वाह्र रूप और अन्तरचेतना का सजीव चित्रण किया है। बापू, माँसहीन, रक्तहीन और अस्थिशेष होने पर भी शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं। वे चिरपुराण और चिरनवीन भी हैं। वे जीवन की पूर्ण इकाई हैं और वह अमर आधार भी हैं, जिस पर भावी संस्कृति समासीन होगी। उनका त्याग ही विश्व-भेग का वरसाधन है। उनकी भस्म काम तन की रज से जग और जग-जीवन पूर्ण काम हो जाएगा। उनके सत्य अहिंसा के ताने बाने से ही मानव-मन निर्मित होगा। बापू ने पशु बल की कारा से जग को मुक्ति दिलाई और विद्वेष घृणा से लड़ना सिखाया। उन्होंने भेद-विग्रहों से जर्जर जाति का उद्धार किया। बापू ने चरखें में युग-युग का विषय जनित विषाद स्पृहा और आल्हाद का सूत्रपात का निनाद भर दिया। 'भेद-भाव भीनि-भार का हरण करके एकता और अखण्डता की स्थाना के लिए उन्होंने ''एकोऽहं बहुस्याम' का सेदश

दिया। मोहन की भाँति साम्राज्यवाद रूपी कंस से बंदिनी मानवता का उद्धार कराकर ''जयति सतयं मा भैः का संदेश दिया।

विशेष:

1. इस पद में कवि ने गाँधी को एक युग पुरूष के रूप में स्वीकार करते हुए उन्हें सत्य का अन्वेषक, आत्म तत्व रूप, अहिंसा प्रतिष्ठात्मक और पशुत्व के स्थान पर भानवता का प्रचारक कहा है।

2. तत्सम शब्दों का जैसे: ह्रदय, श्रृंखला, प्रहरी, मुक्त, प्रणत आदि के प्रयोग से तथा समासिक शब्द जैसे - बलाक्रान्त, शक्ति-भ्रान्त, जन-शोषण, नज पदप्रणत के प्रयोग से ओज गुण प्रधान भाषागत सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

सघन मेघों का .... मुझे भेजता मौन।

''सघन मेघों का भीमाकाश

गरजता है जब तम साकार

दीर्घ भरता समीर निःश्वास

प्रखर भरती जब पा ावस धार;

न जाने, तपक तड़ित में कौन

मुझे इंगित, करता तब मौन।

देख वसुधा का यौवन-भार

गूंज उठता है जब मधुमास

विधुर उर के-से मृदु उद्गार

कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छवास;

न जाने सौरभ के मिस कौन

संदेश मुझे भेजता, मौन।

शब्दार्थ: वसुधा: पृथ्वी, मधुमास: बसंत, उद्गार: कथन, सौरभ: सुगन्ध, भीमाकाश: विशालकाय नभ, नक्षत्रों: तारे, इंगित: संकेत।

प्रसंग: प्रस्तुत कवितांश पंत की 'पल्लव' काव्य संकलन में ''मौन निमन्त्रण'' शीर्षक कविता से लिया गया। पंत की भावानुभूतियों को यह कविता पूरी तरह व्यक्त करती है। 'वीणा' का शिशु सुलभ चकित हृदय 'ग्रंथि' की प्रेम-वेदना के टीस में तप कर 'पल्लव' तक आते-आते अब प्रकृति का मुक्त रूप से साक्षात्कार करने लगता है। उसे प्रतीत होता है कि एक विराट सत्ता , रहस्यमयी शक्ति उसे प्रकृति के संकेतों से मौन निमन्त्रण दे रही है। कवि प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि :-

व्याख्या: उमड़-घुमड़ कर जब बादल मूसलाधार पानी बरसाते हैं तो धरती हरी भरी हो जाती हैं धरती का उल्लास देखकर ऐसा लगात है जैसे कोई युवती अपने यौवन सौन्दर्य से खिलकर आकर्षक हो गई हो। वसुधा के इस यौवन को देखकर बसन्त रूपीनायक संगीतमय हो उठता है अर्थात् बसन्त का प्रभाव प्रकृति में दिखने लगा है। धरती पर फूल हर्षित होकर इस तरह खिलते हैं मानों वियोगी हृदय के मधुर भाव व्यक्त हुए हों।

जिस समय प्रकृति का सौन्दर्य पूरे संसार पर छा जाता है तो मन शिशु के समान चकित हो जाता है। रात में खिलती चाँदनी की आभा, नीरवता और प्रेमाकुलता को देख-देखकर मन चकित हो जाता है। ऐसा लगता है कि विश्व एक शिशु के सामन चकित हो प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहा हे। इस विश्व शिशु की पलकों में भोले रंगभरे चित्र स्वप्न में घूम रहे हों। उस रात्रिकालीन प्रशांत वातावरण में तारों के बहाने न जाने कौन सी शक्ति अपने पास आने का आमन्त्रण देती है। जब घनघोर अंधकार में काले विशालकाय बादल गर्जन करते हुए गरजते हैं। तब उस भयानक वातावरण में वायु भी सिहर कर एक लम्बी साँस छोड़ती हुई प्रतीत होती है और जब बरसात की झड़ी लगती है तब बादलों के ठकराने से उत्पन्न हुई बिजली में मूझे कौन इशारा कर रहा है। जब बिजली कौंधती है तो ऐसा लगता है कि उस प्रकाश-किरण में मुझे कोई निमन्त्रण दे रहा है।

विशेष:

छायावाद अपनी समस्त प्रवृत्तियों के साथ इस पद्यावतरण में उपस्थित है। रहस्यमयता, जिज्ञासा का भाव, प्रकृति सौन्दर्य, प्रेमानुभूति, सूक्ष्म व कोमल कल्पना, मानवीकरण, सरस व मधुर शब्दावली, चित्रात्मकता व प्रतीकात्मकता सभी प्रकार से संवेदना व शिल्प गत सौन्दर्य की सृष्टि देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए ''देख वसुधा का यौवन-भार, गूंज उठता है जब मधुमास में'' में सुन्दर मानवीकरण है।

8.6 काव्य में संवेदना

8.6.1 कोमल व सुमधुर कल्पना और सहज भावानुभूति

साहित्य-शास्त्र में काव्य के चार तत्व स्वीकार किये गए हैं -राग-तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व, और शैली तत्व। इनमें से ‘कल्पना‘ का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया गया है, क्योकि कल्पना ही कवि की वह अद्भुत शक्ति है, जिसके सहारे वह अपनी कृति में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष जीवन तथा जगत के मानसिक चित्र अंकित किया करता है। पन्तजी की ‘वीणा‘ से लेकर ‘लोकायतन‘ एवं ‘चिदम्बरा‘ तक की समस्त रचनाओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पन्त में अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का ही प्राधान्य है, उसमें रागतत्व की प्रबलता नहीं है, अपितु बौद्धिकता का प्राधान्य है, और इस बौद्धिकता का संचालन कल्पना-शक्ति कर रही है। कविवर बच्चन ने भी ‘पल्लविनी‘ की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि ‘पन्तजी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं - इच्छा के गायक हैं-वासना, तीव्रतम इच्छा के नहीं।” कविवर पन्त ने अपनी कोमल कल्पना के सहारे भारतीय नारी के सहज एवं स्वाभाविक सौन्दर्य की अत्यन्त मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है।

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान,

तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान।

उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास,

चाँदनी का स्वभाव में वास, विचारों में बच्चों की साँस।

किन्तु वास्तविकता यह है कि यह कवि की कोई अनुभूत घटना नहीं है, अपितु उसकी कल्पना द्वारा प्रस्तुत एक करूण चित्र है, जिसमें काल्पनिक अनुभूति भी अपनी भावुकता, कोमलता एवं सुकुमारता के कारण अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ भी प्रतीत होती है।

‘‘वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,

उमड़ कर आंखों में चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।‘‘

8.6.2 प्रकृति चित्रण

अपने आरम्भिक कवि-जीवन से ही कवि पंत ने प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त की है और प्रकृति ने कवि को अनन्त कल्पनाएँ, असीम भावनाएँ एवं असंख्य सौन्दयनुभूतियाँ प्रदान की है। कवि ने प्रकृति के कोमल एवं सुकुमार रूप के ही दर्शन अधिक किए हैं और वे उनके झंझा-झकोर,

गर्जन-तर्जन वाले कठोर एवं भयंकर रूप की ओर उन्मुख नहीं हुए हैं। यही कारण है कि कविवर पन्त को सुकुमार प्रकृति का कवि कहा जाता है और उन्हें 'सुन्दरम्' का गायक माना जाता है, क्योंकि प्रकृति का कुत्सित, कुरूप एवं कुटिल रूप उन्हें आकर्षित नहीं कर सका है और वे प्रायः' प्रकृति के सुन्दर पक्ष पर ही अधिक असक्त एवं अनुरक्त रहे हैं।

पंत के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में चित्रित हुई है। कहीं आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, संवेदनात्मक रूप में, रहस्यात्मक रूप में, प्रतीकात्मक रूप में और कहीं वातावरण निर्माण के रूप में, अलंकार योजना के रूप में, मानवीकरण के रूप में तो कहीं लोक शिक्षा के रूप में। इन विविध रूपों में प्रकृति के स्वरूप का चित्रण कवि ने किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन की छटा दृष्टव्य हे।

बादलों के छायामय-मेल, घूमतें हैं आँखों में फैल।

''अवनि और अंबर के वे खेल, शैल में जलद में शैल!

शिखिर पर विचर मरूत-रखवाल, वेणु में भरता था जब स्वर,

मेमनों-से मेघों के बाल, कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर,

पंत काव्य में प्रकृति मानव के हास, उल्लास, आनन्द, मनोरंजन को प्रकट करती हुई अंकित होती है तो कहीं मानव के शोक विषाद, रूदन और अवसाद के क्षणों में स्वयं को अश्रुपात करती हुई और शोक मनाती हुई भी चित्रित होती है। कविवर पंत ने प्रकृति के दोनों संवेदनात्मक रूप की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं।

उदाहरणार्थ

'संध्या के बाद' कविता में अत्यन्त गम्भीर वातावरण की सृष्टि हुई है -

जाड़ों की सूनी द्वाभा में झूल रही निशि छाया गहरी,

डूब रहे निष्प्रभ विषाद में खेत बाग, गृह तरू तट लहरी।

बिरहा गाते गाड़ी वाले, भूँक भूँक कर लड़ते कूकर

हुआ हुआ करते सियार देते विषण्ण निशि बेला को स्वर।

इस प्रकार प्रकृति का मानवीकरण पंत ने बखूबी किया है। कवि पन्त ने भी प्रकृति के विविध उपकरणों पर मानवीय चेष्टाओं एवं भावनाओं का सुन्दर एवं सजीव आवरण चढ़ाकर उनका इतना प्रभावशाली वर्णन किया है कि प्रकृति सचेतन एवं सप्राण हो उठी है। उदाहरण के लिए, कवि की 'छाया', 'बादल', 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'संध्या', 'सन्ध्यातारा', 'नौका-विहार',

'चाँदनी', 'जुगनू' आदि कविताएँ ली जा सकती है, जिनमें कवि ने प्रकृति को मानवीय भावों, भावनाओं, चेष्टाओं, व्यापारों आदि से ओतप्रोत करके पूर्णतया सचेतन प्राणियों के रूप में अंकित किया है; जैसे - संध्या जैसी निर्जिव एवं निष्प्राण बेला को कवि ने मधुर, मंथर एंव मृदु गति से आती हुई एक रूपसि के रूप में कितनी सजीवता एवं सचेतनता के साथ अंकित किया है -

कौन तुम रूपसि, कौन? व्योम से उतर नहीं चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप, सुनहला फैला केश कलाप,

मधुर, मंथर, मृदु, मौन!

मूँद अधरों में, मधुरालाप, पलक में निमिष, पदों के चाप,

भाव संकुल, बंकिम, भ्रूचाप, मौन, केवल तुम मौन।

इस प्रकार स्वयं रमणीय पल्लव-दल-शोभा ने पन्त को बहुत आकर्षित किया। वे प्रकृति की ओर बरबस खिंच गये। सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध नारी के मोह-पाश में भी न बँधते हुए उनका कवि-हृदय प्रकृति छाया की दिशा में अग्रसर हुआ। साधारण जगत् की तुलना में प्रकृति की विशिष्टता एवं मनोहरता का परिचय देते हुए पन्त जी कहते हैं:-

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?

8.6.3 प्रेम व नारी सौन्दर्य

सौन्दर्य की साकार मूर्ति स्त्री ने पन्त के काव्यों में उन्नत स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँ भी स्त्री के अन्तर-सौन्दर्य ने ही पन्त का अधिकाधिक मात्रा में आकर्षित किया।

पन्त की दृष्टि में लावण्य का अच्छा स्थान है। लावण्य, इनके अनुसार, सौन्दर्य का सूक्ष्मतम रूप है। संसार-भर की कलाओं में, और खासकर काव्य में में, इस लावण्य का विस्तार-पूर्वक वर्णन मिलता है। लावण्य की विशिष्टता के ही कारण सौन्दर्य की साकार मूर्ति (भारतीय) नारी को 'लावण्यवती' कहा जाता है। ऐसी लावण्यवती नारी को सौन्दर्य-चेतना-परम्परा में प्रमुख स्थान देना ही पन्त का लक्ष्य है।

लावण्य का वर्णन नारी को छोड़कर नहीं होता। इसलिए, लावण्य का अभिन्न सम्बन्ध प्रेम-भावना से भी है। नारी सौन्दर्य का वर्णन कामुकता की दृष्टि से ही नहीं होना चाहिए। इस तरह

करने से सौन्दर्य-चेतना सजीन न रहकर यान्त्रिक, निर्जीव होती है। लावण्य की सहगामी प्रेम को प्रकाशित करते हुए पन्त का कहना है:-

''प्रेम के पलकों में सौन्दर्य का स्वप्न है''

प्रेम के लिए पलकें प्रदान करते हुए पन्त उसे सजीव बनाते हैं। ऐसा सजीव-प्रेम निच्छल स्नेह-सिक्त होता है न कि कामुक। पन्त का प्रतिपादित यह प्रेम विश्व-मानव-साधना का सहयोगी हे।

पंत ने प्रेम व स्त्री सौन्दर्य को सदा अपनी काव्य सरिता में प्रवाहित किया। कभी वह मलयानिल बन सुखद स्पर्श से रोमांच प्रदान कर गयी तो और कभी सुगंधित साँसों के द्वारा अंतर को पुलकावलियों से हरा-भरा बना गयी; कभी वह ज्योत्सना की सुकुमार तुलिका से छू मधुर स्वप्न-धारा में नहला-बहला गयी तो और कभी वह अपनी अन्तर सुषमा की शीलत, सुखद लपटों की छाया में अंचल का अमर सुख दिला गयी।

''तुम कितनी निश्छल हो, शैल-प्रकृति-सी निर्मल

सहज हृदय-गुण ही नारी शोभा का संबल!''

8.6.4 वेदना और निराशा

छायावाद में वेदना की काव्यात्मक व कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। सभी छायावादी कवि स्वभावतः भावुक, जिज्ञासु होने के कारण और परिस्थितियोंवश भी विषाद और विरह-वेदना को व्यक्त करते रहे। शायद युगीन परिस्थितियों में कवियों की इच्छाओं का पूर्ण न होना, सामाजिक असमानता और राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलता भी इनको निराशा की ओर मोड़ देती थी। पंत भी समाज में विद्यमान विकृतियों, विसंगतियों और अन्ध रूढ़ियों से क्षुब्ध थे। पंत ने वेदना को काव्य का उद्गम स्थल मानते हुए लिखा है -

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान

उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।''

पंत की कविताओं में वेदना और निराशा के कई चित्र मिलते हैं। आँसू, उच्छवास और ग्रन्थि जैसी रचनाओं में उन्होंने इसी वेदना को व्यक्त किया है। वेदना सिर्फ कसक व टीस ही नहीं देती वरन् मधुर संगीत भी सुनाती है। कवि लिखते हैं -

''कल्पना में है कसकती वेदना,

अश्रु में जीता सिसकता गान है

शून्य आहों में सुरीले छन्द है,

मधुर लय का क्या कही अवसान है।”

8.6.5 लोक-हित-चिंतन

काव्य विकास के प्रारंभिक सीढ़ी पर खड़े होकर पंत ने अधिकतर प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन कर लिये थे। परन्तु वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, जयोत्स्ना आदि काव्य सुमनों में प्राकृतिक छाया चित्रों के चित्रित होने पर भी लोक हित चिंतन एवं लोक मंगल भावना भी दिखाई देती है। लक्षणा तथा व्यंजना प्रधान उनकी कई कविताओं में लोक हित साधना की अभिव्यक्ति हुई है। वीणा से गुंजन-ज्योत्स्ना तक आते-आते कवि की काव्य-चेतना में चिंतन तथा मानवीयता का रंग अधिक मिलने लगा। द्वितीय सोपान पर पंत को मानव-मन का करूणामय आक्रदंन सुनायी पड़ा जिसने उनके दिल को गला दिया। इस स्तर की रचनाओं में भाव तीव्रता अधिक होती गयी तो भाषा में सरलता आ गयी। यहाँ मानव जीवन की निरीहता के प्रति कवि की सहानुभूति अच्छी तरह प्रकट हुई। मानवीय ममता से प्रभावित इन काव्यों में मार्क्सवाद का रंग अधिक मिला हुआ है। युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या नामक काव्य-त्रय में पंत की प्रगतिवादी युग-चेतना काव्य-चेतना बन गयी। मार्क्स की ओर झुके रहने पर भी कवि गाँधीवाद को नहीं छोड़ सके। इसलिए, द्वितीय सोपान की कुछ कविताओं में समन्वयवाद की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है।

यथा:-

‘‘हम गाँधी की प्रतिभा के इतने पास खड़े,

हम देख नहीं पाते सत्ता उनकी महान,

उनकी आभा से आँखें होतीं चकाचौंध,

गुण-वर्णन में साबित होती गूँगी जबान।”

गांधी जी में इतनी शक्ति थी कि उन्होंने कई युगों, धर्मों और देवताओं की प्राण-चेतना अपनी करूणा में मिला ली। सत्य-चरण धर इस धरती पर विचरण करनेवाले देव पुत्र (मोहनदास करमचंद गांधी) का अतुलित महत्व मानते हुए मानवतावादी (गांधीवादी!) कवि पंत का लिखना है:-

‘‘देव पुत्र या निश्चय वह जन मोहन मोहन,

सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण!

विचरण करते थे उसके संग विविध युग वरद,

राम, कृष्ण, चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद!''

मानव हित चिन्तन के सन्दर्भ में कवि पंत गाँधी की तरह रवीन्द्र नाथ ठाकुर से भी प्रभावित थे। सेवा-भाव की परिणति को ही जीवन का सर्वस्व मानते हुए मानवतावादी कवि पन्त 'युगवाणी' में कहते है:-

''मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें, -मानव ईश्वर!

और कौन सा स्वर्ग चाहिए मुझे धरा पर?

यह भी सेवा भाव का सुन्दर उदाहरण है!

पंत की सभी रचनाओं में किसी न किसी रूप में और किसी न किसी मात्रा में मानवतावाद का पुट मिला हुआ है। मानवीय ममता पर आधारित मानवतावाद की अन्तर्धारा ही इनके विविध काव्य-कुसुमों को एकता में सूत्र में पिरो देने वाली युग-चेतना हे। इसी महत्वपूर्ण युग-चेतना का विराट रूप आगे चलकर चतुर्थ सोपान पर अवस्थित 'लोकायतन' में मिल जाता है।

''नित्य कर्म पथ पर तत्पर धर, निर्मल कर अंतर,

पर-सेवा का मृदु पराग भर मेरे मधु संचय में।''

विश्व-चेतना की साधना में पन्त ने समदर्शी अरविंद को अपना आधार बनाया है।

उनके काव्य में अरविंद-दर्शन के प्रभाव से धरा-स्वर्ग का अंतर मिटाकर अपने अन्तर-वैभव को विस्तृत एवं वितरित करने का सुअवसर उन्हें मिला। उनके सृजन का उद्देश्य विश्व में प्रेम का प्रसार करना हो गया था।

''मनुज प्रेम के आँसू! ताराओं से अधिक जिएँगें,

यश वैभव से अधिक रहेंगे, विश्व प्रेम के आँसू।'' कहकर उन्होंने कहा कि विश्व प्रेम के आँसू लहराते रहे तो मानव-सेवा करने की आग रूचिर राग बनकर पल्लवित होने लगेगी। तभी पंत कहते हैं -

''विश्व प्रेम का रूचिर राग, पर सेवा करने की आग,

इस को संध्या की लाली सी माँ! न मंद पड़ जाने दे।''

8.6.6 प्रगति चेतना

माना जाता है कि सन् 1935 के पश्चात एक निश्चित अर्थ में प्रगतिवादी चेतना फूटती लक्षित होती है और इसका श्रेय सुमित्रानन्दन पंत को दिया जाता है। क्योंकि सन् 1936 में प्रकाशित 'युगान्त' में पंत जी की मार्क्सवादी दर्शन और सामाजिक जीवन-यथार्थ की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

वर्तमान जीवन के दुःखु, निराशा, अभाव और कुण्ठा आदि का जिस सामाजिक व्यवस्था में जन्म हुआ वह अनेकानेक वर्गों में विभक्त समाज की रूग्ण-व्यवस्था है। जब तक वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं होती तब तक जीवन के दैन्य, अभाव, असन्तोष, कुंठा और अवसाद समाज से नहीं निकल सकते। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होकर पंतजी ने भी शोषक के रूप में साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और सामन्तवादियों के अत्याचारों और शोषण का विरोध किया है।

'युगवाणी' की 'श्रम जीवी' शीर्षक कविता में कवि ने समाज के सर्वहारा वर्ग का स्पष्ट चित्र अंकित करके उनकी सामाजिक दुर्व्यवस्था और दीन-हीन दशा को उजागर किया है -

वह पवित्र है, वह जग के कर्दम से पोषित,

वह निर्माता, श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोषित!

मूढ़, अशिक्षित, सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित,

विश्व उपेक्षित,-शिष्ट संस्कृतों से मनुजोचित

दैन्य कष्ट कुंठित,-सुन्दर है उसका आनन,

गन्ते गात वसन हों, पावन श्रम का जीवन!

काव्य में पंत जी ने ग्रामीण दीन-दुखियों के विषादी स्वरों को भी मुखरित किया है -

''घर-घर के बिखरे पन्नों में नग्न, क्षुधार्त कहानी

जन-मन के दयनीय भाव, कर सकती प्रकट न वाणी।''

इस प्रकार पंत जी ने ग्रामीण-जीवन के विभिन्न अंगों का सजीव चित्रण करके ग्रामों की सामाजिक दशा को भी उजागर किया है। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पंत जी की नारी-भावना पर भी पड़ा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पंत की रचनाएँ अपने-अपने ढंग से अपनी शक्ति और सीमाओं के साथ छायावादी कविता को प्रगतिवादी चेतना के मंडित करती हैं।

8.6.7 गाँधी चेतना

गाँधी जी ने कथनी और करनी का समन्वय किया। वे सत्य और अहिंसा को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। उनका विचार है कि अहिंसा के बिना सत्य की खोज असम्भव है। अहिंसा को वे सत्य का मेरूदण्ड मानते थे। उन्होंने अपने विचारों को व्यावहारिक रूप में परिणत कर जीवन में ढ़ाला था। महात्मा गाँधी व्यावहारिक, आदर्शवादी, कर्मयोगी और प्रयोगवादी थे।

किसी भी कवि पर अपनी युगीन परिस्थितियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ना स्वाभाविक है। युग-पुरूष गाँधी जी की विचारधारा का प्रभाव भी पंत पर पड़ा। उन्होंने गाँधी जी के सिद्धान्तों और आदर्शों को अपने काव्य में व्यक्त किया है।

पंत का दृढ़ विश्वास है कि मानव के सर्वांगीण विकास और लोक मंगल के लिए गाँधीवाद का आश्रय नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः गाँधीवाद मानवता का भाव सिखाता है -

''गाँधीवाद जगत् में आया ले मानवता का नव मान,

सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।

गाँधीवाद हमें जीवन भर देता अन्तर्गत विश्वास,

मानव की निस्सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।''

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पंत जी ने राजनीति और आध्यात्म का जो समन्वय किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वे भावी-मानव को संस्कृति का संदेश दे रहे हैं।

पंत जी बापू की तरह मानते हैं कि सत्य अहिंसामय है और अहिंसा सत्यमय है। प्रेम के द्वारा ही पाशविकता का अन्त होकर नव मानवता प्रतिष्ठित होगी और ये धरा स्वर्ग बन जायेगी। ''सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन'' गांधी जी ने सर्वोदय तथा ग्राम-सुधार के लिये कुटीर उद्योगों और परिश्रम के महत्व पर विशेष बल दिया था। पंत जी ने उन्ही भावनाओं की निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्ति दी है -

'तकली, चरखे से अब आधुनिक यन्त्र

स्थापित करने को अब मानवता का विकास।"

8.7 काव्य में शिल्प विधान

8.7.1 भाषा विधान

पंत की काव्य-भाषा छायावादी काव्य में अपना एक विशेष महत्व रखती है। इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ होते हुए भी भावाभिव्यंजक और चित्रमय है। अपनी चित्रात्मक भाषा के कारण ही पंत एक कुशल शब्द-शिल्पी कहे जाते हैं। पंत जी ने अपनी भाषा में राग और संगीत को बनाए रखने के लिए तितली के पंखों जैसी सुकुमोल, आकर्षक और रंगीन शब्दावलियों का प्रयोग किया है। पंत जी के भाषा प्रयोग में एक और विशेषता यह है कि उन्होंने गम्भीर एवं परूष भावों को कोमल कान्त पदावली में अभिव्यक्ति प्रदान कर भाषा-क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। पंत जी ने भाषा को भाव की अनुगामिनी कहा है। जैसा भावों का स्तर होगा वैसी ही भाषा हो जायेगी। आजकल की कविता में आंचलिक शब्दों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, पंत जी इसके विरोधी हैं। वह ग्रामीण शब्दों के प्रयोग को काव्य भाषा में स्थान देने के लिए सहमत नहीं है। उनके कथनानुसार ग्रामीण शब्दों से भाव सौन्दर्य में अपकर्ष आता है। ‘गुंजन‘ के संगीत में एकता है, ‘पल्लव’ के स्वरों में बहुलता है। ‘पल्लव‘ की भाषा दृश्य जगत के रूप-रंग की कल्पना से मांसल और पल्लवित है। ‘गुजन’ की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य से युक्त हैं। ‘ज्योत्सना‘ का वातावरण भी सूक्ष्म की कल्पना से ओत-प्रोत है। ‘उतरा‘ की भाषा ‘स्वर्ण किरण’, ‘स्वर्णधूलि’ और ‘अमिता’ से अधिक सरल है। उतरा की भाषा में प्रवाह पूर्ण और गत्यात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। ‘युगान्त, युगपथ, ग्राम्या और युगवाणी की भाषा अधिक स्वाभविक एवं सरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि पंत जी ने इन काव्यकृतियों की रचना जन साधारण की अभिरूचि को ध्यान में रखकर की है। युगवाणी में सर्वप्रथम पन्त ने युगभाषा को स्वीकारा, उसका सफल और सार्थक प्रयोग किया। युगवाणी में पंत ने छन्द के बंधनों को तोड़ा।

पंत जी की भाषा का तीसरा रूप उनकी कुछ अरविन्द दर्शन से प्रभावित काव्यकृतियों - ‘स्वर्ण किरण’, ‘अतिमा’, ‘स्वर्णधुलि’ में उपलब्ध होता है। इन रचनाओं में पंत की भाषा गम्भीर और दार्शनिक पक्षों को स्पष्ट करने वाली है। भाषा में संस्कृत और तत्सम शब्दों का प्रयोग आवश्यकता से अधिक हुआ है। इन रचनाओं की भाषा जन साधारण के निकट नहीं है। इनमें कही कहीं तो पंत जी ने पूर्णतः संस्कृति पदों का प्रयोग कर दिया है।

पंत की भाषा के कई रूप हैं किन्तु उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। पंत की दार्शनिक भाषा में संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। संस्कृत की अनेक पदावलियां पन्त ने ज्यों की त्यों स्वीकार कर ली है।

संस्कृत के तत्सम शब्द तो किसी प्रकार परिहार्य हैं किन्तु कही-कहीं पन्त ने पूरा संस्कृत पद ही उद्धृत कर दिया है, ‘गीत हंस‘ से उदाहरण -

खोल हृदय में, नव आशा का अंतरिक्ष

श्रद्धा नत गाए .... असतोमा सदमगय

तमसो मा ज्योर्तिगमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।।

पन्त की भाषा में अनायास ही उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मार्क्सवाद और साम्यवाद से प्रभावित उनकी रचनाओं से इन शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। उनकी भाषा में प्रयुक्त उर्दू, शब्द हिन्दी ध्वनियों के साथ आने पर हिन्दी के ही प्रतीत होते हैं। पागल, पैगम्बर, हजरत, बंदे, शक, आजाद, ईसा, दुनियां, पाबन्द, हुक्म, मुरीद, नामुमकिन। तारा, कारकुन और कुर्क इत्यादि शब्द उर्दू और फारसी के हैं। जन साधारण की भाषा में आज भी इन शब्दों का प्रयोग बराबर हो रहा है।

पन्त जी अंग्रेजी के वर्डसवर्थ, कीट्स, शैली और टेनीसन आदि कवियों से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने अंग्रेजी साहित्य की गहन अध्ययन भी किया है। अत' उनकी भाषा में कुछ अंग्रेजी शब्दों का आ जाना स्वाभाविक ही था। बहुत से वाक्यों की रचना भी पन्त जी ने अंग्रेजी शैली के अनुकरण पर की है। कहीं अंग्रेजी मुहावरों और वाक्य-विन्यास तथा पद-विन्यास का पन्त जी ने प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पन्त जी ने अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी अनुवाद कर दिया है। अतः यह स्पष्ट है कि पंत की भाषा पर भी अंग्रेजी भाषा शैली का प्रभाव है। शब्द शिल्पी के रूप में अंग्रेजी वाक्यों का अनुवाद कर पंत जी ने हिन्दी में एक नवीन शैली का प्रचलन किया। पन्त ने अनेक शब्दों का निर्माण अंग्रेजी शब्दों के आधार पर किया है।

अपनी भाषा का शब्द कोष समृद्ध करने हेतु हमें दूसरी भारतीय और अभारतीय भाषाओं के सामान्य शब्दों का ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। पन्त जी ने भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने में संकोच न कर अपनी उदारता का परिचय दिया है -

1. भद्दे पीतल गिलट के कड़े।
2. जलती पुलिस चौकियाँ, डाकघर।
3. तार फोन के गये कट।
4. मीलों पैदल चल घर।
5. उलटी झट पटरियाँ रेल की।
6. भर दो 'वोटो' से झोली।
7. रेडियो से विद्युत ध्वनि उर्मि।

8. दीर्घ आइफिल टावर का दृश्य।

9. सिनेमा से पश्चिम को नव्य।

10. प्रथम इसने ही स्पूटनिक छोड़े।

हिन्दी अभी इतनी समर्थ और समृद्ध नहीं हुई कि इन रेखांकित शब्द अन्य भारतीय भाषाओं के हैं। शब्द प्रयोग में पंत जी उन्मुक्त व स्वच्छन्द रूप से कार्य करते हैं।

कवि पंत ने नए शब्दों में तत्सम व दत्भव दोनों प्रकार के शब्दों में प्रत्यय लगाकर नवीनता पैदा की है जैसे ''फैनिल', 'रंगिणी', तरंगिनी', 'स्वप्निल,, 'तन्द्रिल'। भावों के अनुकूल बेझिझक होकर अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण कवि ने किया है जैसे स्वर्णिम (गोल्डन) सुनहला-स्पर्श (गोल्डन टच), भग्न-हृदय (ब्रोकन हार्ट), अजान (इनोसेंट) आदि। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक, 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' में हुआ है। इन दोनों काव्य कृतियों की भाषा जनसाधारण के निकट की भाषा है। पन्त जी इन कृतियों में साम्यवाद से प्रभावित दीख पड़ते हैं। अतः साम्यवाद के प्रचार और प्रसार के लिए पन्त जी ने ग्रामीण भाषा का सहयोग लिया है। 'ग्राम्या' की वह 'बुड्ढा', 'ग्राम वधू', 'ग्राम युवती', 'चमारों का नृत्य', 'कहारों का नृत्य' इत्यादि कविताओं में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। खेड़े, पुरवे, दूह, हुल्लड़, सुथरा, मरघट, हथकन्डे, चूल्हा, चौका, कनकौवे, हौवे, धक्कामुक्की, रेलपेन, हत्थापाई इत्यादि ग्रामीण शब्दों का प्रयोग पंत ने 'लोकायतन' में किया है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में चिमटी, पंजर, टेढ़ी, धरती, पिचका, तुबिया, अम्बर आदि ग्रामीण शब्दों तथा ऐं चीला, छाजन, अबोध आदि देशज शब्दों का प्रयोग भी कही-कहीं हुआ है।

अपनी भाषा को गतिशील और प्रवाहमय बनाने के लिए प्रत्येक कवि इन लोकव्यापी मुहावरों और कहावतों का प्रयोग करता है। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भाषा में चमत्कार और आकर्षण बढ़ता है। कोमल वृत्यिों के कवि होने के कारण पंत जी मुहावरे और लोकोक्तियों के हिमायती नहीं है। पंत जी ने अनजान में कुछ मुहावरों का प्रयोग कर दिया है।

1. आठ आँसू रोते निरूपाय।

2. बार बार भर ठन्डी सांस।

3. दुखिया का सिन्दूर लूट गया।

4. मैं पावों में बेड़ी डालूं।

5. और नहीं तो क्या चूल्लू भर पानी तुझे नहीं है।

पंत जी ने इने गिने कुछ लोकोक्तियों के प्रयोग भी किए हैं -

1. साँप छछुन्दर की न दशा हो।

2. चुहिया खोदगी पहाड़ क्या।

   या टिटिहा पाटेगा सागर।

3. दीप चले छाया अंधियाला।

4. जगत में आता मुट्ठी बाँध।

   जगत से जाता हाथ पसारं

5. शिष्य शक्कर बनते गुरू रहते गुड़।

अतः हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंत की भाषा शब्द-शक्तियाँ से युक्त होकर भावानुकूल और प्रवहमयी बन गई है। पंत की भाषा में, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता तथा प्रवाह आदि सभी तत्व आदि से अन्त तक मिलते हैं। पंत की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। उसमें कही-कहीं उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, ब्रज भाषा, बंगला और देशज ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग उन्होंने कम किया। लिंग परिवर्तन और शब्द निर्माण में पंत जी स्वतंत्र रहे हैं। पंत की भाषा की विशेषता है भावानुकुलता। वे भाषा को भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानते हैं चूंकि पंत ने कई काव्य-पीढ़ियों में रचनाएं की हैं, इसलिए उनकी काव्य भाषा निरंतर परिवर्तनशील भी रही। पंत ने भाषा और संचेतना में गहन सम्बन्ध स्वीकारा है। शब्द शक्तियों के प्रयोग से उनकी भाषा में नया निखार और प्रकाशन क्षमता आई है।

8.7.2 अलंकार विधान

अलंकारों का प्रयोग पंत जी ने साधन के रूप में किया हे। अलंकार को पंत जी ने सौन्दर्य और चमत्कार का पर्याय माना हे। उनका कथन है कि जब कविता स्वयं ही सुन्दर है तब उसे अलंकार की आवश्यकता माना गया ....

ग्रम्या में लिखते हैं

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।

वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।।

''पल्लव प्रवेश' की भूमिका में उन्होंने अलंकार के विषय में कहा है - अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं वरन् भाषा की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। अलंकार भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आधार

व्यवहार एवं रीति नीति है, पृथक स्थितियों के स्वरूप भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चिह्न हैं .... वे वाणी के हास, अणु, स्वप्न, पुलुक, हाव-भाव हैं।

पंत के काव्य में शब्दगत और अर्थगत सभी अलंकारों की सहज छटा दर्शनीय है। अलंकार कविता में सहज ही जा आ जाते हैं। वर्णों की आवृत्ति होने पर अनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ - 'पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश', पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' (पल्लव),

'मुकुलों मधुपों का मृदु मधु मास' (गुजंन) यमक अलंकार में एक ही पद की एक से अधिक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है। पंत काव्य में एक उदाहरण है:-

''तरणी के साथ ही तरल तरंग में तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

(पल्लविनी)

''यहाँ तरणि (नाव और सूर्य) द्वयर्थक होने के कारण चमत्कार है। गुंजन का यह पद तर रे मधुर-मधुर मन, तप रे विधुर-विधुर मन में पुनरूक्ति अलंकार है। कवीवर पंत ने अपने काव्य-शिल्प को अधिक आर्कषक, प्रभावशाली और प्रभविष्णु बनाने के लिए नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

> ''पंखुड़ियों-से नयन, प्रवालों से अरूणाधर।
>
> मृदु मरन्द से मांसल तन, बाहे लतिका सी सुन्दर।। गीता हंस

''खड़ा-ठूंठ सा भुंगुर जीवन' में अमूर्त के लिए मूर्त उपमान तो 'एक जलकण, जल शिशु-सा पलक पर' पर मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग कवि ने किया है।

रूपक अलंकार में उपमेय पर उपमान का आरोप रहता है। पंत के काव्य में ढ़ेरो उदाहरण देखने को मिलते हैं।

जहां चमत्कार अर्थ के लक्षण के सहारे प्रतिभासित हो ओर आरोप का अतिशय वर्णित हो, वहां रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

> कमल पर जो चारू खंजन थे प्रथम, पंख फड़फड़ाना नहीं जानते
>
> चपल चोखी चोट पर अब पंख की, ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को।।

यहां पर कमल, खंजन, भ्रमर और चोट क्रमशः मुख-नेत्र, कटाक्ष एवं प्रेमी के उपमान हैं। यहां आरोप का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन है। कमल (मुख) का अर्थ लक्षणा के सहारे स्पष्ट होता है।

जब उपमेय की उत्कृष्टता का निरूपण करने के लिए उसकी उपमान के रूप में परिकल्पना (संभावना-व्यक्त) होती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसमें मानों, किधौं, इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है।

निराकार तुम मानो सहसा, ज्योति पुंज में हो साकार

बदल गया द्रुत जगत जाल में, धर कर नाम रूप नाना।

दृष्टान्त देकर जब किसी तथ्य को स्पष्ट किया जाता है तब दृष्टान्त अलंकार होता है

सुख दुख के मधुर मिलन से, यह जीवन हो परिपूर्ण?

फिर घन में ओझल हो शशि, घिर शशि से ओझल हो घन।

यहां सुख और दुःख के मिश्रण से जीवन की परिपूर्णता का चित्रण करते हुए शशि और घन की लुकाछिपी के साथ मूल विषय के बिम्ब का स्पष्ट रूप से वर्णन हुआ है।

एक वस्तु को देखकर जब दूसरी सदृश वस्तु की स्मृति होने का वर्णन किया जाता है, वहां स्मरण अलंकार होता है -

देखता हूं, जब पतला, इन्द्रधनुषी-सा हल्का

रेशमी घूँघट बादल का खोलती है जब कुमुदकला

तुम्हारे मुख का भी ध्यान, मुझे तब करता अंतर्धान।।

कुमुदकला के बादल का घूँघट खोलने पर कवि को मुख का स्मरण हो आता है।

विरोधी शब्दों द्वारा सुन्दर रीति से अनुकूल भाव व्यंजना करने में विरोधाभास अलंकार होता है। यह भी पंत का प्रिय अलंकार है।

अचल हो उठते है। चंचल, चपल बन जाते हैं अविचल,

पिघल पड़ते हैं पाहन दल, कुलिश भी हो जाता कोमल।।

अचल के चंचल होने, चपल के अविचल होने, कुलिश के कोमल होने में विरोधाभास अंलकार है।

उपमेय के उत्कर्ष की व्यंजना के लिए जब उसके व्यापारों का वर्णन किया जाता है, वहां उल्लेख अलंकार होता है।

हम संसार के धवल हाल हैं, जल के धूम गगन की धूल

अनिल फेन उषा के पल्लव, वारि वसन बसुधा के फूल

व्योम बेलि ताराओं की गति, चलते अचल गगन में गान।

हम अपलक तारों की तन्द्रा, ज्योत्सना के हिम शशि के यान।।

यहां भी कवि ने बादल (उपमेय) की व्यंजना कराने के लिए सागर के धवल हास, ऊषा के पल्लव, अचल गगन, और शशि के यान, इत्यादि उपमानों का प्रयोग किया है। इसलिए उल्लेख अलंकार का प्रयोग यहां भी हुआ है।

'मानवीकरण' की दृष्टि से पन्त की 'संध्या' और 'चांदनी' कविताएँ विशेष महत्व की हैं।

कहो, तुम रूपसि कौन,

व्योम से उतर रही चुप चाप

छिपी निज छाया छाव में आप

सुनहला फैला केश कलाप

मधुर मन्थर, मृदु मौन।।

यहां पर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। इसके अतिरिक्त डालता पावों परचुपचाप .... मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है।

8.7.3 पन्त काव्य में छन्द विधान

कविवर पंत ने अपने काव्य सौन्दर्य के संवर्धन के लिए विभन्न छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग में पंत जी मात्रिक छन्दों के पक्ष धर रहे हैं। पंत के काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों को हम सममात्रिक, अर्द्धसम मात्रिक नवीन अर्द्धसम मात्रिक, त्रिसम मात्रिक, मित्र मात्रिक नव विकर्षाधार के मात्रिक छन्द अतुकान्त छन्द, मुक्त छन्द, चतुर्दशपदी, सम्बोधनगीति, शोक गीति इत्यादि वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। पंत जी ने अपनी काव्य-साधना के प्रारम्भिक काल में छन्द के बंधन और तुक के महत्व को स्वीकार किया है। पंत के कथनानुसार हिन्दी का संगीत मात्रिक छन्दों में ही प्रस्फुटित हो सकता है। मात्रिक छन्द स्वर और राग प्रधान होते हैं जब कि कवित्त छन्द में व्यंजन वर्णों का बाहुल्य रहता है। अतः व्यंजन वर्ण प्रधान छन्दों में हिन्दी काव्य का सौन्दर्य निखर नहीं सकता। पंत की तुक योजना बड़ी सरल और स्वाभाविक है। उनके छन्द की प्रथम पंक्ति तो सहज रूप में निकल पड़ती है और दूसरी पंक्ति में वह उसका तुक मिल देते हैं।

लय भी छन्द का मुख्य तत्व होता है। पंत ने गम्भीर सोच विचार के बाद ही लय परिवर्तन को स्वीकार किया है। लय संगीत का प्राण है और संगीत तथा राग छन्द का प्राण है। भावों के अनुसार कविता में लय घटती बढ़ती रहती है। पंत के काव्य में यति-परिवर्तन के कारण लय में विविधता और समरसता आई है। पंत को सममात्रिक छन्द अधिक प्रिय है। पंत ने अपने काव्य में परम्परागत सम-मात्रिक छन्दों में रोला, पीयूषराशी, राधिका, सुखदा, पद्धरि, अरिल्ल, चौपाई, सिन्धुजा, कोक्लिक, तरलनयन, महेन्द्रवज्रा, डिल्ल, श्रृंगार इत्यादि का प्रयोग किया है।

नन्दन छन्द

तुम आलिंगन करते हमकर, नरचती हिलोरें सिहर-सिहर। 16 मात्राएं

सौ-सौ बाहों में बाहें भर, सर में आकुल उठ-उठ गिरकर।। 16 मात्राएं

नन्दन छन्द के आविष्कारक और प्रयोगकर्ता स्वयं पंत ही हैं। नंदन छन्द श्रृंगार छन्द की लय पर 16 और 12 मात्राओं के योग से बनता हैं इस छन्द में हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति सुन्दर बन पड़ती है। दूसरे इस छन्द का महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह संयोग श्रृंगार प्रकृति वर्णन के अनुकूल छन्द है। नंदनछन्द का प्रत्येक चरण विषक मात्रिक होता है ओर अंत में गुरू लघु (1) रहता है।

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम	16
अये अभिनव अभिराम।।	12
मृदुलता ही है बस आकार।	16
मधुरिमा छवि श्रृंगार।	12

छन्द वैविध्य की दृष्टि से पंत का काव्य अत्यन्त धनी है। पंत के छन्द भावों के अनुकूल ही चलते हैं। छन्द को अपने इंगितों पर बनाने में पंत पूर्णतः दक्ष हैं। पंत छन्द प्रयोग में कहीं भी बंधकर नहीं चलते हैं। वह छन्द को जैसा चाहते हैं तोड़ मरोड़ लेते हैं।

उदाहरण के लिए तीस मात्राओं के तांटक छन्द का प्रयोग पंत ने 'स्वर्ण किरण' संग्रह की 'भू प्रेमी' कविता में किया है। प्राचीन नियमों के अनुसार इसमें 'मगण' (ऽ ऽ ऽ) तीन गुरू मात्राओं का आना आवश्यक है। परन्तु उक्त उदाहरण में मगण सम्बन्धी नियम का पालन पंत ने नहीं किया है। उदाहरण स्वरूप -

''चांद हंस रहा निविड़ गगन में उमड़ रहा नीचे सागर

इन्द्र नील जल लहरों पर मोती की ज्योत्सना रही विचार

महानील से कहीं सघन मरकत का यह जल तत्व गहन

जिसमें जीवन ने जीवों का किया प्रथम आश्चर्य सृजन।''

कवि में ग्राम्या, उत्तरा, पल्लव, स्वर्ण-धुलि, स्वर्ण किरण में मुक्त छंद का प्रयोग किया है। मुक्त छन्द कल्पना व भावातिरेक के अनुसार ध्वनि, लय और संगीत की मैत्री पर चलता हे। पंत के काव्य में इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है। संक्षिप्त परम्परागत और नवीन दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग उनके काव्य में हुआ है।

8.7.4 पंत काव्य में बिम्ब विधान

बिम्ब के द्वारा मन में चित्र आँकने पर ही कविता का आस्वाद सम्भव है। भावाभिव्यक्ति के लिए कवि बिम्ब प्रस्तुत करता है। कविवर पंत के विभिन्न प्रेरणा-सूत्रों में प्रकृति का विशेष हाथ रहा है। सहज व कोमल स्वभाव के कारण पंत सौन्दर्य की तरफ आकर्षित रहे हैं, भले ही वह सौन्दर्य मानवी हो या प्राकृतिक। प्रेम का एक सरस स्पर्श कवि की कोमल कल्पना के तार को छू भर देता है और कवि भाव-प्रधान कल्पना-प्रधान गीतों को सृजता है। पंत काव्य के बिम्ब-विधान में कवि की भावुकता जहाँ जोर मारती है वहाँ कवि आवेश में गाँवों में बसने वाले नर-नारी व दुःखी जनों के सजीव चित्र खींच देता है। अनेक सुन्दर बिम्बों की श्रृंखला उनकी कविता में मिलती है। बिम्ब निर्माण के लिए भावानुभूति व कल्पना-प्रवणता के साथ चित्र भाषा की भी आवश्यकता होता है। पंत ने 'पल्लव' के भमिका प्रवेश में में लिखा है ''कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों; सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े; जो अपने भाव को अपनी ही आँखों के सामने चित्रित कर सके, जिनका सौरभ सूँघते ही साँसों द्वारा अन्दर पैठकर हृदयकाश में समा जाए; जिनका रस मदिरा की फेनराशि की तरह अपने प्याले से बाहर झलक उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे, छन्दों में न समाकर मधु की भाँति टपकने लगे।"

मूर्त और अमूर्त उपादानों की सहायता से कवि बिम्ब रचता है। पंत ने भी प्रेम, वेदना, करूणा आदि भावों का जो मूर्तीकरण किया उसमें नारी, प्रकृति तथा पुरूष आदि की श्रेणी के उपादानों से सहायता ली गई है तथा नारी प्रकृति, आदि मूर्त विषयों को वेदना, करूणा आदि भावनाओं तथा कवि की रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि एन्द्रिय सम्वेदनाओं से समन्वित कर चित्रित किया गया है। पंत काव्य में बिम्ब-योजना के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

''कभी चौकड़ी भरते मृग से, भू-पर चरण नहीं धरते।

मस्त मतंगज कभी झूमते, सजग शशक नभ को चरते।"

(चाक्षुस बिम्ब)

× × ×

‘‘उड़ रहा ढ़ोल धाधिन, धातिन
औ हुड़क घुडुकता, ढिम ढिम ढिन,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन
मदमस्त रजक, होली का दिन‘‘ (ध्वन्यात्मक बिम्ब)

× × ×

‘‘नव बसंत के परस स्पर्श से पुलकित वसुधा बारम्बार।’’

(स्पर्श बिम्ब)

× × ×

‘‘तप्त कनक श्रुति देह सहज चन्दन सी वासित (घ्राण विषयी बिम्ब)

× × ×

‘‘एक पल, मेरे पिया के डग पलक
ये उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे।’’ (स्मृति बिम्ब)

× × ×

‘‘खड़ा द्वार पर, लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डी के ढ़ाँचे पर।‘‘
उभरी ढ़ीली नसें जाल सी, सूखी ठठरी से हैं लिपटीं,
पतझर में ढूँठे तरू से ज्यों सूनी अमरबेल हो चिपटी।‘‘ (प्रत्यक्ष बिम्ब)

× × ×

इस प्रकार स्पष्ट है कि अपनी मूर्त विधायिनी कल्पना शक्ति द्वारा अपने काव्य में विविध प्रकार के बिम्बो की सृष्टि पंत जी ने की है। सुन्दर, सजीव व मामर्मिक बिम्बों की नवीनता व्यापकता और समृद्धि के कारण ही पंत जी अपने काव्य शिल्प को समृद्ध कर सके हैं।

8.7.5 प्रतीक विधान

भाव अभिव्यक्ति के लिए पंत ने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग किया है। पंत ने पौराणिक, इतर पौराणिक प्रतीकों के साथ ऐतिहासिक, साहित्यिक व अध्यात्मिक चेतना के प्रतीकों का भी सुन्दर संयोजन किया है। कवि ने संस्कृति के प्रतीकों के द्वारा आधुनिक सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है और मानवीय मूल्यों और सामाजिक आदर्शों का स्पष्टीकरण भी किया है। पंत ने शील और शक्ति के प्रतीक 'राम', करूणा और सहृदयता की प्रतीक 'सीता', अनन्त पौरूष के प्रतीक 'लक्ष्मण', अहं के प्रतीक 'रावण', प्रेरणा के प्रतीक 'हनुमान' और कटुता की प्रतीक 'कैकयी' का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। उदाहरणार्थ -

''अहम वृत्ति रावण लंका दुर्गति गढ़

विषय बप्र बंदी, चिति-इन्द्रिय वन में

मुक्त हुई तुम, मिटा अविद्या मय तम

हनुमत् प्रेरित जागी चेतना जन में।।''

इस उदाहरण में कवि ने रावण को अहम् वृत्ति, लंका को कुबुद्धि और हनुमान को प्रेरणा और चेतना का प्रतीक बताया है।

इसी तरह -

देव दग्ध ऐसे ही क्षण में, पश्चिम के नभ में बल दर्पित

धूमकेतु उदंड उगा नव, राष्ट्रकूटों को करने आतंकित।।

'धूमकेतु' पौराणिक प्रतीक है। धूमकेतु अशुभ, अपशकुन का पौराणिक प्रतीक है। कवि ने यहां धूमकेतु को फासिस्ट प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है।

उधर वामन डग स्वेच्छाचार, नापता जगती का विस्तार

टिड्डयों सा छा अत्याचार, चट जाता संसार।।

‘धूमकेतु‘ पौराणिक कथा पर आधृत एक इतर पौराणिक प्रतीक है। इसी तरह ‘वामनडग‘ भी पौराणिक कथा पर आधारित एक इतर पौराणिक प्रतीक है। वामन-डग-साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है अर्थात् वामनडग की भांति ही साम्राज्य-वाद का जाल समस्त विश्व को अपने में फंसा लेना चाहता है।

प्रतीकों में लक्षणा शक्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। पंत के काव्य में लाक्षणिक वर्ग के प्रतीकों का प्रभाव अधिक रहता है। पंत ने सुन्दर अभिव्यक्ति दी है:-

बिन्दु ‘सिन्धु! बृन्दों का वारिधि, ‘बूदों‘ पर अवलम्बित

व्यक्ति समाज! व्यक्ति में रहता, अखिल उदधि अन्तर्हित।।

लक्षणा के द्वारा ही बूंद और सिन्धु का अर्थ कवि ने स्पष्ट किया है। बूंद व्यक्ति और सिन्धु समाज का प्रतीक है।

सुनता हूं इस निस्तल जल में, रहती है मछली मोती वाली

पर मुझे डूबने का भय है, मोती है तट का जल माली।।

यह रहस्यात्मक प्रती क है क्योंकि यहाँ पर कवि ने रहस्य को विभिन्न प्रकार के प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान किया है।

मोती की मछली-ब्रह्म का प्रतीक है।

निस्तल जल-परमार्थ का प्रतीक है।

‘स्वर्ण युगान्त‘ और ‘स्वर्णयुगान्तर‘ क्रमशः अध्यात्मक चेतना प्रधान नये युग के आरम्भ तथा नव युग की क्रांति के प्रतीक हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पंत-काव्य में प्रतीकों का समुचित उपयोग किया गया है।

8.7.6 काव्य रूप

(क) प्रगीत काव्य

अन्य छायावादी कवियों की भाँति पंत जी का अधिकांश काव्य प्रगीतात्मक है। इन्होंने ‘छाया’, ‘प्रथम रश्मि’, ‘वीचि-विलास’, ‘मधुकरी’, ‘अनंग’, ‘नारी रूप’, ‘नक्षत्र’, ‘सांध्य वंदना’, ‘तारागीत’, ‘किरणों का गीत’ आदि अनेक संबोधन गीत भी लिखे हैं। शैली एवं विषय दोनों की दृष्टियों से इनके प्रगीतों में विविधता दिखायी देती है। ‘पल्लविनी’ में पंत जी के 1940 तक के अधिकांश महत्वपूर्ण प्रगीत संकलित हैं। बाद के ‘उत्तरा’, ‘अतिमा’, ‘वाणी’ और ‘किरण वीणा’ में लघु प्रगीत संकलित है। प्रगीत काव्य में कवि जीवन के तीव्र क्षणों की

अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभव की तीव्रता, भावों की एकान्विति, संक्षिप्तता एवं संगीतात्मकता प्रमुख होती है। अपने आरंभिक रचना काल से ही पंत संगीतात्मकता के प्रति अत्यंत जागरूक दिखायी देते हैं। वीणा से गुंजन तक कवि ने स्वरैक्य या स्वर मैत्री को गेयता का मुख्य आधार बनाया है। जिसमें तुकांतता का भी विशिष्ट योगदान है। 'अभिलाषा', 'आकांक्षा', 'निर्झरी', 'अनंग', 'मौन निमंत्रण', 'प्रथम रश्मि' आदि आरंभिक कविताओं में पंत ने गेयता का विशेष ध्यान रखा है। 'प्रथम रश्मि' की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं -

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तू ने कैसे पहचाना?

कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि! पाया तू ने यह गाना?

(ख) काव्य रूपक

पन्त के शिल्प की सबसे महान उपलब्धि है उनके काव्य रूपक। काव्य रूपक सर्वथा एक नई विधा हे। हिन्दी साहित्य में काव्यरूपक प्रायः कम ही लिखे गए हैं। काव्यरूपक के विषय में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'पंत जी का नूतन काव्य-दर्शन' पुस्तक में लिखा है।

रेडियों से सम्बद्ध होने के बाद पंत ने 'विद्युत वसन', 'शुभ्र पुरूष', 'उत्तरशती', 'फूलों का देश', 'रजत शिखर', 'शरद्चेतना', 'शिल्पी', 'ध्वंस शेष', 'अप्सरा', 'स्वप्न और सत्य' तथा 'सौवर्ण' जैसे काव्य रूपक लिखे, जो अधिकांशतः विचार-प्रधान हैं। ये रूपक कवि के आत्म-संघर्ष से लेकर व्यक्ति और विश्व की सभी संभव समस्याओं पर विचार करते हुए अंत में जीवन-निर्माण के एक नवीन स्वप्नलोक से जुड़ जाते हैं। इनमें भी पंत के अरविन्दवादी अंतश्चेतना की समन्वयवादी भूमिका ही अधिक उजागर हुई है। नाटय तत्वों की क्षीणता और काव्यत्व की प्रधानता के कारण स्वयं पंत भी इन्हें नाटक की अपेक्षा कथोपकथन प्रधान श्रव्य-काव्य ही कहना अधिक पसंद करते हैं। 'स्वर्ण धूलि' में संगृहीत 'मानसी' शीर्षक रचना गीतिनाटय का उदाहरण मानी जा सकती है। सात दृश्यों में विभक्त इस गीति नाटय की रचना एकांकी की पद्धति पर की गयी है। इसमें गीत, वाद्य, वेशभूषा आदि का भी समूचित विधान किया गया है।

'पन्त जी के काव्य रूपकों की प्रथम विशेषता है आन्तरिक संघर्षों को काव्यमय रूप देना। कल्पना के द्वारा लाए गये चित्रों के विरोध में वर्तमान काल का यथार्थ चित्रण भी कवि ने विस्तार से यत्र-तत्र किया है।

इस प्रकार चित्रमयता, कथोपकथन और अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से पन्त के काव्यरूपक सफल हैं।

(ग) प्रबंधात्मक कथा -

प्रबंधात्मकता की दृष्टि से 1965 में प्रकाशित पंत का 'लोकायतन' शीर्षक महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। इसे कवि ने दो खंडों में प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम खंड 'बाह्य परिवेश' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे चार उप शीर्षकों - पूर्व स्मृति, आस्था, जीवन द्वार, संस्कृति द्वार और मध्य बिंदु: ज्ञान के अंतर्गत विभक्त किया गया है। इन उप शीर्षकों के अंतर्गत भी अनेक गौण शीर्षक आयोजित किए गए हैं।

इस महाकाव्य का द्वितीय खंड 'अंतश्चैतन्य' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे तीन प्रमुख उपशीर्षकों कला द्वार, ज्योति द्वार और उत्तर स्वप्न: प्रीति - में विभक्त किया गया है। इस महाकाव्य में पंत जी ने भारतीय संस्कृति में प्रमुख प्रतीकों, विशेष रूप से रामकथा के पात्रों के माध्यम से प्राचीन के साथ नवीन को सम्बद्ध करने का कलात्मक प्रयास किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. ''सुमित्रानन्दन पंत 'प्रकृति के सुकुमार' एवं 'कोमल कल्पनाओं' के कवि हैं।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

2. पंत काव्य में महात्मा गाँधी, टैगोर और अरविन्द के दर्शन का प्रभाव रेखांकित कीजिए।

3. पंत काव्य में संवेदना और शिल्प विधान का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

4. पंत के रचनाकार व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए काव्य चेतना के विकास की जानकारी दीजिए।

5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:

(1) पंत काव्य में प्रगतिशील तत्व

(2) पंत काव्य में सौन्दर्य-विधान

(3) पंत काव्य में भाषा

(4) पंत काव्य में लोकहित चिन्तन

8.8 सारांश

सुमित्रानंदन पंत छायावादी काव्यधारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि हैं। अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने के लिए पंत जी के कथ्य और उसके प्रस्तुतिकरण में किसी प्रकार की दूरी नहीं है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के अभेद ने उनकी काव्य'-कला को अखण्ड सौन्दर्य प्रदान किया। वस्तुतः पन्त जी कल्पना और सौन्दर्य के कवि है और प्रकृति व नारी की आधारभूमि में उनका कल्पनाशील सौन्दर्यमयी व्यक्तित्व को विस्तार मिला है। परिणामस्वरूप सुन्दर काव्य सृष्टि का निर्माण हुआ। पंत जी का सौन्दर्य बोध देश और काल के अनुसार लगातार परिवर्तनशील व गतिशील रहा है। प्रगीत-कला का उन्मुक्त व स्वच्छन्द प्रयोग कवि ने किया है। खड़ी बोली की नीरसता को तोड़कर वे काव्यभाषा की चित्रमयता में नयापन उपस्थित करते हैं। उनकी कविता का स्वच्छन्दतावाद कथ्य संवेदना व शिल्प तीनो क्षेत्रों में नया परिवर्तन या क्रांन्ति उपस्थित करती है। पंत की संवेदना में विविधता थी। प्राकृतिक सौन्दर्य पर लट्टू होकर कल्पना की ऊँची उड़ान भरने वाले कवि ने यथार्थ के ठोस धरातल पर दीन-हीन श्रमिकों एवं कृषकों की दयनीय दशा के भी गीत गाए हैं।

वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना आदि की तरंगे बहुरंगी प्राकृतिक शोभा में रंगी हुई हैं तो युगांत, युगवाणी, ग्राम्या की लहरों में मानवीय ममता की मार्मिक सजीवता विद्यमान है; स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजत शिखर, वीणा - जैसी तरंगे बहिरंतर संयोजन से सम्पन्न हैं तो लोकायतन की विराट वीचि में समस्त विश्व की नवीन चेतना साकार है; अतिमा, सौवर्ण, पौ फटने से पहले, कला और बूढ़ा चाँद की तरंगे अधिकतर नूतन प्रतीकात्मक सौंदर्य प्रतिफलित करती है।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाजपेयी, डॉ. कैलाश, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

2. किशोर, डॉ. श्याम नन्दन, आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, प्रथम संस्करण में शिल्प।

3. डॉ. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, प्रथम संस्करण, नेशलन पब्लिशिंक हाउसेज, दिल्ली।

4. बाजपेयी, नन्द दुलारे, नया साहित्य नये प्रश्न, प्रथम संस्करण, विद्यामंदिर, ब्रह्मानल, वाराणसी-1।

5. पंत, सुमित्रा नन्दन, आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और नवीनता, ई. चैलिशेव, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

6. नीरज, गोपाल दास, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

7. भटनागर, डॉ. राम रतन, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद।

8. यादव, विश्वम्भर, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, किताब महल।

9. जोशी, शान्ति, सुमित्रा नन्दन पंत - जीवन और साहित्य, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

10. पंत, सुमित्रा नन्दन, छायावाद का पुर्मूल्यांकन, प्रथम संस्करण, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद।

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वाजपेयी, नंददुलारे, कवि सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997

2. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. तिवारी, संतोष कुमार, छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, भारतीय ग्रंथ निकेतन, 133, लाजपत राय मार्केट, नई दिल्ली, 11006, संस्करण-1974।

4. शर्मा, डॉ. हरिचरण, छायावाद के आधार स्तंभ, राजस्थान प्रकाशन जयपुर।

5. मिश्र, डॉ. रामदरश, छायावाद का रचनालोक, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली, 1980।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'सुमित्रानन्दन पन्त की कविता अनुभुति एवं अभिव्यक्ति के संतुलन का सुन्दर उदाहरण है।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई 9 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 महाप्राण निराला : व्यक्तित्व और कृतित्त्व
9.4 कवि-कर्म
9.5 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या
9.6 काव्य की अन्तर्वस्तु
 9.6.1 प्रेम और सौन्दर्य
 9.6.2 नारी के प्रति आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति: एक नवीन दृष्टिकोण
 9.6.3 प्रकृति चित्रण
 9.6.4 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना
 9.6.5 आध्यात्मिक चेतना
 9.6.6 विद्रोह धर्मिता
 9.6.7 विषाद और करूणा
 9.6.8 भक्ति-भावना
 9.6.9 व्यंग्य और विनोद
9.7 काव्य का रचना-विधान
9.8 सारांश
9.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थी! आप सभी जानते हैं कि छायावादी काव्यान्दोलन का उदय नवजागरण काल की बेला में हुआ। उस समय देश में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका था। छायावाद मुक्ति-'चेतना' का काव्य था। निराला के कवि मन में स्वाधीनता आन्दोलन व उसके बाद का परिदृश्य अपने पूरे सामाजिक व आर्थिक संदर्भों के साथ गहराई से पेठ गया था जिसकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है।

इस इकाई में छायावाद के प्रतिनिधि कवि के काव्य को छायावादी तत्वों व युगीन परिस्थितियों के आलोक में देखने की चेष्टा की गई है। उनके काव्य में आध्यात्मिकता बौद्धिकता के साथ भावुकता और अनुभूतियों को उद्दीप्त करने का विशिष्ट रचनात्मक कौशल भी है। निराला के प्रेम गीत हों, उद्बोधन गीत हों या अर्चना गीत हों, सभी में भाव, विचार और कल्पना का अद्भुत सौन्दर्य देखने को मिलता है। उन्होंने अपने युग में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, समाज के दीन हीन वर्ग - चाहे भिक्षुक हों या मजदूरिन, वर्ण व्यवस्था के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक अभिशापों पर निराला ने स्वच्छन्द अभिव्यक्ति दी है। निराला काव्य में संवदेनागत विविधता के साथ उनका शिल्पगत सौष्ठव भी निराला ही रहा। भाषिक कसाव और मुक्त छन्द के परिणामस्वरूप उनके काव्य ने अपने समय से आगे की अभिधा प्राप्त की।

इस इकाई में निराला काव्य का पाठ और उनके काव्य का अनुशीलन उक्त सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप:

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के जीवन-परिचय, व्यक्तित्व और कवि कर्म से परिचत हो सकेंगे।

2. निराला काव्य-पाठ से परिचित हो सकेंगे।

3. निराला के काव्य के पद्यांश की सप्रसंग व्याख्या करने की पद्धति को भली-भाँति समझ सकेंगे।

4. निराला काव्य की अन्तर्वस्तु व शिल्प सौन्दर्य को उद्घाटित कर सकेंगे।

5. छायावादी कवियों में निराला की स्थिति और उनके साहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे।

9.3 महाप्राण निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व

जीवन परिचय - महाकवि निराला का कवित्व जितना वैविध्यपूर्ण, रोचक एवं विशिष्ट है उतना ही उनका व्यक्तित्व भी उदार , दृढ़ व आकर्षक है। निराला का जन्म सन् 1896 में बसंत पंचमी के दिन 'कान्यकुब्ज' ब्राह्मण परिवार के पं. रामसहाय त्रिपाठी के घर उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के एक गाँव 'गंढ़ाकोला' में हुआ था। पं. राम सहाय त्रिपाठी बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में नौकरी करते थे। इनका स्वभाव उत्यन्त उग्र था और एकमात्र संतान निराला जी को पिता के क्रोध को झेलना पड़ता था। कहा जाता है कि निराला की माँ सूर्य की अराधना करती थी और इनका जन्म भी रविवार को हुआ था अतः निराला जी का जन्म नाम सूर्यकुमार रखा गया। बाद में स्वयं निराला जी ने इसे 'सूर्यकान्त' में परिवर्तित कर दिया। निराला जी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बंगला में ही हुई। हाईस्कूल के जीवन में ही इन्होंने संगीत, घुड़दौड़ और कुश्ती में दक्षता प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त संगीत में भी उनकी गहन रूचि थी व उनका कण्ठ स्वर बहुत सधा हुआ था। सन् 1911 में जब ये हाईस्कूल में अध्ययनरत थे तब इनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ। सन् 1916 में देश में जब महामारी का प्रकोप फैला तब त्रिपाठी परिवार भी उसके आगोश में समा गया। पिताजी चल बसे, उसके एक साल बाद इनके चाचा, भाई, भाभी, भतीजी और पत्नी की भी मृत्यु हो गई। अकेले तेईस वर्षीय निराला पर अन्य अपने एक पुत्री एवं पुत्र के अतिरिक्त चार बालकों के भरण-पोषण का भार आ गया। इन विषम परिस्थितियों में भी निराला अविचिलित रहे। निराला जी ने महिषादल राज्य में नौकरी की, परन्तु अपने स्वाभिमानी व विद्रोही स्वभाव के कारण निराला को नौकरी छोड़नी पड़ी। जीविका का और कोई साधन नहीं था इसलिए निराला जी साहित्य के क्षेत्र में ही अनुवाद, लेख, टीका-टिप्पणी जो भी लिख सकते थे, लिखते रहे और पत्र-पत्रिकाओं में छपवाने के लिए संघर्षरत् रहे। पर धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा का सम्मान हुआ और वे साहित्य-जगत में स्थिर होते गए।

वस्तुतः निराला जी का पूरा जीवन ही तूफानों में घिरने, टकराने और अन्ततः दृढ़ता से उन पर विजय पाने की अमर गाथा है। 'राम जी की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' की रचना उनकी इसी मन स्थित का प्रमाण है। 27 जनवरी, सन् 1947 को बसंत पंचमी के दिन निराला जयन्ती का समारोह बड़े धूमधाम से काशी में मनाया गया था। निराला के जीवन के अन्तिम दिन शारीरिक और मानसिक कष्ट में बीते और लम्बी बीमारी के उपरान्त 15 अक्टूबर, 1961 को दारागंज (प्रयाग) में उनकी इहलीला समाप्त हो गया। उनकी 'नये पत्ते ', 'बेला', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' दारागंज के लिखी गए रचनाएं मानी जाती है।

व्यक्तित्व - विषम परिस्थितियों में जहाँ निराला टूटे हैं वहीं अपने अन्तर से शक्ति-ग्रहण की जीवन-संघर्ष से जूझे भी हैं। यही कारण है कि निराला के व्यक्तित्व में हम संघर्ष प्रियता, रूढ़ियों का विरोध, विद्रोह व क्रान्ति का स्वर विशेष रूप से देखते है। तो दूसरी ओर करूणा तथा जगत की नश्वरता का भाव भी। निराला ने छन्द को ही निर्बन्ध नहीं किया वरन् स्वयं भी बन्धन रहित

रहे। फकीरी और स्वाभिमानी उनके स्वभाव में रही। उनके बाह्य व्यक्तित्व की झलक इस प्रकार से थी - ''कद लगभग छः फुट, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से परिपूर्ण आँखें, बैल की तरह चौड़े कन्धे, विशाल बाहू, तीखी सुडौल नासिका और लम्बे बाल। साहित्यिक सभा, गोष्ठियों और अन्य सामाजिक आयोजना में उनका सुदर्शन व्यक्तित्व छाया रहता था। उनकी आकृति और शारीरिक संरचना ग्रीक योद्धाओं के समान थीं, इसीलिए कोई उन्हें 'अपोलो' कहता था, तो कोई 'विवेवकानन्द'।

निराला जी जीवन भर परोपकारी रहे। निराला जी के आत्मसम्मान की प्रकृति को लोग अहंकार, समझते रहे परन्तु निराला जी का अहंकार व्यक्तिगत स्तर पर कभी नहीं रहा। वे बोलते तब समस्त हिन्दी साहित्य व साहित्यकारों की ओर से बोलते, दलित व पीड़ित मानव की ओर से बोलते। फैजाबाद के साहित्य सम्मेलन में आचार्य शुक्ल को नीचे और राजैनितक नेताओं को उच्च मंच पर आसीन देखकर वे टण्डन से उलझ गऐ थे। सन् 1935-36 में गाँधी जी जब हिन्दी साहित्य सम्मलेन के सभापति चुने गऐ थे तब हिन्दी साहित्यकारों के सन्दर्भ में दोनों की वार्ता में विरोधाभास नजर आया था। वास्तव में निराला का स्वाभिमान देश, जाति, संस्कृति और साहित्य का स्वाभिमान था। मानवता की रक्षा और सत्य पालन के लिए समाज की नजर में पतित, अछूत, नगण्य एवं पापी व्यक्तियों को भी बिना हिचक गले लगाया। इनकी पत्नी मनोहरा देवी के प्रति निराला का प्रेम भी अटूट था। जिस प्रकार रत्नावली के कथन ने तुलसी को राम भक्ति की ओर विमुख किया उसी प्रकार निराला को भी उनकी पत्नी के हिन्दी-कविता और देश-प्रेम की ओर मोड़ा। इस सम्बन्ध में एक घटना सर्वप्रसिद्ध है - मनोहरा देवी सुन्दर थी, पंडिता थी, साहित्यिक ज्ञान में निराला से बीस ही थी। एक दिन झल्लाकर निराला जी ने पूछा ''तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी में क्या है? जवाब मिला, ''तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं'' निराला जी ने कहा, ''हिन्दी हमें नहीं आती?'' मनोहरा देवी ने कहा ''यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत 'रामायण' पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली को क्या जानते हो? और फिर मनोहरा देवी ने हिन्दी के कई धुरंधर पडितों के नाम दोहरा दिए। निराला भौचक्के। यह बात उनके मन में गहरी चोट कर गई। उन्होंने हिन्दी सीखने की ठानी और रात-रात भर जाग कर सरस्वती और मर्यादा पत्रिकाओं के आधार पर हिन्दी सीखी और ऐसी सीखी कि साहित्यिक क्षेत्र में उनका अवदान अविस्मरणीय रहा। पत्नी का यह ऋण निराला भूले नहीं। सन् 1936 में प्रकाशित अपने 'गीतिका' काव्य संग्रह की अर्पण पत्रिका में अपनी पत्नी के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए निराला ने लिखा था - ''जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रूक्षता को देखकर मुसकरा देती थी। जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणिता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया का महत्व समझकर ही निराला ने 'तुलसीदस' काव्य की रचना की, जो उनकी एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक देन हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निराला को 'सजग' कलाकार कहा है। पं. नंद दुलारे वाजपेयी ने उनके लिए 'सचेत कलाकार' अभिधा का प्रयोग किया है और घोषित किया कि ''कविताओं के भीतर जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, न प्रसाद जी का, न पंत जी का। हिन्दी के साहित्यकार जिसमें शिवपूजन सहाय, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' या 'सुमित्रानन्दन पंत' या 'दिनकर' और बाद के रचनाकार जिनमें शमशेर, नागार्जुन, गिरिजाकुमार, माथुर, प्रभाकर माचवे और नरेश मेहता ने कभी कविताओं, कभी लेखों और कभी समीक्षाओं के माध्यम से हिन्दी क्षेत्र में निराला की कविताओं की पद प्रतिष्ठा की है।

9.4 कवि-कर्म

साहित्यकार अपनी वैचारिक संवेदना व रचनाओं की अन्तर्वस्तु समसामयिक परिवेश से अवश्य प्रभाव ग्रहण करती है। कवि कर्म का उद्देश्य समसामयिक यथार्थ बोध कराना होता है। इस दृष्टि से निराला जी के साहित्य पर विचार करते समय हम देखते हैं कि उनका रचना-कर्म 1916 से 1960 तक के सुदीर्घ कालखण्ड में फैला हुआ है। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने अतीत को पुनः स्मरण कर राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का गान किया और छायावादी युग तक आते-आते इस भावना ने नवजागरण का रूप ले लिया और मोहभंग की स्थित उत्पन्न हुई। निराला जी की कविताओं में पराधीन भारत में व्याप्त विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश व क्रान्ति का भाव तथा स्वतंत्र भारत में आदर्श व स्वप्न-भंग के कारण असंतोष व विद्रोह का भाव पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। निराला ने समसामयिक चेतना को काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

छायावादी काव्य का प्रारम्भ सन् 1918 के आसपास माना जाता है। उन्हीं दिनों निराला भी साहित्य- साधना में पूरी तन्मयता से लीन थे। सन् 1923 में 'अनामिका' नामक प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936), 'अनामिका' (1938), 'तुलसीदास' (1938), 'कुकुरमुत्ता ' (1942), 'अणिमा' (1943), 'बेला' (1943), 'अपरा' (1946), 'नए पत्ते ' (1946), 'अर्चना' (1950), 'आराधन' (1953) और 'गीत गुंज' (1953) आदि निराला के प्रकाशित काव्य संकलन हैं। 'अर्चना', 'अराधना' और 'गीत गुंज' में सुन्दर मंगलाचरण गीत भी है। गीतगुंज के गीत शब्दावली में सरल और संगीतोपयोगी हैं।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला-काव्य का अध्ययन पाँच चरणों में बाँटकर किया। प्रथम चरण में उन्होंने परिमल तक की कविताओं को रखा, दूसरे चरण में 'गीतिका' के गीतों को, तीसरे चरण में 'तुलसीदास', 'सरोजस्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसे दीर्घ प्रगीतों को, चौथे चरण में 'कुकुरमुत्ता ', 'अणिमा', 'बेला' और 'नए पत्ते' तक की प्रयोगात्मक रचनाओं को और पांचवे चरण में 'अर्चना'-'अराधना' व 'गीतगुंज' संकलित गीतों को स्थान दिया है। इनकी प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण की रचनाओं में समासयुक्त तत्सम बहुल शब्दावली का प्रयोग

अधिक मात्रा में हुआ है। चतुर्थ चरण की रचनाओं में बोलचाल की भाषा में कहीं व्यंग्य का तीख रूप है तो कहीं हास्य-व्यंग्य की मिश्रित छाया है। और अन्तिम चरण की रचनाओ में विशुद्ध एवं सरल, भक्ति-भाव सम्पन्न रूप मिलता है।

निराला के कवि-कर्म का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है - पूर्ववर्ती काल (1920-38) तक की निराला की मुख्य दार्शनिक कविताएँ मानी जाती हैं - 'अधिवास', 'पंचवटी प्रसंग', 'तुम और मैं', 'प्रकाश', 'जग का एक देखा तार' और 'पास ही रे', 'हीरे की खान'। 1939-40 ई. से विवेकानद का दर्शन उन्हें अपर्याप्त लगने लगता है और उनकी कविताओं में अन्य विचार पद्धतियों को अपनाने का भी संकेत मिलने लगता है। उनकी काव्य रचनाओं नया समाजशास्त्रीय चिंतन उभर कर सामने आता है। निराला की अनेक कविताओं में दीनों और दलितों का चित्रण किया गया है। अब तक निराला समाज और राष्ट्र की कठोर वास्तविकताओं के सामने नहीं आए थे। सारा राष्ट्र जिस प्रकार पुनर्जागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल के कुछ बड़े-बड़े आदर्शवादी स्वप्नों में खोया था, वे भी खोए थे। सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा है, भारत विश्व को नया आध्यात्मिक संदेश देगा, यह देश एक नए प्रकार की शक्ति के रूप में उभरेगा आदि स्वप्न ही थे, जो कि वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक के अंत और पांचवें दशक के आरंभ-काल में भारतीय प्रदेशों में कांग्रेस के शासन से त्यागपत्र देकर अलग हो जाने, द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ, भारत छोड़ों आन्दोलन, बंगाल के अकाल आदि राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं से ध्वस्त हो गए। स्वतंत्रता-आंदोलन में इस देश की निम्न तथा निम्न-मध्यवर्गीय जनता अब तक उपेक्षित थी।

9.5 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

1. कोई न छायादार,

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;

श्याम तन, भर बंधा यौवन

नत नयन, प्रिय-कर्म-रत-मन

गुरू हथौड़ा हाथ,

करती बार-बार प्रहार -

सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

प्रसंग: सन् 1937 में रचित 'तोड़ती पत्थर' निराला की एक प्रतिनिधि कविता मानी जाती है। अन्तर्वस्तु व कलात्मक गठन दोनों दृष्टियों से यह प्रभावित करती हैं। 1930 के बाद जब स्वाधीनता आन्दोलन में वर्गीय चेतना का समावेश होता है तब यह प्रश्न सामने आता है कि आजाद भारत में नव निर्माण का स्वरूप क्या होगा? तब निराला ने भी अपनी दृष्टि भारतीय जनता पर केन्द्रित की।

यह कविता इन पंक्तियों के साथ शुरू होती है: वह तोड़ती पत्थर/देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर - । वह तोड़ती पत्थर।'' इसमें कवि द्वारा 'इलाहाबाद' नगर विशेष का उल्लेख करने प्रासंगिकता को लेकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है। पं. नंद दुलारे वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'कवि-निराला' में उल्लेख किया है कि इलाहाबाद में पथ पर पत्थर तोड़ती हुई स्त्री को निराला ने 'आनंद भवन' के सामने की सड़क पर देखा था। कवि ने मजदूर वर्ग के दुखः व पीड़ा व उसके हृदय के घात प्रतिघात को पत्थर तोड़ती स्त्री के बिम्ब के रूप में अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या:- कवि लिखते हैं कि इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली औरत जहाँ स्वयं के अस्तित्व को स्वीकारते हुए अपनी मेहनत-मजदूरी कर रही है वहाँ कोई भी छायादार वृक्ष नहीं है। ग्रीष्म ऋतु की तेज-तपती धूप है और खुले आसमान व वीरानी में पत्थर तोड़ती मजदूरिन है। जैसे तपती-दुपहरी व उस मजदूरिन का साथ चिरस्थायी हो। कवि जब उस स्त्री को देखता है तो उसे लग रहा है जैसे उसका पत्थर तोड़ना काम प्रिय कार्य हो। उसका सांवला शरीर, भरा हुआ, संयत और सुघड़ यौवन, वह दलित स्त्री है, इसलिए उसका शरीर श्याम वर्ण का है, भरा-पूरा शरीर है पर बंधा है अर्थात संयत है। कवि के इस वर्णन से हमारे समक्ष काले पत्थरों से पत्थर तोड़ने वाली नारी की मूर्ति सजीव हो उठती है। मजदूरिन का एक सुन्दर चित्र उपस्थित होता है। उसकी आँखे झुकी हुई है और पत्थर तोड़ने के कार्य में रत है, जैसे यह उसका प्रिय कर्म हो।

कवि आगे लिखता है कि गुरू अर्थात् भारी हथौड़े से वह औरत बार-बार पत्थर पर प्रहार करती है उन्हें तोड़ने के प्रयास में व्यस्त है और उसके सामने घनी छाया वाले पेड़ों की पंक्तियाँ वाली अट्टालिका (विशाल भवन) है। कैसी विड़म्बना है। कवि दुखी है कि उस मजदूरिन को छाया मयस्सर नहीं है और सामने जो महल है वह छायास्नात् हो रहा है। किसानों और मजदूरों को आजादी दिलाने व अंग्रेजों के जुल्मों के खिलाफ लड़ने वाला यह भवन भी तरू-मालिका से परिपूर्ण है और यह स्त्री कितनी छाहं (सुरक्षा व विश्वास) में है। मजदूरिन के माध्यम से कवि की यह चिन्ता सम्पूर्ण मनुष्य की है और यही इस कविता की सार्वजनीनता है।

विशेषः-

1. श्याम-तन, भर बंधा यौवन/नत नियन, प्रिय-कर्म-रत मन' इन दो पंक्तियों छायावादी कवित्व के दर्शन होते है यद्यपि यह कविता विषम मात्रिक छंद की है परन्तु ये दो पंक्तियाँ

सममात्रिक चरण है, चौदह-चौदह मात्राओं के हैं। यहाँ चित्र जितना विशिष्ट है उतना ही व्यंजनापूर्ण है।

2. 'गुरू हथौड़ा हाथ/करती बार बार प्रहार' के यह पंक्ति ओजपूर्ण है। इसी तरह' सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार यह पंक्ति भी है/इनमें सघोष वर्ण-विन्यास के साथ-साथ दीर्घ स्वर 'आ' की पुनरावृत्ति से 'ओज' गुण का समावेश हो गया है।

3. 'छायादार', 'स्वीकार', 'प्रहार', और 'प्राकार' ये तुकांत शब्द इनमें आते हैं, जो इस पद्यांश में गजब का कसाव प्रदान करते हैं। अट्टालिका के साथ समानार्थी 'प्राकार' शब्द का प्रयोजन भी इसी अर्थ में है।

2. चढ़ रही थी धूप

गर्मियों के दिन,

दिवा का तमतमाता रूप;

उठी झुलसाती हुई लू

रूई ज्यों जलती हुई भू;

गर्द चिनगी छा गई,

प्रायः हुई दुपहर

वह तोड़ती पत्थर

प्रसंग:- पूर्ववत्

व्याख्या:- कवि लिख्ता है कि अपने कार्य में रत उस स्त्री को चढ़ते सूरज की तपन से भी कोई परेशानी नहीं है। गर्मियों के दिन में सूरज तेजी से ऊपर चढ़ने लगता है और धूप तीखी होती चली जाती है। तपन बढ़ने के साथ दिन का तमतमाता रूप चमकने लगा। भयंकर झुलसा देने वाली लु चलने लगी और पृथ्वी रूई के तरह जलने लगी जैसे ताप से रूई जल उठती है। गर्म हवा के थपेड़ों से मिट्टी के कण आग की चिनगारी की तरह वातावरण में छा गए, मजदूरिन को श्रम करते-करते दोपहर हो गई है और पत्थर तोड़ती जा रही है।

विशेष:-

(क) पूर्व में 'आ' स्वर की आवृति थी तो इस पद में 'धूप', 'रूप', 'लु', 'भू' जैसे 'उ' स्वर की आवृति ने तुकबन्दी का सौन्दर्य बढ़ा दिया है। 'दिवा का तमतमाता रूप' में चार बार 'आ' स्वर की आवृति है, जिससे दिन के फैलाव और विस्तार का बोध होता है।

(ख) 'प्रायः हुई दुपहर-/वह तोड़ती पत्थर' यहाँ तक आते-आते कविता के प्रवाह में एक ठहराव आ गया है यह ठहराव और संतुष्टि जैसे उस स्त्री के श्रम करने से उत्पन्न श्रांति को प्रकट कर रहा है।

3 दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुन्दरी परी सी,

तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास

मधुर-मधुर है दोनों उसके अधर

किन्तु गम्भीर,-नहीं है उनमें हास-विलास।

हँसता है तो केवल तारा एक

गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,

हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।

अलसता की-सी लता

किन्तु कोमलता की वह कली,

सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह

छाह-सी अम्बर पथ से चली।

शब्दार्थः- दिवसावसान: दिवस का अवसान, दिन का ढ़लना (संध्याकाल), मेघमय: बादलों से युक्त, तिमिरांचलः- अंधकार का आँचल, नीरवता:- खामोशी, अम्बर-पथः- आकाश रूपी मार्ग।

प्रसंग:- 'संध्या सुन्दरी' निराला द्वारा सन् 1921 में सृजित कविता है जो प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर प्रामाणिक दस्तावेज है। इस कविता में कवि ने संध्या को एक सुघड़ यौवन से परिपूर्ण युवती के रूप प्रस्तुत कर प्रकृति का मानवीकरण किया है। जिस संध्याकाल में, जब चराचर जगत विश्राम की स्थिति में आने लगता है, वातावरण में शान्ति उत्पन्न पक्षियों का कलरव बन्द

हो जाता है, उस समय निराला की संध्या रूपी सुन्दरी की नायिका क्लान्त जीवों को विश्राम देने के लिए बिना किसी उत्तेजना के धरती पर उतर रही है।

व्याख्या:- कवि निराला संध्या को एक सुन्दर परी की उपमा देते हुए लिखते हैं कि दिवस के अस्त होने के समय, संध्याकाल में बादलों से आच्छादित आकाश से संध्या रूपी सुन्दरी परी के समान उतर रही है। सूर्यास्त होने के पश्चात वातावरण में अंधकार, फैल रहा है। संध्या-सुन्दरी का आँचल जो अंधकार की तरह काला, उसे फैलाए हुए है और उसमें अन्य स्त्रियों की तरह चंचलता का कहीं आभास नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार फैलता जा रहा है। वातावरण मौन शांत है और चंचलता अर्थात् दिन के क्रिया कलाप शान्त हो गए हैं। कवि ने इस वातावरण को एक नायिका के बिम्ब के माध्यम से व्यक्त किया है।

इस संध्या-सुन्दरी नायिका के ओठ मधुर हैं, उनमें हास्य विलास नहीं अपितु गाम्भीर्य झलकता है। संध्या कालीन नीरव वातावरण में एक तारा टिमटिमाता हँसता हुआ दीखता है, वह संध्या सुन्दरी के घुँघराले बालों में गूँथा हुआ प्रतीत होता है, ऐसा लगता है कि वह उदित एकमात्र तारा उस हृदय-राज्य की रानी का अभिषेक (अभिनन्दन) कर रहा है। संध्या रूपी नायिका मानों सभी चराचर जगत के हृदय पर राज करने वाली है सभी की प्रिय है। वह धीर, गंभीर और शांत है। संध्या रूपी सुन्दरी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कवि लिखते हैं कि संध्या-परी अलसाई सी, कोमल कली के समान है और अपनी सखी नीरवता के कन्धे पर हाथ रख कर छाया के सामन आकाश मार्ग से जा रही है। वातावरण में व्याप्त शांत व मौन के कारण नीरवता को संध्या का सखी गहा गया है।

विशेष:-

इस पद्यांश में उपमा अलंकार हेतु जैसे परी सी, अलसता की सी लता और छाँह-सी जैसे शब्द, काले-काले मधुर-मधुर में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार प्रयोग है।

सम्पूर्ण पद्यांश में संध्याकालीन परिदृश्य का गतिशील-बिम्ब चित्रित हुआ है।

प्रकृति का मानवीकरण अद्भुत सार्थक है व कवि के भवुक मन और कल्पना-सौन्दर्य का जीवन्त निदर्शन हुआ है। नीरवता को संध्या की सखी कहने से वातावरण सजीव व अर्थयुक्त गरिमा से भर गया हैं

4. आज ठंडक अधिक है।

बाहर ओले पड़ चुके हैं

एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था -

अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेध जाती है
गेंहू के पेड़ ऐंठे खड़े हुए हैं
खेतिहरों में जान नहीं
मन-मारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक-दूसरे से गिरे गल बातें करते हुए
कुहरा छाया हुआ है
ऊपर से हवाबाज उड़ गया।
जमींदार का सिपाही लट्ठ कंधे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
'डेरे पर थानेदार आए हैं;
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है
एक हफ्ते के अन्दर देना है।
चलो, बात दे आओ
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करूणा से बंधु खेतिहर को देख-देखकर।

प्रसंग:- महाकवि निराला की दृष्टि प्रगतिवादी थी। उन्होंने हमेशा कृषक-मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति पीड़ा व दुखः को महसूस किया। गाँव में जमींदार-कृषक वर्ग के संघर्ष उन्होंने हमेशा किसानों का पक्ष लिया था और अपनी कविताओं उसे अभिव्यक्ति दी। इस दृष्टि से 'नए पत्ते ' में

संकलित उनकी पाँच कविताएँ ‘कुत्ता भौंकने लगा‘, ‘झींगुर डटकर बोला‘, ‘छलांग मारता चला गया‘, ‘डिप्टी साहब आए‘ और ‘महगू महगा रहा‘ उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कविता ‘कुत्ता भौंकने लगा‘ उन किसानों से सम्बन्धित है जिनकी फसल पहले से ही बर्बाद हो चुकी है लेकिन जोर जबरदस्ती से चंदा वसूलने की पीड़ा को भी झेल रहे हैं।

व्याख्या:- कवि किसानों की दीन दशा को व्यक्त करते हुए लिखता है कि शीत ऋतु में पाला पड़ने से किसानों की फसल नष्ट हो रही है। किसान सोच रहा है कि आज तो ठण्ड बहुत ज्यादा है बरसात में ओले गिरने से वातावरण में ठिठुरन बढ़ गई है। अभी तो हफ्ते पहले ही पाला पड़ चुका था, उस पर फिर ओलो की मार। अरहर (उत्तर प्रदेश की मुख्य फसल) पूरी तरह से नष्ट हो गई; ठण्डी हवा शरीर की हड्डियों को बेध जाती है, हवा की चुभन ऐसी है जैसे तीर मार रही हो। इस भयंकर ठण्ड में गेहूँ के पेड़ भी ठिठुर रहे हैं, एक-दूसरे से उत्साहहीन (गिरे-गले) बाते करते हुए खेतीहर मजदूर निष्प्राण हो कर, मन मसोस कर अपने दरवाजे पर अलाव ताप रहे हैं। धूप का कहीं नामोनिशान नहीं और भयंकर कोहरा छाया हुआ हे। इस पर एक परेशानी किसानों ने देखी कि आसमान में युद्ध विमान मंडराकर उड़ गया। विशेष महाकवि निराला ने कृषकों की दयनीय (स्थिति मौसम की मार के साथ-साथ युद्धविमान का जिक्र कर वातावरण में भयानक रस का संचार कर दिया) इस तरह करूणा व भयानक रस चित्रण अद्भुत बन गया है।

निराला लिखते हैं कि कृषक वर्ग की संवदेनाएँ सामान्य भी नहीं हो पाई कि जमींदार का सिपाही कंधे पर लाठी रखकर अलाव के चारो ओर बैठे खेतिहर को देखकर कहा कि डेरे पर थानेदार आया है और डिप्टी साहब ने जो कर लगया है उसे एक सप्ताह के भीतर भरना है उन्हें जाकर जवाब दे आओ। जमींदार डिप्टी व सिपाही सभी का आतंक बेबस किसानों पर हैं अन्त में निराला ने किसान के एक कुत्ते का वर्णन किया है जो अलाव से कुछ हटकर अन्य खेतिहर के साथ बैठा हुआ था। वह सिपाही को जाता हुआ देखकर खड़ा हुआ और करूणा से बंधु-खेतीहर को देख-देखकर भौंकने लगा। कुत्ते को भी कृषक की विवशता व वेदना पर करूणा उत्पन्न हो रही है, यह विडम्बना ही है कि मानव-मन, मानव के लिए करूणा नहीं है लेकिन जानवर के मन में करूणा-शेष है। यह एक व्यंजनात्मक प्रयोग है।

विशेष:-

1. कवि ने खड़ी बोली में कृषक-जीवन के त्रासद-खण्ड का यथार्थ चित्रण उपस्थित किया हे। जिसके ‘हफ्ते‘, ‘दरवाजे‘ और ‘हवाबाज‘ जैसे फारसी शब्द हैं तो ‘कौड़े‘ जैसे क्षेत्रीय शब्द भी हैं। ‘गिर-गले‘ और ‘बाद दे आओ‘ जैसे मुहावरों का प्रयोग सहज व अकृत्रिम है।

2. इस कविता में वर्णनात्मक व चित्रात्मक दोनों शैलियों का बखूबी प्रयोग हुआ है। साथ ही संवाद भी है।

3. ''कुत्ता भौंकने लगा' करूणा से बंधु खेतिहर को देख-देखकर'', पंक्ति में दयनीय खेतीहर के प्रति मानव की अपेक्षा जानवर के हृदय में करूणा को व्यक्त करने की व्यंजना अनूठी है।

5. ''अबे सुन बे, गुलाब

भूल मत, गर पाई खुशबु रंगोआब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट

कितनों को तूने बनाया है गुलाम

माल कर रक्खा, सहाया जाड़ा-धाम

हाथ जिसके तू लगा

पैर सर पर रख वह, पीछे को भगा।''

शब्दार्थ:-1. रंगोआब: रंग और चमक-दमक, 2. अशिष्ट: असभ्य, 3. कैपीटलिस्ट: पूँजीपति, 4. जाड़ा-धाम: सदी-गर्मी।

प्रसंग:- यह पद्यांश कुकुरमुत्ता कविता से लिया गया है। कुकुरमुत्ता कविता में सामाजिक विषमता पर व्यंग्य कसा गया है। इस कविता में निराला की प्रगतिशिल दृष्टि का स्वर दृष्टव्य है। ''तुलसीदास'' और ''राम की शक्ति पूजा'' जैसी उत्कृष्ट छायावादी रचनाओं के बाद, निराला की काव्य यात्रा में विशेष परिवर्तन दृष्टिगत होता है। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद बढ़ती पूँजीवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य में पगे आक्रोश को इस कविता में कवि ने कुकुरमुत्ता और गुलाब के माध्यम से व्यक्त किया है। ''गुलाब'' पूँजीपति वर्ग का ओर कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। इस पद्यांश में फारस देश के विदेशी गुलाब के समक्ष उसकी विशिष्टता को नजरअंदाज करते हुए कुकुरमुत्ता निर्भय हो अपने अस्तित्व को व्यक्त करते हुए कहता है।

व्याख्या:- अबे। गुलाब, तू यह मत भूल की यह बाह्य चमक-दमक और खुशबु तूने प्राप्त की है वह सब तेरी है। इसमें तेरा कोई योगदान नहीं है। हे असभ्य। सर्वप्रथम तो तू ने 'खाद' का खून चूस-चूस कर परजीवी की तरह वृद्धि की और डाल पर पूर्ण विकसित होकर अपनी सुगन्ध बिखेर रहा है। यहाँ कुकुरमुत्ता उसे नीचा दिखाते हुए असभ्य के साथ-साथ पूँजीपति (कैपीटलिस्ट) भी कहता है।

इस पूँजीपति वर्ग रूपी गुलाब ने अधिकांश व्यक्तियों को गुलाम बना दिया है। अपने वैभव-विकास के खातिर उसने व्यक्तियों सर्दी-गर्मी की भीषणता सहन करने को मजबूर किया और माली बनाकर रख दिया। हे गुलाब। तेरी प्रवृत्ति व स्वरूप बहुत सम्मोहक है। तुझे प्राप्त करने के उन्माद ने सभी को जीवन की भटकन में लगा रखा है।

विशेषः-

1. कवि में 'कुकुरमुत्ता ' के माध्यम से व्यंग्य व आक्रोश व्यक्त करते हुए उल्लेख किया कि सामाजिक पुनर्जागरण का भाव जोर पकड़ रहा है। गुलाब का समय अब समाप्त हो गया है और जन शक्ति व मजदूर का प्रतीक कुकुरमुत्ता का जीवन सार्थक माना जाएगा।

2. काव्य की भाषा-शैली में ठेठ देशी व उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य है। छन्द के बंधन से मुक्त कवितांश का प्रभाव नयापन लिए हुए हैं।

9.6 काव्य की अन्तर्वस्तु

निराला जी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनके व्यावहारिक जीवन और साहित्य-सृजन में कोई भेद नहीं है। निराला जी का सम्पूर्ण कृतित्व उनकी जीवन-साधना और समसामयिक युगचेतना का प्रतिरूप है। छायावाद के समूचे परिदृश्य में सबसे बड़े विद्रोही कवि के रूप में निराला की ख्याति है और यही इनकी विशिष्टता है। राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, बादल-राग, जागो पुरि एक बार, तोड़ती पत्थर, विधवा, स्मृति, वनबेला, कुकुरमुत्ता , तुलसीदास, महगा महगा रहा, छत्रपति शिवाजी का पत्र जैसे ऊर्जास्वित कविताएँ अपने गहन भावबोध व कटु यथार्थ के कारण व्यक्ति को बार-बार पराजित होने के बाद भी उसके आत्मबल व स्वाभिमान को उन्नत करती हैं। निराला के समग्र काव्य की संवेदना को जानने के लिए हमें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा -

9.6.1 प्रेम और सौन्दर्यः-

छायावादी कविता में एक व्यापक सौन्दर्य चेतना दिखई देती है और उसका माध्यम रहे हैं - प्रकृति और नारी। निराला ने भी छायावादी कवियों की तरह प्रकृति और नारी के रूप-सौन्दर्य के अद्भुत चित्र खींचे हैं। निराला ने सौन्दर्य को ललित कला का मुख्य आधार माना है। चित्रकार जितनी सुन्दर कल्पना कर सकता है, उसका चित्र उतना ही सुन्दर होता है। यही तथ्य कवि और उसके बिम्ब-प्रस्तुतीकरण में विद्यमान है।

निराला काव्य में नारी के मांसल-अमासंल, दिव्य, मर्यादित व अप्सरा सौर्न्य में भी दर्शन होते हैं। नारी सौन्दर्य अंकन में निराला ने चित्रण पद्धति का सहारा लिया है - उदाहरणार्थः

प्रिय यामिनी जागी।

जलस, पंकज द्रग अरूण मुख

तरूण अनुरागी

खुले केश अशेष शोभा भर रहे

पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।

$ $ $

हेर उर-पट फेर मुख के बाल

लख चतुर्दिक चली मंद मराल

गेह में प्रिय-स्नेह की जयमाल

वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में तागी।

यद्यपि इस गीत में एन्द्रिय सौन्दर्य विद्ग्रमान है किन्तु अन्त में 'साधना की मुक्ति मुक्ता' कहकर निराला ने नारी-सौर्न्य की उच्चता व्यक्त की है। परिमल काव्य संग्रह में निराला ने सौन्दर्य को यौवन के मधुर रूप से जोड़ते हुए कहा है ''यौवन के तीर पर प्रथम था आया जब स्त्रोत, सौन्दर्य का, वाचियों में कलरव सुख-चुम्बित प्रणय का।''

लेकिन कवि की अनुभूति नारी के कोमल व बाह्य सौन्दर्य चित्रण में ही व्यक्त नहीं होती वरन् शौर्य, उत्साह, पुरूषता, दीनता, कातरता आदि भावों में भी है। निराला उस नारी में भी सौन्दर्य-छवि ढूँढ़ लेते हैं जो मेहनतकश है मजदूरिन है। कवि का सौन्दर्य बोध रूढ़िबद्ध नहीं है, जो 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में चित्रित किया गया है -

''श्यामतन, भर बंधा यौवन

नत-नयन, प्रिय-कर्म रत मन।''

निराला-काव्य में नारी-सौन्दर्य के ऐसे दिव्य एवं पावन रूप मिलते हैं जो पुरूष का मार्गदर्शन कर उनमें आत्मगौरव का भाव भरते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' कविता में राम के निराश मन को सीता का सौन्दर्य पुनः कर्त्तव्य की याद दिलाता है।

''जानकी-नयन-कमनीय, प्रथम कंपन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,

हर धनु भंग, को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।

फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,

फिर विश्व विजय-भावना हृदय में आई भर।''

निराला की दृष्टि में प्रेम जीवन और जगत का सर्वाधिक-मूल्यवान तत्व है। प्रेम का सबसे बड़ा महत्व यह है कि वह स्वयं असूत्र होते हुए भी विश्व के प्राणियों को एकसूत्र में बाँधे हुए है:-

''प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो, उर-उर के हीरों के हार,

गूँथे हुए प्रणियों को भी, गूंथे न कभी, सदा ही सार।

वस्तुतः प्रेम का जनक सौन्दर्य ही है। प्रेम का मूल आधार रूप-असक्ति है और रूप-आसक्ति सौन्दर्य से उत्पन्न होती है। निराला के काव्य में प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, अध्यात्मक-प्रेम और उद्दात -प्रेम का चित्रण मिलता है।

9.6.2 नारी के प्रति आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति: एक नवीन दृष्टिकोण:-

काव्य में यद्यपि प्रेम व सौर्न्य चित्रण बिन्दु में नारी-सौन्दर्य के उज्जवल रूप का भी उल्लेख किया गया है फिर भी निराला इस पर विस्तार से विचार करना अपेक्षित है। निराला 'तुलसीदास' की रत्नावली में नारी का अत्यंत तेजस्वी और उज्ज्वल रूचप देखते हैं। निराला ने 'तुलसीदास' के रूप में नारी को जो महिमामय रूप देखा वस्तुतः यह नारी का सौंदर्य-चित्र संपूर्ण हिन्दी साहित्य में सबसे अलग गौरव-पद का अधिकारी है। वे 'तुलसीदास' के रूप में देखते है।। उसके शब्दो में विद्युत की सी तीव्रता थी किंतु उनमें चपलता न होकर दृढ़ता थी, जिन्हें सुनकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे जल पर लक्ष्मी ही जाग पड़ी हो अथवा निर्मल बुद्धि वाली, विमला सरस्वती ही चंचल हो उठी हो। उस समय वह उन्हें तेज की दिव्य -प्रतिमा जान पड़ी हो उसे देख पत्नी के प्रति तुलसीदास का समस्त कामुक आवेग भस्म हो गया। इस प्रकार निराला नारी की असीम शक्ति का परिचय देते हैं। नारी श्रृंगार के उत्तेजनात्मक उद्दाम श्रृंगार खींचने वाले निराला अंततः नारी के प्रति उदार, आदशीकृत मर्यादाशील दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

तन की मन की धन की हो तुम

काम कामिनी कभी नहीं तुम

सहज स्वामिनी सदा नहीं तुम

स्वर्ग दामिनी रही वहीं तुम

अनयन नयन-नयन की ही तुम

निराला के काव्य में नारी 'भाव व बुद्धि के समन्वित रूप को अपनाने वाली है। उसमें ये दोनों गुण विद्यमान हैं 'वह रत्नावली, नाम-शोभन

पति-रति में प्रतनु, अतः लाभनः

अपरिचित-पुण्य अक्षय धन कोई।'

तुलसी के रूप में निराला भौतिक प्रेम-सुख की प्रशंसा करते नहीं अघाते। उनकी पत्नी दैहिक एंद्रिय-प्रेम को पूर्ण परितोष देने वाली अत्यंत सुंदरी नारी थी। कवि के अनुसार - 'वह मायायन (रंग भवन, भोगगमन) में प्रिय के साथ वैयक्ति रूप में केवल अभी शयन करने वाली ही थी, किंतु यथार्थतः वह प्रियतम के हाथों को सहारा देने वाली (प्रिय को सन्मार्ग पर लाने वाली) सत्य का दण्ड थी, वह समष्टिगत-रूप में श्रद्धा स्वरूपिणी थी (जो कवि के लिए सत्य के मार्ग की प्रेरक थी)। वह भोग-मुग्ध पति की भाँति सुषुप्त न होकर जागृत (चैतन्य, उद्बुद्ध) थी। तभी तो समय आने पर तुलसी की वासनांधता - जिससे सामाजिक मर्यादा का हनन हो रहा था, वह सहन नहीं कर पाती। उसके रोषावेश से तुलसी का वासना-मोह टूट जाता है। इस प्रकार कवि अनुभव करता है कि जीवन के भो-विलास, बाह्य एवं आंतरिक निर्मलभाव तथा योगियों के शम, दम, संयम आदि की पूर्ति दाम्पत्य-प्रेम से ही संभव है।

'लखती ऊषारुण, मौन, राग;

सोते पति से वह रही जाग;

प्रेम के फाग में आत्म त्याग की तरुणा।

गृह की सीमा के स्वच्छ भास

भीतर के, बाहर के प्रकाश,

जीवन के, भावों के विलास, शम-दम के।'

इसी एक महान् परिचय (दाम्पत्य-सूत्र) से निःसृत प्रेम का प्रकाश ही संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है जिसमें देह (असत्) और सत् (मन और आत्मा) को आप्लावित करने की पूर्ण शक्ति है। अथवा जिसका मार्ग असत् (भोग) सत् (योग) की ओर है। यह भारतीय-संस्कृति के मूल आदर्शों के प्रति रुचि का ही परिणाम है।

इसी तरह एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं -

'........ दो नीलकमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण

पूरा करता हूं देकर मातः एक नयन।'

कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,

ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक;

ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन

ले अर्पित करने को उद्यत हो गए सुमन

पत्नी-प्रेम का यह उदाहरण न पुराण में है, न इतिहास में।

निराला के इस नारी-प्रेम के पीछे उनकी पूरी युगीन चेतना है। वाल्मीकि और तुलसी से तुलना करने पर वह क्रांतिकारी साबित होती है। लंका-युद्ध में विजय के बाद जब रावण की कैद से निकालकर सीता को राम के सामने लाया गया, तो उन्होंने उनके कहा-तुम यदि यह समझती हो कि मैंने यह युद्ध तुम्हारे लिये किया है, तो वह गलत है। मैंने यह युद्ध इसलिए किया लोग यह न कहें कि रावण मेरी पत्नी को हरकर ले गया और मैंने कुछ नहीं किया। रावण की कैद में रहने के बाद यदि तुम यह सोचती हो कि मैं तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार कर लूंगा, तो वह असंभव है। अब तुम कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र हो, या मेरे इतने योद्धाओं में किसी के साथ रहना चाहो, तो रह सकती हो। यह वाल्मीकि रामायण है। तुलसीदास की स्थिति आदिकवि से अधिक भिन्न नहीं है। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर जब राम विलाप करते हैं, तो साफ शब्दों में कहते हैं कि 'नारि हानि विशेष छति नाहीं' अर्थात पत्नी की मृत्यु से कोई खास नुकसान नहीं। पंत जी के शब्दों में कहें, तो खैर, पैर की जूती, जोरू/न सही एक, दूसरी आती'। इस वधु-दहन के युग में, तब पति अपने माता-पिता से मिलकर तिलक-दहेज के लोभ में अपनी पत्नी को जिंदा जला रहा है, 'राम की शक्तिपूजा' में राम के माध्यम से अभिव्यक्त पत्नी-प्रेम की उच्चता और मानवीयता का महत्व आसानी से समझा जा सकता है।

9.6.3 प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण:- निराला जी का धीर, गम्भीर और विद्रोही व्यक्तित्व उनके प्रकृति चित्रण में भी अभिव्यक्त हुआ है। उनके प्रकृति-परक काव्य में उनके अन्तः संघर्ष और तत्कालीन प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन होता है। 'जूही की कली', 'शैफालिका', 'यमुना के प्रति', 'नर्गिस', 'वन बेला' और 'संध्या-सुन्दरी' आदि कविताओं में प्रकृति का श्रृंगार, कोमलता, सौन्दर्यचेतना व मानवीकरण झलकता है तो दूसरी और 'बादल' कविता में विद्रोह का स्वर। निराला के सामाजिक और मानसिक संघर्षों की स्थिति में यदि कोई वस्तु उन्हें सान्त्वना देती रही है तो वह प्रकृति की सौन्दर्य-राशि ही है। उनकी दार्शनिक भावनाएँ प्रकृति को माध्यम बनाकर प्रकट होती है। उस असीम सत्ता के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए निराला कहते हैं:-

''तुम तुंग-हिमालय-श्रृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता

तुम विमल-हृदय उच्छवास और मैं कान्त-कामिनी कविता''

निराला ने प्रकृति का उपदेशात्मक, आलंकारिक व पृष्ठभूमि के रूप में भी चित्रण किया है। प्रकृति का मानवीकरण व प्रतीक रूप चित्रण में भी निराला जी का वैषिष्य है। ऋतुगीतों में उन्होंने सभी ऋतुओं पर लिखा है।

9.6.4 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना:-

निराला ने देश प्रेम व राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मातृभाषा वन्दना के रूप में भी की है। आज के समान उस समय देश में भाषा सम्बन्धी विवाद नहीं था। उस समय स्वतंत्रता आन्दोलन की तरह ही राष्ट्रभाषा या मातृभाषा का प्रेम भी दिन-प्रतिदिन महत्व प्राप्त करता जा रहा था। निराला लिखते हैं:-

''बंदौ पद सुन्दर तव,/छंद नवल स्वर गौरव,

जननि, जनक-जननि-जननि,/जन्मूभूमि-भाषे।

जागो, नव-अम्बर-भर,/ज्योतिस्तर वाले।''

कवि निराला का मानना है कि भारत वह भूमि है जहाँ से अन्य जातियों को मानवीय गुणों की सीख मिलती है। भारत की एक गौरवशाली सांस्कृति परम्परा है जिसका गान यत्र-तत्र निराला ने किया है। वीरता के लिए कवि निराला भीम, अर्जुन आदि का स्मरण करते हैं। जातीय गौरव के लिए मर मिटने वाले राणा प्रताप की वीरता का स्मरण करते हैं। कृष्ण का अर्जुन को कर्मप्रवृत रहने का शाश्वत जीवन-सिद्धान्त का उल्लेख निराला इस प्रकार करते हैं:-

योग्यजन जीता है,/पश्चिम की उक्ति नहीं,/गीता है, गीता है-/स्मरण करो बार-बार'।

अतीत का स्मरण की कवि कहना चाहता है कि यदि अतीत इतना वैभवपूर्ण हो सकता है तो वर्तमान क्यों नहीं, फलतः उनके काव्य में जन जागरण का स्वर मुखर होने लगा। कवि लिखते हैं -

'जागो फिर एक बार!

समर में अमर कर प्राण

गान गाये महासिंधु-से

सिंधु-नद-तीखा सी

सैंधव तरंगों पर

चतुरंग-चमू-संग

शेरो की मांद में

आया है आज स्यार।

कवि देशवासियों को उनके शेर होने का अहसास कराता है जिससे वे अंग्रेजी रूपी सियारों को खदेड़ कर स्वाभिमान पूर्वक जीवन जी सके। कवि को विश्वास है कि अवश्य ही एक दिन हिन्दुस्तान में स्वतंत्र विचारों का प्रकाश नजर आएगा। उप निवेशवादियों की स्वार्थ भावना का विनाश होगा। 'शिवाजी के पत्र' कविता में कवि विदेशी शासन को नष्ट करने के लिए 'भारतीयो में मातृभूमि के लिए बलिदान, स्वतंत्रता की प्रबल कामना और संगठित जनशक्ति का आह्वान करता है:-

''शत्रुओं के खून से, धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,

कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे, निर्जर हो जाओग-अमर कहलाओगे।''

निराला कामना करते है:

''जन जीवन के स्वार्थ एकल

बलि हों तेरे चरणों पर माँ

मेरे श्रम संचित सब फल,

क्लेदयुक्त अपना तन दूंगा,

मुक्त करूँगा तुझे अटल।''

निःसन्देह तत्कालीन परिस्थितियों में जनता को जाग्रत करने में अवश्य ही इन कविताओं का योगदान रहा होगा।

9.6.5 आध्यात्मिक चेतना -

निराला जी के काव्य में आध्यात्मिक विचारों का एक अखण्ड प्राणवान् स्त्रोत प्रवाहित है। स्वानुभूति के कारण ही उनके चिंतन पर बौद्धिकता का गहन पुट प्राप्त होता है। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द आदि के विचारों का प्रभाव निरालाजी पर था। स्वयं उन्होंने उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन किया था। वे अपने को और

साथ-साथ प्रकृति के कण-कण में विराजमान उस असीम सत्ता के नायक को भी ढूँढ रहे थे। 'कौन तम के पार?' वे बार-बार प्रश्न कर रहे थे। इस जगत् का नियन्ता कौन है? अखिल विश्व उसमें है या वह अखिल विश्व है? या फिर दोनों एक हैं?

तुम हो अखिल विश्व में

या यह अखिल विश्व है तुम में

अथवा अखिल विश्व तुम एक,

यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक?

पाया हाय न अब तक इसका भेद!

सुलझी नहीं ग्रंथि मेरी, कुछ मिटा न खेद!

और फिर विश्व में वे सर्वत्र एक ही सत्ता का आभास पाते हैं। एक ही श्याम सुन्दर का सर्वत्र दर्शन करते हैं।

जिधर देखिये श्याम विराजे

... ...

श्रुति के अक्षर श्याम देखिये

दीपशिखा पर श्याम निवाजे

श्याम तामरस, श्याम सरोवर

श्याम अनिल, छवि श्याम सँवाजे।

ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति है, अन्त में जगत् उसी के लीन होता है। मानव जीवन के सभी कर्मों का ब्रह्म से ही उत्पन्न होना और ब्रह्म में ही लीन होना निरालाजी मानते थे

जीवन की विजय, सब पराजय

चिर अतीत आशा सुख, सब भय

सब में तुम, तुम में सब तन्मय।

परमसत्ता को खोजने वे और कहीं नहीं गये। उनका चिन्तन उस परब्रह्म को स्वयं में ही ढूँढ लेता है। जो लोग उसे पात-पात, डाल-डाल ढूँढते फिरते है। उनके लिये उन्होंने कहा:

पा ही रे, हीरे की खान
खोजता कहाँ और नादान?
कहीं भी नहीं सत्य का रूप
अखिल जग एक अन्ध-तम-कूप
ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु महान,
खोजता कहाँ यहाँ नादान?

माया का यह आचरण हटते ही कवि जीवन और आत्मा के परस्पर सम्बन्ध की एकात्मकता को जान लेता है। दोनों वास्तव में एक ही हैं, भेद उनके लघु-गुरू स्वरूप का मात्र है।

तुम तुंग -हिमालय-श्रृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता
तुम विमल हृदय उच्छवास,
और मैं कान्त-कामिनी-कविता।

निराला भक्त ही थे। सगुणोपासक भक्तों की तरह उनकी कविता में भक्ति के सभी अंगों और प्रकारों के दर्शन होते है। बुद्धि के धरातल पर स्थित तथा भावना से संपृक्त उनका भक्ति-काव्य भारतीय भक्ति-काव्यधारा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'आराधना' और 'बेला' के असंख्य गीत इसके प्रमाण है।

निराला विवेकान्द और रामकृष्ण परमहंस से पर्याप्त प्रभावित थे। निराला का दर्शन समन्वयवादी है। उसमें तर्कवाद, भक्तिवाद और कर्मवाद का अद्भुत समन्वय हे। वे इन तीनों के समन्वय ही मानव के व्यावहारिक जीवन की संगति समझते थे। पंचवटी प्रसंग में लिखते हैं:-

'भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दिखते हैं
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ -
द्वैतभाव ही है भ्रम।''

इस प्रकार निरालाजी के आध्यात्मिक काव्य के दो स्तर हो सकते हैं। प्रथम वह जिसमें वे अधिक दार्शनिक हैं, और जो उनकी रहस्यवादी रचनाओं का रूप ग्रहण करता है। दूसरा स्तर उनके आध्यात्मिक काव्य का है, जो शुद्ध भक्ति-काव्य है, जहाँ वे सभी से निराले हैं। एक समर्पण एवं तल्लीनता की भावना दिखाई देती है।

9.6.6 विद्रोह धर्मिता:-

सामान्यतः निराला को विद्रोही कवि कहा जाता है। विचारों के धरातल पर बुद्ध, कबीर, मार्क्स, गांधी के संदर्भ को देखे तो एक लम्बी परम्परा भारत में वैचारिक विद्रोह की मिलती है। यह निराला की विशिष्टता है कि उन्होंने इस व्रिदोही परम्परा को अपने कवि-व्यक्तित्व में रचा-बसा कर काव्य अनुभूतियों को नया मोड़ दिया। निराला के विद्रोही कवि-मानस का प्रथम परिचय 1916 में लिखी 'जूही कही कली' कविता में देखने को मिला जिसमें पूर्ववर्ती छंदबद्ध कविता के बंधन को मुक्त कर उन्होंने मुक्त छन्द का रास्ता दिखाया। वस्तुतः जूही की कली कविता की भाव-संवेदना, अबाध प्रणय-पिपासा को छंदबंधन में व्यक्त करना अकाव्यात्मक होता। निराला काव्य में आंतरिक अनुभूति के अतिरेक के कारण ही यह मुक्त छंद सामने आया। निराला एक ही समय में छन्दोबद्ध और छन्दमुक्त कविता लिखते थे क्योंकि उनका मानना था कि अनुभूति की भीतरी लय ही अभिव्यक्ति का रूप निश्चित करती है। यद्यपि निराला का मुक्त छन्द साहित्यिक समाज को नहीं रूचा था और सम्पादकगण इसी वजह से उनकी रचनाओं को छापने मे संकोच करते थे पर परिवेश के बंधन व नियमों को तोड़ने मे निराला का कवि व्यक्तित्व पीछे नहीं रहा।

सरोज स्मृति में वे लिखते हैं:-

''लिखता अबाध्य गतिमुक्त छन्द,/पर सम्पादकगण निरानन्द/वापस कर देते पढ़ सत्वर,/दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर ।''

निराला ने साहित्यिक ही नहीं वरन् सामाजिक बंधन और धारणाओं का भी विरोध किया। यह सामाजिक रीति व परम्परा है कि अपनी ही जाति में परम्परा के कारण कई कर्म व संस्कार सम्पन्न करने पड़ते हैं लेकिन निराला स्वभाव से क्रान्तिकारी व स्वविवकी रहे हैं। वे स्वयं काव्यकुन्ज ब्राह्मण होकर भी अपनी पुत्री 'सरोज' का विवाह अन्तर्जातीय स्तर पर करने को इच्छुक होते हैं। उदाहरणार्थ:

''ये कान्यकुन्ज-कुल कुलांगर,

खाकर पत्तल में करे छेद, इनके कर कन्या, अर्थ खेद।'

इसी तरह पुत्री-विवाह के समय होने वाले रीति रिवाजों का विरोध इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है:-

बारात बुलाकर मिथ्या व्यय, मैं करू, नहीं ऐसा सुसमय,

इसी तरह,

तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम

मैं सामाजिक योग के प्रथम

लग्न के पढ़ूंगा, स्वयं मंत्र

निरंतर दुःख और अवसाद को भोगते हुए भी निराला सामाजिक जीवन की गलत मान्यताओं और अन्याय का विरोध करते रहे। 'बादल राग', 'तोड़ती पत्थर' और 'कण' आदि कविताओं में यह भाव विद्यमान है।

9.6.7 विषाद और करूणा:-

छायावादी धारा के प्रतिनिधि कवि होने के उपरान्त भी कवि निराला की सोच व व्यक्तित्व के अनुसार उनके काव्य में दलित शोषित वर्ग के प्रति करूणा और सहानुभूति विद्यमान है। 'पंचवटी' में लिखते हैं:-

मां मुझे, वहां तक ले चल!

देखूंगा वह द्वार-/दिवस का पार,

मूर्छित पड़ा हुआ है जहां-/वेदना का संसार।

परानुभूति में डूबा कवि-हृदय,

जनसाधारण के प्रति प्रतिबद्ध व सर्वहित का भाव लिए हुए है। निराला अपनी रचनाओं में दीन-हीन व उपेक्षित समाज के दुखदर्द व उनके सम्मान को अभिव्यक्ति देते हैं। वह तोड़ती पत्थर/विधवा महगू महगा रहा, कुत्ता भौंकने लगा आदि कविताएँ कारूणिक विडम्बना को व्यक्त करती है।

उदाहणार्थ:-

लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था

चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,

और भौंकने लगा

करूणा से, बंधु खेतिहर को देख-देखकर।

यह वर्तमान समय की विडम्बना है मानव-मन में मानव के लिए करूणा नहीं, लेकिन उसके लिए जानवर के मन में करूणा हैं

कवि निराला जीवन के निजी दुखद अनुभवों, अमानवीय सामाजिक परिस्थितयों, विसंगतियों से संघर्ष करते रहे, निराश होते रहे, पर उनकी निराशा भी रचनात्मक बन कर अभिव्यक्त हुई क्योंकि वे अपनी आत्मचेतना को पूर्णत् एकाग्रत कर चुके थे। उदहारण के लिए 'राम की शक्ति पूजा' में राम की निराशा भी विजय दिलाने में सिद्ध होती है। निराला परोपकार और करूणा द्वारा सामाजिक वैषम्यता को दूर करना चाहते थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था ''इन बेचारे दीन जनों को, भारत के इन पद-दलित मनुष्यों को उनका वास्तविक स्वरूप समझना होगा। जाति, वर्ण-सबलता और दुर्बलता के भेद-भाव को छोड़कर सभी स्त्री-पुरूषों एवं प्रत्येक बालक-बालिका को सिखा दो कि सबल-दुर्बल, उच्च-नीच सभी के हृदय में अनंत आत्मा मौजूद है।

9.6.8 भक्ति-भावना:-

निराला के काव्य-रचनाकाल में भक्ति भाव **कुकुरमुत्ता** और **नये पत्ते** में संकलित रचनाओं को छोड़कर आरम्भ से अन्त तक की 'सांध्य काकली' रचना में भी विद्यमान है। प्रारम्भिक काव्य संग्रह, अनामिका और 'परिमल' में निराला का भक्तिभाव सूक्ष्म व अमूर्त रूप में व्यक्त हुआ है। धीरे-धीरे 'आराधना' व 'अर्चना' काव्य संकलन तक यह भाव गरिमा व संयतता के साथ साकार रूप में व्यक्त होने लगा। निराला का झुकाव आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन की ओर प्रारम्भ से ही था। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी सारदानंद, रवीन्द्र नाथ टैगेर आदि का निराला जी पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तुलसीदास व सूरदास की भक्ति भावना का व्यापक प्रभाव निराला पर था। निराला की भक्ति प्रकृति का सर्वाधिक वैभीष्ट्य यह है कि वे स्वयं के मोक्ष के स्थान पर वैश्विक स्तर पर मंगल की कामना करते हैं। निराला जी ने ईश्वर के लीलाकामी सगुण, मायातीत निर्गुण, आनन्दवादी, अशरण शरण, करूणागार आदि सूक्ष्म गुणों के साथ ही प्रभु, राम, कृष्ण, शिव, हरि आदि संबोधनों से भी सम्बोधित किया है और सरस्वती दुर्गा आदि से प्रार्थनाएँ की है। इन प्रार्थनाओं में जो भाव है: वह स्वयं की मुक्ति के साथ-'साथ सर्वजन की मुक्ति की कामना है -

उदाहरणार्थ:-

दलित जनपर करो करूणा

दीनों पर उतर आए

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरूणा

देख वैभव न हो नित सिर

समुद्धत मन सदा स्थिर

पार कर जीवन निरन्तर

रहे बहती भक्ति वरुणा

माँ सरस्वती जी और शक्ति के प्रति भाव-विह्वलता और निष्काम भक्ति भाव निराला काव्य में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। परन्तु उत्तरवर्ती कविताओं में निराला के भीतर का भक्त-हृदय में आस्था भाव देखने को मिलता है। परम्परागत भगवत भक्तों की भाँति कवि शरणागति को प्राप्त कर निश्चित होना चाहते हैं ।कवि लिखते हैं -

''अनगनित आ गए शरण में जन जननि।

सुरभि सुमनावली ,खुली मधु-ऋतु अवनि।

स्नेह से पंक-उर हुए पंकज मधुर,

ऊर्ध्व-दृग गगन में दखते मुक्त मणि।

बीत रे गयी निशि, देख लख हँसि दिशि

अखिल के कण्ठ से उठी, आनन्द-'ध्वनि।''

निराला जी का मानना है कि ईश्वर की शरण में न केवल 'मरण का महादुख' मिटता है, अपितु आनन्द ध्वनि भी प्रशस्त होती है। भक्तशिरोमणि कवि तुलसीदास उनके परम आदर्श थे। वस्तुतः निराला की भक्ति भावना जीवन के विवधि अनुभवों का परिणाम है और उनकी भक्ति में दीनता, आस्था, आत्मजर्जरता, मानवीय करूणा, देश प्रेम, आत्मोत्सर्जन और निश्चल प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय है।

9.6.9 व्यंग्य और विनोदः-

कवि की व्यंग्य भाव की कविताओं में सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह है तो मानव जाति के प्रति व्यापक सहानुभूति भी विद्यमान है। 'कुकुरमुत्ता ' और 'नये पत्ते' जैसी रचनाएँ इसी प्रवृत्ति को व्यक्त करती हैं। इससे पूर्व अनामिका संकलन की 'दान' शीर्षक कविता 'तेल फुलेल पर पानी सा पैसा बहाने वाले' ढौंगी और पाखण्डी मनुष्यों की दम्भी प्रकृति पर व्यंग्य करती है। 'सरोज स्मृति' कविता में भी काव्यकुब्जों व पारम्परिक मान्यताओं पर व्यंगय कसा गया है। 'वनबेला' कविता में पैसों से राष्ट्रीय गीत बेचने वालों और गर्दभ स्वर से गायन करने वालों की आलोचना की गई है। इसी क्रम में 'रानी और कानी', 'गर्म-पकौड़ी', 'मास्को डायलोक्स', 'प्रेम संगीत' और 'डिप्टी साहब आए' आदि कविताओं का व्यंग्य भी मार्मिक है। पूँजीवादी संस्कृति

पर, वैभव सम्पन्नता का प्रतीक 'गुलाब' के माध्यम से किया गया व्यंग्य ही 'कुकुरमुत्ता ' कविता का केन्द्रीय भाव है, उदाहरणार्थ:

अबे! सुन बे गुलाब/भूल मत पाई जो खुशबु रंगोआब/

खून चूसा का श्वाद का तू ने अशिष्ट/डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट/

9.7 काव्य का रचना-विधान

कवि निराला की अनुभूति में जितनी गहराई और पकड़ है, अभिव्यक्ति उतनी ही बोध गम्य व सशक्त है। कवि का रचना विधान कवि के अनुरूप कहीं कठोर और कहीं कोमल है। उनके शारीरिक व्यक्तित्व के सभी गुण-पौरूष, और स्वच्छदता-उनके काव्य गुणों के रूप में प्रकट हुए हैं। 'ओज' निराला के काव्य की मूलभूत प्रकृति है। परन्तु ओज के साथ-साथ लालित्य व श्रृंगार का भव्य रूप भी उनके काव्य में दृष्टव्य है। निराला का हास्य रस भी जीवन्त है। यह हास्य समाज की विषमता के चित्रण में व्यंग्य रूप में प्रकट हुआ है। 'कुकुरमुत्ता ' इस चुभते व्यंग्य का सुंदर उदाहरण है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि निराला की रचनात्मक प्रतिभा विविधता व व्यापकता लिए हुए है। कवि के रचना विधान को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

काव्य भाषा और शब्दावली - भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा होती है। निराला कुशल भाषाविद् हैं। निराला काव्य में भाषा का जो स्वरूप उभर कर आया है - उसका श्रेय उनकी काव्य-शब्दावली का है। काव्य शब्दावली में समासयुक्त तत्सम बहुल शब्द हैं तो कहीं देशी शब्दों का प्रयोग है। कालक्रम की दृष्टि से प्रथम चरण की रचनाओं में 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका' एवं 'तुलसीदास' में समासयुक्त तत्सम शब्दावली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है तो दूसरे चरण की कविताएँ - 'कुकुरमुत्ता ', 'अणिमा', 'बेला' और 'नए पत्ते ' में हास्य व्यंग्य का पैनापन और देशी शब्दावली का प्रयोग हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' में भाषा का तत्सम बहुल समास युक्त रूप दृष्टव्य हैः-

''विच्छुरित वाह्नि-राजीव-नयन-हत-लक्ष्यवान,

लोहित लोचन-रावण मद-मोचन-महीयान,

राघव-लाघव-रावण-वारण-गतयुग्म प्रहर।''

इसके अतिरिक्त भाषा में सरल पद-विन्यास व द्विरुक्ति का प्रयोग भी अन्य विशिष्टता है जैसे:-

(1) वह संध्या सुन्दरी परी-सी/धीरे-धीरे -

(2) सुन-सुन घोर व्रज हुंकार।

निराला की भाषा नाद एवं संगीत मय शब्दावली का भी प्रयोग हुआ यथा:

''नुपुरों में भी रून-झुन रून-झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा चुप, चुप चुप।''

उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग भी विषयानुरूप निराला ने किया है।

काव्य-रूप - गीत, प्रगीत, कथाश्रित काव्य (प्रबन्ध काव्य) और गीति नाट्य-ये चार रूप निराला के काव्य में मिलते हैं। गीत लेखन का प्रारम्भ 'गीतिका' से माना जाता है। उनके गीतों में प्रार्थना, वेदना-करूणा, विद्रोह, देशप्रेम, सौन्दर्य व प्रेम, प्रकृति व भक्ति आदि विविध भाव देखने को मिलते हैं। प्रगीत (लम्बी कविता) गीत की तुलना में अधिक लम्बे होते हैं। निराला की 'सरोज स्मृति', 'यमुना के प्रति', 'विधवा', 'भिक्षुक' और 'शिवाजी का पत्र' आदि विविध रचनाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। प्रगीत रचना में कवि वैयक्तिकता, शब्दों की कसावट व संक्षिप्तता के स्थान पर उन्मुक्तता और दृश्यांकन से काम लेता है। सामान्य जन मानस में बसे लोक विश्वासों व धार्मिक परम्पराओं को कश्राश्रित काव्य का आधार माना जाता है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' आख्यानक रचनाएँ मानी जाती हैं। भावावेश सरस कल्पना और कथा का नियत प्रवाह से ऐसी रचनाओं में रोचकता में श्री वृद्धि होती है। 'तुलसीदास' में नए ढ़ंग प्रबन्धात्मक गरिमा विद्यमान है। गीतिनाट्य का रूप हमें निराला के 'पंचवटी' में देखने को मिलता है। संक्षिप्तता, स्वगत कथन द्वारा चरित्रोद्घाटन व मार्मिक संवाद गीति नाट्य रचना को प्रभावी बनाते हैं।

काव्य-शैली - काव्य-रूप की भाँति शैलीगत विविधता भी निराला काव्य में दृष्टव्य है। निराला-शैली का मूलभूत गुण 'ओज' और उद्दात्तता है। इनकी रचनाओं में कहीं भावना का ओज और कहीं नाद की उद्दात्तता मुखरित हुई है। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास का प्रारम्भिक अंश', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' और सहस्राब्दि' आदि कविताओं में भावना का ओज और 'बादलराग' जैसी कविता में नाद का सरस गाम्भीर्य विद्यमान है। यह शैलीगत विशिष्टता ही है कि इनकी रचनाओं में ललित शैली, हास्य व्यंग्य शैली और प्रसाद शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

निरालो के गीतों के अन्तर्गत विशेष रूप से स्मृति और प्रकृति चित्रणों में प्रायः ललित सुकुमार शैली के दर्शन होते हैं। 'गीतिका' में इस शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है:-

अलि, घिर आए घन पावस के -

लख, ये काले-काले बादल

नील-संधु में खुले कमल-दल

हरित ज्योति चपला अति चंचल

सौरभ के, रस के।''

निराला काव्य में शैली सम्बन्धी प्रतिभा की वृद्धि में रचनाओं में विद्यमान भाव-प्रवाह और विशेषण-बहुलता का काफी योगदान रहा है। यह प्रवृत्ति निराला की ही नहीं वरन् समस्त छायावादी कवियों की रही है। 'यमुना' के प्रति' गीत का एक उदाहरण इस प्रकार है -

''वह कटाक्ष चंचल यौवन-मन

वन-वन-प्रिय-अनुसरण-प्रयास

वह निष्पलक सहज चितवन पर

प्रिय का अचल अटल विश्वास''

काव्य प्रतीक - निराला के भाव-संवेदनाओं को प्रभावी बनाने में प्रतीक सहायक हुए हैं। उन्होंने यथार्थबोध के दबाव से बदलती गई स्वयं की दृष्टि को प्रतीकों के माध्यम से साकार किया है। 'उद्दात्तता ' प्रतीक योजना की दृष्टि से निराला की सर्वाधिक क्रांतिकारी रचना मानी जाती है जिसमें 'गुलाब' पूँजीवादी सत्ता व शोषक समाज तथा 'कुकुरमुत्ता' शोषित समाज का प्रतीक है। अधिकांश प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए हैं। काव्य में पारम्परिक और नवीन दोनों प्रकार के प्रतीक हैं, साथ ही भाव-प्रवण भी है। 'जूही की कली', नव परिणीता का, 'वन बेला' त्याग व तप की प्रतिमूर्ति नारी का प्रतीक है, 'बादल राग' में बादल कभी विप्लव का तो कभी युद्ध की आशंका से पूर्ण पुरूष का प्रतीक है। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में निराला की विराट प्रतीक योजना का स्वरूप देखने का मिलता है। 'आकाश', 'पर्वत' और 'सागर' आदि महानाश के प्रतीकों द्वारा मन की तामसिक शक्तियों की अभिव्यक्ति निराला करते हैं। वस्तुतः प्रतीक निराला की विविध भाव-चेतना की रचनात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहे हैं।

काव्य-बिम्ब - प्रतीक विधान की तरह निराला के काव्य में बिम्ब विधान में भी विविधताहै। भाव, आवेग और ऐन्द्रियता आदि तत्व बिम्ब को जीवन्त और प्राणवान बनाते हैं। भाव-संवेदनाओं को साकार करने में बिम्ब ही सहायक होते हैं। निराला ने काव्य में जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक अंकन किया है जिनकी सार्थकता हम उनके बिम्ब विधान में देख सकते हैं। निराला की बिम्ब योजना का भावपूर्ण रूप 'तुलसीदास' में देखा जा सकता है।

पति के 'अनाहूत' आने पर भवातुर रत्नावली का तेदोद्दीप्त विराट योगिनी रूप दृष्टव्य है:-

बिखरी छूटीं शफरी अलकें, निष्णात नयन-नीरज पलकें,

भवातुर प्रथु उर की छलके उपशमिता।

निःसंबल केवल ध्यान मग्न, जागी योगिनी अरूप-लग्न

वह खड़ी शीर्णप्रिय भाव मग्न निरूपमिता।

इसके अतिरिक्त नारी की शान्त नीरव मनःस्थिति का भाव पूर्ण अंकन 'विधवा' में दृष्टव्य है:-

''वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी, वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन''

इसी तरह स्नेह निर्झर बह गया है, रेते ज्यों तन रह गया है' कहकर जीवन की नश्वरता को सहज अलंकृति के साथ कवि ने 'रेत' के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है। इसी तरह 'संध्यासुन्दरी' व 'प्रिययामिनी' जागी शीर्षक कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब भी सहज अलंकृति से आरम्भ होकर चाक्षुस गतिशील बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि निराला द्वारा प्रयुक्त बिम्बों में दृश्यात्मकता या चाक्षुस गुण सर्वत्र विद्यमान है।

निराला ने विराट बिम्बों की भी सृष्टि की है। उनके काव्य में संवेद्य बिम्बों की भी प्रचुरता है। शब्द नाद के माध्यम से बिम्ब योजना करने में निराला को विशेष सफलता मिली है।

''कुछ समय अनन्तर, स्थिर रहकर

स्वर्गीयामा वह स्वरित प्रखर

स्वर में झरकर जीवन भरकर ज्यों बाली'

इसी तरह 'नीचे प्लावन की प्रलय-धार ध्वनि हर-हर' में ध्वनि बिम्ब है। निराला ने भारत के तमसपूर्ण, दिग्मण्डल, मोगल-दल-बल-जलधि, घन-नीलालका, छाया-श्लथ, धूल-धूसरित छवि, उन्मद-नद पठार, उत्ताल -तरंगाघात-प्रलय-धन-गर्जन-जलधि-प्रबल में नुपुरों में भी रून-झुन, रून-झुन, रून-झुल नहीं आदि अनके नादात्मक शब्दों का प्रयोग करके ध्वनि बिम्बों की सार्थक संयोजना की हैं

इस प्रकार निराला काव्य में 'ऐन्द्रिय' और 'मानस' दोनों प्रकार के बिम्बों का सफल चित्रण देखा जा सकता है।

अप्रस्तुत विधान - भाषा, प्रतीक, काव्य-रूप, शैली की भाँति अप्रस्तुत योजना या 'अलंकार' भी शिल्प विधान का महत्वपूर्ण तत्व है। अलंकारों में कवि के भाव, विचार एवं अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता होती है। निराला काव्य में अनुप्रास, रूपक, पुनरूक्ति, उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजक और विशेषण विपर्यय आदि का विशेष प्रयोग देखने को मिलता है। निराला काव्य में अप्रस्तुत विधान के कुछ रूप दृष्टव्य है:-

उपमा अलंकार - 'संध्या-सुन्दरी परी सी।'

'वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन'

'लोग बैठे जैसे चूसे आम हो' और गाड़ी

आई जैसे खैयाम की रूबाई हो।'

अनुप्रास: पय पीयूषपूर्ण पानी से/रून झुन-रून झुन नहीं।

सकल श्रेय-श्रम-सिचिंत फल

मानवीकरण:- 'संध्या सुन्दरी परी सी' - 'सखि वसन्त वाया'

'भारति जय-विजय करे', खुलती मेरी शैफाली

रूपक:- 'स्नेह-निर्झर बह गया/तिरती है समीर-सागर पद।'

और 'यह तेरी रण-तरी, भार आकांक्षाओं से' इन मुख्य अलंकारों के साथ-साथ यथा आवश्यक अन्य अलंकारों का भी निराला काव्य में प्रयोग हुआ है।

छन्द विधान - निराला का काव्य छन्द - प्रयोग की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। उनकी काव्य प्रतिभा मुक्त छन्द में भी व्यक्त हुई है। निराला जी को छायावादीयुगीन कवियों में सर्वाधिक स्वच्छन्द प्रकृति का कवि माना जाता है। वे छन्द के बन्धन से कविता को मुक्त करने के हिमायती है। इसीलिए उन्होंने अपनी काव्य-रचना में प्रारम्भ से ही मुक्त छन्द का प्रयोग अपनाया। 1916 में उनकी प्रथम रचना 'जूही की कली' से मुक्त छन्द परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है। मुक्त छन्द का तात्पर्य छंद से मुक्ति नहीं, वरन् छंद का ऐसा मूलभूत स्वच्छंद और बन्धन हीन रूप से है जिसमें भाव-प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। इस संदर्भ में निराला ने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है ''मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है ......, मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति।'' निराला ने मुक्त छन्द को कई स्थितियों में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। परम्परागत नियमानुसार सम और अर्ध सम छन्द प्रायः चार पंक्तियों में लिखे जाते हैं। सम मात्रिक

छन्दों में चारों चरणा में समान मात्राएँ और छंदो में प्रायः सान्त्यानुप्रास की एक विशेषता रहती है, परन्तु भाव-प्रवाह की दृष्टि से निराला ने इनमें स्वच्छन्दता अपनाई है। एक ही मात्रा वर्ग के विभिन्न छन्दों की पंक्तियों को एक छंद में गूंथकर उन्होंने सम मात्रिक छंद के अन्तर्गत मुक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने चार, छः, दस सममात्रिक पंक्तियों के बाद एक-दो कम या अधिक मात्राओं की पंक्तियाँ रखकर भाव-प्रवाह को मोड़ दिया और उसके बाद फिर अन्य सम या अर्ध सम मात्रिक पंक्तियों की रचना की। उदाहरणार्थ -

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा-सी, ... 22 मात्राएँ

वह दीप शिक्षा-सी शान्त, भाव में लीन .... 21 मात्राएँ

वह क्रूर काल तांडव की स्मृति-रेखा सी, ... 22 मात्राएँ

वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन, ... 21 मात्राएँ

दलित भारत की ही विधवा है। .... 17 मात्राएँ

इसमें प्रथम चार पंक्तियाँ में क्रमशः 22, 21, 22, 21 मात्राओं के रूप में अर्धसम छन्द की योजना है परन्तु पाँचवी पक्ति (टेक) 17 मात्राओं की है। आगे की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:-

षड्-ऋतुओं का श्रृंगार .... 13 मात्राएँ

कुसुमित कानन में नीरव-पद संचार .... 20 मात्राएँ

अमर कल्पना में स्वच्छंद विहार .... 20 मात्राएँ

व्यथा की झूली हुई कथा है .... 17 मात्राएँ

उसका एक स्वप्न अथवा है .... 17 मात्राएँ

उक्त विधवा की छठी पंक्ति में फिर 13 मात्राएँ, सातवीं और आठवीं पक्ति में 20-20 और दुहरे टेक के रूप में 17-17 मात्राओं की पंक्तियाँ हैं। इन पंक्तियों में सिर्फ लय या अनवरत की संगति विद्यमान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला भाव की अभिव्यक्ति में पूर्णता लाने के लिए कम से कम छंद सम्बन्धित अनुशासन स्वीकार करने के पक्ष में है। निराला-काव्य में छंद की कल्पना नृत्य में गति-सौष्ठव के समान है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में निराला-काव्य का विवेचन करते हुए 'परिमल' में दिए गए उनके मुक्त छंद प्रयोग के उद्धरण के आधार पर लिखा है - ''सबसे अधिक विशेषता आपके पद्यों में चरणों की स्वछंद विषमता है। कोई चरण बहुत लम्बा, कोई बहुत छोटा, कोई मझोला देखकर आलोचक इसे रबर छन्द' केंचुआ दंद आदि कहने लगे थे। 'बेमेल

चरणों की विलक्षण आजमाइश उन्होंने सर्वाधिक की है। जैसा कि 'विधवा' कविता के उदाहरण में हमने पूर्व में समझा।

भाव प्रवाह को अधिक गतिशील और स्वच्छंद बनाने के लिए ही रचनात्मक स्तर पर स्वयं निराला द्वारा किया गया यह प्रयोग है जो साहित्य के क्षेत्र में सफल हआ और मुक्त छंद के इस नवीन मार्ग के आधुनिक हिन्दी कविता का नया शिल्प-स्वरूप विकसित हुआ। परन्तु यह भी सत्य है कि निराला का छन्दबद्ध काव्य उनके मुक्त छन्द काव्य से कहीं हल्का नहीं पड़ताहै। यद्यपि वे मुक्त छन्द के प्रणेता है पर 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज-स्मृति' और 'तुलसीदास क्लासिकी पद्धति की रचनाएँ हैं जो व्यवस्थित छंद विधान में लिखी गई है और अंत्यानुप्रास और तुक-विधान इसमें सम्मिलित है। मुक्त छन्द का प्रयोग नए विषयों में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। मुक्त छन्द विधान उनके काव्य, वैविध्य-का एक प्रभावी एक आयाम है।

अभ्यास प्रश्न -

नीचे दिए गए बिन्दुओं पर टिप्पणी लिखिए -

(क) निराला की काव्य-भाषा में शब्दावली का स्वरूप।

(ख) निराला-काव्य में बिम्ब और प्रतीक।

(ग) निराला के काव्य में सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना।

(घ) निराला के व्यक्तित्व से प्रभावित उनका कवि-कर्म

9.8 सारांश

छायावाद अपने आप में एक विशिष्ट काव्यधारा रही और छायावाद के प्रतिनिधि कवि निराला भी संवेदना और शिल्प दोनों क्षेत्रों में विशिष्ट बने रहे। प्रस्तुत इकाई में निराला काव्य का पाठ और काव्य की अन्तर्वस्तु व रचनात्मक कौशल से स्पष्ट हो जाता है कि निराला के काव्य में प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति व सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना, अध्यात्मिकता, विषाद और करूणा भाव, भक्ति भावना, व्यंग्य, विनोद और विद्रोह का स्वर भी मुखरित हुआ है। छायावादी कवियों में निराला सर्वाधिक स्वच्छंद प्रकृति के घोर विद्रोही कवि माने जाते रहे। निराला की अभिव्यक्ति में सर्वत्र नूतनता का आह्वान देखने को मिलता है। चाहे काव्य की अन्तर्वस्तु हो या शिल्प विधान सभी में उन्होंने नए-नए प्रयोग किये हैं। यह एक विलक्षण बात है कि उनमें क्लासिकी, रोमांटिक तथा आधुनिक तत्व एक साथ दिखाई देते हैं। मुक्त छंद और छन्द बद्ध, 'राम की शक्ति पूजा' और 'कुकुरमुत्ता' तत्सम-तद्भव-देसी, प्रबन्ध-गीत-मुक्तक विधान, काव्य रूप और भाषा के इन विविध स्तरों पर इतना वैविध्य अन्यत्र कवियों

में दुर्लभ है। वस्तुतः निराला क्रान्ति के अग्रदूत पौरूष के श्रृंगार, भक्त, युगीन विषमताओं और निजी व्यथाओं से तप-तप कर निर्भीक, स्पष्टवादी और मानवता का जयघोष करने वाले ‘महाप्राण‘ कवि थे।

9.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भागीरथ मिश्र: निराला काव्य का अध्ययन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967

2. (संपा.) डॉ. पद्मसिंह: निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1969

3. (संपा.) डॉ. वचन देव कुमार: निराला आलोचकों की दृष्टि में, बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना, 1980

4. रेखा खरे: निराला की कविताएँ और काव्यभाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989

5. (संपा.) डॉ. रामजी तिवारी: शताब्दी पुरूष: निराला, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, 1999

6. डॉ. विजय लक्ष्मी: छायावाद का प्रेम दर्शन, ईशा ज्ञानदीप, दिल्ली, सन् 2001

7. नन्द किशोर नवल: निराला-काव्य की छवियां, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2002

8. श्री कृष्ण नारायण कक्कड़ ‘ निराला से रघुवीर सहाय तक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

9. (संपा.) नन्द किशोर नवल: निराला रचनावली भाग-1 से 8 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2009 पांचवा संस्करण

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. निराला के व्यक्तित्व का विस्तृत परिचय देते हुए उनके कृतित्व की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

2. ‘‘निराला के काव्य में कल्पना-वैभव, अध्यात्मिकता और भक्ति भावना के साथ व्यंग्य और विनोद का भी सम्मिश्रण है।‘‘ इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

3. ‘निराला काव्य में वैविध्य का स्वर संवेदना और शिल्प दोनों स्तर पर विद्यमान हैं।‘‘ इस कथन का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

इकाई 10 - महादेवी वर्मा: पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 व्यक्तित्व और कृतित्व
10.4 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या
10.5 काव्य का अनुभूति पक्ष
10.5.1 करूणा की प्रधानता (बौद्ध दर्शन का प्रभाव)
10.5.2 नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण
10.5.3 सामाजिकता की भावना
10.5.4 दार्शनिकता और रहस्यानुभूति
10.5.5 प्रणय और विरहानुभूति का स्वर
10.5.6 जागरण और विद्रोह का स्वर
10.5.7 प्रकृति प्रेम
10.5.8 सौन्दर्य चेतना
10.5.9 गीति-तत्व की प्रधानता
10.6 काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष
10.6.1 काव्य-भाषा
10.6.2 प्रतीक एवं बिम्ब विधान
10.6.3 अलंकार
10.7 सारांश
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने छायावाद के उद्भव एवं विकास को विस्तार से समझा। प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि हिन्दी के छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व व कृतित्व संवेदनशील रहा है। प्रायः महादेवी को जीवन व समाज से परे अन्तर्मुखी कहा जाता रहा है। किन्तु वे अपनी काव्य-सृष्टि और सर्जना दोनों में साहित्य की समाज सापेक्षता की पक्षधर रही है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि छायावाद रहस्यवाद हिन्दी काव्य-प्रकृति के प्रधान संवाहक बनकर उभरे थे और यह युग विश्वमानवतावाद और जागरण की चेतना को अपना सहवर्ती बनाकर उससे प्रेरणा ग्रहण करने में भी सफल हो गया। प्रसाद, निराला और पन्त की भाँति महादेवी वर्मा ने भी अपने सम्पूर्ण काव्य में भाववादी और संवेदनात्मक विद्रोह को व्यक्त किया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

1. महादेवी के जीवन परिचय और व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. महादेवी की काव्य-रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3. काव्य पाठ का वाचन कर उनकी व्याख्या करने की योग्यता विकसित कर सकेंगे।

4. महादेवी के काव्य में विद्यमान संवेदना व शिल्प का विश्लेषण कर सकेंगे।

5. अन्य छायावादी कवियों में महादेवी की विशिष्टता का उल्लेख करते हुए उनके योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

10.3 व्यक्तित्व और कृतित्व

छायावाद चतुष्टय के नाम से प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा प्रसिद्ध हैं। महादेवी वर्मा काव्यमय व्यक्तित्व से सम्पन्न थी। वे जीवन की कृत्रिमताओं से मुक्त उन्मुक्त हंसनेवाली एवं शुभ व उज्ज्वल नारी थी।

26 मार्च 1907 को होली के शुभ दिन पर उत्तरप्रदेश के फरूखाबाद जिले में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। इनका परिवार सुसम्पन्न व सुशिक्षित था लेकिन इस परिवार में लगभग सात पीढ़ियों तक कन्याएं जन्म के साथ मार-डाली जाती थी। दो सौ सालों के बाद कन्या के रूप में इनका जन्म हुआ था अतः इनके बाबू बांके बिहारी जी ने नाम महोदवी (घर की देवी) रख दिया। महादेवी वर्मा ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ‘‘जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। ‘‘महोदेवी वर्मा के हृदय में बचपन से ही जीवमात्र के प्रति दया थी, करूणा भावना थी। उनके रेखाचित्रों से बाल्य जीवन की झांकिया मिल जाती है। अतीत के चलचित्र के पहले तीन संस्मरणों में ‘रामा‘, ‘भाभी‘ तथा ‘बिन्दा‘ का सम्बन्ध इनके बाल्यजीवन से है। महादेवी वर्मा की शादी बचपन में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। परन्तु इन्होंने अपनी पढ़ाई 1932 तक जारी रखी और प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. संस्कृत विषय में उत्तीर्ण किया। बाद में प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षा क्षेत्र की सेवा में लग गईं।

होली के दिन जन्मी महादेवी का व्यक्तित्व होली की विविधता और रंगमयता से भरा था। इनके व्यक्तित्व में संवेदना, दृढ़ता व आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे विदुषी, अध्यापिका, कवि, गद्यकार, चित्रकार, कलाकार व समाजसेवी के रूप में हमारे सामने आती हैं। अध्ययनशील व संवेदनशील मनोवृत्ति, सफाई व स्वच्छता प्रिय, गंभीरता व धैर्य इनमें विशिष्ट गुण थे।

महादेवी वर्मा 1952 को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत की गई। महादेवी को कई पुरस्कार व सम्मान से नवाजा गई। महादेवी की रचनाएं आरम्भ काल से अर्थात् 1930 से 1975 तक साहित्य जगत को आकर्षित करती रहीं। भारत सरकार द्वारा इन्हें मरणोपरांत ‘पद्म विभूषण‘ उपाधि से अलंकृत किया गया। महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध कवयित्री और उल्लेखनीय गद्य लेखिका थीं। उन्हें नीरजा कृति पर 1933 में सेकसरिया पुरस्कार मिला। 1944 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ‘मंगलाप्रसाद‘ पुरस्कार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ‘विशिष्ट साहित्य पुरस्कार‘ सन् 1973 को प्रदान कर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय और 1980 को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की उपाधि दी गई। 1982 में लखनऊ के हिन्दी संस्थान द्वारा ‘भारत-भारती‘ पुरस्कार प्रदान किया गया। 1983 को उनके काव्य संग्रह ‘यामा‘ और ‘दीपशिखा‘ के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने पुरस्कार से वर्मा जी का सम्मान किया। 11 सितम्बर 1987 को महादेवी का निधन हुआ था।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका अपना विशाल परिवार व उनका पोषण सब के वश की बात नहीं है। गायें, हिरण,

गिलहरी, बिल्लियां, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी रहे। वृक्ष, पुष्प, लताएं इनकी ममता के आगोश में पले-बढ़े थे। परिवार के नौकर पारिवारिक सदस्य ही थे।

महादेवी वर्मा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का परिचय सुमद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा, हरिसिंह (जवाहरलाल नेहरू की बहन), सुमित्रानन्दन पंत, निराला, गोपीकृष्ण गोपेश, महात्मा गांधी जैसी विभूतियों से था।

बचपन से ही महादेवी वर्मा जी का स्वभाव रहा कि इन्होंने अपने जीवन-विकास के लिए जो उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा ने शायद इनको पारिवारिक जीवन व गृहस्थ से दूर रहने की प्रेरणा दी होगी। व्यक्तित्व में करूणा का अंश और भीतर के द्वन्द्व का समन्वय करने में सफलता इसीलिए प्राप्त हुई। महादेवी वर्मा अत्यन्त सरल व विनम्र, गंभीर व महान हृदया थी।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने के साथ ही वे अद्वितीय रेखाचित्रकार, संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्र कर्त्री और प्रबुध समाज सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थीं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालाएँ हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तिव की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

कृतित्व

विद्यार्थी जीवन में ही महोदेवी वर्मा ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। प्रारम्भिक कविताएं छन्दबद्ध थीं और 'रोला', 'हरिगीतिका' छन्द में लिखी गईं महादेवी वर्मा की काव्य कृतियां नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनुदित)(1966), हिमालय (1963), अग्निरेखा (1980) है। महादेवी का प्रथम काव्य संग्रह नीहार है। नीहार में जीवन संसार की नश्वरता, वेदना व करूणा में खो जाने की इच्छा है। 'रश्मि' कविता संकलन में कवयित्री ने अतृप्ति, अभाव और दुख आदि को मनुष्य के जीनव का मौलिक सत्य माना है। सांध्यगीत में उनकी कविताओं में उपासना का भाव है। विरह का अभिशाप वरदान के रूप में है और विरह व अभाव आनन्द देने वाला है। दीपशिखा महादेवी के चित्रमय काव्य का मूर्त रूप है। इन गीतों में उनके निर्भय व स्वाभिमानी भावना का परिचय मिलता है जैसे ''पंथ होने दो अपरिचित, प्राण, रहने दो अकेला''- इसी तरह ''तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूं उस पार क्या है?'' 'सप्तपर्णा' संकलन संस्कृति और पाली भाषा के साहित्य के कुछ चुने हुए अशों का अनुवाद है। 'अग्निरेखा में' दीपक को प्रतीक मानकर रचना की गई है।

बाल कविताएं -

बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं (क) ठाकुर जी भोले हैं (ख) आज खरीदेंगे हम ज्वाला। ठाकुर जी बोले है संग्रह बच्चों के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

ठण्डा पानी से नहलाती

ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती

इनका भोग हमें दे जाती

फिर भी कभी नहीं बोलें है

माँ के ठाकुर जी भोले हैं।

महादेवी की गद्य **कृतियां** :-

अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियां (1942), स्मृति की रेखाएं (रेखा चित्र)(1943), पथ के साथी (संस्मरण)(1956), क्षणदा (निबन्ध)(1956), साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध (1960), संकल्पिता (आलोचना)(1963), मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्मरण)(1971) और चिन्तक के क्षण (1986) आदि महादेवी वर्मा द्वारा रचित गद्य रचनाएं हैं।

10.4 काव्य पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

पंथ रहने दो अपरिचित .... दीप खेला।

पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला

घेर ले छाया अमा बन,

आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन,

और होंगे नयन सूखे

तिल बुझे औ, पलक रूखे

आर्द्र-चितवन में यहाँ शत-विद्युतों में दीप खेला

शब्दार्थ - पंथ: रास्ता, अपरिचित: अनजान, अमा: अमावस्या (अँधेरा), कज्जल: काजल, तिल: आँख की पुतली, आर्द्र: नम (भिगी हुई), चितवन: नज़र, दृष्टि।

प्रसंग: प्रस्तुत पद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित काव्य संकलन 'दीपशिखा' से उदधृत है। महादेवी के काव्य में विरह व वेदना का भाव प्रमुख है। कवयित्री अपने अकेलेपन को छोड़ना नहीं चाहती। प्रियतम की प्राप्ति नहीं वरन् वेदना की अभिव्यक्ति ही मुख्य है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई महादेवी कहती हैं -

व्याख्या:- प्रियतम को प्राप्त करने का रास्ता मेरे लिए अपरिचित हो और विरह में व्यथित मेरे प्राण अलग-थलग पड़े रहें, चाहे जितनी भी विपदाऐं मेरे इस साधना पथ में आए मैं निरन्तर आगे बढ़ती रहूँगी। प्रियतम को प्राप्त करने के इस अज्ञात सफर में अमावस्या अर्थात अंधकार की छाया मुझे घेर ले, अंधकार से घिरे बादल काजल के आँसुओं की झड़ी लगा दे, चाहे कितना ही रूदन क्यों न हो, अमावस्या की कालिमा-सज्जित रात्रि का निराशाजन्य अंधकार, क्यों न घेर ले, मैं सभी बाधाओं का सामना करती हुई इस वेदना के पथ पर एकाकी चलती रहूँगी। इस साधना पथ पर प्रियतम की प्रतीक्षा में यदि आँखे सूख भी जाए, पुतलिया बुझ जाए, पलके रूखी हो जाए अर्थात् आँसू भी जीवन का साथ नहीं दे और नेत्र-कोश रीते हो जाए तो भी मैं वियोग में पलती रहूँगी। प्रियतम की वेदना से मेरी आँखे तो, अवश्य आर्द्र (भीगी हुई) रहेगी, हृदय की रिक्तता और अकेलेपन का विस्तार होता रहेगा। मेरी दृष्टि में सैंकड़ों प्रकाश के दीप झिलमिलाते रहेंगे अर्थात् मैं एक सजल दृष्टि से भी अराध्य को पाने का अटूट आत्मविश्वास रखती हूँ।

विशेष:-

1. विरह जन्य स्थितियों से उत्पन्न अकेलेपन का भी सकारात्मक पक्ष उजागर हुआ है। महादेवी के लिए वियोग हृदय का विस्तार ही है। वेदना से नम आँखों के दीप में आत्मविश्वास रूपी विद्युत (प्रकाश) झिलमिलाती रहती है।

2. महादेवी वेदना को छोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि इसी में प्रियतम निहीत है। प्रियतम को प्राप्त करते ही वेदना का मधुर भाव छूट जाएगा। जिस तरह ब्रह्म प्राप्ति को तत्पर जीव जब ब्रह्म से मिलता है तो उसका अस्तित्व समाप्् हो जाता है, महादेवी यह नहीं चाहती। ब्रह्म (प्रियतम) की प्राप्ति के निरन्तर प्रयास में लीन रहना ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। जिससे उन्हें निरन्तर ब्रह्म की अनुभूति होती रहे। महादेवी को चिर-विरहिणी बने रहने में ही संतोष प्राप्त होता है, क्योंकि तृप्ति साधना में बाधक होती है।

व्याख्या खण्ड (2)

धीरे-धीरे .... सिहरती आ वसन्त रजनी।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से

आ बसंत-रजनी

तारकमय नव वेणी बंधन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन-अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकति आ बसन्त रजनी
मर्मर की सुमधुर-नुपुर-ध्वनि
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणी,
भर पद-गति में अलस-तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे, मृदु स्मित से सजनी!
विहँसती आ वसन्त-रजनी!
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल-दुकूल अलि!
घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी!
सकुचती आ वसन्त-रजनी!
सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल-मचल आते पर फिर-फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसन्त-रजनी!

शब्दार्थ:- तारकमय: तारों से मुक्त, शशि: चन्द्रमा, घन-अवगुण्ठन: बादलों का घूँघट, सित: सफेद, अभिराम: सुन्दर, चितवन: दृष्टि, नूपुर: पाजेबी, किंकिणी: कंगन, रजत: चाँदी, मदु: मधुर,

स्मित: मुस्कान, मलयानित: मलय पर्वत से आने वाली वायु, अभिसार: प्रियतम से मिलने जाना, सरिता-उर: नदी के हृदय, सुधा-अमृत, पद-चाप: पैरों की आहट, अवनी: धरती।

प्रसंग: प्रस्तुत गीत महादेवी वर्मा कृत काव्य संग्रह 'नीरजा' से अवतरित है। अन्य छायावादी कवियों की भाँति महादेवी वर्मा ने प्रकृति का मानवीकरण कर अपनी संवेदना का माध्यम बनाया है। महादेवी ने वासंती निशा का श्रृंगार से सजी नायिका के समान पृथ्वीतल पर उतरने को चित्रात्मक अभिव्यक्ति दी है।

व्याख्या: महादेवी वर्मा सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित बासंती रजनी को आमंत्रित कर रही है जैसे किसी नायिका को उसके प्रियतम से मिलाने हेतु बुला रही हो।

महादेवी वसंत रजनी का पूरा चित्रण एक सजी-धजी युवा स्त्री के रूप में प्रस्तुत कर निमन्त्रण दे रही है कि सूखी पत्तियों की मधुर मर्मर ध्वनि की पायल छमकाती हुई, भ्रमरों से गुंजरित कमलों का कंगन बजाती हुई, अलसाई नदी की मंथर चाल चलती हुई, मधुर मुस्कान से पिघली हुई चाँदी की धार-बहाते हुए हँसती हुई धरती रूपी नायक से मिलने आओ। प्रिय से अभिसार के लिए उत्सुक वासंती निशा रूपी प्रियतमा का सुखद सपनों से रोमांचित हो, हाथों में मधुर मिलन की स्मृतियों की अंजुरि भर, मलय पर्वत से आने वाली शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा का आँचल धारण कर, उसे लहराते हुए, काली छाया के समान घिरकर और पूरे विश्व को अभिसार स्थली बनाने का आग्रह है।

वासंती रजनी का यह रूप सौन्दर्य व रोमांच देखकर नदी का हृदय तरंगों के रूप में बार-बार सिहर उठता है और मकरन्द से भरे फूल बार-बार रोमांचित हो खुलते जा रहे, मिलने की आशा के क्षण पुनः मचल उठते हैं, इस तरह से धरती पुलकित हो रही है। इन क्षणों में बसन्त रजनी से सिहरती हुई आने का आग्रह है।

विशेष:

1. महादेवी छायावादी काव्य धारा की प्रमुख स्तम्भ रही है। अतः इस काव्य धारा की भाषा शैली के सभी गुण इनमें भी विद्यमान हैं। प्रस्तुत गीत में भी कोमल कान्त पदावली, परिनिष्ठित चित्रमयी भाषा, नाद सौन्दर्य, लाक्षणिकता, अलंकार विधान, समुचित प्रतीक विधान, शब्दों की पुनरावृत्ति आदि का कुशलतापूर्वक संयोजन है।

2. गीतिशैली या प्रगीत काव्य-रूप की सभी विशेषताएँ इस गीत में है। लयात्मकता, भाव-सघनता व संक्षिप्तता अत्यन्त प्रभावी है।

3. प्रकृति के मानवीकरण रूप की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में है।

चुभते ही तेरा अरूण बान .... सुधि विहान।

चुभते ही तेरा अरूण बान!
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान!
इन कनक रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,
बुदबुद से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान!
नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान,
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण,
धो स्वर्ण-प्रात में तिमिर-गात,
दुहराते अलि निशि-मूक तान!
सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीर-परियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार,
मर्मर का मधु संगीत छेड़-
देते हैं हिल पल्लव अजान!

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,

उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार,

अधखुले दृगों के कंज-कोष-

पर छाया विस्मृति का खुमार,

रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,

यह चतुर चितेरा सुधि-विहान!

महादेवी जी के हृदय में पीड़ा का स्थान स्थायी हो चला है। उन्हें इसी कारण आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। प्रस्तुत गीत में फूलों को छोड़ काँटों से भी प्रियतम के नाम पर प्यार करना उन्हें अच्छा लगता है। हृदय की रागात्मक अभिव्यक्ति है।

शब्दार्थ: शूल: काँटे, अलि: भौंरा, हीरक: हीरा, खरा - शुद्ध, श्रेष्ठ, सुख मिश्री: सुख की मिठास, मुकुल: पुष्प।

नोट: विद्यार्थी इस इकाई पाठ के आधार पर स्वयं व्याख्या करने का प्रयास करें।

विशेष :

इस गीत में प्रभात का चित्रोपम वर्णन हैं। रात्रि के अंधकार में समस्त प्राणी निद्रामग्न रहते हैं। उनमें चेतना का संचार नहीं होता। सूर्यरश्मि के स्पर्श से उनमें चेतना का उदय होता है, नवीन गति का संचार होने लगता है। महादेवीजी सूर्य की किरणों में आध्यत्मिक दृष्टि से उस अज्ञात चित्रकार का चैतन्यदायक स्पर्श पाती हैं, जो संपूर्ण संसार का संचालक है।

अरूण बान लाल रंग का शर। सूर्य की अरूण किरण को बाण के रूप में रूपित किया है। सजल गान: विरह वेदना के गीत। मधु के निर्झर: मकरंद के प्रवाह ; रसमय गीत। प्रभात में रश्मि के स्पर्श से जाग्रत होकर आत्मा प्रियतम का स्मरण करती है, वेदना के गीत गाने लगती है।

कनक रश्मियों में: सूर्य की स्वर्णाभ किरणों में। तम-सिंधु: अंधकार-रूपी समुद्र। संसार जागता है, हलचल मचती है; यही सिंधु का 'हिलोर लेना' है। विहगों के समान कलकूजन करनेवाले कवियों की मधुर, रससिक्त वाणी। कुहर-म्लान: कुहरे से प्रवालमय तीर का रूप ले लेती है। कुदकुसुम से मेघपंज: कुंदपुष्पों के समान बादल। इंद्रधनुषी: संध्या (प्रातःकालीन) की अरूणिमा से रंजित। निशि मूक तान: जो संगीत रात्रि में बद हो गया था। अलि: भौंरे। भाव है कि रात को विश्राम की नींद सोनेवाले भ्रमर ही अप्सराएँ हैं। सौरभ का केशजाल: उनकी सुगंधि अप्सराओं के केशपाश के समान हैं।

स्वप्नपंख: स्वप्नरूपी पंख। नींद को एक चिड़िया के रूप में रूपित करने पर, स्वप्नें को उस पक्षी के पंख मानना उचित है। जैसे शिकारी के बाण से त्रस्त पक्षी पंख फैलाकर उड़ जाता है, वैसे ही नींद भी सूर्यकिरणरूपी बाण के स्पर्श से त्रस्त होकर उड़ गयी। दृगों के कंजकोष: नेत्ररूपी कमल-कुण्डल। खुमार: नशा। चतुर चितेरा: निपुण चित्रकार। अश्रु-हास: दुख-सुख। यह अज्ञात चित्रकार अश्रु और हास लेकर जनमानस को रंग रहा है। सुधि-बिहान: स्मृतियों का प्रभात। 'विहान' शब्द व्रजभाषा का है। यह बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होता है।

10.5 काव्य का अनुभूति पक्ष

10.5.1 करुणा की प्रधानता (बौद्ध दर्शन का प्रभाव)

महादेवी की रचनाओं में बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। विशेष रूप से करूणा और उसके विस्तार का भाव उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है।

बौद्ध धर्म के जिस ऐतिहासिक पक्ष को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य की भूमिका में उजागर करते हैं उसी का महत्व व धर्म के तत्वों (सिद्धान्तों) का प्रयोग महादेवी वर्मा अपनी कविताओं में करती हैं। बुद्ध के कोमल मानवीय तत्वों का उनकी काव्य-रचनाओं में तथा कठोर बुद्धिवाद का उनके गद्य साहित्य में सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। नव जागरण काल में ईश्वर सम्बन्धित पाश्चात्य विचारों का भारतीय संस्कृति में प्रवेश के दौरान महादेवी का यह कथन मार्मिक व समयानुकूल था। ''संसार के धर्म संस्थापकों की पंक्ति में बुद्ध ऐसे अकेले हैं, जिन्होंने मनुष्य के सम्बन्धों में सामंजस्य लाने के परमात्मा की मध्यस्थता स्वीकार नहीं की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया।'' महादेवी की रचनाओं में बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। विशेष रूप से करूणा और उसके विस्तार का भाव उनके सम्पूर्ण काव्य में है।

महादेवी जी ने भारत के साहित्य और संस्कृति का भी गहन अनुशीलन किया था और वे 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' की उदार भावना से भी ओतप्रोत थीं। यही कारण है कि उनकी विरहानुभूति में करूणा का साम्राज्य है और इसीलिए उनकी यह धारणा बन गई है कि विरह-कमल का जन्म वेदना से हुआ है और करूणा में ही वह निवास करता है -

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!

वेदना में जन्म, करूणा में मिला आवास,

अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,

जीवन विरह का जलजात्।

इसी कारण से ओतप्रोत रहने के कारण महादेवी जी की स्पष्ट धारणा है कि करूणा का उदार भावना में स्नान करके दुःख भी उज्ज्वल हो जाता है, उसमें विषद की कालिमा नहीं रहती और वह अपनी वैयक्तिक सीमाएँ तोड़कर सर्ववाद का रूप ग्रहण कर लेता है। इसीलिए महादेवीजी करूणा-स्नात् दुःख को ही अपना पुजारी बनाने की कामना कर रही हैं -

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी!

अर्चना हो शूल भोले, क्षार दृग-जल अर्ध्य हो ले,

आज करूणा-स्नात उजला दुःख हो मेरा पुजारी!

उनके हृदय में यह करूणा का पारावार अविरल गति से उमड़ता रहता है और उन्हें यह करूणा सहज रूप में उपलब्ध हुई है।

10.5.2 नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण

महादेवी को एक कोमल नारी-हृदय प्राप्त है, जो केवल कवि होने के कारण सहृदय एवं सरस ही नहीं है, अपितु सात्विक गुणों से भी परिपूर्ण है, क्योंकि उनके गीतों में जिस निच्छल प्रेम-वेदना का निरूपण हुआ है, उसमें न कहीं कटुता है, न कहीं द्वेष है, न कहीं घृणा है और न कहीं प्रतिकार की भावना है। उनकी वेदना तो अपनी सहजता में विश्व-वेदना-सी बन गई है। यह प्रेम-वेदना एक कोमल नारी हृदय की तड़पन से आप्लावित है।

यद्यपि सभी छायावादी कवियों ने वेदना एवं विरहानुभूति का निरूपण किया है, तथापि महादेवी की-सी तरलता, सहजता एवं सात्विकता अन्यत्र नहीं देती, क्योंकि महादेवीजी को विरह का सहज स्रोत रूप नारी-हृदय प्राप्त है और उस हृदय में निश्छल प्रेम का सिंधु उमड़ रहा है। इसीलिए तो उनकी वाणी सत्, ऋत एवं सात्विकता से परिपूर्ण जान पड़ती है। विरह की ऐसी सच्ची अनुभूति अन्यत्र कहाँ देखने को मिलेगी -

जो तुम आ जाते एक बार!

कितनी करूणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते वन पराग,

आँसू लेते वे पद पखार!

हँस उठते पल में आर्द्र नयन घुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में बसन्त लुट जाता चिर संचित विराग,

आँखे देती सर्वस्व वार!

उक्त गीत में कितनी करूणा है, कितनी मनुहार है, कितनी याचना है, कितनी मंगल-कामना है और कितनी सात्विक भावना है, जो एक नारी हृदय से ही निकल सकती है और जिसका जन्म एक चिर-व्यथित कोमल हृदय से ही हो सकता है। जिसमें कृत्रिमता एवं आडम्बर के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा ये चारों कवि छायावादी कविता को सामूहिक पहचान प्रदान करने में समर्थ रहे परन्तु नारीत्व की पहचान अकेले महादेवी वर्मा ने की। महादेवी वर्मा अपने निबन्धो में नारी विषयक चिन्तन विस्तार से किया है, पर अधोलिखित पंक्तियों में जैसे उनके नारी चिन्तन का निचोड़ है - ''हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी का प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिसका पुरूष के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन न सकेंगी'' (पृ. 304, श्रृंखला की कड़ियाँ)। सही अर्थों में नारी विमर्श का भारतीय रूप यही हो सकता है। जीने की कला, हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व, आर्थिक-स्वातंत्र्य, युद्ध और नारी, घर और बाहर तथा नए दशक में महिलाओं के स्थान तक को वे अपनी चिन्ता का विषय बनाती हैं।

10.5.3 सामाजिकता की भावना (स्वातं सुखाय से परांत सुखाय तक)

प्रायः महादेवी को जीवन और समाज के परे अन्तर्मुखी कहा जाता रहा है किन्तु वे अपनी काव्य दृष्टि और सर्जना दोनों में साहित्य की समाज-सापेक्षता की पक्षधर है। महादेवी में स्वातः सुखाय में परान्त सुखाय की सहज स्थिति दिखायी देती है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि ''जीवन के परिष्कार और परिवर्तन के हर अध्याय में साहित्य के चिह्न हैं, अतः उसे व्यापक सामाजिक कर्म न कहना अन्याय होगा। पर जब हम उसे सामाजिक कर्म मान लेते हैं, तब यह समस्या मानसिक क्षेत्र से उतर कर सामाजिक धरती पर प्रतिष्ठित हो जाती है और उसका समाधान भी नये रूप में उपस्थित होता है।'' उनकी दृष्टि में काव्य मानव हृदय में समाज के प्रति विश्वास को जन्म देने में महती भूमिका निभाता है। महादेवी ने 'दीप' और 'बदली' जैसे प्रतीकों का प्रयोग अकारण नहीं किया है। 'दीप' और 'बदली' की सार्थकता स्वयं को संसार को आह्लादित करने में निहीत है तभी तो कहती है -

''मधुर मधुर मेरे दीपक जल''

इसी तरह महादेवी वर्मा का यह उदाहरण ''मैं नीर भरी दुख की बदली'' अंततः स्वयं को नि:शेष कर देने में ही जीवन की अर्थवत्ता को व्यक्त करता है।

उनका यह विश्वास है कि वह चेतना-सत्ता तो अम्लान हँसी से परिपूर्ण है और सम्पूर्ण वैभव से भरी हुई; किन्तु वे उस अम्लान हँसी को नहीं, अपितु जगती के जीवन में व्याप्त क्रन्दन को देखती हैं और अपने उद्गार इस तरह व्यक्त करती हैं-

देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को,

तेरी चिर यौवन-सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ!

देखूँ हिम-हीरक हँसते हिलते नीले कमलों पर,

या मुरझायी पलकों से झरते आँसू-कण देखूँ!

10.5.4 दार्शनिकता और रहस्यानुभूति

छायावादी कवियों की भाँति महादेवी वर्मा ने भी अपने गीतों में उस अव्यक्त, अगोचर एवं असीम चेतना के प्रति अपने भावोद्गार व्यक्त किए हैं जिन्हें आलोचकों ने रहस्यानुभूति के संदर्भ में समझा है। वस्तुत रहस्यवाद जीवात्मा परमात्मा के मध्य निश्चल व अद्वैत सम्बन्ध हैं और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अन्तर भी नहीं रहता।

इस दृश्य जगत में व्याप्त उस अगोचर चेतन सत्ता से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही ‘रहस्यवाद‘ कहलाता है। एक रहस्यवादी कवि उस चेतन सत्ता के प्रति अपने ऐसे-ऐसे भावोद्गार व्यक्त करता है, जिसमें सुख-दुःख, आनन्द-विषद रूदन-ह्रास, शोक-उल्लास, विरह-मिलन घुले-मिले रहते हैं और वह अपनी असीमता को चेतन सत्ता की असीमता में लीन करके एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया करता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है - ‘‘चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।’’

डा. राममूर्ति त्रिपाठी के शब्दों में ‘रहस्यवाद रहस्यदर्शियों का सांकेतिक कथन या वाद है।’

गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार - ‘‘रहस्यवाद हृदय की वह भावावेशमयी अवस्था है जिसमें साधक अपने असीम और पार्थिव अस्तित्व का उस असीम और अपार्थिव अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है।’’

इस दृश्य जगत में व्याप्त उस अगोचर चेतन सत्ता से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही ‘रहस्यवाद‘ कहलाता है। एक रहस्यवादी कवि उस चेतन सत्ता के प्रति अपने ऐसे-ऐसे

भावोद्गार व्यक्त करता है, जिसमें सुख-दुःख, आनन्द-विषद्, रूदन-हास, शोक-उल्लास, विरह-मिलन घुले-मिले रहते हैं और वह अपनी असीमता को चेतन सŸाा की असीमता में लीन करके एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया करता है।

रहस्यभावना के विषय में स्वयं महादेवी का कथन है - ''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के बीच प्राण डाल दिए परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण एक मधुरतम व्यक्ति का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यवादी रूपों के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया ।'' इसलिए महादेवी विरहजन्य दुख में ईश्वर की तलाश करती हैं -

पर शेष नहीं होगी यह

मेरे प्राणों की क्रीड़ा

तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा

तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

इसी तरह ''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी, रागिनी भी हूँ।'' कविता भी जीवात्मा-परमात्मा के अद्वैत सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

महादेवी के काव्य में औपनिषदिक सर्वात्मवाद की अनुगूँज उनकी कई रचनाओं में उतरी है, जिसे वे अपने अनुभव की जैविक अन्तःक्रिया में उतारने में सफल रही है। एक ही सत्ता नाना नाम-रूपों में प्रतीत होती है, तत्वतः वही सब कुछ है -

बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ

नाश भी हूँ मैं अन्तन्त विकास का क्रम भी

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी

तार भी आघारत भी झंकार की गति भी

पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं रहस्यानुभूति उनके जीवन की साधना है। उन्होंने ब्रह्म या परमाप्ता को अपना प्रियतम माना। उनका प्रियतम दूर रहकर भी उनके पास है और वे अखण्ड सुहागिन हैं। उनके रहस्यवाद में जिज्ञासा, प्रणय-मिलन, विरह व आत्मा-परमात्मा के अद्वैत व आध्यात्मिक भाव की अनेक व्यंजनाएँ हुई है। विशिष्टता यह है कि इनके रहस्यवादों में व्यक्तिगत चेतना की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति होने के कारण दार्शनिकता की शुष्कता न होकर भाव प्रवणता सर्वत्र दृष्टव्य होती है।

10.5.5 प्रणय और विरहानुभूति का स्वर

महादेवी के काव्य में छायावादी परम्परानुसार प्रणय का स्वर सर्वाधिक मुखर है। प्रणय के क्षेत्र में वियोगानुभूति की तीव्रता अभिव्यक्त हुई है।

महादेवी की विरह जन्य व्यथा लौकिक या दैहिक प्रेम से परे अध्यात्म्यपरक चिन्तन पर आधारित है। उसका प्रिय बादलों में, अन्तरक्षि में, फूलों में, सुगंध में अथवा आत्मा के अन्तरंग चिन्तनीय प्रेरणाओं में छुपा रहता है।

'हे नभ की दीपावलियाँ, तुम पलभर को बुझ जाना।

मेरे प्रियतम को भाता है, तम को पर्दे में आना।

स्वयं महादेवी जी ने कहा है - दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस वेदना को समीक्षित करते हुए कहा है - ''इस वेदना को लेकर वे हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने लायीं जो लोकोत्तर हैं, कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना, वह नहीं कहा जा सकता।''

महादेवी काव्य का प्रमुख केन्द्रस्थ करूणा है। करूणा की अनुभूति ही उनकी जीवनी-शक्ति है। उनकी यह स्वर व्यैक्तिक न होकर विश्व-वेदना तक व्याप्त है। उनका विरह जन्य दुःख ससीम से असीम की ओर दैहिक अनुभूतियों से हटकर मानसिक चिन्तन में व्याप्त हुआ है यथा -

मैं नीर भरी दुःख की बदली।

स्पंदन में चिर निस्पन्द बसा,

क्रंदन में आहत विश्व हँसा।

नयनों में दीपक-से जलते,

पलकों में निर्झरणी मचली।

करूणामय काव्याभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए स्वयं महादेवी ने लिखा है -

''रहस्यवाद से पराविद्या की अपार्थिवता ली। वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, पार्थिव प्रेम से ऊपर उठ सका। हृदय को मष्तिष्कमय और मष्तिष्क को हृदयमय बना सका।''

महादेवी का यह कथन विश्व करूणा को व्यक्त करता है। हृदय और बुद्धि के संतुलन का संदेश देता है। जयशंकर की कामायनी की शाश्वतता का मूल आधार भी यही संदेश है।

प्रेम या प्रणय की अवस्था में मधुरता और वेदना एक साथ अनुभव होती है। एक प्रकार की अनुभूति ऐसी भी होती है जिसमें एक तरफ अपार आनन्द-आह्लाद का अनुभव होता है तो दूसरी तरफ आत्यधिक मार्मिक पीड़ा का भी। इस मीठी फिर भी तीखी अनुभूति को प्रणयानुभूति कहा जा सकता है। महादेवी कहती है कि

''गयी वह अधरों की मुस्कान

मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।''

सामान्यतः वेदना या पीड़ा कभी मधुमय नहीं होती। पर महादेवी को यह अत्यंत प्रिय है वे कहती हैं-

''पर शेष नहीं होगी, यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा।

तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।"

10.5.6 जागरण और विद्रोह का स्वर

महादेवी ने विरह-मिलन, करूणा-वेदना और रहस्यानुभूति के गीत ही नहीं लिखे हैं, जागरण और विद्रोह का स्वर भी मुखरित किया हैं।

श्रृंखला की कड़ियाँ' की नारी का व्रिदोह उनके कुछ गीतों में भी समर्थ ढंग से उतरा है। यथाः

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!

जाग तुझको दूर जाना!

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले!

या प्रलय के आँसूओं में मौन अलसित व्योम रो ले,

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घेर छाया,

जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले!

पर तूझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना!

जाग तूझको दूर जाना!

नवजागरण में जिन दलितों के प्रति करूणा दिखाई गई थी उसका व्यावहारिक रूप महादेवी में देखने को मिलता है। वे शोक-संतप्त मानवता के साथ एकाकार होना चाहती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय पीड़ा में जहां तक चुनाव की बात है, वे मानवीय पीड़ा, संतप्त मानवता को विशेष महत्व देती हैं -

यह विश्व और उसकी वेदना, उसकी एक-एक गतिविधि हर क्षण उनकी चिन्ता के दायरे में है। 'दुविधा' शीर्षक कविता में वे कहती है कि -

तेरे असीम आंगन की देखूँ जगमग दीवाली,

यह इस निर्जन कोने के बुझते दीपक को देखूँ?

तुझमें अम्लान हंसी है, इसमें अजस्र आँसूजल,

तेरा वैभव देखूँ या जीवन का क्रन्दन देखूँ?

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महादेवी की कविताओं में भावात्मक नव जागरण एवं विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है जिसके केन्द्र में मानव है, कविता यह स्वर सतही नहीं है जिसे आसानी से पकड़ सके वरन् यह काव्य-धारा की गहराई में है जिसे संवेदनाशून्य हृदय नहीं समझ सकता।

10.5.7 प्रकृति प्रेम

प्रकृति मानव की चिरसहचरी है। मानव ने पृथ्वी पर जन्म लेकर सर्वप्रथम प्रकृति की रमणीय गोद में ही क्रीड़ा की है और उसके विविध परिवर्तनों को देखा है।

आधुनिक कवियों ने अपने-अपने काव्यों में प्रकृति को विविध रूपों में अंकित किया है जैसे - (1) आलम्बन रूप, (2) उद्दीपन रूप, (3) संवेदनात्मक रूप, (4) वातावरण निर्माण का रूप, (5) रहस्यात्मक रूप, (6) प्रतीकात्मक रूप, (7) मानवीकरण रूप, (8) अलंकार रूप, (9) लोक-शिक्षा रूप और (10) दूती रूप आदि।

महादेवी वर्मा ने प्रकृति के विविध रमणी दृश्यों के ऐसे-ऐसे संशिलष्ट बिम्ब काव्य में प्रस्तुत किए हैं, जिनमें सरसता एवं सजीवता के साथ-साथ मन को रमाने की पूर्ण मार्मिकता है; उदाहरण के लिए - उनके प्रभात-वर्णन को ले सकते हैं; जिसमें प्रातःकालीन मृदुल कलरव से लेकर आलोकपूर्ण वातावरण के साथ-साथ कलियों के चटकने, भ्रमरों के गूँजने, सौरभ के फैलने, तितलियों के मधु-पान करने, पल्लवों के मर्मर-ध्वनि करने आदि की मादक ध्वनि से भरा हुआ गत्यात्मक सौन्दर्य विद्यमान है।

महादेवी जी के काव्य में ऐसे चित्रणों की भरमार है, क्योंकि उन्होंने प्रकृति को संवेदनात्मक रूप में ही अधिक देखा है। इसी कारण उनके काव्य में तारे भी आँसू बनकर आते हैं, वानीरों के वन व्यथा से काँपते हैं और रह-रह कर करूण विहाग सुनाते हैं -

आँसू बन-बन तारक आते, सुमन हृदय में सेज बिछाते,

कम्पित वानीरों के वन भी रह-रह करूण विहाग सुनाते,

निन्द्रा उन्मन, कर-कर विचरण लौट नहीं अपने संचित कर,

आज नयन आते क्यों भर-भर?

महादेवी जी ने प्रकृति के अनेक उपकरणों को प्रतीकों के रूप में अपनाकर बड़ी ही मार्मिक कल्पना की है; जैसे - आग दीपक को विरह-वेदना में प्रज्वलित जीवन का प्रतीक मानकर अपने गीतों में कितने ही स्थलों पर उसका सजीव चित्रण किया है -

यह मन्दिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,

गये आरती बेला को शत-शत लय से भर,

जब था कल कंठों का मेला, विहँसे उपल तिमिर था खेला,

अब मन्दिर में इष्ट अकेला, इसे अजिर का शूल्य गलाने को जलने दो।

महादेवी जी ने प्रकृति में सर्वत्र एक चेतनता का दर्शन किया है। इसी कारण उनके काव्य में प्रायः प्रकृति सचेतन प्राणी की भाँति व्यापार में लीन अंकित हुई है; जैसे - आपने वसंत-रजनी को एक अनिंद्यसुन्दरी की भाँति अंकित करके उसे सम्पूर्ण सचेतन व्यापारों से परिपूर्ण बना दिया है -

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी!

तरकमय नव वेणी बंधन, शीश फूल कर शशि का नूतन,

रश्मि-वलय सित धन-अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी!

पुलकती आ वसंत-रजनी!

जब किसी काव्य में प्रकृति के विविध सुन्दर-असुन्दर उपकरणों का प्रयोग उपमानों के रूप में किया गया है, तब प्रकृति के अलंकार-रूपों का चित्रण होता है। इस रूप में तो सभी कवि प्रकृति का उपयोग करते चले आये हैं। महादेवी जी ने भी प्रकृति के विविध उपकरणों को अलंकारों के लिए चुना है; जैसे - शूलों को अक्षत, धूलि को चन्दन, साँस को अगरु-धूम, स्नेह को आरती की लौ, आँसू को अभिषेक जल, विविध प्रकार के स्वप्नों को फूल आदि कहकर पूजा का अत्यन्त अलंकृत रूप इस तरह अंकित किया है।

महादेवी का काव्य तो विरह-प्रधान हैं और जाग्रत करने के लिए तथा इसी शिक्षा को सम्पूर्ण विश्व के हेतु अंकित करने के लिए आपने 'दीपक' को प्रतीक के रूप में चुना है और प्रियतम के पथ को, मानवता के पथ को युग-युग तक आलोकित करने के लिए प्रेरणा दी है।

10.5.8 सौन्दर्य चेतना

हिन्दी कविता में मानवीय, प्राकृतिक अथवा भावात्मक सौन्दर्य का जेसा चित्रण छायावाद युग में हुआ है वैसा पहले और बाद के युग में सम्भव नहीं हो पाया। गहरी संवेदनशीलता और तीव्र भावानुभूति के कारण छायावादी कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि प्रभावी रही है। छायावाद के सौन्दर्य चित्रण में द्विवेदी युगीन काव्य की इतिवृत्तात्मकता, नीरसता या ऊब नहीं है वरन वह सौन्दर्य की सहज-स्वच्छन्द, स्वानुभूत एवं रागात्मक सृष्टि है। रूपसी को सम्बोधित करके कही गई महादेवी वर्मा की निम्न पंक्तियां छायावाद की इस सौन्दर्य चेतना को प्रकट करती है -

रूपसि तेरा घन-केश-पाश!

श्यामल-श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश-पाश!

सौरभ भीना-भीना गीता लिपटा मृदु अजन-सा दुकूल;

चल अंचल से झर-झर झरते पथ में जुगनू से स्वर्ण फूल;

दीपक से देता बार-बार

तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास!

सौन्दर्य के प्रति महोदवी का दृष्टिकोण अध्यात्मिक है। इनके अनुसार ''सौन्दर्यानूभूति सदैव रहस्यात्मक होती है, क्योंकि सौन्दर्य का प्रत्येक निदर्शन अन्तर्जगत के अखण्ड और विराट सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब हुआ करता है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति सर्वदा व्यापक सौन्दर्य की अनुभूति हुआ करती है।'' सौन्दर्य के प्रति महादेवी के इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण का मूल कारण यह है कि इन्होंने सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल भाव-जगत से माना है। फलस्वरूप, इनकी सौन्दर्य-चेतना पूर्णतः आत्मनिष्ठ है। इनका कहना है कि ''सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं, वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूप-रेखा नहीं। प्रकृति का अनन्त वैभव, प्राणीजगत की अनेकात्मक गतिशीलता, अन्तर्जगत की रहस्यमय विविधता-सब कुछ इनके सौन्दर्यकोष के अन्तर्गत हैं।

महादेवी जी के संपूर्ण काव्य में प्रकृति की आत्मीयता मानवीकरण रूप में प्रकृति के अंकन में स्पष्ट होती है। प्रकृति केवल कवयित्री के आराध्य परम ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब नहीं किन्तु उनकी भावनाओं के अलंकरण का रूप भी।

संध्या के अतिरिक्त रात्रि के प्रति भी उनका सौन्दर्य आकर्षण 'नीहार' और 'रश्मि' में भरा हुआ है। कवयित्री ने रात्रि को सौन्दर्य की अखंड प्रतिमा के रूप में देखा, परखा और अनुभव किया हे। तभी तो वह कहती है -

''रजनी ओढ़े जाती थी

झिलमिल तारों की जाली''

संक्षेप में कह सकते हैं कि महोदवी जी के काव्य में एक से बढ़कर सौम्य, कोमल, चारूतापूर्ण, आनन्ददायी चित्र हैं जिनमें तन्मयता, रहस्यात्मकता, अनेक भाव सिमट कर असीम और प्रकृति के सामीप्य की उदभावना कर रहे हैं। कवियत्री की भावनाएं, कल्पनाएं, अस्तित्व यहां तक कि वे स्वयं को भूलकर प्रकृतिमय हो गई हैं क्योंकि उसी प्रकृति में उनके प्रियतम का

प्रतिबिम्ब है, सौन्दर्य की आभा है। प्रकृति के दृश्यों को देखकर उनकी रागात्मकता, कल्पना की रंगीनियों में बँधकर साधनारत हो जाती है। यही उनकी सौन्दर्यनुभूति है।

10.5.9 गीति-तत्व की प्रधानता

महादेवी की सम्पूर्ण कविता गीति-कविता है। उनहोंने अपनी भावानुभूतियों की अबाध अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त ‘‘रूप माध्यम‘‘ गीत में पाया है। महादेवी की कविता का अलम्बन परम तत्व के प्रति प्रणय भाव है और इस भाव की अभिव्यक्ति गीत व लय में होना स्वाभाविक है।

महादेवी का कथन है कि, ... ‘‘सुख-दुःख की आवेशमयी अवस्था का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के अनुसार चित्रण कर देना ही गीत है।

साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।‘‘

आचार्यों ने गीत-काव्य में जिन प्रमुख तत्वों की स्थिति मानी है‘‘, वे हैं - अनुभूति की तीव्रता या भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता एवं भावानुकुल भाषा। ये सभी तत्व महादेवी के गीतों में उपलब्ध हैं। महादेवी के गीतों में प्रणय, करूणा व वियोग के भावों का मार्मिक प्रकाशन हुआ है।

गीत में संगीतात्मकता की सृष्टि करने वाले अंगों में अधिक महत्वपूर्ण अंग उसकी ‘‘टेक’’ है। महादेवी ने अपने गीतों में मूल भाव के अनुरूप सुन्दर टेकों का चयन किया है। उन टेकों में पाठक या श्रोता के चित्त को आकर्षित करने की क्षमता है और मूलभाव को सुस्पष्ट करनेवाला शब्द संयोजन भी। जैसे -

‘‘पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर तर। आज नयन आते क्यों भर-भर? मधुर-मधुर दीपक जल! युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण प्रतिपल। प्रियतम का पथ आलोकित कर’’।

10.6 काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष

भावात्मकता, संगीतात्मकता एवं संक्षिप्तता से परिपूर्ण महादेवी के गीत उनकी अनुभूतियों को भावानुकूल भाषा के माध्यम से ही अभिव्यंजित करते हैं।

10.6.1 काव्य भाषा

कविता अनुभूति की अभिव्यक्ति है और भाषा उस अभिव्यक्ति का माध्यम है। महादेवी ने अपने काव्य की रचना खड़ी बोली में की है और उनकी भाषा में मधुरता और कोमलता को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने रमणीय वर्ण-विन्यास के द्वारा कोमल एवं कठोर भावनाओं की व्यंजना की है। ह्रस्व वर्णों के प्रयोग द्वारा कोमलता लाने के प्रयास में भी महादेवी की सौंदर्य-सजगता लक्षित होती है। ''ल'', ''म'' आदि कोमल ह्रस्व वर्णों की आवृत्ति से सृजित माधुर्य की सृष्टि होती है -

''सजल धवल अलस चरण

मूक मंदिर मधुर करूण,

चांदनी है अश्रुस्नाता।''

महादेवी ने अपनी सुन्दर भावाभिव्यक्ति के लिए उचित शब्दों का चयन किया है। उन्होंने दीपशिखा, अंगराग, धनसार, दुकूल, आरती, बेला, अक्षत, धूप, अर्घ्य, नैवेद्य आदि अनेक शब्दों को चुना एवं उन्हें व्यंजनात्मक सौंदर्य प्रदान किया। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया तथा उन्हें तराशकर कलात्मक गरिमा प्रदान की।

इसके अतिरिक्त महादेवी ने अपनी भाषा में क्षणिक, भंगुर, वंशरी, पंकिल, फेनिल, ढरकोले, छबीली, लजीली आदि स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग किया है। महादेवी की भाषा के संदर्भ में प्रो. सुरेशचंद्र गुप्त का कथन है कि, - ''महादेवी ने अपनी भाषा को सज्जा प्रदान करने के लिए लक्षणा तथा व्यंजना शब्द-शक्तियों का व्यापक आधार ग्रहण किया है।''

अपनी काव्य भाषा को प्रभावशाली एवं सुन्दर अभिव्यक्ति के साधन का रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। ''धूल में खिलते हो, इतिहास बिन्दु में भरते हो वारीश'', ''हंसो पहनों कांटों का हार'', ''काली रात काटना''। ''पथ में बिछना'', ''तिल-तिल जला''। आदि उदाहरण देखे जा सकते हैं।

महादेवी की भाषा में चित्रात्मकता का गुण भी विद्यमान है - मतवाला-सौरभ, गुलाबी चितवन, तन्द्रिल-पल, मृदुल-दर्पण, कोमल-व्यथा, मूक-वेदना, वाली वीणा और अलसित रजनी आदि। महादेवी वर्मा की भाषा-योजना पर विचार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने ग्रन्थ काव्य-कला और जीवन दर्शन में यह टिप्पणी की है - ''महादेवी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रंगों का हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आंक देना उनकी कला की विशेषता है। पंत जी की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः चित्रों की रेखाएं पैनी है। महादेवी की कला में रंग-घुली तरलता है जैसे कि पंखुड़ियों पर पड़ी ओस में होती है।'' काव्य में गुणों की

दृष्टि से विचार किया जाये तो महादेवी के काव्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है। हां, इतना अवश्य है कि बावजूद परिष्कृत शब्दावली के उनके गीतों में प्रसाद-गुण भी मिल जाता है।

महादेवीजी ने जैसे 'हरसिंगार झरते हैं झर-झर' में हरसिंगार के फूलों के झरने का ध्वनिपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे ही 'देखूँ विहँगों का कलरव घुलता जल की कलकल में' के अन्दर पक्षियों के कलरव के साथ-साथ जल की कल-कल ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई पड़ रही है।

कहने का अभिप्राय यह है कि महादेवी की भाषा सरस, परिष्कृत, कोमल, लक्षणा, व्यंजना से अधिक युक्त, चित्रात्मक, ध्वन्यात्मक और संगीत के प्रवाह से परिपूर्ण है। इसके कारण उनके काव्य में संगीतात्मकता का पुट दिखाई देता है। फलस्वरूप भाषा प्रवाह-युक्त और प्रभावशाली बन गई है।

भाव और भाषा का सामंजस्य स्थापित करने हेतु कवयित्री ने नाद-सौंदर्य पूर्ण पदावली का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है -

''पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर

आज नयन आते क्यों भर-भर?

इन पंक्तियों में नायिका का चित्रण है, जिसका हृदय प्रिय-मिलन की मधुर कल्पना से पुलकित, शरीर रोमाचिंत तथा आंखे हर्ष से बार-बार भर आती है।

महादेवी काव्य में वचन, लिंग आदि के प्रयोग में व्याकरण के नियमों से बंधना नहीं चाहती। महादेवी जी जिस नये क्षेत्र में जिस नये प्रकार से कार्य करने में संलग्न है उनकी कठिनाइयों का हम अनुमान कर सकते हैं। उनकी भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं प्राप्त होती है। तुकों के सम्बन्ध में काफी शिथिलता दीख पड़ती है। छन्दों और गीतों में भी एकरूपता अधिक है। भावों की काव्यभिव्यंजना देने के सिलसिले में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ ढ़ीले प्रयोग एक पंक्ति के पश्चात दूसरी पंक्ति में ही मिल जाते हैं। उनके गीतों में एक बहुत बड़ा आर्कषण उनकी भावमयी अनमोल सोच में गढ़ी भाषा ही है।

10.6.2 प्रतीक एवं बिम्ब विधान

अपनी रहस्यात्मक मनोवृत्ति और उद्देश्य को स्पष्ट करने हेतु महादेवी ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। उन्होंने परंपरागत प्रतीकों में सूर्य, चंद्र, तारे, संध्या, निशा आदि को अपनाया है। इसके अतिरिक्त कली, भ्रमर, झंझा, इन्द्रधनुष, उषा, चंचला, मेघ, पवन, दीपक आदि प्रतीकों को अपनाया है।

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!

युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिफल

प्रियतम का पथ आलोकित कर।''

महादेवी के गंभीर, संयमित व्यक्तित्व के कारण प्रतीकों में अन्य कवियों की अपेक्षा बौद्धिकता का तत्व प्रबल है। ऋतु संबंधी प्रतीकों में - 'ग्रीष्म को रोष का, वर्षा को करूणा, शिशिर को जड़ता, पतझड़ को दुःख का, वर्षा को आनंद के रूप में प्रस्तुत किया है।

उदाहरण के लिए 'टूट गया वह दर्पण निर्मम' गीत को ले सकते हैं, जिसमें 'दर्पण' का माया का प्रतीक बनाकर बड़ी ही रमणीय कल्पना की गई है -

टूट गया वह दर्पण निर्मम!

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल, अंगराग पलकों का मल मल,

स्वप्नों से आजूँ पलकें चल, किस पर रीझूँ किससे रूठूँ,

भर लूँ किस छवि से अंतरतम! टूट गया ....

कवयित्री ,खुद चित्रकार रही है, शब्दों के द्वारा उन्होंने ऐसा वर्णन किया है कि आँखों के सामने वर्णित विषय का चित्र आ जाता है अर्थात महादेवी जी के काव्य में बिम्बयोजना का सफलतापर्वूक निर्वाह हुआ है। इतना अवश्य है कि बिम्बों की विविधता नहीं है, एक प्रकार की अनुभूति को अलग-अलग प्रकार से प्रस्तुत किया है। जैसे -

''मैं बनी मधुमास आली!

आज मधुर विषद की घिर करूण आई यामिनी

बरस सुधि के इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी

उमड़ आई री, दृगों में

सजनी, कालिन्दी निराली।''

यह दृश्य बिम्ब का उदाहरण है। श्रव्य बिम्ब का उदाहरण इस प्रकार है -

''चुभते ही तेरा अरूण बान

बहते कन-कन में फूट-फूट के निर्झर से।''

जहाँ प्रकृति का वर्णन है वहाँ बिम्ब-योजना का सुंदर निर्वाह हुआ है।

उन्होंने अपने काव्य में फूल सुख के अर्थ में, शूल दुःख के अर्थ में उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

10.6.3 अलंकार

अभिव्यक्तिगत सौंदर्य-सृष्टि का एक विशिष्ट साधन अलंकार है। छायावादी कवि पंत का कथन है कि - ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आधार, व्यवहार, रीति-नीति हैं। पृथक स्थितियों में पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।''

महादेवी की काव्य रूचि अत्यंत अलंकृत है। उनके काव्य में अलंकार आभूषण के रूप में नहीं, बलिक उनके भाव-चित्रों के रूप-रंग मालूम पड़ते हैं। महादेवी ने शब्दालंकारों में अधिकतर अनुप्रास और पुनरूक्तिप्रकाश का प्रयोग किया है। अनुप्रास में वन्दन वार वेदना-चर्चित आदि उदाहरण दृष्टव्य है। अर्थालंकारों के उपमा रूपक, अपेक्षा, अपहनुति, विरोधाभास, मानवीकरण, अप्रस्तुत प्रशंसा, विषयोक्ति, समासोक्ति आदि अलंकारों की बहुलता इनके गीतों में प्राप्त होती है।

महादेवी के काव्य में रूपकों का समृद्ध भण्डार है। विरहसाधिका होने के कारण उनकी तीव्र भावानुभूति रूपकों के माध्यम से विस्तार पाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. ''महादेवी वर्मा के काव्य में तीव्र भावानुभूति विद्यमान है।'' इस कथन की सार्थकता उनके काव्य के माध्यम से सिद्ध कीजिए।

2. ''महादेवी के काव्य में गीति तत्व की प्रधानता सर्वाधि है।'' इस कथन का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3. महादेवी वर्मा की चिन्तन भूमि और जीवन-दृष्टि का उल्लेख कीजिए।

4. महादेवी वर्मा को 'वेदना की प्रतिमूर्ति' और 'आधुनिक मीरा' क्यों कहा जाता है, सोदाहरण विवेचन कीजिए।

5. ''महादेवी का काव्य संवेदना व शिल्प की अभिव्यक्ति के संदर्भ में छायावादी काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करता है।'' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए -

(क) महादेवी वर्मा के काव्य में दुःखवाद व करूणा-भाव में प्रकृति-निरूपण

(ख) महादेवी के काव्य में रहस्य भावना।

(ग) महादेवी के काव्य में भाषा व बिम्ब विधान।

(घ) महादेवी के काव्य में प्रकृति-चित्रण।

10.7 सारांश

निष्कषर्तः कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा की काव्य-रचनाएँ छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो विशेष सामाजिक-साहित्यिक परिस्थितियों में रची गई, जिनमें मानवतावाद, रहस्यवाद, वेदना व करूणा का लोकमंगलकारी रूप, प्रकृति प्रेम, नारी के प्रति आदरभाव जिज्ञासा और कौतूहल, अलौकिक प्रेम और प्रणयानुभूति, तीव्र भावानुभूति, आत्माभिव्यक्ति और राष्ट्रीय प्रेम व सांस्कृतिक पुनर्जागरण एक साथ देखने को मिलता है। महादेवी वर्मा ने एक कवयित्री के रूप में छायावादी कविता को अनुभूति एंव अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों को व्यक्त किया है। महादेवी की भाषा सरज, परिष्कृत, कोमल, अधिकाधिक लक्षणा व्यंजना से युक्त, चित्रात्मक, ध्वन्यात्मक और संगीत के प्रवाह से परिपूर्ण है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि महादेवी जी की अलंकार-विषयक सौंदर्य-चेतना ने गीतों को रमणीय रूप प्रदान किया है और गीता में वर्णित विषय को मार्मिक एवं आकर्षक बनाया है।

बौद्ध दर्शन का दुःखवाद ही महादेवी के काव्य-दर्शन के मूल में है। महादेवी का दुःखवाद दुःख की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि दुःख की स्वीकृति है। महादेवी के काव्य का मूल भाव अलौकिक प्रणय एवं रहस्यानुभूति है और उसके सहधरी करूणा, निर्वेद और दुःख हैं। उनके काव्य में जीवन की प्राम्भिक करूणा ही अन्त में सुख के प्रति निर्वेद एवं दुःख के प्रति अनुराग में परिणत हो गई है। इसी कारण महादेवी वैराग्य की ओर अग्रसर हो गई है -

मीरा के बाद गीत का स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है। यों छायावादी युग में प्रसाद, पंत, निराला तथा अन्य कवियों के सुन्दर गीत मिल सकते हैं। परन्तु गीत काव्य का ऐसा विकास उनमें नहीं है जो महादेवी जी की कला को छू सके, उनके गीत निसर्ग सुन्दर हैं और उनमें अपनी निजी विशेषता है और वह विशेषता यह है कि उनमें स्वाभाविक गति और भाव-भंगिमा है। महादेवी जी इस क्षेत्र में अद्वितीय है।‘‘

महादेवी वर्मा ने अपने विचारों एवं भावों को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का भी सहारा लिया है। ये प्रतीक उनके भावों को व्यक्त करते हैं। कवयित्री ने विशेष रूप से बादल, संध्या,

रात्रि, गगन, प्रलय, सजल, दीपक, अंधकार, जलधारा, नींद, प्रकाश, विद्युत, ज्वाला, पंकज, किरण, स्वप्न आदि शब्दों को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है।

10.8 शब्दावली

1. अमा - अमावस्या
2. विरह - वियोग
3. कज्जल - काजल
4. आर्द्र - नमी
5. चितवन - दृष्टि, नजर, ह्रदय
6. घन अवगुंठन - बादलों का घूँघट
7. किंकिंणी - पाजेब, पायल
8. अभिसार - प्रिय मिलन की तैयारी
9. अलि - भौंरा
10. मुकुल - फूल

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ, 1975, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

2. शर्मा, डॉ. हरिचरण, आधुनिक कविता प्रकृति और परिवेश, 1986, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर।

3. गौतम, डॉ. सुरेश, छायावाद का रचनालोक, 1997, आलोक पर्व प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. सिंह, डॉ. गोविन्दपाल, महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।

5. श्रीवास्तव, (संपा.) डॉ. परमानन्द, महादेवी, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद।

10.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'महादेवी वर्मा की वेदना करूणा से ओत-प्रोत है।' इस कथन को तर्कसहित प्रमाणित कीजिए।

2. महादेवी वर्मा को आधुनिक मीरा कहा जाता है। स्त्री विमर्श के सम्बन्ध में इसका मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 11 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविताः राजनीतिक, सांस्कृतिक साहित्यिक संदर्भ
    11.3.1. राजनीतिक सदर्भ
    11.3.2. सांस्कृतिक संदर्भ
    11.3.3 साहित्यिक संदर्भ
11.4 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता
    11.4.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा
    11.4.2 राष्ट्रीय भावना और हिंदी कविता
    11.4.3 आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीयता
11.5 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता की मूल संवेदना
    11.5.1 राष्ट्र प्रेम
    11.5.2 समाज सुधार
    11.5.3 विद्रोह/क्रान्ति
    11.5.4 नये विमर्श
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीयता साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमे राष्ट्र की आशा - आकांक्षाओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई हो। राष्ट्रीय शब्द राष्ट्र का सूचक है, विशेषण है। राष्ट्रीय साहित्य हम किसे कहें? यह विचारणीय प्रश्न है। सर्वप्रथम तो राष्ट्रीय साहित्य में समस्त राष्ट्र के जन - चित्रण

पर बल दिया जाता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है। किसी एक जाति - सभ्यता - संस्कृति को अपनी संपूर्णता में चित्रित करना भी राष्ट्रीय कविता के अंतर्गत आ सकता है। राष्ट्रीय के संदर्भ में कभी - कभी क्लासिकल साहित्य की बात भी उठती है। यूनान - रोम का साहित्य हो या भारत में संस्कृत साहित्य सभी राष्ट्रीय साहित्य का ही बोध कराते हैं। राष्ट्रीय साहित्य के पर्याय के रूप में कभी - कभी जातीय सहित्य में सभ्यता संस्कृति भाषा - त्यौहार पर बल होता है जबकि राष्ट्रीय साहित्य में सभ्यता - संस्कृति - भाषा को आधार बना करके राष्ट्रीय संवेदना-यानी राष्ट्रीय अनुभूति या भावना को चित्रित करने का प्रयास किया जाता है। अपने व्यापक रूप में किसी देश - भाषा में लिखित साहित्य भी राष्ट्रीय साहित्य के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन राष्ट्रीय साहित्य को हम इतने व्यापक संदर्भ में प्रयोग नहीं करते । अपने संकुचित रूप में राष्ट्रीय साहित्य से तात्पर्य उद्बोधन परक स्वातंत्रय चेतना से युक्त गीत से है।

हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता के तत्व यत्र - तत्र बिखरे हुए हैं। आदिकालीन साहित्य में युद्ध एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति मिलती है, जिसमें राष्ट्रीयता के तत्व दब से गए हैं। आदिकालीन साहित्य के ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि वह ऐतिहासिक बोध से हीन साहित्य हैं, उसमें जातीय चेतना का अभाव हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि भारत में राष्ट्रीयता की अवधारण आदिकाल तक विकसित नहीं हो पाई थी। भक्तिकालीन साहित्य प्रथम भारतीय नवजागरण का साहित्य कहा गया हे। किन्तु भक्तिकाल का नाजागरण भी धार्मिक -सांस्कृतिक धरातलों पर ज्यादा विकसित होता है। राष्ट्रीय गीत हमेशा राष्ट्रीय समस्याओं या राष्ट्रीय समाधान की खोज में तत्पर होते हैं। रीतिकालीन साहित्य ज्यादातर श्रृंगारिक मनोभावना की ऊपज है, किन्तु भूषण सूदन जैसे कवियों ने वीरगाथात्मक कविताएँ रचकर अलग परम्परा का पालन किया है। भूषण की शिवाजी एवं छत्रसाल पर लिखी गई कविताएँ व्यापक रूप से जातीय चेतना की रचनाएँ हैं, किन्तु उनमें सामंती या दरबारीपन भी कम नहीं हैं। आधुनिक रूप में राष्ट्रीयता के बीज हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु की रचनाओं में सुरक्षित हैं। भारतेन्दु में राजभक्ति एवं राष्ट्र भक्ति का द्धन्द्ध कम नहीं है, किन्तु उनकी कविता का प्रधान स्वर राष्ट्रीय चेतना ही है। द्विवेदीकालीन साहित्य की मूल चेतना राष्ट्रीय नवजागरण ही है। इस संदर्भ मे छायावाद युग का साहित्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जयशंकर प्रसाद के नाटक एवं निराला एवं प्रसाद की लम्बी कविताएँ राष्ट्रीय साहित्य के अंतर्गत ही आयेंगे। छायावाद के पश्चात् राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता अपने राष्ट्रीय भाव बोध के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी साहित्य अपनी जनपक्षधरता के कारण राष्ट्रीय साहित्य का ही अगं कहा जायेगा। आइये अब हम राष्ट्रीयता की अवधारणा को विस्तार से साहित्यिक संदर्भ में समझें।

11.2 उद्देश्य

आधुनिकता एंव समकालील कविता से संबंधित खण्ड की यह पहली इकाई है, इस इकाई में हिन्दी कविता के संदर्भ में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की खोज की गई है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप:

- राष्ट्रीय की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय साहित्य की जानकारी प्राप्त का सकेंगे।
- विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यकारों के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- समकालीन राष्ट्रीय साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

11.3 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता: राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संदर्भ

राष्ट्रीय भावना का जन्म क्यों होता है ? वह कौन सी परिस्थितियाँ हैं, जिसके कारण राष्ट्रीयता के तत्व प्रभावी हो जाते हैं ? मध्यकाल तक की कविता का स्वरूप आधुनिक काल तक आते - आते परिवर्तित क्यों हो जाता है ? राष्ट्रीयता की भावना को कविता अपनी किन शर्तों पर स्वीकार करती है ? इन प्रश्नों का समुचित समाधान हमें तभी मिल सकता है जब हम हिन्दी कविता के राजनीतिक, सांस्कृमिकस ,साहित्यिक ,संदर्भो कर जानकारी प्राप्त कर लें।

11.3.1 राजनीतिक संदर्भ

जैसा कि पूर्व में सूचित किया गया है कि राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का संबंध आधुनिक नवजागरणवादी मनोवृत्ति से है। लेकिन इस मनोवृत्ति तक पहुँचने के लिए भारतीय समाज को लम्बे ऐतिहासिक दायित्व से गुजरना पड़ा है। मुगल सत्ता के पतन के दौर में ब्रिटिश सत्ता का आविर्भाव नयी राजनीतिक परिस्थितियों का सूचक था। मुगल सत्ता अपने उत्तरार्द्ध में पतनोन्मुख हो चुकी थी। औरंगजेब की कट्टर नीति ने आगे अंग्रेजो को फूट डालो राज करो' की नीति को बनाने में अपना योगदान दिया। ब्रिटिश पराधीनताके समय में राष्ट्र के सचेत राजनीतिज्ञों ने महसूस किया कि बिना राजीतिक आजादी के राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत नहीं हो सकती।

11.3.2. सांस्कृतिक संदर्भ

भारतवर्ष विश्व के प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जाहिर है इसकी संस्कृति भी विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है, किसी संस्कृति का प्राचीन होना महानता की कसौटी नहीं है। महानता की कसौटी है उस देश की संस्कृति का महान् विचारो एवं मूल्यों को धारण करने की शक्ति के होने से। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी व्यापकता, उदारता एवं महान् जीवन - मूल्यों से जुड़ाव ही है। भारतीय संस्कृति के भीतर अपने दर्शनिक मत (अद्वैत/सांख्य/मीमांसा/योग, बोद्ध - जैन इत्यादि) तो हैं ही , इसके अतिरिक्त मुस्लिम, ईसाई , पारसी जैसे बाहरी मत भी इसमे शामिल हैं। संस्कृति राष्ट्र को एक सूत्रमें जोड़ती है। प्रश्न यह है कि संस्कृति का राष्ट्रीयता भाव बोध से क्या सम्बन्ध है? या संस्कृति राष्ट्रीयता के विकासमें अपना योगदान किस प्रकार देती है ? उच्च संस्कृति अपने भीतर राष्ट्रीयता बोध को धारण किये होती है। सांस्कृति क्षरणशीलता के दौर में राष्ट्रीयता बोध का भी क्षरण होता है। कभी - कभी राष्ट्रीयता भाव - बोध को उन्नत करने में सांस्कृतिक बोध प्रभावी भूमिका निभाता है। भारतीय आधुनिक इतिहास हमें बताता है कि पुनरूत्थान वादी भावना ने राष्ट्रीयता बोध को उन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

11.3.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

राष्ट्रीयता भावना की तीव्रता से साहित्य का क्या सम्बन्ध है? राष्ट्रीयता भावना के इतिहास में हम देखते हैं कि प्रायः देशों का जातीय ग्रन्थ उस देश का साहित्य ही है। महाभारत, रामायण, इलियड, ओडिसी इत्यादि ग्रनथ हमें संकेत करते हैं कि उस देश की राष्ट्रीय संस्कृति वहाँ के साहित्यिक ग्रन्थ ही हैं। चूँकि किसी भी देश का क्लासिक साहित्य वहाँ की समस्त संभावनाओं का निचोड़ होता है, इसलिए वह हर युग में उस समाज को दिशा देता रहता है। और इसीलिए उस देश की जातीय चेतना निर्मित करने में उस देश का श्रेष्ठ साहित्य हमेशा प्रेरक भूमिका निभाता करता है।

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) नीचे दिये गये शब्दों 10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1) राष्ट्रीयता

....
....
....
....
....

....
....
....
....
....
....
....

2) राष्ट्रीयता और कविता

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. राष्ट्रीयता साहित्य के संदर्भ मे क्लासिकल साहित्य की गणना की जाती है।

2. उद्बोधन परक सवातंत्रय चेतना युमृगीत राष्ट्रीयता गीत है।

3. भूषण भक्तिकालीन कवि थे।

4. राष्ट्र गीत और राष्ट्रीय कविता एक है।

5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता राष्ट्रीय भाव बोध से पूर्ण है।

11.4 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता

कोई भी देश , जाति, साहित्य, साहित्यकार, बिना राष्ट्रीय भाव धारा को आत्मसात किए बिना लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्रीय भावना कभी - कभी प्रकट रूप में दिखती है कभी वह सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त होती है। राष्ट्रीयता का संस्कृति - विचार एवं जातीय चेतना से गहरा संबंध है। इसीलिए राष्ट्रीय साहित्य भी किसी देश के आचार - विचार, भावधारा, कल्पना, संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। राष्ट्रीयता की अवधारणा अपने आप में इतनी विविधता लिए हुए है कि सहज ही इसको विश्लेषित करना आसान नहीं है। राष्ट्रीय साहित्य की अवधारणा भी काफी जटिलता धारण किए हुए है। आधुनिक युग एवं साहित्य मे राष्ट्रीयता की अवधारणा प्राचीन एवं मध्यकालीन अवधारणा से भिन्न हो जाती है। हिन्दी कविता के संदर्भ में हम राष्ट्रीयता की अवधारणा को समझें, इससे पूर्व आइए हम राष्ट्रीयता को समझने का प्रयास करें।

11.4.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा

राष्ट्रीय शब्द ' राष्ट्र' का सूचक है । राष्ट्र अंग्रेजी शब्द 'नेशन' के पर्याय में हिन्दी साहित्य या भारतीय समाज में प्रयोग होता है। जिमर ने राष्ट्रीयता को विश्लेषित करते हुए लिखा है - मेरी दृष्टि मे राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्मसम्मान से सम्बद्ध है। स्पष्ट है कि जिमर राष्ट्रीयता को सामूहिक जीवन आकांक्षा से जोड़ने की बात करता है। सामूहिकता का सही अर्थ यह हो सकता है कि जब संपूर्ण राष्ट्र को एक इकाई मानकर देखने की बात की जाती है। एक इकाई के रूप में उभारने का तात्पर्य यह हो सकता है कि कोई राष्ट्र की संस्कृति के प्रतिनिधि विशेषताओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करे। संस्कृति के साथ ही जातीय चेतना शब्द भी जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से किसी समृद्ध संस्कृति में महाकाव्य और लोक गीतों का पाया जाना स्वाभाविक है। राष्ट्रीयता की अवधारणा का एक संबंध देशभक्ति की चेतना से भी है। देशभक्ति की चेतना का संबंध देश में फैली असमानता और सत्ता पक्ष द्वारा किया जा रहा कूर एवं अमानवीय आचारण से है। देशभक्ति पूर्ण रचनाएँ अधिकांशत: परतंत्र देशों में लिखी जाती है, क्योंकि इनमें भावात्मक तीव्रता का होना अनिवार्य है। किन्तु देशभक्ति की कविताओं का संबंध जीवन के शाश्वत भावों एवं विचारों से कम होता है। इस प्रकार की रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व ज्यादा होता है। राष्ट्रीयता की इस अवधारणा में अपने देश की संस्कृति - उपलब्धि के प्रति सम्मोहन का भाव पाया जाता है। साम्रराज्यवादी देशों में कभी - कभी राष्ट्रीय गीत की रचना अपनी उपलब्धि एवं वर्चस्व बनाये रखनें के लिए भी होता है। लेकिन सही रूप में राष्ट्रीय साहित्य या राष्ट्रीयता की अवधारणा देश की एकता अखण्डता एवं समता की भावना पर टिकी होती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की अवधारणा के दो संदर्भ हो सकते है। एक राष्ट्रीयता का व्यापक संदर्भ जिसमें राष्ट्र में निहित समस्त असमानताओं का चित्रण किया जाता है। दूसरे राष्ट्रीयता का सीमित संदर्भ जिसमे उद्बोधन के माध्यम से राष्ट्र के व्यक्तियों में राष्ट्रीयता की भावना तीव्र की जाती है।

11.4.2 राष्ट्रीय भावना और हिंदी कविता

जैसे कि पूर्व में कहा गया कि किसी भी देश, जाति, सभ्यता-सांस्कृतिक, चेतना आदि के निर्माणमें मुख्य प्रेरक शक्ति राष्ट्रीयता का भाव बोध होता है। जो संस्कृति राष्ट्रीय बोध से संचालित होती है, ऊर्जा प्राप्त करती है वह प्राणवान होती है। समृद्ध संस्कृतियाँ राष्ट्रीय भावधारा को अपने भीतर अनिवार्य रूप से धारण किए होती हैं। यूनान-रोम , भारत जैसे देशों की संस्कृति में राष्ट्रीयता के तत्व घुल -मिल गए है। रामायाण, महाभारत, जैसे महाकाव्य हों या इलियड, ओडिसी, ये क्या राष्ट्रीय भावबोध से अछुते हैं? लेकिन प्रश्न यह भी है कि राष्ट्रीयता का साहित्यिक भावबोध से क्या संबंध है? साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप क्या हो, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में यह प्रश्न उठाया हे कि हर राष्ट्रीयता कविता नहीं होती। उन्होंने लिखा है - 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' में राष्ट्रीयता ही राष्ट्रीयता है, कविता नहीं ; यह अलग बात है कि इस गान को गाते - गाते न जाने कितने स्वतंत्रता - सेनानियों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। राष्ट्रीयता जहाँ कविता बनी है वे प्रसाद और निराला के गीत हैं। '' ;पृष्ठ 40) स्पष्ट है राष्ट्रीयता को भी कविता की शर्त पर ही स्वीकार किया जा सकताहै । 'वंदे मातनम्' या 'जनगण मन अधिनायक जय हे' राष्ट्र गीत है, राष्ट्रीय कविता नहीं इस भेद को हमें समझना होगा। राष्ट्र गीत में सामूहिक भावनात्मक उद्रेग होता है, जबकि राष्ट्रीय कविता में व्यैक्तिक - जातीय चेतना की अभिव्यक्ति । यानी व्यैक्तिक संवेदना के माध्यम से जातीय- सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति । हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भी राष्ट्रीयता के विभिन्् पहलुओं को ध्यानमें रखना होगा।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल अपने वीरता पूर्ण साहित्य के लिए स्मरणीय है। आदिकालीन साहित्य जहाँ एक ओर वैराग्य - श्रृंगार की अभिव्यक्ति करता है, वहीं दूसरी ओर वीरता/युद्ध का वातावरण भी निर्मित करता हे। इसी वैविध्यता को ध्यान में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'अर्निदिष्ट लोकप्रवृत्ति का युग'कहते है। कुछ लोगो ने आदिकाल का मुख्य प्रतिपाद्य केवल युद्ध माना है तो कुछ लोगों ने श्रृंगार । हांलाकि ज्यादा व्यवस्थित मत यह हैं कि आदिकाल की मुख्य प्रवृत्ति वीरता एवं श्रृंगार है। यहाँ हम 'वीरता' की प्रवृत्ति को राष्ट्रीयता के संदर्भ में विश्लेषित करेंगे। 'वीरता' प्रवृत्ति का प्रेरक भाव उत्साह है। लेकिन यह उत्साह सात्विक होता है। राष्ट्रीय कविताओं में भी उत्साह की अधिकता होती है, खासतौर से राष्ट्र गीतों में । राष्ट्रीयता स्थायी मूल्य जातीय काव्यों यानी महाकाव्यों मे सुरक्षित रहता है लेकिन भावनात्मक उद्रेक गीतों में भी पाये जा सकते है। इस दृष्टि से आदिकालीन कविता का मूल्यांकन कियाजा सकता है। इस संदर्भ में आल्हाखंड की पंक्तियाँ देखें -

"बारह बरस तक कूकर जियें, तेरह बरस जियें सियार।

अठारह बरस तक क्षत्रिय जियें, आगे जीवन को धिक्कार।।"

यानी क्षत्रिय जाति ;हिन्दू सामंती व्यवस्था में जिसे शासन करने का,युद्ध लड़ने तथा जनता की सुरक्षा करने का दायित्व दिया गया था को 18 वर्ष से ज्यादा जीवित रहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि आदिकालीन परिस्थितियों में युद्ध की अनिवार्यता एवं अधिकता इतनी ज्यादा थी कि वीर पुरूष का अठारह वर्ष से ज्यादा जिंदा रहना असंभव जैसा था। ज्यादा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि युद्ध की अनिवार्यता के कारण वीर पुंरूषो की मृत्यु अनिवाय्र जैसी थी, कविता की मुख्य व्यंजना यह है कि ‘आगे जीवन को धिक्कार ’ यानी वीरता ही काम्य है, वीरता ही पुरूषार्थ है, वीरता ही धर्म है। हम सब जानते हैं कि आल्हाखंड के गीत राजस्थान, उत्तर प्रदेश समेत पूरे उत्तर भारत में अपनी वीरतापूर्ण ध्वनि के कारण कितने लोकप्रिय रहे हैं। एक दूसरा संदर्भ लें । हेमचन्द्र रचित यह दोहा देखें -

‘‘भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि म्हारा कंतु।

लज्जेअहु तु वयसिहअु, जे घर भग्गु एंतु।।

कविता के अनुसार एक स्त्री अपनी सखी से कह रही है कि अच्छा हुआ के मेरा पति युद्ध में मारा गया, अगर वह युद्धसे जीवित लौटता ;भागकर या बिना वीरतापूर्ण ढंग से लड़े, तो मैं अपनी समवयस्काओं ;सखियों के बीच बहुत लज्जित होती । संभवतः किसी भी देश के साहित्य में वीरतापूर्ण ऐसी उक्ति का मिलना कठिन है। आदिकालीन साहित्य पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें जातीय चेतना का अभाव है, ऐतिहासिक बोधका अभाव है। अशंतः यह बात सही भी है। राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का विकास आधुनिक काल तक भारत वर्ष में नहीं हो पाया था। आदिकाल तक राज्य ही देश समझे जाते थे। अतः अपने राज्य ; देश के पर्याय रूप में, देश के लिए प्राणोत्सर्ग की कामना करना क्या राष्ट्रीय बोध नहीं है ? आदिकाल की पृष्ठभूमि में हम राष्ट्रीयता की अखिल भारतीय कल्पना/ कामना कैसे कर सकते हैं! भक्तिकालीन कविता का स्वरूप आदिकाल से भिन्न है। इसके कई कारण है। एक तो भक्तिकाल के कवि राजाश्रयी कवि है तो भक्तिकाल के कवि राज्य से दूर लोक के बीच कविता करने वाले। आदिकालीन कविता का प्रतिपाद्य वीरता-श्रृंगार है तो भक्तिकालीन कविता का प्रतिषाद्य समतापूर्ण समाज की स्थापना करना। युग - सन्दर्भ के अनुसार साहित्य में परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही है। भक्तिकालीन साहित्य मे राष्ट्रीयता की अवधारणा का क्या स्वरूप हैं ? इस प्रश्न को समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में हमें यह समझना होगा कि भक्तिकालीन कवि मुख्यतः संत एवं भक्त हैं। अतः उनमें उत्साहपूर्ण राष्ट्रीय उद्बोधनों को ढूँढ पाना व्यर्थ होगा। भक्तिकालीन कवियों की राष्ट्रीयता सूक्ष्म रूप में उनके जीवन - दर्शन में व्याप्त है। कबीरकी सामाजिक चेतना, सूर की रास लीला एवं गो-लोक समाज की रचना करना, तुलसी का रामराज्य एवं कवितावली में वर्णित यर्थाथवादी चित्रण, जायसी की प्रेम - साधना , मीराका प्रति-सामंती समाज बिना ऐतिहासिक बोध के संभव नहीं है। ऐतिहासिक बोध से युक्त रचनाकार अ- राष्ट्रीय कैसे हो सकता है ? यह

जरूर है कि भक्तिकालीन कवि देश्, जाति, परिवार धर्म से परे विश्व मानवतावाद की कामना करते हैं, जो सही ही ; क्योंकि कट्टर राष्ट्रीयता नाजीवाद को जन्म दे देती है।

रीतिकालीन कविता का मुख्य स्वर रीतिनिरूपण, श्रृंगार एवं दरबारीपन रहा है। महाकवि भूषण इस युग मे अपने वीरतापूर्ण कविता के कारण चर्चित रहें हैं। भूषण कविता में अतिश्योक्ति एवं अलंकारों के आग्रहपूर्ण प्रयोगों के बावजूद उनकी कविता का मूल स्वर जातीय चेतना है। औरंगजेब के विरूद्ध शिवाजी के संघर्ष को अधर्मी के विरूद्ध एक जननायक का संघर्ष बना दिया है। कुछ लोगो ने भूषण को हिन्दू चेतना का कवि भी कहा है। गहराईपूर्वक विचार करने पर यह बात असत्य प्रतीत होती है, क्योंकि हिन्दू होने के कारण भूषण में हिन्दू मिथकों का आना स्वाभाविक है परन्तु(वे एक ऐसे योद्धा के साथ खड़े हैं जो विधर्मी एवं अत्याचारी शासक के खिलाफ प्रतिरोध करता है। जो बात भक्तिकालीन कविताके बारे मे कही गई है, वही बात रीतिकालीन साहित्य पर भी लागू है कि उस समय तक राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का विकास नहीं हो पाया था। आइए अब हम राष्ट्रीयता को आधुनिक साहित्य के संदर्भ में अध्ययन करें तथा उसके स्वरूप से परिचित हों।

11.4.3 आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता की अवधारणा आधुनिक युग की देन है। नवजागरणवादी चेतना के मूल में राष्ट्रीय भावना महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति के रूप में रही है। सन् 1857 की क्रान्ति ने व्यापक रूप से भारतीय समाज को सामाजिक सांस्कृतिक - आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से प्रभावित किया। भारतेन्दु का साहित्य1857 की क्रान्ति से विशेष रूप से प्रभावित रहा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु साहित्य को इसीलिए नवजागरण की प्रथम मंजिल कहा है। भारतेन्दु साहित्य की राष्ट्रीयता का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी राज की लूट का अपनी कविताओं के माध्यम से मार्मिक वर्णन किया है।

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में प्रारंभिक समय में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व मिलता है, किन्तु क्रमश भारतेन्दु में राष्ट्रीयता का स्वर मुखर होता गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की राष्ट्रीयता अतीत गौरव एवं पुनरूत्थान की भावना से संबंधित है। इसे हम कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं -

‘‘कह गउ विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर

कहँ क्षत्री सब मरै जरे सब गए कितै गिर

कहाँ राज को तौन साज, जेहि जानत है चिर

कहँ दुर्ग सैन - धन, बल गयो, धुरहिधुर दिखात जग

जागो अब तौ खल-बल दलन,रक्षहु अपुनो आर्य मब''

× × ×

''सब भॉति दैन प्रतिकूल होई एहि नासा

अब तजहु बीरवर भारत को सब आसा''

× × ×

''रोअहु सब मिलकै आवहु भारत भाई

हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

स्पष्ट है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता अतीत गौरव, पुनरूत्थान एवं समाज सुधार से संबंधित रही है।

हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति द्विवेदी युग में आकर तीव्र हो जाती है। मैथिलीशरण गुप्त , रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों की कविताओं में उसका विशेष रूप से निदर्शन देखने को मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त मूलतः पौराणिक संदर्भो को राष्ट्रीय भाव बोधसे जोड़ने वाले कवि हैं। राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत - भारती ' पुस्तक की निम्न पंक्तियाँ काफी चर्चित रहीं हैं -

''हम क्या थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।

आओ मिलकर विचारें सभी।।''

× × ×

''कवियों ! उठो अब तो अहो! कवि-कर्म की रक्षा करो,

सब नीच भावों का हरण कर, उच्च भावों को भरो।।''

भारत - भारती में राष्ट्रीयता का आह्वान पूर्ण उद्बोधता पूर्ण स्वर इतना प्रभावी हुआ कि पुस्तक से अंग्रेज सरकार भयभीत हो गई ओर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 'भारत - भारती' कर राष्ट्रीयता से भिन्न

‘साकेत’ महाकाव्य जवनागरणवादी प्रश्नोंसे संचालित है। ’साकेत’ के राम की उद्घोषणा है-

‘‘मै नहीं यहाँ सन्देश स्वर्ग का लाया।

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।’’

जाहिर है भूतल को स्वर्ग बनाने की आकांक्षा महावीर प्रसार द्विवेदी के सुधार - जागरण से ही संचालित रही है।

रामनरेश त्रिपाठी हिंदी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी कवि के रूप् में चर्चित रहे हैं। देश -प्रेम एवं राष्ट्रीयता उनके संपूर्ण काव्य की केंद्रीय चिंता है। कुछ उदाहरण देखें -

‘‘मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति - गौरव से

अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से ।

× × ×

‘‘एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है

पल भर की भी स्वतन्त्रता सौ स्वर्गी से उत्तम है।’’

× × ×

जहाँ स्वतन्त्र विचार न बदलें मन में मुख में

जहाँ न बाधक बनें सबल निबलों के सुख में ।

सबको जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो

शान्तिदायिनी निशा हर्स सूचक वासर हो

सब भाँति सुशासित हों जहाँ समता के सुखकर नियम

बस उसी स्वतंत्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश !हम!!

रामनरेश त्रिपाठी जी की राष्ट्रीयता सुशासन , सुधार एवं स्वतंत्रता पर आधारित रही है।

‘‘लि त्रिशूल हाथ में करने चली देश - उद्धार।

गाँव गाँव में लगी घूमने सेवाव्रत उर धार।

× × ×

द्वार द्वार पर जाकर विजया करूणा - प्रेम - निधान।

सबको लगी जगाने गाकर देशभक्ति - मय गान।।''

छायावाद तक आते - आते राष्ट्रीय भावना का स्वरूप हिंदी कविता में भिन्न स्वरूप धारण कर लेता है। द्विवेदी युग तक की राष्ट्रीयता सुधारवाद के आग्रहों से परिचालित रही है, (सांस्कृतिक जागरण) पर ज्यादा विकसित हुई है। छायावादी कविता में जयशंकर प्रसाद एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं में राष्ट्रीय भावना सूक्ष्म रूप में व्यक्त हुई है। जयंशकर प्रसाद की कविताएँ सांस्कृतिक जागरण उद्बोधन से परिपूर्ण हैं। प्रसाद के नाटकों के गीत भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। -

''अरूण यह मधुमय देश हमारा

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।। (चन्द्रगुप्त)

× × ×

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।

स्वतंत्रता पुकारती।। ''

× × ×

''डरो मत अरे अमृत सन्तान

अग्रसर है मंगलमय बुद्धि

पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र

खिंची आवेगी सकल समृद्धि।''

जयशंकर प्रसाद की कविताओं में उद्बोधन के माध्यम से राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है लेकिन हमें स्मरण रखना होगा कि वे कट्टर अर्थो में केवल राष्ट्रीय आन्दोलन के गायक नहीं है बल्कि उससे आगे जाकर के संपूर्ण मानवता की मुक्ति का मार्ग दिखाते हें। कामायनी की श्रद्वा का संदेश है -

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल निखरे हैं, हो निरूपाय

समन्वय उनका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।''

निराला ने भी अपने कविताओं के माध्यम से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ही स्वर व्यक्त किया है। 'जागो फिर एक बार' और 'तुलसीदास' जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण के आधार पर रची गई कविताएँ है।

राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविताओं में राष्ट्रीय भावना की सीधी अभिव्यक्ति हमें दूखने को मिलती है। सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' , इत्यादि की कविताएँ राष्ट्रीय भावबोध से ही संचालित हुई हैं। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्र प्रेम की अधिकता के ही कारण उन्हें 'एक भारतीय आत्मा' कहा गया है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की 'पुष्प् की अभिलाषा ' कविता राष्ट्रीयता का कण्ठहार बन गई है। कविता की पंक्ति देखें -

''चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ

चाह नहीं , प्रेमी - माला में विंध प्यारी को ललचाऊँ

चाह नही, सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊ

चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊँ

मुझे तोड़ लेना बनवाली!

उस पथ में देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने

जिस पथ पर जावें वीर अनेक।''

इसी प्रकार 'कवि का आह्वान' शीर्षक कविता में माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है -

''राष्ट्र प्रेम की ध्वजा उठाओ, माता को समझाओ।

षुष्प पुंज की भाँति शीश, सब चरणों बीच चढ़ाओ ।।''

इसी प्रकार सुभ्रद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ 'झाँसी की रानी' 'वीरों का कैसा हो बसन्त', 'झासी की रानी की समाधि पर' 'जालियाँ वाले बाग में वसन्त' 'ठुकरा दो या प्यार करो, लोहे को पानी कर देना, राष्ट्रीय भावबोध की अमर कृतियाँ हैं

11.5 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता की मूल संवेदना

11.5.1 राष्ट्र - प्रेम

पिछले बिन्दुओ में हमने अध्ययन किया कि राष्ट्र प्रेम की अवधारणा व्यापक अवधारणा है। कभी - कभी राष्ट्र प्रेम प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है और कभी - कभी यह पृष्ठभूमि में चला जाता है। चूँकि यह अपने आप में इतने बड़े वर्ण्य - क्षेत्र से जुड़ा हुआ है कि स्पष्टतया इसे सीदे - सादे ढंग से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता । राष्ट्र प्रेम की अवधारण मूलभूल अवधारणा है। व्यक्ति अपने घर - परिवार, जाति, धर्म, समाज - परिवेश -संस्कृति, प्रदेश एवं राष्ट्र से जुड़ा हुआ होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - जिस व्यक्ति को अपने राष्ट्र से प्रेम होगा, वह उस राष्ट्र के जीव -जंतु, पशु - पक्षी, पेड़ - पौधे सबको प्रेम से देखेगा, सबको चाह की दृष्टि से देखेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र - प्रेम की अवधारणा में जीव -जतु , प्रकृति, मानव, राष्ट्र संस्कृति सभी आ जाते है। शर्त यह है कि साहित्य के इस चि़त्रण में लोकधर्मिता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।

11.5.2 समाज सुधार

हिन्दी कविता मं राष्ट्रीयता की भावना और समाज सुधार की भावना एक दूसरे से जुड़े हुए है। राष्ट्रीयता और समाज सुधार का क्या सम्बन्ध है ? इसे समझाते हुए अमरीकी विचारक एडमस ने लिखा है - राष्ट्रीयता की भावना से समान सुधार की भावना पैदा होती है। जबकि भारतीय साहित्य के संदर्भ में इसके ठीक उल्टे होता है। हिंदी साहित्य के में राष्ट्रीयता का उदय सामाजिक सुधारों के माध्यम से हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से संबंधित प्रतिज्ञा - पत्र हो या स्त्री - शिक्षा के प्रचारार्थ बालाबोधनी' पत्रिका का प्रकाशन , ये सभी सामाजिक सुधार की ही अभिव्यक्ति है। महावीर प्रसार द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक सुधार की भावना आधार रूप में रही है। द्विवेदी युग के साहित्याकार, विशेषकर मैथिलीशरण गुप्त की कविता स्त्री सुधार ;अबला हाय तुम्हारी यही कहानी' जैसे वाक्य से जुड़ी रही है । महावीर प्रसार द्विवेदी की कविता 'हीरा डोम' वर्ण - व्यवस्था की विसंगतियों से जुड़ी हुई है। छायावाद के बाद का काव्य जैसे प्रगतिवाद एवं मोहभंग की कविता में सामाजिक - सुधार की भावना विशेष वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती सियारामशरण गुप्त की पंक्ति देखें - ''करता है क्या ? अरे मूढ़ कवि, यह क्या करता?/ उत्पीड़ित के अश्रु लिये ये कहाँ विचरता ? '' इसी प्रकार बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य की पंक्ति देखें -

''और चाटते जूठे पत्ते उस दिन देखा मैनें नर को/उस दिन सोचा, क्यों न लगा दूँ आज आग दुनिया भर को?''

11.5.3 विद्रोह /क्रान्ति

राष्ट्रीयता की भावना जहाँ - जहाँ भावात्मक आवेग धारण कर लेती है, वहाँ वह विद्रोहात्मक रूप धारण कर लेती है, हिंदी कविता में विद्रोह - क्रान्ति को कविता के रूप में ढालने का काम कबीरदास जी के माध्यम से हुआ। कबीरदास जी की पंक्ति देखे-

'कबीरा खडा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।/ जो घर

फूँके आपना सो चले हमारे साथ '

× × ×

'जे तूं बाभन बभनी जाया। तौ आंन बाट होइ काहे न आया।।'

× × ×

'पात्थर पूजै हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़'

× × ×

निराला की कविता में भी विद्रोहात्मक वाणी की कमी नहीं है - 'होगा फिर से दुर्धर्ष समर उनकी कविताओं की मूल थीम है। 'जागो फिर एब बार' निराला की कविताओं की ऊर्जा है। राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता और मोहभंग की कविताओं का ऊर्जा विद्रोह ही है।

'कवि' कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल - पुथल मच जाये' × × ×

काटो, काटो, काटो करबी/मारो मारो हँसिया/हिंसा और अहिंसा क्या है?/ जीवन से बढ़कर हिंसा क्या है? ! × × ×

सिपाही का डंडा/तोड़ता है अंडा/ शांति का दिया हुआ/ अंडे से निकल आया असंतोष /भमक उठा रोष /लहर अठा झंढ/ क्रान्ति का

× × ×

अपने यहाँ संसद -/तेली की वह धानी है/ जिसमें

आधा तेल है/आधा पानी है।'

ढेरो ऐसे वाक्य हें जो राष्ट्रीयता की विद्रोहमूलक चेतना से जुड़े हुए हैं/

11.5.4 विमर्श

विमर्श शब्द पश्चिम के 'डिस्कोर्स' का हिंदी अनुवाद है। 'विमर्श' का प्रयोग कविता के संदर्भ में तब होता है जब कवि बंधे - बंधाये रूप को तोड़ना चाहता है। वीसलदेव रासो' की पंक्ति 'अस्त्रीय जनम काइ दीधउ महेस' विमर्श नहीं तो और क्या है ? इसी प्रकार तुलसीदास की ''पार्वती मंगल'' की पंक्ति 'कत विधि' सृजी नारि जग माही/पराधीन सपने हुँ सुख नाहीं ।।'' विमर्श का ही भक्ति रूप है। कबीरदास का पूरा काव्य ही विमर्श खड़ा करता है। 'विमर्श' वह माध्यम है जब कवि प्रश्न पैदा करता है। इस दृष्टि से वर्तमान में स्त्री विमर्श दलित विमर्श एवं आदिवासी विमर्श विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न 2)

निर्देश: कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उचित विकल्प की तलाश कर रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. राष्ट्रीयता जहाँ कविता बनी है वे प्रसाद और निराला के गीत हैं। पंक्ति के लेखक .... हैं। (निराला, महादेवी रामस्वरूप चतुर्वेदी)

2. 'भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि म्हारा केतु' पंक्ति के लेखक ....है। (चन्द्रबरदाई, हेमचन्द्र, सरहपा)

3. .... ने भारतेन्दु साहित्य को नवजागरण की प्रथम मंजिल बताया है।

(रामचन्द्र शुक्ल/रामविलास शर्मा/हजारी प्रसाद द्विवेदी)

4. 'भारत -भारती ' के लेखक .... है।

(महावीर प्रसाद द्विवेदी/ निराला/ हजारी प्रसाद द्विवेदी)

अभ्यास प्रश्न 3)

निर्देश: 'क' और 'ख' का सही मिलान कीजिए।

'क'	'ख'
1. महाभारत	भक्तिकाल
2. मैथिलीशरण गुप्त	मिलन

3.	रामनरेश त्रिपाठी	कामायनी
4.	जयशंकर प्रसाद	क्लासिक साहित्य
5	कबीरदास	साकेत

11.6 सारांश

- राष्ट्रीयता साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमे राष्ट्र की आशा - आकांक्षाओ को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई हो।
- सुकुचित अर्थ में राष्ट्रीयता साहित्य से तात्पर्य उद्बोधन परक स्वातंत्र्य चेतना से युक्त गीत से है।
- राष्ट्रीयता भावबोध वैसे तो हर युग एवं काल की विशेषता है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह आधुनिक अवधारणा है।
- आदिकालीन साहित्य वीरता की पृष्ठभूमि से व्यापक रूप से संचालित हुआ है। पृथ्वीराज राजो, हेमचन्द्र के दोहे व परमाल रासो ओजपूर्ण कवित्व की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। किन्तु इनमें व्यापक राष्ट्रीयता भाव-बोध का अभाव है।
- भक्तिकाल एवं रीतिकाल के साहित्य में भक्ति - नीति - श्रृंगार केंद्र में रहे हैं। भूषण एवं सूदन का काव्य इस दृष्टि से अपवाद कहा जा सकता है।
- आधुनिक कालीन चेतना के मूल में राष्ट्रवादी भावना ;1857 की क्रान्ति एवं स्वाधीनता संग्रामद्ध रही है। भारतेन्दु युग से लेकर राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता तक राष्ट्रीयताका एक धरातल रहा है ओर स्वातंत्रयोत्रर काव्य की राष्ट्रीयता आधुनिक विमर्शों की तरफ मुड़ जाती है फलस्वरूप उसका दूसरा धरातल हो जाता है।
- राष्ट्रीयता ओर कविता के अंतर्सम्बन्ध को लेकर बहुत कम बात की गई है। राष्ट्रीयता की सीदी - सादी अभिवयक्ति कविता नहीं है और बिना बिना राष्ट्रीय भाव - बोध के कविता सार्थक नहीं है।

11.7 शब्दावली

- क्लासिकल साहित्य - किसी भी देश-काल की संस्कृति से युक्त साहित्य
- जातीय साहित्य - किसी भाषा की संभावनाओं एवं लोक से जुड़ा साहित्य
- ऐतिहासिक बोध - देश-काल की गति का बोध होना।
- समूहिकता - समूह के प्रतिभावना
- साम्रराज्यवाद - राज्य के वर्चस्व का सिद्धान्त
- नाजीवाद - कट्टर राष्ट्रीयता, जर्मनी में इस शब्द का प्रयोग हिटलर की राष्ट्रीयता के सदंर्भ में हुआ है
- नवजागरण - अपने जातीय गौरव का पुन: स्मरण्
- राष्ट्रीयता - राष्ट्र के प्रति सचेत गौरव की भावना
- पुनरूत्थान - ऐतिहासिक गौरव को पुनः जीवित करने की भावना
- उद्बोधन - उत्साह एवं प्रेरणा युक्त गीत

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) ख)

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) असत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न 2)

(1) - रामस्वरूप चतुर्वेदी (2) – हेमचन्द्र (3) - रामविलास शर्मा

(4) - मैथिलीशरण गुप्त

अभ्यास प्रश्न 3)

(1) - क्लासिक साहित्य (2) – साकेत (3) - मिलन

(4) – कामायनी (5) - भक्तिकाल

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, (सं) धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

3. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिकी सभा।

11.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

2. तिवारी, रामचन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्लः आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीयता की सामाजिक - सांस्कृतिक - आर्थिक पृष्ठभूमि निरूपित कीजिए।

2. राष्ट्रीयता और साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

3. हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की अवधारणा के संदर्भ स्पष्ट कीजिए।

इकाई12 रामधारी सिंह दिनकर : पाठ एवं आलोचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 राष्ट्र कवि : 'दिनकर'
12.3.1 राष्ट्रीय कवि 'दिनकर' : परिचय
12.3.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और 'दिनकर'
12.4 रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व
12.4.1 दिनकर कविता की वैचारिक भूमि
12.4.2 दिनकर कविता : संदर्भ सहित व्याख्या
12.5 रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्य का विश्लेषण एवं मूल्यांकन
12.6 'दिनकर' कविता के कलात्मक आयाम
12.7 सरांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने राष्ट्रीय भाषा और हिंदी कविता के बारे में ज्ञान प्राप्त किया अब आप जान गए हैं कि राष्ट्रीयता क्या होती है ? राष्ट्रीय भावों का उदय कैसे होता है? तथा हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना का चित्रण किस प्रकार हुआ है ? आप यह भी जान गए हैं कि राष्ट्रीय भावना और साहित्य का क्या संबंध है तथा राष्ट्रीयता कहॉं कविता बनीत है, आप इसे भी जान गए हैं। आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि हिंदी कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। स्वाभाविक है कि 'दिनकर' जी की कविता में राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक के तत्व अपने समुन्नत रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' का प्रारंभिक कृत्तित्व उग्र राष्ट्रवाद से शुरू होता है। तीव्रता, जोश एवं क्रान्ति आपने प्रारंभिक कविता में बखूबी मिलते हैं लेकिन क्रमश: 'दिनकर' की कविता राष्ट्रीयता से सांस्कृतिक की ओर झुकते गए हैं। कह सकते हैं कि 'दिनकर' राष्ट्रवाद से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ओर झुकते गए हैं। इस इकाई में हम रामधारी सिंह 'दिनकर' के कृत्तित्व की रूपरेखा को समझने का प्रयास करेंगे। 'दिनकर' कविता के कुछ अंशों की व्याख्या तथा 'दिनकर' साहित्य की आलोचना के माध्यम से उनके साहित्य को जानेंगे। इस दृष्टि से यह इकाई मुख्यत: दो खण्डों में विभाजित है। मूल पाठ तथा दिनकर साहित्य की आलोचना ।इस इकाई के माध्यम से हम 'दिनकर' साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे आइए इससे पूर्व हम रामधारी सिंह 'दिनकर' के संबंध में थोड़ी सी जानकारी प्राप्त करें।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रामधारी सिंह 'दिनकर' के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' काव्य की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- 'दिनकर' साहित्य की काव्यभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय – सांस्कृतिक कविता को समझ सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य की मुख्य विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' काव्य के मूल पाठ से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'दिनकर' काव्रू की पारिभाषिक शब्दावलियों को जान सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता के भाषा-शिल्प से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी कविता में 'दिनकर' के काव्य प्रदेश का मूल्यांकन कर सकेंगे।

12.3 राष्ट्र कवि : 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता धारा के महत्वपूर्ण कवि के रूप में समाहत रहे हैं। छायावादी काव्यान्दोलन सांस्कृतिक जागरण का आन्दोलन था। इस आन्दोलन में राष्ट्रीयता के तत्व सूक्ष्म रूप में विन्यस्त हुए हैं, लेकिन युगीन परिस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। सन् 1930 ईसवी के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती है। भगतसिंह की फांसी के बाद युवा आक्रोश चरम सीमा पर पहुँचती हैं। संपूर्ण विश्व मंदी के दौर से गुजर रहा था, ऐसे समय में पराधीनता की पीड़ा और तीव्र हुई। छायावादी कल्पना लोक से हटकर स्वयं छायावादी कवि भी यर्थाथवादी कवि भी यर्थाथवादी रचना की ओर प्रवृन्त हुए। ऐसे समय में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा की उत्पत्ति का ही वस्तुगत कारण था। इसी काव्यधारा में 'दिनकर' का आगमन किसी क्रान्ति से कम नहीं था। दिनकर की कविताओं ने हिंदी कविता को नया तेवर प्रदान किया। हिंदी कविता की भाषा में शैली में, वस्तुतत्व एवं चेतना में दिनकर ने व्यापक परितर्वन उपस्थित किया। आगे के बिन्दुओं में हम दिनकर काव्य का विशेष अध्ययन करेंगे। आइए उसके पूर्व हम उनके जीवन संघर्ष का परिचय प्राप्त करें।

12.3.1 राष्ट्रीय कवि 'दिनकर' : परिचय

(क) जीवन परिचय - राष्ट्र कवि 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर 1908 ईसवी को बिहार के मुंगेर जिला के सिमरिया गॉव में हुआ था। दिनकर की पारिवारिक स्थिति बहुत सुदृढ़ न थी। उसमें वाल्काल में ही पिता का देहान्त हो गया। तीनों भाईयों को उनकी मॉ ने बहुत ही संघर्ष के साथ पालन-पोषण किया। उनकी प्रारंभिक पढ़ाई गाँव के पाठशाला में हुई। पॉचवी श्रेणी पास करने के बाद सन् 1922 ई0 में बारो गॉव के नेशनल मिडिल स्कूल में नाम लिखाया गया। दो वर्ष बाद स्कूल बंद होने के उपरान्त आप सरकारी मिडिल स्कूल बारों में नामांकित हुए, जहॉं पुरस्कार स्वरूप 'रामचरितमानस' एवं 'सूरसागर' जैसे ग्रंथ प्राप्त होने के कारण आपके अंदर साहित्यिक संस्कारों की नींव पड़ी। जनवरी 1924 ई0 में मोकामा घाट के जेम्स वाकर हाईस्कूल में नामांकन हुआ। 1928 ई0 में 19-20 वर्ष की उम्र में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। सन् 1928 ई0 में आपने पटना कॉलेज में नाम लिखवाया तथा सन् 1932 में इतिहास विषय से बी0ए0 की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी0ए0 पास करने के बाद दिनकर कुछ काल तक स्कूल में प्राध्यापक रहे। तदुपरान्त सितम्बर 1934 ई0 में बिहार सरकार के राजस्व विभाग में आपकी नियुक्ति सब-रजिस्ट्रार के पद पर हुई। इसी समय 1934 ई0 में बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के छपरा अधिवेशन में कवि-सम्मेलन की आपने अध्यक्षता की। औपनिवेशिक सरकार की नौकरी करने का कटु अनुभव यहीं से उन्हें मिलने लगा। सन् 1942 ई0 में जब राष्ट्र के जीवन में उबाल आया, तब वे अंग्रेजी सरकार के युद्ध-प्रचार विभाग में थे। सितम्बर 1943 से 1945 ई0 तक सरकार द्वारा दिनकर जी को ऐसी जगह स्थापित कर दिया गया था जो राष्ट्रविरोधी कार्यों की जगह थी। लम्बे मानसिक संघर्ष के पश्चात् उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। सन् 1950 ई0 में

बिहार सरकार ने उन्हें पटना विश्वविद्यालय के लंगट सिंह महाविद्यालय में हिंदी-विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952 ई0 के अप्रैल में आप राज्यसभा का सदस्य चुन लिए गए। जनवरी 1964 ई0 में दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। मई 1965 के आपने कुलपति के पद से इस्तीफा दे दिया और भारत सरकार के हिंदी सलाहाकर का पद ग्रहण किया। सन् 71 में आप इस पद से मुक्त होकर, पटना आकर रहने लगे। 24 अप्रैल 1974 ईसवी को मद्रास यात्रा के दौरान दिल का दौरा पड़ने से आपकी मृत्यु हुई। इस प्रकार एक महायात्रा का समापन हुआ।

(ख) दिनकर का कृतित्त्व परिचय - रामधारी सिंह दिनकर का कृतित्त्व पद्य एवं गद्य दोनों दृष्टियों से, कथ्य एवं परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध रहा है। उनके कृतित्त्व की व्याख्या एवं आलोचना हम आगे देखेंगे। यहाँ हम केवल उनके कृतित्व की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं –

काव्य –

- विजय संदेश – 1928 ई0
- प्रणभंग – 1929 ई0
- रेणुका – 1935 ई0
- हुंकार – 1939 ई0
- रसवंती – 1940 ई0
- द्वंद गीत – 1940 ई0
- कुरक्षेत्र – 1946 ई0
- धूप-छाँह – 1946 ई0
- सामधेनी – 1947 ई0
- बापू – 1947 ई0
- इतिहास के ऑसू – 1951 ई0
- धूप और धुऑं – 1951 ई0
- मिर्च का मजा – 1951 ई0
- रश्मिरथी – 1952 ई0
- दिल्ली – 1954 ई0
- नीम के पत्ते – 1954 ई0
- नीलकुसुम – 1954 ई0

- पूरज का व्याह – 1955 ई0
- चक्रवाल – 1956 ई0
- कवि श्री – 1957 ई0
- सीपी और शंख – 1957 ई0
- नए सुभाषित – 1957 ई0
- उर्वशी – 1961 ई0
- परशुराम की प्रतीक्षा – 1963 ई0
- कोयला और कवित्व – 1964 ई0
- मृत्ति तिलक – 1964 ई0
- आत्मा की ऑखे – 1964 ई0
- दिनकर की सूक्तियॉं – 1965 ई0
- हारे को हरिनाम – 1970 ई0
- दिनकर के गीत – 1973 ई0
- रश्मिलोक – 1974 ई0

आलोचना

- मिट्टी की ओर – 1946 ई0
- अर्धनारीश्वर – 1952 ई0
- काव्य की भूमिका – 1958 ई0
- पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण – 1958 ई0
- वेणुवन – 1958 ई0
- शुद्ध कविता की खोज – 1966 ई0

अन्य गद्य रचनाएँ -

- चित्तौड़ का साका – 1949 ई0
- रेती के फूल – 1954 ई0
- हमारी सांस्कृतिक एकता –1954 ई0
- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0

- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0
- संस्कृति के चार अध्याय – 1956 ई0
- उजली आग – 1956 ई0
- देश-विदेश – 1957 ई0
- राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता – 1958 ई0
- धर्म, नैतिकता और विज्ञान – 1959 ई0
- वट – पीपल – 1961 ई0
- साहित्यमुखी – 1968 ई0
- राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गॉंधीजी – 1968 ई0
- हे राम – 1969 ई0
- संस्करण और श्रद्धांजलियां – 1969 ई0
- मेरी यात्राऍं – 1970 ई0
- भारतीय एकता – 1970 ई0
- दिनकर की डायरी – 1973 ई0
- चेतना की शिखा – 1973 ई0
- आधुनिक बोध – 1973 ई0
- विवाह की मुसीबतें – 1974 ई0
- दिनकर के पत्र (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) – 1981 ई0
- शेष – नि:शेष (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) - 1985 ई0

12.3.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और 'दिनकर'

राष्ट्रीय- सांस्कृतिक कविता का आन्दोलनात्मक समय सन् 1935 से 1945 ईसवी के बीच स्थिर किया जा सकता हैं लेकिन वह भी सुविधाजनक समाधान होगा। माखनलाल चतुर्वेदी या रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रमुख रचनाऍं लगभग 34-35 तक प्रकाशित होने लगती हैं। सन् 1930 के बाद, जैसा कि पूर्व में बताया गया था, युवा आक्रोश अभिव्यक्ति के मार्ग तलाश रहा था। इस समय का सबसे बड़ा काव्यान्दोलन छायावाद भी कल्पना जगत से यर्थाथ की धरती पर आ खड़ा हुआ। लेकिन 'छायावाद' की मूल संरचना यर्थाथवादी-विल्लववादी अभिव्यक्ति के अनुकूल न थी। संभवत: राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि निर्मित करने में इन तथ्यों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के सामने समस्या यह आती है कि

छायावादोत्तर युग का काल विभाजन वह किस प्रकार करें ? सन् 1936 से 1943 तक का काल प्रगतिवाद कहा गया है। इसी समय में हरिवंशराय बच्चन द्वारा प्रवर्तित 'हालावाद' भी चला और यही समय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का भी है। ऐसी स्थिति में हिंदी साहित्य के सामान्य पाठकों के सामने उलझन आती है कि वह सन् 1936 के बाद किस काव्यधारा को केन्द्रित स्थिति में रखे। इस समय राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिवाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक दृष्टि से दिनकर आदि का काव्य तथा व्यैक्तिक अनुभूतियों एवं युग मन की स्थिति को व्यक्त करने की दृष्टि से 'हालावद' प्रमुख भूमिका निभाते हैं। एक तो वर्षों का अंतर छोड़ दें तो तीनों काव्याधाराएँ लगभग सामानान्तर रूप में विकसित होती हैं। छायावादोत्तर कविता का नेतृत्व कौन करेगा ? दिनकर या बच्चन ? यह प्रश्न भी उस समय उपस्थित हुआ था।

इस कविता धारा के नामकरण को कुछ लोगों ने स्वच्छंद धारा कहा है। किसी ने विव्लववादी और गॉधीवादी काव्य धारा, किसी ने जोश की कविता तो किसी ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता। छायावादोत्तर कविता पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने टिप्पणी की है : ''छायावादी कवियों के अतिरिक्त वर्तमानकाल में और भी कवि हैं जिनमें से कुछ ने यत्र-तत्र ही रहस्यात्मक भाव व्यक्त किये हैं। उनकी अधिक रचनाएँ छायावाद के अंतर्गत नहीं आतीं। उन सबकी अपनी अलग-अलग विशेषता है। इस कारण उनको एक ही वर्ग में नहीं रखा जा सकता। सुभीते के लिए ऐसे कवियों की समष्टि रूप से, 'स्वच्छंद धारा' प्रवाहित होती है। इन कवियों में पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, (एक भारतीय आत्मा) श्री सियाराम शरण गुप्त, पं0 बालकृष्ण शर्मा, नीवन, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री रामधारी सिंह दिनकर, ठाकुर गुरूभक्त सिंह सिंह और पं0 उदयप्रकाश भट्ट।'' स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल के समय तक दिनकर और हरिवंशराय बच्चन एक ही धारा के अंतर्गत माने जा रहे थे। दोनों को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'स्वच्छंद धारा, के अंतर्गत रखा है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है – ''इस धारा पर व्यापक अर्थ में क्रान्तिकारी आन्दोलन और गॉधीवादी आन्दोलन का विशेष प्रभाव था। कुछ लोग इसे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा कहते हैं। यदि यह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा है तो स्वच्छंदतावादी (छायावादी) काव्य धारा क्या है ?'' इस काव्यधारा के नामकरण पर प्रश्नचिह्न लगाने के पश्चात् डॉ0 बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है – ''इस धारा के अधिकांश कवियों ने क्रान्तिकारिता के विहावी रूप को वाणी दी। उनकी रचनाओं में आक्रोश और क्रान्ति का अत्यन्त विक्षोभकारी स्वर सुनाई पड़ता है..............इनके विप्लव-गान में एक फक्कड़ाना मस्ती, लापरवाही और बलिवेदी चढ़ने की गहरी ललक मिलती है।'' डॉ0 बच्चन सिहं स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा का मूल स्वर आक्रोश और क्रान्ति कहते हैं, वहीं दूसरी ओर इस काव्यधारा का नामकरण विप्लववादी और गॉधीवादी-काव्य करते हैं। गॉधीवाद का विप्लव से बहुत दूर का रिश्ता है। महात्मा गॉधी उस युग के सबसे बड़े जननायक थे, स्वाभाविक था कि उसका प्रभाव उस युग के सचेत कवियों पर पड़ता। लेकिन गॉधीवादी होने और गॉधी का प्रभाव पड़ने में बहुत अंतर है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता में राष्ट्रीयता क्रमश: संस्कृति की ओर अग्रसर हुई है। जैसे रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय गान से सांस्कृतिक विमर्शो की तरफ झुकते चले गये। लेकिन अन्य कवियों में राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकता के तत्व उतने पृथक् नहीं किये जा सकते। रामधारी सिंह दिनकर पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन, अंचल आदि नव्य छायावादियों (व्यक्तिवादियों) से जुड़ पाते हैं और न प्रगतिवादियों से उनका अपना रास्ता है। वे कहीं दोनों धाराओं के बीच में पड़ते हैं। इसलिए कहीं वे गॉधीवाद का समर्थन करते हैं तो कहीं सशस्त्र क्रांति का, कहीं प्रकृति और नारी प्रेम की आकांक्षा व्यक्त करते हैं तो कहीं कर्वहारा के उदय की।'' वस्तुत: हर बड़े कवि में भावधारा की कई मन स्थितियॉ होती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' का जीवन परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।
2. रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व परिचय सात पंक्तियों में प्रस्तुत कीजिए।

अभ्यास प्रश्न – 2

'हॉ', या 'नहीं' में उत्तर दीजिए –

1. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी नहीं हैं। ( )
2. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा का समय सन् 1940 के बाद प्रारम्भ होता है। ( )
3. रामधारी सिंह 'दिनकर' का जम्न 1908 ई0 में हुआ था। ( )
4. 'रश्मिरथी' काव्य रूप की दृष्टि से महाकाव्य है। ( )
5. 'कुरूक्षेत्र' काव्य का आधार ग्रन्थ 'महाभारत' है। ( )

12.4 रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व

रामधारी सिंह 'दिनकर' छायावादी अवसान काल के समय हिंदी कविता के मंच पर उपस्थित हुए। खुद दिनकर ने लिखा है कि वह छायादार की पीठ पर आए। दिनकर के कविता क्षेत्र में आगमन में समय देश गहरे राजनीतिक-आर्थिक संकट से गुजर रहा था। युवावों का बड़ा वर्ग हताश-निराश था। युवा वर्ग के भीतर अवसाद की स्थिति थी, ऐसे में कभी वह हग्लाव्याला की बात करता था तो कभी राजनीति पर चर्चा। राजनीति एवं राष्ट्रीयता को कविता बनाने की प्रक्रिया हिंदी कविता में चल तो रही थी, लेकिन जिस तिव्रता-ओजपूर्ण भाषा की जरूरत होती

है, वह न आ पाई थी। दिनकर के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही उपस्थित हुआ कि वह रोमानी आदर्शों पर चलें, कल्पना जगत का आश्रय लें या स्वयं का रास्ता निर्मित करें। दिनकर ने युग धर्म-परिस्थिति का निर्वाह करते हुए रोमान की मनोभूमि से अलग उद्दाम, उत्साह तथा विप्लवी मनोभूमि पर राष्ट्रीय मनोभावों के प्रवक्ता बन कर उभरे।

12.4.1 दिनकर कविता की वैचारिक भूमि

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि रामधारी सिंह 'दिनकर' के कवि-व्यक्तित्व पर रोमानियत, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकता का गहरा प्रभाव था। छायावादी आन्दोलन का प्रभाव भी दिनकर पर कम नहीं था, लेकिन युग-संदर्भ के दबाव से उन्होंने अपनी चेतना को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। बाद में यह चेतना क्रमश: सांस्कृतिक धरातल से कामाध्यात्मक तक चली जाती है। दिनकर को ख्याति उनके राष्ट्रीय गीतों के कारण मिली। लेकिन स्वयं कवि की आत्म स्वीकृति इसके विपरीत है – ''विप्लव और राष्ट्रीयता का वरण कभी मेरा उद्देश्य न था।....आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में रमती है। राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया। ''प्रश्न किया जा सकता है कि राष्ट्रीयता उद्देश्य न होकर भी दिनकर की कविता का मुख्य स्वर बन जाती है, इसे हम युग-संदर्भ का दबाव कह सकते हैं। लेकिन रोमानियत क्या दिनकर की मूल प्रवत्ति है ? रोमानियत की यही प्रवृत्ति क्या कामाध्यात्म में रूपान्तरित हो जाती है ?

दिनकर की मूल मनोवृत्ति चाहे श्रंगार रही हो (जैसा कि प्राय: लोगों की होती है) लेकिन यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय संवेदना को उनकी कविता के माध्यम से ऐतिहासिक अभिव्यक्ति मिली है। राष्ट्रीय भावना से युक्त कविता तथा ओजस्वी उद्बोधनों ने स्वतंत्रता पूर्व तथा पश्चात् राष्ट्र विरोधी शक्तियों को चंताया तथा सामान्य जनता को बल प्रदान करते रहे। दिनकर का प्रसिद्ध उद्बोधन देखें –

''जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ,

वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है,

दो राह, समय के रथ का धर्धर नाद सुनो,

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''

यह कविता दिनकर ने सन् 1950 में लिखी थी, जब देश स्वतंत्र हो चुका था। वस्तुत: भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन न केवल राजनीतिक-सत्ता प्राप्ति का आन्दोलन था न केवल पुराने गौरव को पाने का प्रयास था बल्कि गहरे-सूक्ष्म अर्थों में सांस्कृतिक एकता को पुन:सृजित करने का

सांस्कृतिक उपक्रम भी था। भक्ति आन्दोलन, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की तरह राष्ट्रीय आन्दोलन भी अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन बना। 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में अनायास नहीं की साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा अनेक इतिहासग्रन्थ लिखे गये, जिसमें भारतीय संस्कृति को दोयम दर्जे की संस्कृति, पिछड़ी, संस्कृति घोषित किया गया। अखिल भारतीयता बिना सांस्कृतिक बैचेनी के पैदा हो ही नहीं सकती। रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य 'संस्कृति के चार अध्याय' सांस्कृतिक प्रत्युत्तर का ही रचनात्मक प्रयास है।

'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मि रथी' जैसी कृत्तियॉं तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से निसृत हु हैं। 'कुरूक्षेत्र' का आधार ग्रंथ 'महाभारत' का 'शांति पर्व' है, लेकिन इस रचना पर तत्कालीन विश्वयुद्ध एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के नरसंहार की प्रेरणा ही मुख्य रही हैं। तत्कालीन समस्या का समाधान क्या महाभारत कालीन पृष्ठभूमि के आधार पर खोजा जा सकता है ? वस्तुत: समाधान मुख्य होता है, पृष्ठभूमि चाहे किसी काल की हो। रचना की मुख्य समस्या में पौरूष और देव, स्वार्थ और लोकहित, पाप और धर्म तथा युद्ध और शांति की समस्या को उठाया गया है। मनुष्य से श्रेष्ठ संसार में कुछ भी नहीं है –

''यह मनुज, ब्रहांतु का सबसे सुरम्य प्रकाश

कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश

यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,

कर रहे जिसको चराचर भक्ति युक्त प्रणाम,

यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार,

ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार,

वही मनुष्य पशु, हिंस्र , रक्त-पिपासु कैसे हो। जाता है ? यह दिनकर का मुख्य प्रश्न है। 'कुरूक्षेत्र' में ही दिनकर लिखते हैं –

''वह अभी पशु है, निरा पशु, हिंस्र , रक्त-पिवासु,

बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।

यह मनुज ज्ञानी, श्रंगालों कुक्कुरों से हीन हो किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।

इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,

वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

'कुरूक्षेत्र' की उपरोक्त पंक्तियाँ विरोधाभासी प्रतीत हों रही है, जैसा कि हैं नहीं। दिनकर मानते हैं कि मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है, लेकिन उसने अपनी समस्त संभावनाओं का सही उपयोगी नहीं किया है। विज्ञान की संभावना विनाश पैदा कर रही है, ऐसी स्थिति में इसे सही कैसे कहा जा सकता है। गॉधी से प्रभावित होते हुए भी दिनकर ने युद्ध संबंधी प्रसंग में उनसे पूर्ण सहमति नहीं दिखाई है. गांधी का दर्शन जहाँ युद्ध को पूरी तरह नकारता है वहीं दिनभर इस बात पर बल देते हैं कि न्याय के लिए युद्ध अनिवार्य हैं। मनुष्य की चेतना जब पूरी तरह विकसित हो जायेगी तब युद्ध की संभावना स्वत: ही नि:शेष हो जायेंगी। 'नहीं चाहता युद्ध लड़ाई, लेकिन अगर बनेगी/किसी तरह भी शांतिवाद से मेरी नहीं बनेगी।' जैसी पक्तियां में दिनकर की विचारधारा स्पष्ट है।

'रशिमरथी' खण्ड काव्य तत्कालीन जाति प्रथा, वर्ग-वैषम्य पर प्रहार करता है। कह सकते हैं कि न्याय और समता का मूल दर्शन ही दिनकर का प्रतिपाद्य रहा है। कर्ण को काव्य नायक बना करके दिनकर ने जाति-पांति के मुकाबले पौरूष, त्याग एवं मानवीय गुणों को प्रतिष्ठित किया है। सही अर्थो में दिनकर मानवतावादी कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। कविता की पक्तियां देखें –

''धँस जाये वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान।

जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान।।''

रामधारी सिंह 'दिनकर' की वैचारिक भूमि की विष्पत्ति 'उर्वशी' के 'कमाध्यात्म' में होती है। देह की सीमा के अतिक्रमण की भावना 'उर्वशी' के केन्द्र में है। उर्वशी की भूमिका में दिनकर ने लिखा है – 'नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती न नर नारी के आलिंगन में संतोष मानता है। कोई शक्ति है जो नारी को नर और संतोष मानता है। कोई शक्ति है जो नारी को नर और नर को नारी से अलग नहीं रहने देती ओर जब वे मिल जाते हैं, तब भी उनके भीतर किसी ऐसी तृषा का संचार करती हैं, जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है। उसी प्रकार नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इंद्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरूष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते-उछालते, उस मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पंद हो जाता है और पुरूष के भीतर भी एक और पुरूष है, जो शरीर के धरातल पर नहीं रहता, जिसके मिलन की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुँचना चाहती है।'

'उर्वशी' की पक्तियां हैं –

1. वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठते हैं।

2. रेंगने लगते सहस्त्रों सांप सोने के रूधिर में

3. रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है ?

उर्वशी के कामाध्यात्म पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है : ''रतिक्रीड़ा निजी व्यापार है। किन्तु इस व्यापार को इतने आडम्बरपूर्ण ढंग से मुखरित किया गया है कि मुक्तिबोध के शब्दों में – ''मानो पुरूरवा और उर्वशी के रति-कक्ष में भोंपू लगे हों जो सारे शहर में संलाप का प्रसारण- विस्तारण कर रहे हों। ''लेकिन डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने उर्वशी के कामाध्यात्म को वैचारिक रूप से वरेण्य माना है। उन्होंने लिखा है – ''सेक्स पूर्व वह प्रेम नहीं, सेक्स ही है। प्रेम आत्मा के तल पर निवास करने वाला काम ही है। शीतल जल की तरह प्रशांत होता है। उर्वशी प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है। यह आत्मा के तल पर पहुँच कर निस्पंद हो जातने वाले काम की कविता है।'' लॉरेंस ने लिखा है कि सेक्स स्पर्श ही है – सबसे गहन स्पर्श। इस पर विजेन्द्र नारायण सिंह ने टिप्पणी की है – ''स्पर्श का सुख है तो शरीर सुख ही। पर शरीर की कोई अनुभूति बहुत गहरी हो तो उस क्षण में आत्मा की झलक मिलती है। अत: काम के गहन सुख के क्षण में उससे परे की भी कोई सत्ता झलक मारती है। काम का गहन सुख अध्यात्म की भी अनुभूति करा देता है। पुरूरवा ठीक ही उर्वशी से कहता है : "बाहुओं के इस वलय में गात्र ही बंदी नहीं है, वक्ष के इस तल्प पर सोती न केवल देह मेरे व्यग्र, व्याकुल प्राण भी विश्राम पाते है।" इस प्रकार कामसुख की गहनतम अनुभूति के क्षण में आत्मा की झलक दिखाई पड़ती है।'' कामाध्यात्म के इस प्रश्न को सिद्धों के वज्रयान के 'मुहासुखवाद' में भी उठाया गया है। प्रश्न है कि काम के माध्यम से क्या मुक्ति संभव है ? यदि काम के माध्यम से ही अध्यात्म की प्राप्ति होती तो सारे पाश्चात्य देश आध्यात्मिक शिखर पर होते। हाँ यह अवश्य हैं कि काम से परे जाकर आध्यात्मिक शांति अवश्य मिल सकती है।

12.4.2 दिनकर कविता : संदर्भ सहित व्याख्या

हाय, पिताहम, हार किसकी हुई है यह ?

ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन ?

कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है ?

और बैठे मानव की रक्त-सरिता के तीर

नियति के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन ?

कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधनों का ?

उत्तरा का करूण विलाप सुनता है कौन ?

संदर्भ एवं प्रसंग – आलोच्च पंक्तियॉ रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रसिद्ध कृति 'कुरूक्षेत्र' से उद्धत हैं। 'कुरूक्षेत्र' में युद्धकालीन समस्याओं को आलोच्य पंक्तियों में युधिष्ठिर द्वारा भीष्म पितामह से यह प्रश्न पूछना कि युद्ध में किसकी विजय हुई है ? यह अपने आप में यह संकेत करता है कि युद्ध अपनी अंतिम परिणति में अहितकर ही होता है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में धर्मराज युधिष्ठिर महाज्ञानी भीष्म पितामह से प्रश्न करते हैं कि हे पितामाह ! महाभारत के इस युद्ध में किसकी हार हुई है ? अर्थात् इस युद्ध में पाण्डव हारे हैं या कौरव। युद्ध के परिणाम के तौर पर तो हम जीत गये हैं किन्तु क्या इसे विजय मानी जा सकती है। युद्ध के बाद जो ध्वंस के अवशेष दिखाई दे रहे है, वह पश्चाताप के सिवाय और क्या पैदा कर रहे है। विनाश और ध्वंस सुखकारी कैसे हो सकते हैं। अत: ऐसे ध्वंस के बाद मिली युद्ध में विजय गहरे पश्चाताप को जन्म दे रही है। सामने युद्ध जिस राजमुकुट को प्राप्त करने के लिए इतने नरसंहार हुए हों, वह भला कैसे सुखद हो सकता है। युद्ध में जो विजय युधिष्ठिर को मिली, वह भयानक रक्त-पात के बीच। ऐसा लगता है मानो रक्त की नदी वह रही हो और कोई व्यक्ति (मानवता) उसके किनारे बैठा हो। इसे व्यंग्य के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? भाग्य/नियति जैसे मनुष्यता की इस पराजय पर व्यंग्य कर रही हो। युद्ध-विजय के बाद अपने निकट संबंधियों के शवदाह को देखते हुए तथा अभिमन्यु पत्नी उत्तरा के विलाप को सुनते हुए युधिष्ठिर की विजय ? युधिष्ठिर प्रश्न कर रहा है कि युद्ध में विजय उसकी जीत है या पराजय ? वस्तुत: इसे युधिष्ठिर अपनी पराजय के रूप में ही देख रहा है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियों में संवाद शैली के माध्यम से कवि ने सत्य को खोजन की कोशिश की है।

2. युद्ध में विजय-पराजय से महत्वपूर्ण है, मानवता की रक्षा। जहॉं विजय के पश्चात् भी मानवता पराजित हो जाती है वहाँ युद्ध का परिणाम हमेशा ही नकारात्मक रहता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पंक्तियाँ हमें नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य करती हैं।

3. युधिष्ठिर के अंतर्द्वन्द्व को आलोच्य पंक्तियों में कलात्मकता के साथ व्यंजित किया गया है।

4. भाषा की दृष्टि से आलोच्च पंक्तियॉ सहज हैं किन्तु उनमें निम्बात्मकता एवं चित्रात्मकता का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

छीनता हो स्वप्न कोई, और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है।

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

बद्ध विदलित और साधनहीन को है उचित अवलम्ब अपनी आह का

गिड़गिड़ा कर किन्तु मांगे भीख क्यों वह पुरूष जिसकी भुजा में शक्ति हो

संदर्भ एवं प्रसंग :

आलोच्य पंक्तियॉ ओज एवं राष्ट्रीयता के कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के 'कुरूक्षेत्र' काव्य की पंक्तियॉ हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में पितामह भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के यह पूछे जाने पर कि ऐसी विजय से क्या लाभ ? जिसने असंख्य व्यक्ति काल-कवलित हुए, का उत्तर देते हुए कहा गया है कि जब युद्ध किया जाए।

व्याख्या : युधिष्ठिर के पश्चाताप और ग्लानिपूर्ण कथन को सुनकर भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे युधिष्ठिर – कभी ऐसा होता है कि कोई तुम्हारी स्वतंत्रता का हरण करता हो या तुम्हारे स्वाभिमान को नष्ट करता हो या तुम्हारे अस्तित्व को नष्ट करने की कोशिश कर हरा हो तब त्याग एवं तप की बात करना या प्रतिरोध न करना ही पाप होता है। पाप और पुण्य की कोई बंधी-बंधाई परिपाटी नहीं होती बल्कि परिस्थितियों के अनुसार ही वे तय होते हैं। (अनाचारी को) नष्ट कर दो, उसके हाथ काट दो अर्थात् अत्याचार के समय यदि तुम प्रतिरोध न करके सत्य-त्याग-तप की सैद्धान्तिक बातें ही करते हो तब वही पाप है।

पुन: भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि – यदि दूसरों के अधीन रहनेवाला, दलित या साधनहीन या कमजोर व्यक्ति अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को आह भर कर के अर्थात् विवशतापूर्वक सह लेता है तो कोई गलत बात नहीं है क्योंकि वह प्रतिरोध कर पाने में अक्षम है। लेकिन यदि सामर्थ्यवान व्यक्ति दमा की भीख मॉगे या शत्रु के सामने गिड़गिड़ाये तो इसे किसी भी प्रकार से शोभनीय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति द्वारा अन्याय का प्रतिकार करना ही उचित है, धर्म है, पुण्य है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियॉ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इनमें प्रतिरोध की संस्कृति को श्रेष्ठ माना गया है।

2. आलोच्य पंक्तियों में कवि ने बताया है कि पाप और पुण्य की कोई सुनिश्चित अवधारणा नहीं है। परिस्थितियाँ तय करती हैं कि क्या पाप हैं और क्या पुण्य है।

3. शांतिकाल में जो पुण्य है, वही युद्ध के समय पाप हो सकता है। अत: हर परिस्थितियों में अत्याचार के खिलाफ प्रतिरोध करना ही उचित है।

4. प्रस्तुत पक्तियां कवि की विचारधारा को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं।

5. भाषा सहजता और प्रवाह के गुण से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. कुरूक्षेत्र..................ग्रन्थ पर आधारित है।

2. रश्मिरथी ग्रंथ का नायक..............है।

3. उर्वशी रचना का मूल समस्या.............है।

4. उर्वशी का प्रकाशन वर्ष.........................है।

5. दिनकर...................धारा के कवि हैं।

6. परशुराम की प्रतीक्षा के रचनाकार................हैं।

12.5 रामधारी सिंह ‘दिनकर’ : काव्य का विश्लेषण एवं मूल्यांकन

रामधारी सिंह ‘दिनकर’ का काव्य प्रगतिशील परम्परा का वाहक रहा है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के बीच आपके काव्य की वैचारिक भूमि निर्मित होती है। क्रमश: बाद के समय में वे तत्कालीन समस्याओं के रचनात्मक समाधान की दिशा में प्रवृत्त हुए। हर कवि या रचनाकार की तरह ही दिनकर का काव्य भी अंतर्विरोध ग्रस्त है, लेकिन उससे दिनकर की रचनात्मकता कुंठित नहीं हुई है। अपने रचनाकाल के अंत तक वे ‘कामाध्यात्म’ की ओर मुड़ जाते हैं, जिसे उनकी रचनात्मक उपलब्धि के रूप में देखा गया हैं, जिसे उनकी रचनात्मक उपलब्धि के रूप में देखा गया है। जैसा कि सुमित्रानंदन पंत को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था – ‘’मैं घोर चिंतना में धँसकर/पहुँचा भाषा के उस तट पर/था जहॉं काव्य यह धरा हुआ/सब लिखा लिखाया पड़ा हुआ।‘’ दिनकर का मूल्यांकन करते हुए डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है : ‘’दिनकर उष्ण मिजाज़ के कवि हैं, चाहे क्रांन्ति का प्रसंग हो या प्रेम का। क्लासिक कवि की तरह आत्मा की शांति उनकी विशेषता नहीं है। वे स्वच्छंदतावादी कवि हैं और हर स्वच्छंदतावादी कवि की तरह उनका मिजा़ज उष्ण है। उनकी कारयित्री प्रतिभा के साथ भावयित्री प्रतिभा का बड़ा अच्छा योग है और उनकी भावयित्री प्रतिभा उनकी कारयित्री प्रतिभा की दिशा का स्पष्ट पता चलता है। उनकी कविताओं में अनुभूति और विचार घुलमिल गए हैं। यह उनकी असल ताकत है। उनकी कविताओं में विषय की विविधता का अभाव है। पर, विषय की विविधता स्वच्दंदतावादी कवि की कोई विशेषता नहीं होती है।.....छायावादोत्तर काल की संवेदनशील के निर्धारक प्रधानत:

दो कवि हैं – दिनकर और बच्चन। पर दोनों बुनियादी रूप से एक-दूसरे से भिन्न कवि हैं। बच्चन मूलत: निजी संवेदनशीलता उत्तर छायावाद काल के अन्य कवि इन्हीं दोनों के प्रभामंडल पर एक स्वच्छंदतावादी कवि के रूप में काव्य-यात्रा का आरंभ किया था और बीसवीं सदी के मध्य तक स्वच्छंदतावादी काव्य की ही रचना की, पर परवर्ती कविता में वे गैर स्वच्छंदतावादी चेतना और गैर स्वच्दंदतवादी काव्यशास्त्र अधिक मन हैं और उनकी संवेदना भी कई तरह की है। यह एक समृद्ध मन का प्रमाण है। वे उत्तर-छायावाद काल के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं।

12.6 'दिनकर' कविता के कलात्मक आयाम

दिनकर राष्ट्र कवि थे। राष्ट्रीय भाव बोध के बीच से उनकी कविता का जन्म हुआ है। राष्ट्रीयता संस्कृति और समाज की ओर उन्मुख होती गई है। उनके काव्य के कलात्मक आयाम प्रयोगवादी कवियों की तरह नक्काशी-गर्भित नहीं हैं, बल्कि भावनात्मक आवेग ने कलात्मकता का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। दिनकर की भाषा अपने आवेग पूर्ण कथन के लिए याद की जाती है। दिनकर की भाषा में सम्प्रेषणीयता, व्यंजनात्मकता एवं चित्रात्मकता के साथ ही प्रवाह का अद्भुत गुण पाया जाता है। दिनकर की भाषा प्राय: ओज गुणों से समन्वित है। भाषा समृद्धता (कई भाषाओं के शब्द ग्रहण से) के साथ ही आपने कथन-अभिव्यंजना के लिए लोकोक्ति, को अंलकार, प्रतीक एवं बिम्बों का समुन्नत प्रयोग कर महत्वपूर्ण बना दिया है। जैसे –

1. हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है ?

   देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है

2. जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा

   शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा।

उपरोक्त उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि दिनकर ने कहीं जानबूझकर शब्द-जाल नहीं बुना है, बल्कि उनके भाव उनकी भाषा को स्थिर करते रहे हैं।

12.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- राष्ट्रीयता कैसे साहित्य बनती है ? रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य इसकी पुष्टि करता है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक बोध को लेकर चलने वाली कविता है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' का प्रारम्भिक कृतित्त्व जोश एवं भावावेग का काव्य रहा है। हुंकार, रेणुका में उनकी जोशपरक कवितायें हैं । तो आगे का काव्य 'कुरूक्षेत्र' 'रश्मिरथी' तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से जुड़ा है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' की वैचारिक निष्पत्ति प्रेम, विद्रोह एवं सामाजिकता से होती हुई कामाध्यात्म तक पहुँचती है।
- दिनकर काव्य की भाषा ओजपूर्ण एवं प्रावहपूर्ण है। भावों को वहन करने में समर्थ भाषा ही प्राणवान होती है। दिनकर की भाषा उपरोक्त गुणों से युक्त है।

12.8 शब्दावली

- समुन्नत – पर्याप्त, अच्छे ढंग से
- आक्रोश – गुस्सा, अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर
- विप्लव – क्रान्ति, विद्रोह
- कामाध्यात्म – काम और अध्यात्म के संधि से विकसित दर्शन
- कुंठित – मन की दमित वासना
- कायित्री प्रतिभा – सृजन करने वाली मौलिक प्रतिभा, जैसे कवि या रचनाकार
- भावयित्री प्रतिभा – काव्य का आस्वादन करने वाली प्रतिभा जैसे सहृदय, पाठक या आलोचक

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2

1. नहीं 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं 5. हाँ

अभ्यास प्रश्न 3

1. महाभारत 2. कर्ण 3. कामाध्यात्म 4. 1961 ई0

5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक 6. दिनकर

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, विजेन्द्र नारायण सिंह – रामधारी सिंह ‘दिनकर’, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

2. सिंह, बच्चन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिन्हा, सावित्री, कवि दिनकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

2. सिंह, विजेन्द्र नारायण ,उर्वशी : उपलब्धि और सीमा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. रामधारी सिंह ‘दिनकर’ के काव्य में राष्ट्रीयता की अवधारणा किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है ? स्पष्ट कीजिए।

2. राष्ट्र कवि दिनकर का संक्षिप्त जीवन एवं साहितियक परिचय लिखिए तथा ‘उर्वशी’ की मूल समस्या पर प्रकाश डालिए।

इकाई 13 - स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास
13.3.1 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता की परिस्थिति
13.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति
13.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति
13.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति
13.3.1.4 सांस्कृतिक - धामिर्क परिस्थिति
13.3.2 स्वातंत्रयोत्तर कालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन
13.3.2.1 स्वातंत्रतापश्चात कविताः एक परिचय
13.3.2.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर
13.4 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख प्रवृत्तियाँ
13.4.1 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी
13.4.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक सदंर्भ
13.4.3 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ
13.5 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक पाठ सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता किसी भी जाति, समाज, मनुष्य का मूलभूत प्रत्यय है। स्वतंत्रता का अर्थ भैतिक - सामाजिक पराधीनता भी है और मानसिक - अस्तित्वगत समस्या भी। स्वतंत्रता का अर्थ सृजनशीलता भी है। परतंत्र व्यक्ति कभी भी सृजनशील नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि हम भैतिक - सामाजिक रुप से स्वतंत्र हों लेकिन अवरुद्ध सृजनशीलता के शिकार हों। अर्थ यह है कि स्वतंत्र व्यक्ति ही सार्थक क्रिया कर सकता है। सृजनशीलताका संबंध संवेदनशीलता से है। संवेदनशीलता का संबंध साहित्य से है। और साहित्य में संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है। अतः कविता की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कविता का तेवर काफी बदला हुआ है । यहाँ हमें इस तथ्य को समझना होगा कि स्वतंत्रता में और पराधीनता में , दोनो स्थितियों में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती हे। स्वतंत्र समाज की रचना में उल्लास का स्वर ज्यादा होसकता है तथा परतंत्र समाज के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर । नियमतः ऐसा कोई फार्मूला नहीं है कि किस समय किस प्रकार का साहित्य लिखा जाता है या लिखा जाना चाहिए। लेकिन यह अनिवार्य रुप से तय है कि अपने समय, समाज की सांकेतिक संभावनापूर्ण क्रिया साहित्य में उपस्थित रहती है। साहित्य चाहे स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में लिखा गया हो या परतंत्रता की पृष्ठभूमि में साहित्य हमेशा अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्यकार स्वतंत्रता - परतंत्रता को सांस्कृतिक संदर्भ में देखता है। कहने का अर्थ यह है कि लेखक - सृजनकर्ता ही नही है बल्कि सामाजिक परिवेश का अतिक्रमण कर संभावनाशील समाज की रचना भी करता है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विकास क्रम में भी हमें उपरोक्त तथ्य देखने को मिलते हैं। हिन्दी कविता के लिए स्वतंत्रता पूर्व जहाँ जागरण का प्रश्न मुख्य था वहीं स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के लिए सामाजिक साम्य का प्रश्न। पहले स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्य था, अब समानता का। हिन्दी कविता की अभिन्यक्ति का स्वर भी बदला और रुपाभिव्यक्ति संबंधी प्रयोग भी हुए। कई दृष्टियों से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता पुरानी कविता से भिन्न भावभूमि की कविता है। आधुनिकता बोध की सही मायने में अभिव्यक्ति स्वातंत्रयोत्तर कालीन कविता में ही होती है। आधुनिकता के प्रश्नों, आधुनिकता के चिह्न की दृष्टि से हिन्दी कविता पर्याप्त समृद्ध रही है। आधुनिकता की अवधारणाएँ अंतर्विरोध, विडम्बना, विसंगति, संत्रास तथा उत्तर - आधुनिकता की वैचारिकी को स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता भली - भाँति व्यक्त करती है। आगे के बिन्दुओं में हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेगें।

13.2 उद्देश्य

एम. ए. एच. एल. -103 का यह तृतीय प्रश्न पत्र है। यह पत्र आधुनिक एवं समकालीन कविता के खण्ड तीन के छायावादोत्तर हिंदी कविता से संबंधित है। इस खण्ड की यह 11 वीं इकाई है । इस इकाई से पूर्व आपने संपूर्ण हिंदी कविता के विकास क्रम का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता के विकास क्रम को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी सामाजिक-राजनीतिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के आन्दोलनों से परिचित हो सकेंगें।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की प्रवृतियों को समझ सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के कलात्मक आयाम को जान सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पारिभाषिकी से परिचित हो सकेंगे।

13.3 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिंदी कविता का विकास

स्वातंत्र्योत्तर कालीन कविता का संबंध भारतीय नवजागरण, राष्ट्रीय आन्दोलन, पूँजीवाद के आधुनिक बोध, तथा विश्वयुद्ध के बाद पैदा हुई स्थितियों से है। इतिहास में बदलाव के बिन्दु को रेखांकित करना हमेशा से ही कठिन रहा है, कारण यह कि बदलाव की प्रक्रिया यांत्रिक ढ़ग से यकायक नहीं होती बल्कि लम्बी ऐतिहासि0क प्रक्रिया के कारण संभव हो पाती है। इसलिए यह संभव नहीं है कि सन् 1947 के पहले और बाद के साहित्य में कोई संबंध ही न हो। यह विभाजन सुविधाजनक है और भारतीय इतिहास की बड़ी घटना (भारत के स्वतंत्रता दिवस) से जुड़ा हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता की घटना न केवल साहित्यकारों बल्कि इतिहासविदों, चिन्तकों, समाजशास्त्रियों के विश्लेषण के बिन्दु को दूसरी ही तरफ मोड़ दिया। स्वतंत्रता का लक्ष्य समानता की व्यवस्था में बदल गया, जिसकी परिणति हुई सन् 1950 ई0 का भारतीय संविधान । हिंदी कविता भी बदली और उसके अनुरूप अपना नया कलेवर धारण किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें, उससे पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करें।

13.3.1 स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि सन् 47 की घटना वह निर्णायक बिन्दु था, जिसने पूरे भारतीय इतिहास को दूर तक प्रभावित किया। स्वाभाविक था कि हिन्दी साहित्य या कविता भी उससे प्रभावित हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल की बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक ,आर्थिक एंव सांस्कृतिक - धार्मिक परिस्थितियों का संबंध हिन्दी कविता से है। हिन्दी कविता ने इन परिस्थितियों का सृजनात्मक उपयोग किया । आइए हम स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें।

13.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति

1947 ईसवी में भारत आजाद हुआ, विभाजन की कीमत पर। विभाजन के उपरान्त पाकिस्तान नामक एक नया राष्ट्र निर्मित हुआ, जिसने भारत की सुरक्षा - शांति - स्थिरता को दूर तक प्रभावित किया । अब तक भारत - पाकिस्तान के चार युद्ध हो चुके है। सन् 1947, 1965, 1971, में प्रत्यक्षतः और 1999 में कारगिलका अप्रत्यक्ष युद्ध।

इस बीच भारत - चीन युद्ध भी सन् 1962 ई में हुआ, जिसमें भारत की पराजय हुई। इन युद्धों ने हमारे देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अमरीका और रुस में पैदा हुई शीतकालीन स्थिति ने अस्तित्वादी मनः स्थितियाँ पैदा की । जिससे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। देश की स्वतंत्रा के समय संपूर्ण राष्ट्र आशान्वित था। उसे आशा थी कि अब हमारी सारी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जायेगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। जवाहर लाल नेहरु के नेतृत्व में पंचशील समझौता हुआ, लेकिन वह असफल रहा। राजनीतिक असफलता ने भारतीय युवाओं के मन में असंतोष भर दिया। स्वप्न टूटे, मोहभंग हुआ और समाज बिना लक्ष्य के रह गया। केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार असफल हो गये, फलतः विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, क्षेत्रीय पार्टियों की बहुतायत बढ़ गई। राजनीतिक अस्थिरता का नया सच हमारे सामने आया।

13.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज सामाजिक रुप से काफी पिछड़ी हुई अवस्था में था। अंगेजी राज्य में जमींदार, व्यापारी या उनके अधीनस्थ कर्मचारियों की सामाजिक स्थिति संतोषप्रद थी, लेकिन बाकी सामान्य जनता की स्थिति काफी विषम थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति के अनुरुप उच्च वर्ग को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के अखिल भारतीय समाज को एक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सन् 1930 के बाद सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से सामाजिक समरसता एवं समानता की स्थिति बनने लगी थी। सन् 1947 के बाद भारतीय संविधान का बनना इसी दिशा में एक बड़ा कदम था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक विकास को समायोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। शैक्षिक जगत में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् देश में कई

विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं कालेज खुले। साक्षरता दर में स्वतंत्रता के पश्चात् काफी वृद्धि हुई । साक्षरता ने बौद्धिक जागरुकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेषकर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। महिलाओं के घर से बाहर निकलने और नौकरी करने से पारिवारिक स्तर पर कई बदलाव परिलक्षित हुए। स्त्री - पुरूष समानता की स्थिति ने एक ओर जहाँ सामाजिक गतिशीलता पैदा की वहीं दूसरी तरफ पारिवारिक विघटन की स्थिति भी निर्मित हुई। ज्ञान - विज्ञान के आलोक में कार्य - कारण तर्क पद्धति विकासित हुई। अंतर्विरोध, विसंगति, विडम्बना, तनाव जैसी आधुनिक समस्याएँ सामाजिक रुप में तथा साहित्य में भी दिखाई देने लगीं। भौतिक दृष्टि से समाज उन्नतशील हुआ, लेकिन साथ ही जटिलताएँ भी बढ़ीं । इन सबका साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

13.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर आर्थिक विकास की स्थिति - परिस्थिति का हिन्दी कविता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के पूर्व आर्थिक विकास का सूत्र अंग्रेजों के हाथ में था, लेकिन उनका मख्य उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना नहीं था, अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत की विश्व व्यापार में योगदान लगभग 16% था, जो 1947 तक नगण्य रह गया था। अंग्रेजी राज्य का भारत विकास एक छद्म था, जिसे उन्होंने लूट के साधन के रुप में प्रयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थव्यवस्था को सुनियोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। सन् 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ। हमारे देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, जो सफल साबित हुआ। किन्तु इसके साथ ही भूखमरी, बेकारी, अकाल, जनसंख्या बढ़ोत्तरी, भ्रष्टाचार, हिंसात्मक मनोवृत्ति ने आर्थिक विकास को पीछे धकेल दिया। देश में अनेक आर्थिक परियोजनाएँ चली, लेकिन हम समृद्ध राष्ट्र की कल्पना साकार न कर सके। एक ओर देश की सामान्य जनता का जीवन स्तर दिन-प्रति-दिन नीचे गिरता गया, दूसरी ओर समाज का एक छोटा वर्ग समृद्ध होता चला गया। आर्थिक विकास के विकेन्द्रीकाण एवं असमानता ने सचेत वर्ग के भीतर विद्रोह - विक्षोभ का संचार किया।

13.3.1.4 धार्मिक - सांस्कृतिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर कविता की पृष्ठभूमि पीछे 1857 की घटना से सीधे जुड़ जाती है। हिन्दू - मुस्लिम धर्मों की एकता स्थापित होने में सैकड़ो वर्ष लग गए। मुगलकाल के पतन एवं ब्रिटिश सत्ता के वर्चस्व की घटना परस्पर जुड़ी हुई है। 1857 की क्रान्ति ने यह स्थिति उत्पन्न की कि दोनों एकजुट होकर ब्रिटिश सत्ता के प्रति धार्मिक अस्तित्व के लिए संघर्ष करें। ऐतिहासिक प्रक्रिया में यह शुभ संकेत था - राष्ट्र के लिए। इस प्रक्रिया की पूर्णाहुति हुई देश की आजादी में। इसी समय अंग्रेजो ने मुस्लिम - लीग और हिन्दू महासभा को अपने-अपने ठंग से प्रोत्साहन देकर ’फूट डालो राज करो ’ की नीति के तहत अपने स्वार्थ की सिद्धि की, जिसकी परिणति देश के विभाजन में हुई। फूट और घृणा का यह वातावरण अभी तक बना हुआ है। जिसका प्रमाण है देश

मे हिस्सों में होने वाले हिन्दू - मुस्लिम दंगे। धार्मिक विद्वेष के इस वातावरण का प्रतिरोध सांस्कृतिक स्तर पर हुआ। शास्त्रीय संगीत एवं साहित्य ने सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिरोध की संस्कृति निर्मित की, लेकिन राजनीतिक - सामाजिक बड़े आन्दोलन के अभाव में वह उतना प्रभावी न हुई।

अभ्यास प्रश्न 1)

निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1. संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है।

2. साहित्य अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

3. स्वातंत्र्योत्तर कविता के लिए जागरण का प्रश्न मुख्य था।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता का सम्बंध है।

5. 1857 का युद्ध भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण लिए शुभ संकेत था।

13.3.2 स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन

स्वातंत्र्योत्तर कविता की पृष्ठभूमि का आपने अध्ययन कर लिया है। आपने यह पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय जनता के सपने- आकांक्षांए बिखर गईं। स्वतंत्रता के पूर्व जो लक्ष्य निर्धारित किए गये थे, वे अपूर्ण ही रह गये। सामाजिक आर्थिक - राजनीतिक अव्यवस्था ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपने पिछली इकाइयों में प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के बारे में पढ़ा । ये आन्दोलन स्वतंत्रता पूर्व के कविता आन्दोलन थे, लेकिन इनका विस्तार स्वतंत्रता बाद की किवताओं पर भी पड़ा। प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास नयी कविता के रुप में हुआ। प्रगतिवाद का आन्दोलन के रुप में उतना प्रत्यक्ष विकास भले न हुआ हो लेकिन बाद की कविता पर प्रगतिवाद की वैचारिकी का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। प्रगतिवाद के प्रभाव से ही क्रमशः प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता, जन - संस्कृति की कविता, प्रतिबद्ध कविता की अवधारणाएँ सामने आईं। कह सकते हैं कि प्रगतिशीलता, समकालीनता, प्रतिबद्धता जैसी अवधारणाएँ व्यापक रुप से प्रगतिवाद का ही सम - सामयिक रुपान्तरण थीं। इतिहास में कोई पूर्ण तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। जिसे हम घटना का प्रारम्भ और समापन घोषित कर दें। तिथि निर्धारण का लचीला एवं सुविधाजनक रुप ही हमारे सामने होता है। 1947 ईसवी की घटना के समय, साहित्यिक स्तर पर प्रयोगवादी आन्दोलन चल रहा होता है, जो 1951 के दूसरे सप्तक से समाप्त होता है या नयी कविता में रुपान्तरित होता है। उसके पश्चात् साठोत्तरी कवित,

अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता, प्रतिवद्ध कविता, उत्तर-आधुनिक कविता, विर्मश केंद्रित कविता, समकालीन कविता, तथा इक्कीसवीं शती की कविता जैसे कई नाम हिन्दी कविता के साथ जुड़ते गए। विभिन्न काव्य आन्दोलन युग-समाज में आये बदलाव का ही संकेत करते हैं। इन बदलावों को हम एक आरेख/तालिका के माध्यम से स्पष्ट रुप से देख सकते हैं –

1951 – 1959 - **नई कविता**

1960 – 1965 - **साठोत्तरी कविता/ अकविता**

1965 – 1975 - **मोहभंग की कविता**

1975 – 1990 - **जनवादी कविता**

1990 – 2012 - **उत्तरआधुनिकता/ विमर्श कविता/ समकालीन कविता**

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि ये नामकरण सुविधा की दृष्टि से रखे गये है। किसी भी युग में कोई एक प्रवृत्ति ही गतिशील नहीं होती, एक साथ ही कई प्रवृत्तियाँ काम करती रहती है। आलोचक अपनी दृष्टि - विचारधारा के स्तर पर किसी एक प्रवृत्ति को मुख्य मानकर उस पूरे युग का एक नामकरण स्थिर करता है। लेकिन बाद के समय में दूसरा आलोचक उस युग की दूसरी प्रवृत्ति को मुख्य मान लेता है। जैसे हिन्दी कविता के संदर्भ में कहें तो आदिकाल एवं रीतिकालीन कविता के कई नामकरण इसी सिद्धान्त के कारण मिलते है। दूसरी समस्या कालगत नामकरण को लेकर आरम्भ होती है। जैसे सन् 1960 के बाद की कविता को समकालीन कविता भी कहा गया और नवलेखन की कविता भी। लेकिन आज की स्थिति ने ये नामकरण अप्रासंगिक हो गये हैं। कालगत नामकरण की यही सीमा है, इसीलिए प्रवत्तिगत नामकरण ही इतिहास में दीर्घकालिक होत है और साहित्यिक प्रवृत्ति को समझने में हमारी मदद भी करता है।

13.3.2.1 स्वातंत्र्योत्तर कविता : एक परिचय

जैसा कि कहा गया, स्वातंत्र्योत्तर कविता यात्रा की विकास यात्रा सीधी -सपाट नहीं है। प्रयोगवाद का प्रवर्तन अज्ञेय करते हैं। नयी कविता का नामकरण भी वही करते हैं और तीसरे सप्तक का संपादन भी। इसी प्रकार रामविलास शर्मा की कृतियाँ 'तारसप्तक' में संकलित हुई हैं, लेकिन मूलरूप से वे प्रगतिशील कवि रहे है। मुक्तिबोध भी 'तारसप्तक 'के कवि हैं लेकिन रूपवादी रूझानों से उनका वास्ता नहीं रहा है। फिर भी कुछ प्रवृत्तियाँ रही है, जिनके कारण उनमें अंतर किया गया है। प्रयोगवाद के प्रारम्भ होने के पीछे 'तारसप्तक' नामक काव्य-संकलन की भूमिका रही है। 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय थे ओर इसमें सात कवि शामिल हैं। द्वितीय

तारसप्तक का प्रकाशन सन् 1951 ई. में हुआ। इस सप्तक का संपादन भी अज्ञेय करते हैं। लेकिन अन्य कवि बदल गए हैं। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से ही 'नयी कविता ' की शुरुआत मानी जाती है। कुछ लोगों के अनुसार अंग्रेजी साहित्य के ' न्यू पोयट्री' आन्दोलन का प्रभाव नयी कविता आन्दोलन पर पड़ा है। पश्चिम के आन्दोलन से प्रभावित होकर भी यह आन्दोलन अपने देश की भूमि, परिस्थितियों की उपज है। 1954 ईसवी में प्रकाशित 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन के उपरान्त इस आन्दोलन को विशेष बल मिला। इसके अतिरिक्त 'प्रतीक' 'कृति', 'कल्पना', 'निकष', 'नये पत्ते', 'कखग', आदि अनेक पत्रिकाओं का नयी कविता के विचारधारात्मक सरोकारों के प्रतिष्ठापन में योगदान रहा।

स्वातंत्र्योत्तर काल से ही जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्यायें थी , वे साठ के बाद और गहरा गई। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता, शोषण, दमन, अत्याचार, बर्बरता बढ़ती गई। व्यवस्था के प्रति मोहभंग की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों में हुई। हिंदी के अधिकांश रचनाकारों की साठोत्तरी पीढ़ी इसी वर्ग से आयी थी। स्वभावतः साहित्य में अधैर्य की अभिव्यक्ति हुई। जगदीश चतुर्वेदी की पत्रिका सन् 1963 में 'प्रारम्भ' नाम

से प्रकाशित हुई , जिसमें उन्होंने 'अकविता' नाम की घोषणा की , परन्तु शुरू में कविता की इस नयी दिशा को 'अभिनय काव्य' कहा गया। 1965 में श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र त्यागी और मुद्राराक्षस के सम्मिलित सहयोग से 'अकविता' संकलन निकाला गया, जो 1969 तक निकलता रहा, जिसका 'अकविता' नामक नयी काल-प्रवृत्ति का स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। मोटे तौर पर सन् 1960 से 1963 की एब्सर्ड किस्म की कविताओं के लिए 'अकविता' नाम रूढ़ हो गया। इस धारा के कवियों में श्याम परमार, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, निर्भय मल्लिक, राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, आदि मुख्य हैं। विद्रोह की अपनी नाटकीय मुद्रा के बावजूद अकविता अपने मूल रूप में यथास्थितिवाद के विरूद्ध बदलाव के संघर्ष को कमजोर बनाती हैं।

सत्ता के प्रति असंतोष एवं विद्रोह का स्वर अकवितावादी कवियों के नकार में व्यक्त हुआ वहीं दूसरा रूप विद्रोही अराजकतावाद में परिणत हुआ। पहले की अपेक्षा काम -कुंठा की अभिव्यक्ति इस धारा में कम रही। सन् 1965 के बाद विशेषकर सन् 68 के आसपास धूमिल , लीलाधर, जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, कुमार विकल, अरूण कमल आदि की रचनाएँ सामने आई। इन रचनाकारों मे मध्यवर्गीय अराजकतावाद तो था, लेकिन अपने तीव्र -व्यवस्था विरोध के कारण इनकी रचनाएँ विशेष संदर्भवान हुई। यह युग मुख्यतः अनास्थावादी कविता का ही युग था। सब कुछ को अस्वीकार करने की यह मुद्रा केवल हिन्दी कविता में ही नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की कविता में दिखती है। बंगाल में 'भूखी पीढ़ी', 'वीट पीढ़ी' के नाम से शुरू हुई साठात्तरी कविता, तेलगु में 'दिगम्बरी पीढी', मराठी में 'आसो' तथा गुजराती पंजाबी में ''अकविता'' नाम से जानी गयी। विदेशों में भी इसी समय इस प्रकार की

कविता हो रही थी। अमेरिका में इस तरह की कविता को ‘बीट जनरेशन’ कहा गया। इग्लैण्ड में ‘एंग्री यंग मैन’ नामक पीढ़ी व्यवस्था के असंतोष पर ही पैदा हुई थी। इसी प्रकारा जर्मनी में ‘छली गयी पीढ़ी’ और जापान में ’हिगकुशा’ नामक क्षुब्ध पीढी का जन्म हुआ। अमेरिका में ‘बीट जनरेशन’ की तरह भूखी पीढ़ी भी जन्मीं, जिसका नेतृत्व एलेन गिसवर्ग ने किया। बंगाल में तो ‘भूखी पीढ़ी’ के साथ ‘कविता दैनिकी’ या ‘कविता घण्टिकी’भी लिखी गई। इसी के प्रभाव से हिंदी में भी अकविता, बीट कविता, श्मशानी कविता, युयुत्सावादी कविता, विटनिक कविता, विद्रोही कविता, नवप्रगतिशील कविता आदि अनेक नाम सामने आये। डॉ0 जगदीश गुप्त ने अपने निबंध ‘किसिम की कविता’ में लगभग चार दर्जन नाम गिनाये है। मूल्यहीनता के विरूद्ध इनकी प्रतिक्रिया कभी - कभी अराजक, उग्र और दुस्साहसिक विचारधारा की शक्ल में भी सामने आयी।

सन् 1975 ई0 तक आते -आते व्यवस्था विरोध की स्थिति में आक्रामकता कम होने लगी थी। विद्रोह की वाणी को व्यवस्थित रूप प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी । इस प्रकार की कविताओं को जनवादी कविता कहा गया है। ‘जनवादी कविता’ एक तरह से प्रगतिवादी आन्दोलन का ही विस्तार थी। प्रगतिवादी वर्ग-वैयम्य की भावना से इतर जनवादी कविता ने जन केंद्रित भावनाओं को केंद्र मं स्थापित करने की पहल की। सन् 1990 के बाद भूमण्डलीकाण-वैश्वीकरण की गूँज भारत में भी सुनाई पड़ने लगी थी। भारत सरकार के उदारीकरण/ मुक्त व्यापार इसी दिशा के कदम थे। यंत्रों का अधिकाधिक प्रयोग एवं तकनीक इस विचारधारा के प्रायोगिक उपक्रम बने। इस युग को ‘उत्तर - आधुनिक काल’ कहा गया। कुछ लोग इसे ‘विमर्श केंद्रित काल’ भी कहते हैं। इस युग की कविता ने पुरानें मूल्यों (आधुनिक)पर प्रश्न-चिहन लगाया और किसी भी सिद्धान्त को अंतिम मानने से मना कर दिया। एक ओर जहाँ कविता का लोकतंत्रीकारण हुआ, वहीं दूसरी ओर विषय-वस्तु में अराजकता का दर्शन भी हुआ।

13.3.2.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों का आपने अध्ययन का लिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का आपने संक्षिप्त में अध्ययन कर लियर है। आइए अब हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर (कवि) के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी कविता का प्रमुख काव्य-आन्दोलन ‘दूसरा सप्तक’ रहा है। सप्तक के माध्यम से और सप्तकेत्तर कई कवियों का आगमन हुआ। यहाँ हम प्रमख कवियोंका परिचय पाने का प्रयास करेंगं। शमशेर बहादुर सिंह को हिन्दी में ‘कवियों का कवि’ कहा गया है। चित्रकला, संगीत और कविता जहाँ आपस में घुल-मिल जातें हैं, वहाँ शमशेर की कविता बनती है। शमशेर कविता में कुछ बिन्दुओं, संकेतों के माध्यम से अर्थ की सृष्टि करते हैं। ‘बात बोलेगी’, ‘चुका भी नहीं हूँ में’ कविताएँ, ‘कछ ओर कविताएँ शमेशर की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। **‘मुक्तिबोध’**

ने अपने कविन प्रतीकों और फैंटेसी शिल्प के रचाव से तत्कालीन व्यवस्था की सभ्यता -समीक्षा की है। 'चाँद का मुहँ टेढ़ा है', 'भूरी - भूरी खाक धूल' जैसे काव्य-संग्रह में आपकी कविताएँ संग्रहीत हैं। समाज को बदलने की चिंता आपकी कविताओं की केंद्रीय समस्या है, जिसे आपने मार्क्सवादी विचारधारा को कविता में ढाल कर पूरा किया है।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ बोलचाल की भाषा और लय में जीवन की विषम स्थिति को उकेरती हैं। 'गीत फरोश' कविता अपने लोकभाषा और लय-विधान के कारण चर्चित रही हैं। 'सतपुड़ा के जंगल', 'कमल के फूल' आपकी अन्य रचनाएँ हैं। **रघुवीर सहाय** दूसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि है। मनुष्य जीवन की नियति को व्यापक संदर्भ में आपकी कविता उठाती है। 'सीढ़ियों पर धूव में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' जैसे काव्य-संग्रह वर्तमान विसंगतियों के आधार पर निर्मित हुए हैं। **धर्मवीर भारती** की सामाजिकतां व्यक्तिवादी धरातल से होकर निर्मित हई हैं। 'ठढ़ा लोहा' जैसी रचनाएँ किशोर अल्हड़ता से प्रभावित है। 'इन फिरोजी ओठों पर/बरबाद मेरी जिन्दगीं ' भारती के शुरूआती कविताओं की मुख्य थीम हैं। 'अंधा-युग' तक आते-आते धर्मवीर भारती पूरी व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर देते हैं/आस्था, मूल्य, विश्वास, कर्त्तव्य, सत्य, सभी अपना अर्थ खो चुके हैं ऐसी स्थिति में फिर समाज की अगली दिशा क्या होगी ? यह धर्मवीर भारती की भी अपनी सीमा है। मानव-नियति की सार्थकता का प्रश्न **कुँवरनारायण** की रचना 'आत्मजयी' की केंद्रीय समस्या है। कुँवरनारायण का पहला काव्य 'चक्रव्यह' आधुनिकता की मनोदशा के बीच निर्मित हुआ है। 'परिवेशः हम-तुम ' ओर 'अपने सामने ' जैसे काव्यों में उनकी विषय-वस्तु व्यापक संदर्भो को अपने में समेटने में सफल हई है। **केदारनाथ सिंह** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। केदार अपने 'रुप - रस - वर्ण - स्पर्श - गंधी ' विंब योजना के कारण विशिष्ट हैं (बच्चन सिंह) 'जमीन पक रही है, अभी बिल्कुल अभी', 'यहाँ से देखो' , 'अकाल में सारस', 'बाघ तथा अन्य कविताएँ', जैसे संग्रह केदार की रचनाओं के मुख्य संग्रह हैं। **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। सर्वेश्वर कविताओं में समकालीनता के कई आयाम देखने को मिलते हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव' और गर्म हवाएँ' आपके प्रमुख काव्य-सग्रह हैं। सप्तकेतर कवियों मे **श्रीकान्त वर्मा** महत्वपूर्ण कवि हैं। 'दिनारंभ', 'माया-दर्पण', 'जलसाघरः मगध' आपके महत्वपूर्ण काव्य- संग्रह हैं। **नरेश मेहता** की कविताएँ वैदिक संस्कृति और लोक संस्कृति के संदर्भो से निर्मित हुई हैं। 'संशय की एक रात' लम्बी कविता के रुप में काफी चर्चित हुई। छठे दशक के हिन्दी कविताओं की अगुवाई **राजकमल चौधरी** ने की। 'कंकावती' एवं 'मुक्तिप्रसंग' में राजकमल चौधरी का कवित्व अपनी समस्त संभावनाओं एवं सीमा के साथ चित्रित हुआ है। राजकमल चौधरी ने नंगेपन को गुस्से के साथ चित्रित किया है। सामाजिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश करते-करते आपअराकतावाद तक चले जाते हैं। **सुदामा पाण्डेय** 'धूमिल' इस दौर का अन्य बड़ा कवि है। 'संसद से सड़क तक' एवं 'कल सुनना मुझे' आपके

महत्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। 'धूमिल' की कविता अपने चुस्त मुहावरे एवं सपाटबयानी के कारण चर्चित रही है।

अभ्सास प्रश्न 2)

(क) निम्नलिखित वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1) प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास .... के रुप में हुआ।

2) दूसरे सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है।

3) नयी कविता का समय .... के बीच का है।

4) न्यू पोयट्री' आन्दोलन का सम्बन्ध .... से है।

5) प्रयोगवाद का सम्बन्ध .... के प्रकाशन से है।

(ख) निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1) नयी कविता का प्रकाशन वर्ष 1954 है।

2) 'प्रारम्भ' पत्रिका के सम्पादक जगदीश गुप्त है।

3) अकविता में एब्सर्ड की प्रवृत्ति मिलती है।

4) भूखी पीढ़ी का मुख्य सम्बन्ध बंगाल से है।

5) 'किसिम-किसिम की कविता' निबन्ध का सम्बन्ध जगदीश गुप्त से है।

13.4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति क्या है ? इसे स्पष्टतया बता पाना कठिन है। कारण यह कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् न तो कोई काव्य प्रवृत्ति लम्बे समय तक चली और न एक ही मुख्य काव्य-प्रवृत्ति थी। आधुनिक स्वचेतनवृत्ति के परिणामस्वरुप मानवीय समाज तेजी से बदल रहा है, जिसके कारण अनुभूतियों में भी बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हो गई है। फलतः साहित्य/कविता मे भी मानवीय अनुभूतियों के बदलाव की प्रक्रिया तेज हुई है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के कई आन्दोलन अपनी विषय-वस्तु एवं ट्रीटमेंन्ट में अन्य काव्य आन्दोलनों से भिन्न थे। वस्तुतः नवीन प्रवृत्तियों ने ही नवीन काव्य-आन्दोलनों को जन्म दिया। प्रयोगवाद की

प्रवृत्ति व्सक्तिवाद एवं रुप की रही। नयी कविता ने अस्तित्ववादी रूझानों के बावजूद ‘लघुमानव’को नही छोड़ा। साठोत्तरी कविता में नकारवादी तत्व ज्यादा थे। मोहभंग की कविता गुस्से, विद्राह की कविता है। जनवादी कविता जनभावनाओं के साथ ही लोकवादी रूझानों को लेकर चलती है। उत्तर- आधुनिक कविता विमर्श को केंद्र में खड़ा करती है।

13.4.1 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रवृत्ति की तरह ही वैचारिकी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसे भी हिन्दी कविता की प्रवृत्ति की तरह किसी निश्चित वैचारिकी से नहीं बाँधा जा सकता। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का पहला काव्यान्दोलन ‘नयी कविता’था। इस आन्दोलन पर पूँजीवाद के व्यक्तिवाद फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव पड़ा। व्यकितवादी भावनाएँ समाज से कटकर अपनी सत्ता स्थापित करने पर बल देती हैं। ‘यह दीप अकेला’ एवं ‘नदी के द्वीप’ जैसी भावनरएँ इसी की प्रतिध्वनि हैं। ‘आधुनिक मनुष्य मौन वर्जनाओं का पुंज है’ जैसे वाक्य मनोविश्लेषण की देन हैं वहीं फेंटेसी शिल्प का प्रयोग एवं जिजीविषा की भावना अस्तित्ववाद की देन हैं। पूँजीवादी बौद्धिकता ने सारे पुराने मूल्यों पर प्रश्न- चिह्न भी लगाया। ‘एक क्षण-क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता’ जैसे वाक्य अस्तित्ववाद की ही प्रतिध्वनि है। मार्क्सवादी विचारधारा ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रगतिवादी विचारधारा के केंद्र में तो मार्क्सवाद था ही, प्रयोगवाद के अधिकांश कवि मार्क्सवादी ही थे। ‘नयी कविता’ के दौर के कवियों पर मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह इत्यादि की काव्य - ऊर्जा भी मार्क्सवाद ही था। मोहभंग की कविता, जनवादी कविता एवं उत्तर - आधुनिक कविताओं के मूल में भी मार्क्सवाद विचारधारा ही है। मार्क्सवाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को जन - जीवन से जोड़कर सामाजिक संघर्ष को गति प्रदान की। ‘अधेरे मे’ कविता व्यापक लोकयुद्ध की संभावना से युक्त होकर रची गई। सन् 1990 के बाद की कविता पर उत्तर - आधुनिक विमर्शो का प्रभाव देखा जा सकता है। यह विचारधारा तकनीक को केंद्र में ले कर चलती है।

13.4.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक संदर्भ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से कई मायने में अलग है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता (समाज की ही भाँति) सीधे-सादे ढंग से निश्चित लक्ष्यों एवं मूल्यों को लेकर चलने वाली कविता रही है। भारतेन्दु कालीन कविता भक्ति-नीति-श्रृंगार के आधार पर विकसित हुई हैं। द्विवेदी कालीन कविता के मूल में सुधारवादी भावना है। छायावाद के मूल में जहाँ नवजागरणवादी चेतना काम कर रही है, वहीं प्रगतिवाद के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना। वही प्रयोगवाद के मूल में नवीन सत्यों की खोज काम कर रही है। इसके विपरीत नयी कविता और बाद के काव्यान्दोलनो का हम सीधे - सादे ढ़ंग से मूल्यांकित नहीं कर सकते। मुक्तिबोध में एक ओर जहाँ प्रगतिवादी तत्व है वहीं दूसरी ओर प्रयोगवादी एवं अस्तित्ववादी रूझान भी कम नहीं हैं। विचारधारा का आग्रह तो बढ़ा लेकिल इसके संभावित खतरे की ओर भी लोगों का ध्यान

कम नहीं गया। अब कविता के विषय-वस्तु में विविधता आई। समाकालीनता बोध ने कविता को ज्यादा प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी की विषयवस्तु के ऊपर सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व-निर्माण का घोर अभाव है। व्यक्तित्व-निर्माण की जगह आज की कविता उपभोक्ता पैदाकर रही है। वर्तमान की विसंगतियों का चित्रण तो है, किन्तु संवेदना का अभाव है।

13.4.3 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ

साहित्यिक भाषा की सबसे बड़ी विशिष्ठता यह होती है या होनी चाहिए कि वह अर्थ की वृहत्तर छवियों को कलात्मक ढंग से सम्प्रेषणीय बनाये। यानी सबसे पहले तो यह कि उसमें बहुअर्थीय छवियों को धारण करने की क्षमता हो। कविता के इसी गुण के कारण वह हर युग में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखती है। बड़े कवियो की कविताएँ इसीलिए हर युग में संदर्भवान होती है। कविता का दूसरा प्रमुख गुण यह होना चाहिए कि वह कलात्मकता के मानक का पूरी तरह पालन करे। कविता की बड़ी विशिष्ठता यह होनी चाहिए कि वह सम्प्रेषणीय हो । सम्प्रषणीयता के लिए सरल भाषा के साथ ही लोकबद्धता की अनिवार्यता होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा में जहाँ एक ओर लोकधुनों का प्रयोग है (भवानी प्रसाद मिश्र, गोरख पाण्डेय इत्यादि) वहीं दूसरी और प्रतीकों-विम्बों का सुन्दर प्रयोग है (अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, शमशेर आदि)। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा एक ओर जहाँ विसंगतियों का पर्दाफाश कर पाने में सक्षम है (रघुवीर सहाय, धूमिल आदि) वहीं दूसरी ओर लोकवद्धता से भी जुड़ी हुई है।

अभ्यास प्रश्न 3)

(क) कोष्ठक में दिए गए शब्दों को भरकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. 'लघु मानव' का सम्बन्ध .... से रहा है

(प्रयोगवाद/प्रगतिवाद/नयी कविता)

2. 'यह दीप अकेला कविता' का सम्बन्ध .... की प्रवृत्ति से है।

(मनोविश्लेषणवाद/व्यक्तिवाद/अस्तित्ववाद)

3.मुक्तिबोध .... विचारधारा के कवि हैं।

(मनोविश्लेषणवाद/अस्तित्ववाद/मार्क्सवाद)

4. ....के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना काम कर रही है।

(प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/अस्तित्ववाद)

5. बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से .... महत्वपूर्ण कवि हैं।

(अज्ञेय/केदारनाथ/नागार्जुन)

13.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के इतने आयाम और धरातल हैं कि उसका मूल्यांकन करना अपने आप में जटिल (कठिन) कार्य है। कारण यह कि यह एक लम्बा कालखण्ड है, इसमें कई आन्दोलन हें और यह आन्दोलन विभिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं। एक बात जरूर यहाँ हम कहना चाहते हैं, और वह यह कि हिन्दी कविता में विचारधारा का आग्रह लगातार बढ़ता गया, जिसके कारण संवेदना गौण होती चली गई। व्यंग्य, मुहावरे, विसंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध जैसे तत्वों से कविता जरूर समृद्ध हुई लेकिन यह अनुभूति की सघनता की कीमत पर ज्यादा हुई। कहने का भाव ज्यादा हुआ. बजाय चित्र निर्मित करने या भाव निर्मित करने के, कविता के प्राथमिक कार्य के। विचारधारा एवं विमर्श के अत्यधिक दबाव से कविता की संवेदना तत्व क्रमशः क्षीण होता गया। आज जब कविता के पाठकीय संकट का खतरा मौजूद हो तब कविता को पुनः अपनी भूमिका के तलाश की आवश्यकता है।

13.6 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी कविता से तात्वर्य यन् 1947 के बाद की कविता से है। द्वितीय तारसप्तक 1951 से इसे स्पष्टतया मान सकते है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कविता और बाद की कविता में 'स्वतंत्रा' एक आवश्यक प्रत्यय है, इससे हम दोनों कविताओं की तुलना के माध्यम से जान सकते हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता पर राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता में कई काव्यान्दोलन निर्मित हुए, जो एक दूसरे से भिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर कविता विषयवस्तु एवं भाषा के धरातल पर पहले की कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। पहले की कविता में जहाँ भावगत स्पष्टता है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर कविता में जटिल परिवेश को जटिल ढंग से व्यक्त किया गया हैं।

13.7 शब्दावली

- संवेदनशीलता - भाव एवं बुद्धि के योग से उत्पन्न प्रत्यय
- सृजनशीलता - रचनात्मक कार्य की स्थिति
- अंतर्विरोध - परस्पर विरोधी स्थिति
- विसंगति - असंगत स्थिति
- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ
- अराजकता - किसी विचार, स्थिति में अनियन्त्रण की स्थिति
- वर्ग- वैषम्य- दो विपरीत वर्गो में विरोध की स्थिति

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1)

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास 2) (क) 1. नयी कविता 2. 1951 3. 1951-1959

4. तारसप्तक 5. नयी कविता

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3) 1. नयी कविता 2. व्यक्तिवाद 3. मार्क्सवाद

4. प्रगतिवाद 5. केदारनाथ सिंह

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, डॉ. धीरन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश - भाग एक, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

13.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2. सिंह, डॉ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलन का विकासक्रम स्पष्ट कीजिए।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 14 – हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना
14.3.1 हालावाद और हरिवंशराय बच्चन
14.3.2 छायावादोत्तर कविता और हरिवंशराय बच्चन
14.3.3 हरिवंशराय बच्चन की रचनाएँ
14.4 हरिवंशराय बच्चन की: संदर्भ सहित व्याव्या
14.5 हरिवंशराय बच्चन काव्य: विश्लेषण एवं आलोचना
14.5.1 हरिवंशराय बच्चन की काव्यानुभूति
14.5.2 हरिवंशराय बच्चन की कविता में भाषा
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

हरिवंशराय बच्चन छायावादोत्तर काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। छायावादोत्तर कहने से पूरी बात स्पष्ट नहीं हो पाती, वस्तुतः वे प्रगतिवाद - प्रयोगवाद के पूर्वाभास के भी कवि हैं। कुछ लोगों ने उन्हें अंग्रेजी के 'न्यूओरोमैटिक' की तर्ज पर 'नव्य - स्वच्छन्दतावादी' भी कहा है और स्पष्ट रूप में कहा जाए तो यह कहना ज्यादा सही होगा कि बच्चन 'संन्धि युग' के कवि हैं। 'सन्धि युग' से यहाँ तात्पर्य 'संक्रान्ति काल' से है। छायवाद का उत्तरार्द्ध (1930 - 36 ई.) अपने दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति में अपने पूर्वाद्ध से कई मायने में भिन्न है। इस समय में छायावाद सामाजिक चेतना से जुड़ने की भरसक कोशिश कर रहा था। हाँलाकि अपने मूलस्वरूप में वह रोमानी आन्दोलन है।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का कार्य समय भी यही है। छायावाद से थोड़ा प्रभावित होकर भी उसकी वायवीयता से अपने को मुक्त करने की कोशिश भी कुछ प्रयोगवादी कवि (अज्ञेय प्रमुख हैं) कर रहे थे। ऐसे संक्रान्ति काल के बीच प्रगतिवादी सामाजिकता से युक्त होकर किन्तु उनके सैद्धान्तिक आग्रह से मुक्त होकर रचना करना कठिन कार्य था। इस प्रकार छायावाद जैसे समृद्ध काव्यान्दोलन से प्रभावित होकर भी उसकी कमियों से मुक्त होना आसान काम नहीं था। हरिवंशराय बच्चन की साहित्यिक - सांस्कृतिक चुनौती ने उन्हें सृजन - पथ पर अग्रसर किया।

14.2 उद्देश्य

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष (एम.ए.एच.एल. - 12) का यह तृतीय प्रश्न पत्र है। यह पत्र आधुनिक एवं समकालीन कविता से जुड़ा हुआ है। इस पत्र का यह खण्ड छायावादोत्तर समकालीन हिन्दी कविता से जुड़ा हुआ है। इस खण्ड की यह 12 वीं इकाइ है। यह इकाई 'हरिवंशराय बच्चन:' पाठ एवं आलोचना' से संबंधित है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- हरिवंशराय बच्चन के व्यक्तित्व एवं कुृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- हरिवंशराय बच्चन के काव्य की मुख्य प्रवृत्त्यिों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावादोत्तर हिन्दी कविता को और बेहतजर ढंग से समझ सकेंगे।
- छायावादोत्तर कविता में हरिवंशराय बच्चन के योगदान का मूल्यांकन कर सकेगे।
- हरिवशंराय बच्चन के कविता की भाषा से परिचित हो सकेंगे।

14.3 हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना

हरिवंशराय बच्चन के काव्य को समझने के लिए इस इकाई में उनकी कविता के मूल संदर्भो के साथ उसकी आलोचना का भी समावेश किया गया है। हरिवंशराय बच्चन की कविता के आस्वादन से पूर्व हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि डॉ. हरिवंशराय बच्चन आलोचकों के नहीं पाठको के कवि है। डॉ. बच्चन की लोकप्रियता कई आलोचकों को चकित करती रही है। जिसके पीछे उनका विशाल पाठक वर्ग रहा है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की काव्यगत लोकप्रियता के क्या कारण रहे हैं, यह उनके काव्य को समझने की पृष्ठभूमि हो सकती है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की लोकप्रियता का आधार ग्रन्थ 'मधुशाला' को माना गया है और सवश्रेष्ठ ग्रन्थ 'निशा - निमंत्रण' को।

प्रगतिशील समीक्षा दृष्टि में कवि की लोकप्रियता को उस युग की प्रतिध्वनि माना गया है। ग्राम्शी जहाँ इसे 'सासृंकृतिक चेतना की अभिव्यक्ति' मानते हैं वहीं मैनेजर पाण्डेय 'कला का सार्थक मूल्य'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो साहित्य के काल - विभाजन के लिए निर्धारक तत्वों में से एक तत्व 'लोकप्रियता' को माना है। उत्तर - आधुनिक समय में लोकप्रियता के संदर्भ में काव्य के पुनर्मूल्यांकन का प्रयास किया जाने लगा है, ऐसी स्थिति में हरिवंशराय बच्चन के काव्य का मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण हो सकता है।

'लोकप्रिय कविता' जनता की कविता होती है। ऐसी कविताएँ दरबार या राजश्रय में नहीं लिखी जाती हैं। बल्कि ये जनता के दरबार में रहकर लिखी गई कविताएँ हैं। जनता के बीच लिखी गई कविताएँ काव्य न रहकर 'पाठ' बन जाती हैं। पाठ बनने की प्रक्रिया में कविता लेखक से निकालकर पाठक के हाथ में चली जाती है । भारत में कवि से पाठ बनने की यह परम्परा कालिदास से चली आ रही है। राजशेखर के महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमींसा' में इस तथ्य का सविस्तार वर्णन हुआ है कि कैसे कवि 'कविताचर्चा' कर कविता को सार्वजनिक रूप प्रदान करतर था। 'माध्यकालीन समस्यापूर्तियाँ कविता के लोकप्रिय या जन से जुड़ने का एक प्रमुख माध्यम थी। हरिवंशराय बच्चन के समय तक समस्यापूर्तियाँ या मंच कविता के माध्यम नही रह गये थे, किन्तु फिर भी उन्होनें अपने लिए 'मंच'का माध्यम चुना।

14.3.1 'हालावाद' और हरिवंशराय बच्चन

'हालावाद' का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से 'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधुकलश' जैसी रचनाओं सें है। हरिवंशराय बच्चन को इस काव्यान्दोलन के प्रवर्त्तन का श्रेय दिया जाता है। हाँलाकि डॉ. बच्चन सिंह 'हालावाद' के प्रवर्त्तन का श्रेय हरिवंशराय बच्चन को देने को तैयार नहीं हैं। वह लिखते हैं - 'यदि हालावाद नाम देना ही हो तो इस प्रवृत्ति का श्रेय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और भगवतीचरण वर्मा' को देना चाहिए। इसके पहले 'नवीन' 'साकी भर - भर ला तू अपनी हाला' और भगवतीचरण वर्मा 'बस मत कह देना अरे पिलाने वाले, हम नहीं विमुख हो जाने वाले' लिख रहे है थे। 'सही अर्थों में हालावाद ' नामक कोई आन्दोलन 'प्रगतिवाद' या 'प्रयोगवाद' की तरह नही चला। आन्दोलन के लिए किसी - न -किसी विचारधारात्मक ऊर्जा का होना आवश्यक है। बिना वैचारिक ऊर्जा के किसी काव्यान्दोलन को गति नहीं मिलती। 'हालावाद' के पीछे किसी सुनिश्चित विचारधारा का आग्रह नहीं मिलता, यह एक मनोवत्ति - प्रतिक्रिया का रूप ज्यादा लिये हुए है। हालावादी मनोवृत्ति के पीछे उमर खैय्याम की रूबाइयों का बड़ा हाथ है। उमर खैय्याम को प्रभाव को हरिवंशराय बच्चन ने स्वीकार भी किया है। हरिवंशराय बच्चन के काव्य जीवन की शुरूआत खैय्याम की रूबाइयों के अनुवाद से होती है। खैय्याम की तरफ बच्चन के झुकाव का कारण काव्य -शैली के कारण भी था, असाम्प्रदयिक दृष्टिकोण के स्वीकार के कारण भी और आशावादी दृष्टिकोण के कारण भी था। इस सम्बन्ध में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने टिप्पणी की है- 'उदास नियतिवाद की इस मनःस्थिति में क्षणभंगुर जीवन

और उसके यथासंभव अपभोग के गीत गाए गये' जाहिर है खैय्याम और हरिवंशराय बच्चन के काव्य के बीच गहरा साम्य रहा है, लेकिन दोनों रचनाकारों की काव्यभूमि एवं अभिव्यक्ति में अंतर हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है - ''खैयाम और बच्चन का अन्तर यह है कि पहले का क्षण - वाद मृप्युभीति से पीड़ित है तो दूसरे का मृत्यु के अन्तभवि में उल्लसित ।'' प्रश्न है कि बच्चन ने मृत्यु के साक्षात्कार से ऊर्जा कैसे प्राप्त की। प्रसिद्ध चितंक सार्त्र ने लिखा है कि 'मृत्यु जीव को परिभाषित करती है।' का तात्पर्य भी यही है कि हम प्रकृति की संपूर्ण प्रक्रिया को समझकर ही उससे मुक्त हो सकते हैं। बुद्ध का दर्शन मृत्युबोध के साक्षात्कार से ही उपजा है। बौद्ध दर्शन से प्रभावित महादेवी वर्मा ने लिखा भी है - अमरता है जीवन का ह्रास मृत्यु जीवन का चरम विकास!'' पूरा का पूरा अस्तित्वादी चिन्तन का आधार मृत्यु बोध ही है। नोबल पुरस्कार प्राप्त कृति अल्वेर कामू की रचना 'अजनबी' मृत्यु साक्षात्कार की ही कृति है। अज्ञेय का उपन्यास 'अपने - अपने अजनबी' मृत्यु के बीच जीवन की सार्थकता की खोज के सिवाय क्या है ? इन सबसे बढ़कर महान् ग्रन्थ 'श्री गीता' का सम्पूर्ण दर्शन मृत्यु बोध से ही निसृत है। बेकन का प्रसिद्ध निबंध 'द डेथ' मृत्यु की सार्थकता की खोज ही है। हरिवंशराय बच्चन ने जिस मृत्युबोध को प्राप्त कर 'हालावाद' को सृजित किया उसका ठोस सामाजिक कारण भी था। 'मधुशाला' की पंक्तियाँ हैं - ''मेरे अधरों पर हो अंतिम/ वस्तु न तुलसीदल, प्याला/ मेरी कि जिह्वा पर हो अंतिम/न गंगाजल, हाला'' - और चिता पर जाय उड़ेला/ पात्र न घृत का, पर प्याला घंट बँधे अंगूर लता में / मध्य न जल हो, पर हाला।।''

इन पंक्तियों की अधूरी व्याख्या होगी तो हरिवंशराय बच्चन केवल साकी और हाला के कवि ही दिखेंगे, लेकिन अगर हम इन पंक्तियों पर ध्यान दें -

'कुछ आग बुझाने को पीते / ये भी , कर मत इन पर संशय।'

× × ×

'पीड़ा में आनंद जिसे हो, आए मेरी मधुशाला।'

स्पष्ट है कि 'हालावाद' जो बच्चन जैसे कवियों के माध्यम से आया, का ठोस सामाजिक - सांस्कृतिक आधार भी था, जो आगे के बिन्दुओं में और स्पष्ट ढंग से हम अध्ययन करेंगे।

14.3.2 छायावादोत्तर कविता और हरिवंशराय बच्चन

छायावादोत्तर कविता का सही प्रतिनिधि किसे कहें और कालक्रम से इसे कब से मानें, यह प्रश्न अपने आप में उलझा हुआ है। समय-समय पर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों - आलोचकों ने इस प्रश्न पर विचार किया हैं और अपने-अपने ढंग से इस पर अपने रास्ते तलाशे हैं। छायावादोत्तर कविता में एक ओर जहाँ रामकुमार वर्मा, गोपालप्रसाद नेपाली जैसे कवि

छायावादी रचनाएँ कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक यर्थाथ को लेकर 'प्रगतिवाद जैसा सशक्त काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हो रहा था। एक ओर रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' तथा अंचल का मांसलवादी काव्य तो दूसरी ओर भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान का राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य तो तीसरी ओर हरिवंशराय बच्चन का मध्यमवर्गीय सामाजिकता का काव्य। अर्थ यह है कि सन् 1933 से 1936 या 1940 तक का समय संक्रान्ति काल है। इस समय के बीच इतने प्रकार के काव्यान्दोलन चले कि उनके बीच हरिवंशराय बच्चन की भूमिका की तलाश थोड़ी मुश्किल सी लगती है। छायावादोत्तर परिदृश्य पर किस कवि की केंद्रीय भूमिका स्थिर होगी, इस प्रश्न पर हिंदी साहित्य के इतिहास में आम राय नही बन पाई है। डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''छायावादोत्तर परिदृश्य पर केंद्रीय कवि व्यक्तित्व किसका होगा, इसे लेकर कई तरह के अनुमान और तर्क हो चुके हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने वृहत संकलन 'कविता-कौमुदी' भाग -2 के चतुर्थ परिवद्धित संस्करण (1939) में 'खड़ी बोली कविता का संक्षिप्त परिचय देते हुए लिखा था, ''बच्चन और दिनकर दोंनों प्रतिद्वन्द्वी कवि है । बच्चन की भाषा दिनकर से जोरदार है दिनकर के भाव बच्चन से अधिक उन्मादक, सारवान् और सामाजिक है। दोनों में से जो एक दूसरे को पहले ग्रहण कर लेगा, वही हिन्दी - कविता के वर्तमान और अगले युग का नेता होगा। ''नंददुलारे बाजपेयी छायावादके बाद नये आन्दोलन की शुरूआत 'पहले अंचल' से मानते हैं, और नगेन्द्र गिरिजाकुमार माथुर से । रामविलास शर्मा की दृष्टि' 50 के आसपास उभरते गीतकारों पर थी। आधुनिक समीक्षक नामवर सिंह की व्यंजना है कि इस केंद्रीय स्थिति में गजानन माधव मुक्तिबोध का काव्य होगा। इतिहास अब एक इनमें से बहुत - से मूल्यांकनों को गलत साबित कर चुका है। सही क्या होगा - यदि 'सही' शब्द को समीक्षा के संदर्भी में संगत प्रयोग माना जाए-यह आज भी आलोचनात्मक जिज्ञासा का विषय है, भविष्यवाणी का नहीं । 'लम्बे उद्धरण को यहाँ देने का उद्देश्य यह था कि हम देखें कि छायावादोत्तर कविता के परिदृश्य पर केंद्रीय स्थिति को लेकर कितने विरोधाभास की स्थिति थी।

अभ्यास प्रश्न 1)

क) उचित शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. हरिवंशराय बच्चन .... काल के कवि हैं।

2. हरिवंशराय बच्चन को नव्य .... भी कहा गया है।

3. हरिवंशराय बच्चन को .... का प्रवर्त्तक कहा जाता है।

4. हरिवंशराय बच्चन ने प्रारंभिक दौर में अपनी कविता की अभिव्यक्ति के लिए ....का माध्यम चुना।

5. 'हालावाद' की प्रतिनिधि रचना .... को माना गया है।

ख) नीचे दिये गए वाक्यों में सत्य/ असत्य बताइए।

1. 'मधुकलश' ग्रन्थ के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन हैं।

2. 'साकी भर - भर ला तू अपनी हाला' पंक्ति के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन है।

3. 'बस मत कह देना अरे पिलाने वाले, हम नहीं विमुख हो जाने वाले' पंक्ति के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन हैं।

4. हरिवंशराय बच्चन की कविता पर उमर खैय्याम का प्रभाव पड़ा है।

5. 'निशा - निमंत्रण' के रचनाकार भगवतीचरण वर्मा हैं।

14.3.3 हरिवंशराय बच्चन की रचनाएँ

हरिवंशराय बच्चन का कृतित्व पद्य और गद्य में बिखरा है। प्रारंभिक सफलता आपको कविता के क्षेत्र में मिली। 'मधुशाला' के प्रकाशन के बाद अचानक से हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बन गये। अपने कृतित्व के उत्तरार्द्ध में हरिवंशराय बच्चन का गद्य साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हाँलाकि बच्चन ने अपने कृतित्व की शुरूआत कहानी लेखन से की लेकिन यहाँ पर सफलता न मिल पाने के कारण वे कविता लेखन की ओर मुड़े। सर्वप्रथम उन्होंने कहानी - संग्रह 'हिन्दुस्तान अकादमी' को भेजा था,जिसे प्रकाशन के योग्य नहीं समझ गया। उसके उपरान्त बच्चन कविता - क्षेत्र की ओर आये। हरिवंशराय बच्चन की पहली कविता जबलपुर की 'प्रेमा' पत्रिका में 'मध्याह्न' शीर्षक से 1931 में प्रकाशित हुई। उनका पहला कविता संग्रह 'तेरा हार' 1932 ईसवी में प्रकाशित हुआ। इसके उपरान्त कविता क्षेत्र में बच्चन को अभूतपूर्व ख्याति मिली। कविता क्षेत्र के शीर्ष पर पहुँचने के उपरान्त हरिवंशराय बच्चन गद्य की ओर मुड़े। गद्य में हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा, डायरी, अनुवाद, बालसाहित्य प्रमुख हैं। यहाँ संझेप में हम हरिवंशराय बच्चन द्वारा लिखित रचनाओं को प्रस्तुत कर रहे हैं -

तेरा हार - 1932

मधुशाला - 1935

मधुबाला - 1936

मधुकलश - 1937

एकान्त संगीत - 1937

निशा निमंत्रण - 1938

आकुल अन्तर - 1943

प्रारंभिक रचनाएँ - प्रथम भाग - 1943

प्रारंभिक रचनाएँ - दूसरा भाग - 1943

सतरंगिनी - 1946

खादी के फूल - 1948

सूत की माला - 1948

मिलन यामिनी - 1950

प्रणय पत्रिका - 1955

धार के इधर -उधर - 1957

आरती और अंगारें - 1958

बुद्ध और नाचघर - 1958

त्रिभंगिमा - 1961

चार खेमे चौंसठ खूँटे - 1962

दो चट्टानें - 1965

बहुत दिन बीते - 1967

कटती प्रतिमाओं की आगज - 1968

उभरते प्रतिमानों के रूप - 1969

जाल समेटा – 1973

14.4 हरिवंशराय बच्चन की कविता: संदर्भ सहित व्याव्था

किसी भी कवि की अच्छी समझ उस पर लिखी आनोचना से उतनी नहीं विकसित होती जितनी उसकी मूल रचना को पढ़ने से विकसित होती है। इसका कारण क्या है ? यह प्रश्न किया गया जा सकता है। आलोचना में कवि/रचनाकार पर आलोचक की दृष्टि आरोपित कर दी जाती है। बहुत बार पाठक आलोचक की दृष्टि से कवि को देखने लगता है, ऐसी स्थिति में वह पाठक मूल रचना से दूर होने लगता है। ऐसी स्थिति में कवि की रचना का मूल संदर्भ देखना उचित होगा। हरिवंशराय बच्चन की कविताएँ विभिन्न मनःस्थितियों की उपज हैं। प्रारंभिक कविताएँ जहाँ ‘हालावादी’ हैं वहीं बाद की रचनाएँ व्यक्तिवाद, सामाजिकता को अभिव्यक्त करती हैं। हरिवंशराय बच्चन की कविताओं के चुने हुए अंशो के माध्यम से हम बच्चन काव्य की भूमि समझने का प्रयास करेंगें।

14.4.1 इस पार - उस पार

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!

यह चांद उदित होकर नभ में

कुछ ताप मिटाता जीवन का,

लहरा -लहरा ये शाखाएँ

कुछ शोक भुला देतीं मन का,

कल मुर्झाने वाली कलियां

हंसकर कहती हैं, मग्न रहो,

बुलबुल तरू की फुनगी पर से

संदेश सुनाती यौवन का,

तुम देकर मदिरा के प्यालें

मेरा मन बहला देती हों,

उस पार मुझे बहलाने का

उपचार न जाने क्या होगा!

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!

शब्दार्थ - उदित - उगकर, नभ - आकाश, ताप - तपन (परेशानी), तरू - वृक्ष, फुनगी - वृक्ष का ऊपरी हिस्सा , मदिरा - शराब

संदर्भ - आलोच्य गीत हालावादी कवि हरिवंशराय बच्चन की प्रसिद्ध कविता 'इस पार - उस पार' का अंश है, जो 'मधुबाला' काव्य संग्रह में संकलित है।

प्रसंग - हरिवंशराय बच्चन व्यैक्तिक चेतना के गीतकार हैं, किन्तु उनकी यह चेतना व्यैक्तिक मनोभावों से दूर जीवन - जगत के सत्य का साक्षात्कार भी करना चाहती है। प्रस्तुत गीत 'इस पार - उस पार' में कवि ने व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन आध्यात्मिक जीवन दोनों को एक साथ रखकर जीवन सत्य का साक्षात्कार करना चाहा है।

व्याख्या - कवि जीवन के सत्य का साक्षात्कार करता हुआ अपने प्रिय को संबोधित करते हुए कह रहा है कि हे प्रिये अभी तो तुम मेरे पास हो, जीवन का रस है लेकिन उस पार यानी जीवन के इस मुधर पलों के बाद जीवन में क्या होगा, यह अनिश्चित हैं चन्द्रमा आकाश में उदित होकर जीवन के ताप, उष्णता को मिटाता है, वृक्ष की शाखाएँ अपने शाखाओं - पत्तियों की उमंग से जीवन में आनन्द/ उमंग को फैला रहे हैं। नित्य - प्रतिदिन मुर्झाने वाली, नष्ट होने वाली पुष्प् की कलियाँ भी हमें संदेश देती हैं कि जीवन के इस आनन्द, गतिशीलता को महसूस कर तुम आनंदित रहों। बुलबुल वृक्ष के शीर्ष पर बैठकर जीवन के यौवन यानी उमंग का संदेश सुनाती है। प्रिय को सम्बोधित करता हुआ कवि कह रहा है कि तुम मुझे मदिरा के प्याले यानी जीवन रस से सींचकर मेरे मन को सांसारिक कर्मी से जोड़कर मुझे बहला देती हो। किन्तु उस पार मुझे बहलाने का, मेरे मन की शांति का न जाने कौन सा उपाय होगा। क्योंकि हे प्रिय अभी तो तुम मेरे पास हो, जीवन का सुख है, आनन्द है लेकिन उस समय जब ये सारी चीजें मेरे पास नहीं होंगी तब मुझे नहीं मालूम क्या होगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु:

1. 'इस पार' - 'उस पार' के माध्यम से कवि ने लौकिक - पारलौकिक जीवन के द्वन्द्ध को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

2. कविता में प्रकृति की गत्यात्मकता के माध्यम से कवि जीवन को आशावादी दृष्टिकोण से देखने का आग्रह कर रहा है।

3. कविता की भाषा सरल है।

4. कविता में शब्द - चयन अद्भुत है, प्रवाह की दृष्टि से कविता सुन्दर बन पड़ी है।

14.4.2 कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय/हो रहा उद्गार मेरा!

सृष्टि के प्रारम्भ में

मैंने उषा के गाल चूमे,

बाल रवि के भाग्यवाले

दीप्त भाल विशाल चूमे,

प्रथम संध्या के अरूण दृग

चूमकर मैं ने सुलाए,

तारिका - कलि से सुसज्जित

नभ निशा के बाल चूमे,

वायु के रसमय अधर

पहले सके छू होठ मेरे,

मृत्रिका की पुतलियों से

आज क्या अभिसार मेरा!

कह रहा जग वासनामय

हो रहा उद्गार मेरा!

शब्दार्थ - वासना - आसक्ति, मोह, लिप्सा, उद्गार - अभिव्यक्ति, उषा - सुबह, भाल - मस्तक, अरूण - सूर्य , दृग - नेत्र, निशा - रात्रि, अधर - होठ, अभिसार -मिलन

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गीत, 'हालावादी' आन्दोलन के प्रतिष्ठापक हरिवंशराय बच्चन की प्रसिद्ध कविता 'कवि की वासना' का अंश है, जो उनके प्रमुख काव्य संग्रह 'मधुकलश' में संकलित है।

प्रस्तुत गीत में कवि प्रकति की गत्यात्मकता, उमंग, सजीवता को महसूस कर रहा है। समाज की दृष्टि में जो वासना है, वही कवि की दृष्टि में मानव की सहज अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत गीत में कवि ने सुन्दर शब्दों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है -

व्याख्या - कवि अपनी भावना को अभिव्यक्त करते हुए कह रहा है कि - जिन भावों को समाज, संसार अपनी संकुचित दृष्टि के कारण हेय, वासनापूर्ण और निरस्कृत समझता है, वह तो मेरी सहज अभिव्यक्ति है। उसमें वासना - आसक्ति नहीं बल्कि वह तो मेरी सरल भावनायें हैं। कवि अपनी भावना को शब्द - रूप् देते हुए कह रहा है कि मैने सृष्टि प्रारम्भ के प्रतीक सुबह का गाल चूमकर उसका स्वागत किया यानी आनन्द - उमंग के साथ उसे अपनाया। उदित होते सूर्य के विशाल 'दीप्त मस्तक जो उसके उन्नत भाग्य के सूचक हैं , का सहर्ष स्वागत किया, जिस प्रकार कोई अपने प्रिय का चुम्बन से स्वागत करता है। संध्याकालीन लाल नेत्रो रूपी किरणों को मैनें उसी प्रकार चुम्बन से विदाई दी । रात्रिकालीन आकाश के जिसमें कली रूपी तारिकाएँ चारो ओर खिली हुई हैं, वे किसी सुन्दर नायिका के समान दिख रही हैं। इस समय रात्रिकालीन - आकाश नायिका के काले बालों के समान लग रहा है। ऐसी रात्रि नायिका बालों को मैंने स्नेहवश चूमा। इस समय प्रकृति में बहनेवाली हवाएँ रसमय होंठ की तरह हैं जो आ - आकर मेरे होंठों का चुम्बन ले रही है। मृत्यु के सहज नियति से क्या आज मेरा अभिसार है, क्या मृत्यु आज मेरा वरण करेगी अर्थात् प्रकृति के जीवन रूपी उल्लास के बीच मृत्यु का आगमन सहज है।

महत्वपूर्ण बिन्दुः

1. जीवन की गत्यात्मकता का सुन्दर वर्णन हुआ है।

2. समाज की संकुचित दृष्टि में जो वासना है वह मेरी दृष्टि में मेरी सहज अभिव्यक्ति है।

3. कविता में सामाजिक गति और मृत्यु को एक साथ रखकर जीवन की अनिश्चितता का बोध कराया गया है।

4. मृत्यु बोध का साक्षात्कार करने वाली कविता महान कविता होती है, चाहे वह कुरान हो, बाइबिल या गीता। हरिवंशराय बच्चन के काव्य की उष्मा मृत्यु बोध ही है। जो प्रस्तुत कविता में भी सुन्दर ढंग से व्यक्त हुई है।

अभ्यास प्रश्न 2

क) निर्देश: निम्नलिखित शब्दों पर टिप्पणी लिखिए।

1. कविता और लोकप्रियता

-----

2. हरिवंशराय बच्चन और हालावादः-

ख) 'क' और 'ख' में मिलान कीजिए।

	'क'		**'ख'**
1.	हालावाद	-	काव्य आंदोलन
2.	प्रयोगवाद	-	बेकन
3.	उमर खैय्याम	-	अजनबी
4.	अल्वैर कामू	-	रूबाईयां
5.	ऑफ डेथ	-	अज्ञेय

14.5 हरिवंशराय बच्चन काव्यः विश्लेषण एवं आलोचना

सहित्य क्षेत्र में यह घटना या दुर्घटना अक्सर होती है, कि किसी साहित्यकार को किसी खास मनोवृत्ति का प्रवृत्ति या आंदोलन का कवि घोषित कर दे। हरिवंशराय बच्चन की ख्याति को अधार चूंकि मंच से सुनाई गई कविता ''मधुशाला'' थी, इसलिए भी उनके इस प्रारम्भिक

रूप को पाठकों-समीक्षकों ने ज्यादा स्वीकृति दी। एक अन्य कारण यह भी है कि किसी साहित्यकार की मानसिक-विचाराधात्मक बनावट के निर्माण में कुछ खास परिस्थितियॉ होती हैं। हर रचनाकार की एक मुख्य रचना पक्ष होता है, जिसकी परिधि में उसकी रचनाएँ अस्तित्व लेती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियॉ किसी रचनाकार को जन्म देती हैं। ओर सचेत रचनाकार फिर उन परिस्थितियों का गुणात्मक विस्तार का प्रयास करता हैं। यदि किसी रचनाकार की प्रारम्भिक कृति ही महत्वपूर्ण हो और बाद की कृतियां उन महत्वपूर्ण हों तो यह समझना चाहिए कि उस रचनाकार को उसकी पृष्ठभूमि ने तो निर्मित किया लेकिन स्वयं रचनाकार अपनी परिधि का विस्तार नहीं कर पाया। हरिवंशराय बच्चन की कविता के संदर्भ में इस तथ्य को स्मरण रखना इसलिए आवश्यक है कि खुद उनके बाद की कविताओं को समीक्षकों ने ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं समझा है। अभी तक आप हरिवंशराय बच्चन के काव्य की पृष्ठभूमि एवं उनकी कविता के मूल पाठ से परिचित हो चुके हैं। आइए, अब हम बच्चन काव्य की काव्यानुभूति से परिचय प्राप्त करें।

14.5.1- हरिवंशराय बच्चन की काव्यानुभूति-

किसी भी बड़ी कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अपने युग- समाज के घात-प्रतिघात के बीच अस्तित्व लेती हैं जाहिर है घात-प्रतिघात की यह क्रिया अनेक परिस्थितियों एवं विचारों से जुड़ती है। ऐसी स्थिति में कवि की अनुभूति भी कई प्रकार के संवेगो में से संचालित होती है। इसलिए एक ही कवि कभी प्रणय के गीत गाता है, कभी मृत्यु बोध वरण करता है। कभी नियतिवाद एवं उदासी के गीत रचना है तो कभी क्रांति एवं आवेगपूर्ण कथन कहता है। हरिवंशराय बच्चन काव्य की प्रमुख काव्यानुभूति के संदर्भ को यहॉ हम प्रमुख बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे। बच्चन काव्य के निर्माण में मृत्यु बोध ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जीवन और मृत्यु की भूमिका को जो कवि जितना गहरे समझता है, उसकी कविता उतनी प्राणवान होती है। बच्चन पर उमर खैय्याम का बहुत प्रभाव पड़ा था। उमर खैय्याम की रूबाइयों ने 'मधुशाला' के निर्माण में ही नहीं स्वंय हरिवंशराय बच्चन के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बच्चन जी ने लिखा है- ''मरते तो सभी हैं, पर एक मरकर मर जाता है और एक मरकर अमर हो जाता है। भेद है मरने के अंदाज में।''

मृत्यु बड़ी विचित्र है, वह बगैर हाथ उठाए भी मार सकती है, हाथ उठाकर भी छोड़ सकती है।

मृत्यु की प्रतीक्षा मृत्यु से अधिक डरावनी होती है। जिस प्रकार महादेवी वर्मा ने लिखा है, अमरता है जीवन का ह्रास,/मृत्यु जीवन का चरम विकास। उसी प्रकार हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है- इस पार प्रिये मधु है, तुम हो/ उस पार न जाने क्या होगा''। उस पार की आकांक्षा वही कर सकता है जो जीवन को संपूर्णता में समझता हो।

आरम्भिक काव्य- संग्रहों मधुशाला, मधुबाला और मधुकलश के आधार पर हरिवंशराय बच्चन को प्रणयानुभूति का गायक कहा गया है। प्रणय के ये गीत साकी, मयखाने के माध्यम से ओर जीवंत हो उठे हैं। ''उल्लास चपल, उन्माद तरल, प्रतिपल- पागल मेरा परिचय जल में, थल में, नभ मंडल में, है जीवन की धारा बहती, संसृति के कूल किनारों को, प्रतिक्षण सिंचित करती रहतीं

× × ×

आज मन वीणा प्रिये फिर ये कसो तो,

मैं नहीं पिछली अभी झंकार भूला, मैं नहीं पहले दिनों का प्याल भूला।

गोद में ले गोद से मुझको लसो तो, आज मन वीणा प्रिये फिर से कसो तो।

× × ×

गरमी में प्रातः काल पवन, बेला से खेला करता जब, तब याद तुम्हारी आती है।

× × ×

ओ पावस के पहले बादल, उठ उमड़ गरज, फिर घुमड़ चमक, मेंरे मन प्राणों पर बरसो।

× × ×

तुमको मेंरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते,

× × ×

सीख यह रागों की रात नहीं सोने देती,

× × ×

प्रिय शेष बहुत है, रात अभी मत जाओ,

× × ×

तुम्हारे नील झील से नैन, नीर निर्झर से लहरें केश।

× × ×

मधुर प्रतिक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता प्रणयानुभूति के ये गीत सरल, सहज भाषा में कहे गये हैं, जो पाठक को सहज ही जोड़ देता है। प्रेम, उमंग के गीत बच्चन काव्य की आधार भूमि रहे हैं, लेकिन क्रमशः बाद के काव्यों में वे सामाजिक भूमि पर उतरे हैं। हॉलाकि इसका संकेत वे ''मधुशाला'' में ही दे चुके थे- ''मंदिर- मस्जिद भेद बढ़ाते।/ भेद मिटाती मधुशाला।'' हरिवंशराय बच्चन की कविता में संघर्षरत मानव का दृश्य कई जगह मिलता है। जैसे प्रस्तुत कविता देखें -

''अग्निपथ! अग्निपथ! अग्निपथ!

वृक्ष हों भले खड़े, हों घने, हों बड़े,

एक पत्र छाँह भी/माँग मत, माँग मत, माँग मत!

अग्निपथ! अग्निपथ! अग्निपथ!

तू न थकेगा कभी! तू न थकेगा कभी!

तू न मुड़ेगा कभी/कर शपथ! कर शपथ! कर शपथ!

ये महान दृश्य है, चल रहा मनुष्य है,

अश्रु, स्वेद, रक्त से/लथपथ, लथपथ, लथपथ,

इसी तरह कवि केवल व्यैक्तिक जीवन का अभिलासी नहीं नहीं है, उसने अपने को संघर्ष के बीच भी देखा है -

''तीर पर कैसे रूकूँ में, आज लहरों में निमंत्रण है'' इसी प्रकार बच्चन जी लिखते हैं - 'गरल पान तू कर बैठा/विष का स्वाद बताना होगा।'

हरिवंशराय बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। सामाजिक विद्रोह, वेदना, संघर्ष , प्रणयानुभूति सभी आत्मानुभूति के धरातल पर व्यक्त हुए हैं। निज के उद्गारों को व्यक्त करना उन्हें काम है -

'मै निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ। '

मै निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ।'' (मधुबाला) बच्चन जी ने अपनी आत्मानुभूति को स्पष्ट ढंग से अभिवयक्त किया है- ''मैं छिपाना जानता तो/जग मुझे साधु समझता/शत्रु मेरा बन गया है/ छल रहित व्यवहार मेरा / वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी / हे आज भरा जीवन मुझमें है आज भरी मेरी गागर।''

× × ×

''वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मै

हे रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा

कह रहा जग वासनामय, हो रहा उद्गार मेरा।''

× × ×

''जीवन - अनुभव - स्वाद न कटु अति

मेरा चिह्वा पर आता/कौन मधुर मादकता मेरे गीतों के अंदर पाता ?''

स्पष्ट है कि अपनी आत्मानुभूति को सरल, सहज भाषा में बच्चन जी ने अभिव्यक्त किया है।

14.5.2 हरिवंशराय बच्चन की कविता में भाषा

हरिवंशराय बच्चन को हिन्दी साहित्यकारों ने यह श्रेय दिया है कि उन्होंने हिन्दी कविता की भाषा को वायवीयता से उतारकर उसे ठोस सामाजिक आधार दिया। हिन्दी कविता में तत्सम शब्दों के स्थान पर लोकप्रचलित शब्दों को आप ले आये। उन्होंने गद्य की तान वाली कविता लिखी, गद्य नहीं लिखा (महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह)। हरिवंशराय बच्चन ने सीधे - सादे वाक्य को कविता बनाया, यह उनकी विशेषता हैं। नहीं तो उसके पहले और बाद में भी कविता की भाषा कितनी सूक्ष्य होती गई है, इसे हम देख सकते हे - **'हरिऔध'** – दिवस का अवसान समीप था/गगन था कुछ लोहित हो चुका / **निराला** - मेघमय आसमान से उतर रही/संध्या - सुंदरी परी सी , **शमशेर** - एक पीली शाम/ओर पतक्षर का अटका हुआ पत्ता। स्पष्ट है कि भाषा की सूक्ष्मता को बच्चन जी ने बोलचाल की शैली से सँवारा । इस संदर्भ में हम कुछ उदाहरण देख सकते हैं - 'दिन जल्दी -जल्दी ढलता है। ' × × × 'आओ हम पथ से हट जायें × × ×'चाद सितारे मिल के गाओ' × × × 'प्रिय शेष बहुत है रात अभी मत होओ × × × 'प्रियतम तू मेरी हाला है, में मदिरालय के मंदर हूँ' × × × 'कितले मर्म बता जाती है' × × × 'संध्या सिंदूर लुटाती है' × × × 'किस कर में यह वीणा धर हूँ ? × × ×'विष का स्वाद बताना होगा' × × ×' जो बीत गई वो बात गई' × × × 'अब वे मेरे गान कहाँ हैं।' × × × 'बीते दिन कब आनेवाले।' × × × 'कोई गाता में सो जाता!' × × × 'क्या भूलूँ , क्या याद करूँ में !' × × × 'कितना अकेला आज में!' जैसे सीधे - सादे वाक्य को बच्चन जी ने कविता बनाया , यह उनका ऐतिहासिक काम था । इसमें न तो छायावादियों की तरह वायवीयता है और ना द्विवेदी कालीन कविता की तरह इतिवृत्तात्मकता । बच्चन जी की भाषा पर रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है: ''बच्चन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कविता में बोलचाल का प्रयोग करते हैं। इस संदर्भ में यह लक्षित करना रोचक है कि कैसे घरेलू प्रकार का साधारण नाम

'बच्चन' आधुनिक हिन्दी कविता का क्रमशः एक महत्वपूर्ण नाम बन गया। बच्चन का ध्यान उर्दू काव्य शैली पर भी था जहाँ भाषा के बोले जाने वाले रूप का प्रयोग सर्वाधिक काम्य रहा है। जहाँ गजल लिखी नहीं कही जाती हैं। बोलचाल वे अपने नगर इलाहाबाद से सीखते है तो उर्दू काव्य शैली के प्रभाव के लिए उसके सबसे बड़े कवि मीर के प्रति आभारी है। बच्चन अपनें काव्य विकास के क्रम में उत्तरोत्तर उर्दू की साफगोई की ओर झुकते गये।''

अभ्यास प्रश्न 3)

निर्देशः नीचे कुछ कथन दिये गये हैं । जिनमें कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिह्न लगाइए।

1. हरिवंशराय बच्चन का पहला कविता संग्रह 'मधुशाला'है।
2. 'मधुशाला' का प्रकाशन वर्ष 1935 है।
3. 'मधुशाला' पर उमर खैय्याम की रूबाईयो का प्रभाव है।
4. 'दिवस का अवसान समीप था' पंक्ति के लेखक हरिवंशराय बच्चन हैं।
5. 'अग्निपथ' कविता के रचनाकार अमिताभ बच्चन हैं।

14.6 सारांश

- हरिवंशराय बच्चन हिन्दी साहित्य में 'हालावाद' के प्रवर्तक कहे गये हैं। हालाकि हिन्दी कविता में 'हालावाद' नाम का कोई आन्दोलन उस रूप में नहीं चला, जिस प्रकार 'प्रयोगवाद' या 'छायवाद' जैसे काव्यान्दोलन चले।
- हरिवंशराय बच्चन हिन्दी कविता में लोकप्रियता की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। हरिवंशराय बच्चन ने कविता को अकादमिक क्षेत्र से बाहर निकालकर उसे जन सामान्य के हिन्दी पाठक वर्ग से जोड़ा।
- 'हालावाद' कोई सुनिश्चित या प्रतिबद्ध विचारधारा नहीं थी बल्कि इसमें एक मनोवृत्ति या प्रतिक्रिया का रूप ही ज्यादा था। हालावादी मनोवृत्ति के पीछे उमर खैय्याम की रूबाइयों की प्रेरणा रही है। खैय्याम की तरफ बच्चन के झुकाव का कारण काव्य - शैली के कारण भी था, असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण भी और आशावादी दृष्टिकोण के कारण भी।

- हरिवंशराय बच्चन के काव्य पर मृत्यु बोध का गहरा असर है। बच्चन ने मृत्यु के अन्तर्भाव में काव्य को उल्लसित किया है। ज्या पॉल सार्त्र ने लिखा है -

मृत्यु जीवन को परिभाषित करती है' की तरह ही बच्चन जी ने मृत्यु के अस्तित्व को स्वीकार करके अपनी रचना को मूल्यवत्ता प्रदान की है।

- हरिवंशराय बच्चन की प्रारंभिक रचनाएँ 'हाला', 'मधुबाला' , 'मधुशाला' , का मिजान अलग ढंग का है और बाद की रचनाएँ 'आकुल अंतर' 'निशा - निमंत्रण' , इत्यादि का दूसरे ढंग का । प्रारंभिक रचनाएँ आनंद - उमंग से उल्लसित हैं तो बाद की रचनाएँ सामाजिक मनावृत्ति से । व्यक्तिकता उभयनिष्ठ है।
- हरिवंशराय बच्चन ने हिन्दी कविता की भाषा को सहजता प्रदान की । उन्होंने छायावादी वायवीयता से हिन्दी कविता की भाषा मुक्त किया और बोलचाल के शब्दों से भाषा में सजीवता लाये।

14.7 शब्दावली

- **नव्य -** स्वच्छंदतावाद - छायावाद के बाद का आन्दोलन, जिसमे रहस्यात्मकता का बहिष्कार है।
- **संधि - युग** – दो प्रवृत्तियों के बीच का समय
- **संक्रान्ति काल** – विपरीत प्रवृत्तियो के एक साथ आने से अस्पष्ट चेतना का काल
- **वायवीयता** – कल्पना की अतिशयता
- **पुनर्मूल्यांकन** – किसी वस्तु, विचार को नये संदर्भो में जाँचना
- **समस्यापूर्ति** – मध्यकालीन कविता का ढंग
- **हालावाद** – रोमांस, मस्ती, प्रणयानुभूति को हाला के प्रतीक के माध्यम से व्यक्त करने वाला आन्दोलन
- **क्षणभंगर** – थोड़े समय बाद नष्ट होने वाला
- **मृत्यु बोध** – मृत्यु को सृजनात्मक धरातल पर स्वीकार करना
- **मांसलवाद** – नायिका शरीर को कविता के केद्रं मे रखकर चलने वाला काव्यान्दोलन
- **नियतिवाद** – भाग्यवाद, मनुष्य के कर्म पूर्व निश्चित हैं, ऐसी मान्यता वाला जीवनदर्शन
- **आत्मानुभूति -** स्व की भावना को व्यक्त करना।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) (क)

1. छायावादोत्तर 2. स्वच्छंदतावदी 3. हालावाद

4. मंच 5. मधुशाला

(ख) 1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2) (ख)

1.काव्य आन्दोलन 2. अज्ञेय 3. रूबाईयाँ

4. अजनबी 5. बेकन

अभ्यास प्रश्न 3)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बच्चन: विशेषांक – संकल्य, जुलाई - सितम्बर 2009।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

14.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमार, (सं) अजित, बच्चन ग्रन्थावली।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. ‘हालावाद’ की प्रवत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

2. हरिवंशराय बच्चन की कविता की प्रवृत्ति स्पष्ट कीजिए।

इकाई 15 नई कविता: सन्दर्भ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य
15.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा
15.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर
15.3.3 प्रयोगवाद
15.4 नई कविता की प्रवृत्तियाँ
15.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप
15.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट
15.7 नई कविता के कवि
15.7.1 अज्ञेय
15.7.2 मुक्तिबोध
15.7.3 शमशेर बहादुर सिंह
15.7.4 धर्मवीर भारती
15.7.5 विजयदेव नारायण साही
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

हिन्दी कविता के इतिहास में नई कविता का दौर काव्य रचना और आलोचना के स्तर पर महत्वपूर्ण विचारोत्तेजना और बहस का दौर है। नयी कविता में जिस बदली हुई संवेदना, जीवनानुभव व भाषा का रूप दिखाई देता है उसके आरम्भ की स्थिति 1930 के आस-पास उभरती देखी गई है। सन 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। पं0 जवाहर नेहरू ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की और घोषित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वतंत्रता और समाजवाद है। इस घटना का एक समानार्थक रूप हमें लखनऊ में सन् 1936 में ही आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में दिखाई देता है जिसकी अध्यक्षता महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने की थी और साहित्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से जोड़कर देखा था। प्रेमचंद भी अपने लेखन में महाजनी सभ्यता की शोषक प्रवृत्तियों की आलोचना कर रहे थे। कहा जा सकता है कि नई कविता की यथार्थोन्मुखता की भूमिका के पीछे इन संक्रान्त स्थितियों के दबाव थे जो नये कवियों के भीतर उनकी अपनी वैचारिकी तथा रचनात्मकता के अनुरूप प्रतिफलित और स्थिर हुए। यहाँ जिस तथ्य को हम निर्णायक रूप में देखते हैं, वह है छायावादोत्तर कविता का छायावादी रूमानियत से मुक्ति का संघर्ष तथा अपने समय के यथार्थ को समझने और व्यक्त करने के लिए नयी अभिव्यक्ति प्रणालियों को अर्जित करने का उसका प्रयत्न। इस प्रक्रिया के कारण वह पूर्ववर्ती कविता से काफी भिन्न दिखाई देती है तथा 'नई कविता' कही गई है।

15.2 उद्देश्य:

इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

नई कविता के आरम्भ को उसके ऐतिहासिक वस्तुगत परिप्रेक्ष्य सहित समझ सकेंगे।

नई कविता का अपने से पूर्व की कविता से अन्तर समझ सकेंगे।

नई कविता में निहित प्रवृत्तियों के अन्तर को जान सकेंगे।

नई कविता की संवेदना को समझ सकेंगे।

नई कविता के रचनात्मक वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

नई कविता के कवियों के विषय में जान सकेंगे।

15.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य

नई कविता का समय प्रायः दूसरा सप्तक (1951) से 1960 तक माना जाता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त नई कविता के प्रमुख कवि हैं। अज्ञेय, साही, भारती और जगदीश गुप्त की कविताओं में काव्य प्रकृति और काव्य प्रवृत्ति के स्तर पर काफी समानता पाई जाती है। अज्ञेय की कविता का विकास आत्मपरकता के विशेष अर्थ के साथ हुआ है। नई कविता के सन्दर्भ में अज्ञेय को प्रायः उसके पुरोधा कवि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण 'सप्तकों' के सन्दर्भ में उनकी भूमिका है। 'सप्तकों' में आये कवि वक्तव्यों और अज्ञेय के सम्पादकीयों को लेकर कुछ अन्य प्रकार की चर्चायें भी हुई किन्तु कहा जा सकता है कि इतिहास की शक्ति ने अज्ञेय को नई कविता के पुरोधा के श्रेय से नवाजा है। अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) और तीसरा सप्तक (1959) में प्रकाशित हुआ। अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हुआ है मगर उसे ज्यादा चर्चा नहीं प्राप्त हुई।

'तारसप्तक' में संकलित कवि थे- गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचन्द जैन, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और अज्ञेय। 'दूसरा सप्तक' में शामिल कवि थे- हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शंकुत माथुर, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती तथा प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँअर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदार नाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के कवि थे। नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में इन तीनों सप्तकों का विशेष योगदान था। विशेष रूप से 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की कविताएं इसके आरम्भ और क्रमशः अर्जित हुई संवेदना और शिल्प की परिपक्वता को सूचित करती है। इन दोनों काव्य संकलनों में उल्लेखनीय रूप से वैचारिकी का अंतर देखा गया जो 'तारसप्तक' में प्रायः अपने आभासी रूप में है और नई कविता के भीतर उनके बीच अंतर और स्पष्ट होता है। 'तारसप्तक' के अधिकांश कवियों पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव है। विशेष रूप से मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, रामविलास शर्मा और भारतभूषण अग्रवाल पर। कविता का यह समाजवादी स्वर प्रगतिवादी कविता के मेल में था। यह कहा जा सकता है कि 'तारसप्तक' के कवि तेजी से बदलते समाज की मानवीय पुनर्रचना के संघर्ष से जुड़े हैं। वे समाज की संक्रान्त स्थितियों की जटिलता को समझ कर मनुष्य को उसके रूपान्तरण के संघर्ष से जोड़ना चाहते हैं और इसी परिप्रेक्ष्य में वे कविता की बदलती हुई भूमिका के विषय में गंभीर है। रचनात्मक स्तर पर बदले हुए भावबोध की समस्या के साथ संप्रेषण की समस्या भी आ जुटती है और अनुभावन की रूढ़ियों को तोड़ने की चुनौती भी, अतः इस दौर में कवियों के सामने चुनौतियाँ कई तरह की हैं। अतः हमें नई कविता का वस्तुसंगत विश्लेषण करने के लिए इस परिप्रेक्ष्य को समझ कर चलना होगा।

छायावादोत्तर कविता को छायावाद से अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति उसकी यथार्थ दृष्टि है। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में सन् 1938 से नई काव्य प्रवृत्तियों को पूर्ववर्ती छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न होते देखा। उन्होंने लिखा कि- 'इस युग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है यथार्थवादी रूझान' (नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान')इस प्रकार छायावाद के बाद सामने आने वाली कवि पीढ़ी के सामने प्रमुख चुनौती थी अपने समय के यथार्थ के साक्षात्कार की तथा इस यथार्थ के लिए अर्जित यथार्थवादी दृष्टि के साथ छायावादी यथार्थविरोधी प्रवृत्तियों से संघर्ष की।

15.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा

छायावादोत्तर काव्य परिदृश्य में प्रमुखतः तीन प्रकार की काव्यधाराएँ दिखाई देता है। छायावादोत्तर गीतधारा ने छायावादी स्वच्छन्द चेतना और स्वस्थ रागात्मकता की छायावादी विरासत को नया किया। यही नहीं बल्कि युगबोध का स्वरूप अपने बदलाव के साथ इसमें विन्यस्त हुआ। विशेषरूप से हरिवंशराय बच्चन की हालावादी कविताओं ने भाषा का एक नया मिजाज दिया जिसमें सहजता और रवानी थी। इस धारा के प्रमुख कवियों में बच्चन समेत गोपालदास नेपाली, अंचल, सोहनलाल द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा आदि कवि थे। विजयदेव नारायण साही ने इस काव्यधारा में छायावाद का अंत देखा साथ ही इसी के भीतर उन्हें नई कविता का आरम्भ भी दिखाई दिया। यह अवश्य है कि नई कविता की पृष्ठभूमि को छायावादोत्तर गीतों में घटित संवेदना और भाषा के बदलाव को एक तरफ करके नहीं देखा जा सकता। यह भी देखा जा सकता है कि इस काव्य धारा में नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', शिवमंगल सिंह 'सुमन', शैलेन्द्र आदि कवि थे जिन्होंने बहुत सुन्दर गीत लिखे। इन गीतों में विसंगतियों के चित्र उभरे। जीवन संघर्ष का एक अनूठा पहलू किंचित दार्शनिक झलक देता हुआ सा इसमें प्रकट हुआ, विशेष रूप से बच्चन के गीतों में। इसके अतिरिक्त इन गीतों का विषय प्रकृति, प्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता, वेदना, ओज और प्रहार आदि थे। जहाँ तक इन गीतों की संवेदना का प्रश्न है तो इसमें अनुभूतिप्रवणता अधिक थी।

15.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर

प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ केवल कविता में प्रकट न होकर समस्त साहित्यिक विधाओं में प्रकट हुई। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का लखनऊ में प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थे। उनके लिए शोषित वंचित जन का आर्थिक सामाजिक मुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण था। अपनी कविता को उन्होंने इस मुक्तिचेतना का पैरोकार बनाया। छायावादोत्तर दौर की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं के सन्दर्भ में एक तथ्य की समानता मिलती है। इन दोनों धाराओं में कवियों ने सचेतन रूप से छायावादी प्रवृत्तियों के प्रभाव को अस्वीकार किया। प्रगतिवादी कवियों ने अपने बदले हुए संघर्षधर्मी काव्यबोध के निकट छायावादी ढंग की भाषा की अनुपयुक्तता समझी, अतः अपने ऐसे परिवर्तित काव्य विषयों के

लिए उन्हें व्यापक जीवन से जुड़ी हुई भाषा अनुकूल लगी। वस्तुतः यह काव्य भाषा वंचित मनुष्य के जीवन संघर्ष की कठिन दुनिया में अपनी प्रतिबद्धता के साथ प्रवेश कर रही थी और सौन्दर्य प्रतिमान बदल रहे थे। ये श्रम के जीवन से उभरते हुए सौन्दर्यबोधीय मूल्य थे। इस प्रकार प्रगतिवादी कविता ने अपने लिए जो मूल्य स्थिर किये वे प्रायः सर्वहारा यानी किसान मजदूर जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की पक्षधरता, समानतामूलक समाज का स्वप्न, सक्रिय सामाजिकता और मैत्रीभाव, जनता के संघर्ष की अभिव्यक्ति और उसकी शक्ति का चित्रण आदि थे।

15.3.3 प्रयोगवाद

नई कविता के सन्दर्भ में सबसे ज्यादा चर्चा प्रयोगवाद की हुई है तथा कुछ आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का ही विकास माना है। यहाँ एक तथ्य समझ लेना चाहिए कि 'प्रयोगवाद' से नई कविता का इस प्रकार का सम्बन्ध मान लेने पर इसके भीतर निहित दो विपरीत स्वरों का विश्लेषण संभव नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद की चर्चा कविता के संरचना विषयक प्रयोगों के सन्दर्भ में अधिक हुई है। अतः नई कविता को काव्यभाषा सम्बन्धी बदलाव के सन्दर्भ में समझने की स्थितियाँ बन जाती हैं। 'तारसप्तक' के सम्पादक अज्ञेय ने 'प्रयोग' शब्द का उपयोग कविता के रचनात्मक नवोन्मेष के सन्दर्भ में किया। वे भाव और भाषा की नवीनता के साथ-साथ इस प्रकार की नवीन संरचनाओं के अनुभावन या कि संप्रेषण के प्रश्न को भी उठा रहे थे। इस तरह 'तार सप्तक' में संग्रहीत कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में अज्ञेय के वक्तव्य की प्रातिनिधिकता मानी गई और 'प्रयोग' के प्रभाव की व्याप्ति समझकर उसे कविता के स्वर का प्रभावी अनुशासक मान लिया गया। अन्यत्र भी हम देख चुके हैं कि 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों में सामाजिक सरोकार, रचनादृष्टि और संवेदना में परस्पर पर्याप्त अंतर था। यह अंतर इसी प्रकार नयी कविता के भीतर भी कायम रहा। इन्हें परस्पर दो विरोधी प्रवृत्तियों के रूप में पहचाना गया। 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'नई कविता में अनेक अवधारणाएं तथा अनेक वैयक्तिक दृष्टियाँ काम कर रही थीं'। (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र)

अज्ञेय ने प्रयोग को दोहरा साधन कहा। इसमें शामिल कवियों को उन्होंने 'राहों के अन्वेषी' कहा है। प्रयोग को जो दोहरा दायित्व निभाना था वह क्रमशः इस प्रकार था- (1) नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना तथा (2) उस वास्तविकता में निहित आशयों की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम नयी अर्थ भंगिमाओं वाली भाषा की तलाश करना। इस प्रकार इस प्रयोगधर्मिता का बीज शब्द बन कर जो शब्द उभरा वह था 'अन्वेषण'। आगे चलकर विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में इस 'अन्वेषण' को हम अतिरिक्त गरिमा के साथ प्रतिफलित होते देखते हैं। 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों के स्वर की पहचान करते हुए हमने देखा कि प्रयोगधर्मिता का उनके लिए अपना भिन्न अर्थ है। वे सभी अपने रचना स्वभाव के अनुसार चले

हैं तथा उनमें से अनेक का झुकाव समाजवादी विचारधारा के प्रति है। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से 'तारसप्तक' की कविताओं में मध्यवर्गीय अनुभवों पर निर्भरता दिखाई देती है। यहीं से कवि की वह आत्मोन्मुखता समझी जा सकती है जिसका कारण विसंगतियों को गहराता हुआ वह सामाजिक अलगाव है जो सबसे ज्यादा शहरी मध्यवर्ग के अनुभव में आता है। छायावादी रूमानियत का अतिक्रमण करने के लिए प्रयोगवादी कवियों की कविता में बौद्धिकता का सन्निवेश दिखाई देता है। इस बौद्धिकता ने उनकी यथार्थ दृष्टि को तीखा किया। इसके कारण वे कवि अपने संक्रान्त समय के जटिल अनुभवों का साक्षात्कार संभव कर पाये तथा उसमें निहित विद्रूप को उधेड़ सके। यहाँ हम 'तारसप्तक' में संग्रहीत अज्ञेय की 'शिशिर का राकानिशा' शीर्षक कविता की ये पक्तिंया देखें : **वंचना है चांदनी सित/झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार/शिशिर की राकानिशा की शांति है निस्सार/निकटतर- धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद/मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में/तीन टांगो पर खड़ा नतग्रीव/धैर्यधन गदहा।** (तारसप्तक-संपा, अज्ञेय) इस प्रकार हम यहाँ शुद्ध तत्सम की शब्द भंगिमाओं द्वारा यथार्थ का विद्रूप उद्घाटित होते देखते हैं। छायावादी कविता में रचनात्मकता को उभारने वाले शब्द यहाँ उस पूरे ऐश्वर्यमय बिंब को झूठ बता रहे हैं। अज्ञेय ने संक्रांत समय के बोध को कई तरह से देखा है। आधुनिक मनुष्य के मन और चेतना पर ऐसा समय एक भारी दबाव की तरह था। मूल्य संक्रमण की टकराहटें अलग थीं कहीं विद्रोह था तो कहीं कुण्ठा, कहीं प्रणयानुभूति की मांसलता के दबाव से उभरा आवेग तो कहीं संशय और पलायन। इस प्रकार इन कवियों के अन्तर्द्वन्द्वों के कई रूप थे। प्रयोगवादी कवियों में शब्दान्वेषण की प्रवृत्ति प्रमुख थी। प्रचलित शब्दों का नया उपयोग भी इनके विधान में था। डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा भी कि- 'आधुनिक कविता की भाषा खड़ी बोली केवल 50-60 वर्ष पुरानी है किन्तु कुछ कारणों से उसका दायित्व देशगत चेतना की उस विधा की अभिव्यक्ति करना हो गया है, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विकसित हो गई। (नयी कविता: डॉ. जगदीश गुप्त)।

अतः हम देखते हैं कि प्रयोगवादी कविता के लिए प्रयोग और अन्वेषण के साथ 'शब्द' का महत्व भी प्रमुख होकर सामने आया, बल्कि अन्वेषण धर्मिता की एक प्रमुख दिशा के रूप में सामने आया है, जो क्रमशः इस प्रकार है-

1. भाषा के रचनात्मक सामर्थ्य का अन्वेषण।

2. शब्दों की अर्थसंभावना की खोज।

3. शब्दों के अंतराल में गर्भित मौन का सृजनात्मक उपयोग।

4. जाने-पहचाने शब्दों की नयी अर्थ छवियों की खोज।

5. बहुआयामी जीवन के विस्तार में शब्दों का उनकी वैविध्यमयी अर्थक्षमता के साथ उपयोग।

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है।

प्रयोगवाद का प्रवर्तक .... को माना जाता है।

प्रगतिवाद का सम्बन्ध .... विचारधारा से है।

'नई कविता और अस्तित्ववाद' शीर्षक किताब के लेखक .... हैं

प्रश्न 2: तीन या चार पक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगाने वाली काव्य प्रवृत्ति के विषय में बताइए।

....

....

....

ख) 'प्रयोग' को दोहरा साधन किसने कहा है? इससे क्या अभिप्राय है।

....

....

....

ग) 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' में संकलित कवियों के नाम बताइए।

....

....

....

....

प्रश्न 3: सही और गलत लिखिए

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था।

ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं।

ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है।

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

ख) प्रयोगवादी कविता की अन्वेषण धर्मिता पर प्रकाश डालिए।

15.4 नई कविता की प्रवृतियाँ

हमने देखा है कि अनेक आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का विस्तार माना है किंतु उसके निकट आकलन के बाद यह तथ्य सही नहीं लगता। नई कविता के भीतर एक ओर हम प्रयोगवादी कविता की भाषिक और अन्तर्वस्तुपरक नवीनता के अतिरिक्त आग्रह का स्थगित होना लक्ष्य करते हैं तो दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता की वैचारिकी का अधिक सर्जनात्मक प्रतिफलन भी देखते हैं। 'नई कविता' का अभ्युदय 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। नन्दकिशोर नवल ने उल्लेख किया है कि- दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद अज्ञेय ने अपने एक रेडियो साक्षात्कार में सप्तकीय कविता के लिए 'नई कविता' नाम की प्रस्तावना की (बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य: संपा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

नई कविता की अन्तर्वस्तु के विषय में एक मान्यता यह भी मिलती है कि इसका मुख्य स्वर अस्तित्ववादी है अर्थात् व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नई कविता के भीतर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन लक्षित किया तथा इसकी कठोर आलोचना की। मुक्तिबोध की कविताओं पर भी उन्होंने अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव देखा है तथा उनमें समाजवादी दृष्टि की स्पष्ट और मजबूत पक्षधरता का अभाव माना। नई कविता के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लक्षित किया कि- 'हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों का हाल रोकांते जैसा है। ऊब, ऊबकाइ, अकेलापन, त्रास, भीड़ में अजनबीपन का अहसास होने की समस्या से परेशानी आदि-आदि लक्षण इनमें भी मिलते हैं। . . . . सार्त्र के नायक रोकांते को हर चीज थुलथुल, निर्जीव, लिजलिजी मालूम होती थी। हिन्दी के अस्तित्ववादी कवि आत्मवत् सर्वभूतेषु देखते हुए उसी प्रकार संसार और उसमें सजीव-निर्जीव पदार्थो का वर्णन करते हैं।' (डॉ. रामविलास शर्मा: 'नयी कविता और अस्तित्ववाद') . इस प्रकार रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी विचारधारा के केन्द्र से नई कविता के कवियों की व्यक्तिवादिता को चरम पर जाकर देखा और उनके खण्डित इतिहास बोध और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों की आलोचना की। यद्यपि अज्ञेय जैसे कवि पर अस्तित्ववाद के ऐसे विघटनकारी अर्थ प्रभावी नहीं थे। कार्ल यास्पर्स जैसे विचारकों का प्रभाव उन पर अधिक था और वे व्यक्तित्व की खण्डित स्थिति से ज्यादा आत्मपर्याप्त

सर्जनात्मक इकाई की बात करते थे और उसी अर्थ में उसकी सामाजिक भूमिका पर जोर देते थे। यह देखा गया कि मानव अस्तित्व को जानना-सहेजना नई कविता का केन्द्रीय आग्रह है। इस प्रकार 'अस्तित्ववाद' का इकहरे ढंग का प्रभाव' नई कविता' पर नहीं हैं किन्तु उसके भावबोध पर इसके प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। यहाँ से हम क्रमशः नई कविता की प्रवृत्तियों की पहचान करें। इस प्रकार नई कविता के भीतर दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ पाई गई। एक, जिसमें व्यक्तिनिष्ठता प्रधान थी। यहाँ अभिव्यक्त मनुष्य की अन्तःप्रक्रियायें और संघर्ष एक संक्रान्त जटिल समय के अनुभवों से प्रभावित थे। दूसरे काव्यधारा पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है। समाजोन्मुखता इस कविता के लिए जरूरी तत्व है। वस्तुतः कविता का यह प्रगतिशील स्वर है जो 'तारसप्तक' के बाहर तो मौजूद था ही 'तारसप्तक' में भी मौजूद था। यही नहीं बल्कि 'दूसरा सप्तक' के दौर में भी उससे बाहर के कवियों में ज्यादा सुसंगत ढंग से अभिव्यक्त हुआ। इस प्रकार इन दो अनुशासक प्रवृत्तियों के प्रभाव से 'नई कविता' में क्रमशः उभरने वाली विशेषताएं इस प्रकार थी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना - नई कविता में इस आशय में हमें कई प्रयोग मिलते हैं। कुछेक बारीक अंतरों के साथ यही आत्मान्वेषण या कि व्यक्तित्व की खोज भी है। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में भी इसी आशय की ध्वनि है। मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे यथार्थवाद विरोधी रचनादृष्टि की उपज माना है तथा रेखांकित किया है कि इसके भीतर व्यक्तिवादी रूझान काम कर रही थी। व्यक्ति केन्द्रिकता के ऐसे प्रभाव के कारण ही नई कविता की संवेदना में अनुभववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हुई। 'भोगा हुआ यथार्थ' जैसे प्रयोग भी इसी भावबोध के निकट के है। मैनेजर पाण्डेय ने नई कविता की इस प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा कि ''गैर यथार्थवादी लेखक समाजवाद के विरोधी, जनता की आकांक्षा की उपेक्षा करने वाले और व्यक्तिवाद के सहारे पूंजीवाद के पोषक सिद्ध होते हैं . . . साहित्य को आत्माभिव्यक्ति का पोषक मानते हुए व्यक्तित्व की खोज को ही अपनी रचना का लक्ष्य मानते हैं। (साहित्य और इतिहास दृष्टि- मैनेजर पाण्डेय.)

अज्ञेय के लिए 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' का अर्थ उसका संपृक्त सर्जनात्मकता में संभव होने का संघर्ष है। साही की चिन्तन भूमि में भी हम 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' के प्रश्न को 'लघुमानव' जैसे प्रत्यय से संवरते देखते हैं। उन्होंने भी इस व्यक्ति को युगसंकट के सापेक्ष देखा है। इस प्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना के अलग-अलग रूप नई कविता के कवियों में प्रतिफलित हुए। विशेष रूप से अस्तित्ववादी वैचारिकी के प्रभाव भी कवियों में भिन्न-भिन्न ढंग से घटित होते दिखाई देते हैं। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि कहीं यह अस्तित्वबोध संकट बोध के रूप में है, कहीं अस्मिता की खोज है तो कहीं अस्मिता के सर्जनात्मक संगठक तत्वों की तलाश का संघर्ष है।

अनुभूति की प्रामाणिकता - जैसा कि हमने देखा कि आत्मकेन्द्रिकता के सघन प्रभाव के कारण 'नई कविता' के कवियों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर विशेष बल दिया। आलोचकों

ने इसे ही लक्ष्य कर इस प्रकार की कविता को अनुभववादी कविता कहा है। मैनेजर पाण्डेय ने सन् 1951-52 से 60-61 के दौर में साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति वैयक्तिकता और आत्मनिष्ठता मानी यद्यपि इस दौर की कविता में यथार्थवादी प्रवृत्ति भी मौजूद थी। किन्तु वैयक्तिकतावादी प्रवृत्तियों के फैलाव ने उसे प्रमुखता से उभरने नहीं दिया। 'अनुभूति की प्रामाणिकता के तर्क से उभरते यथार्थबोध तथा संवेदना को समाजवादी आलोचकों ने खण्डित या विच्छन्न माना। अनुभूति की प्रामाणिकता ने जीवनानुभवों के सामने आत्मबोध का वह सांचा रख दिया जिसकी सीमाएं थी। यहाँ से कवि ने यह अनुभव किया कि संक्रान्त और जटिल समय का यथार्थ उसकी अस्मिता को खण्डित कर कुंठा निराशा इत्यादि की ओर ढकेल देता है।

नई कविता के प्रखर प्रवक्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'अनुभूति की प्रमाणिकता' को अनुभूति की ईमानदारी कहा है। उनके अनुसार यह व्यक्ति की स्वतंत्रता से सन्दर्भित सत्य का साक्षात्कार है। स्पष्ट है कि 'स्वविवेक' को वे कवि की सर्वोपरि शक्ति मानते हैं। जिसके द्वारा वह यथार्थ जगत से अपनी संवेदना, अर्थ और भाषा का चुनाव करता है। वस्तुतः 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में कवि की आत्मोन्मुखता ही सबसे ज्यादा ध्वनित है।

क्षणबोध - नई कविता के कवि के अनुसार यह क्षणबोध क्षणिकता का बोध नहीं है। वे यह भी उद्घाटित करते हैं कि इसे परम्परा या भविष्य से कटा हुआ निरपेक्ष या खण्डित समझना भी ठीक नहीं है। यह 'क्षण' कविता में 'सृजन' का क्षण है इसलिए रागात्मक और गरिमामय है। अज्ञेय ने इसकी 'अद्वितीयता' को बहुत महत्व दिया है। वस्तुतः सृजनात्मकता के कारण ही यह आलोकित और अद्वितीय हो उठता है। अन्यत्र अज्ञेय कहते हैं कि सृजनात्मकता की गरिमा से भरापूरा 'क्षण' मनुष्य को मुक्त करता है। इस प्रकार के क्षणबोध में वे भौतिक स्थूलता का तिरस्कार करते दिखाई देते हैं। अज्ञेय की इस कविता में ऐसे क्षणबोध का अर्थ इस प्रकार उद्घाटित हुआ है-

एक क्षण क्षण में प्रवहमान/व्याप्त सम्पूर्णता/इससे कदापि बड़ा नहीं था महा अम्बुधि /जो/पिया था अगस्त्य ने।/एक क्षण। होने का/अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण। (अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या: रामस्वरूप चतुर्वेदी में)।

यथार्थोन्मुखता - नई कविता के अस्तित्ववादी प्रभाव के अन्तर्गत काव्य रचना करने वाले कवियों ने यथार्थ को 'निजता' के केन्द्र से देखा है। उनके लिए यथार्थ 'संकटबोध' के रूप में उपस्थित होता है। वे जटिल और संक्रान्त परिवेश के दबाव से त्रस्त मनुष्य के अकेलेपन यातना और पीड़ा का साक्षात्कार तो करते हैं किन्तु एक ओर तो वे ऐसे यथार्थ को वस्तुगत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न देखकर इतिहास से विच्छिन्न रूप में देखते हैं तथा दूसरे वे मनुष्य को इसके प्रति संघर्ष में प्रायः नहीं देखते। हम देखते हैं कि ऐसे भयावह यथार्थ के समक्ष उनका मनुष्य अपना 'अकेलापन' चुन लेता है और इसके द्वारा विभाजित और संत्रस्त पड़ी अपनी अस्मिता के अनुभवों को कहता-सुनता है। धर्मवीर भारती विजयदेवनारायण साही जैसे कवियों के यहाँ प्रायः

ऐसे मनुष्य के अकेलेपन का साक्षात्कार मिलता है। लक्ष्मीकांत वर्मा के लिए नये कवि के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है। उस परिवेश का सामना करते हुए उसे अपने अस्तित्व को संभालना है। अतः हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति की निजता' की धुरी मान कर चले कवियों और आलोचकों ने अपने भावबोध में एक तरफ तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का पहलू महत्वपूर्ण माना है और परिवेश को ऐसे व्यक्ति से द्वन्द्व में देखा है, तो दूसरी ओर परिवेश से अलगाव के इर्द-गिर्द गहराते यथार्थ की समझ उन्हें ऐसे व्यक्ति के अकेलेपन का अनुभव देती है। अतः व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ यह अकेलापन लगभग एक नियति की तरह आ जुड़ता है। हम अन्यत्र देखेंगे कि व्यक्तिवादी रचना प्रवृत्तियों ने अपने आशय को लेकर चलने वाली रचनाओं को गहराई का काव्य कहा है और व्यापकता को अर्थात् मनुष्य की सामाजिक सम्बद्धता यानि व्यापकता को लेकर चली रचनाशीलता पर उथलेपन का आरोप भी लगाया है। यहाँ तक कि प्रेमचंद तक पर सतहीपन का आरोप लगाया है।

अब हमें नई कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के प्रतिरोधी पक्ष पर ध्यान देना चाहिए। मुख्य रूप से हमें मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं में व्यक्ति स्वातंत्र्य की सामाजिक सम्बद्धता और मनुष्य की मुक्ति के संघर्ष से जुड़ कर चली अर्थ छवियाँ दिखाई देती हैं। मुक्तिबोध नई कविता में कल्पनाप्रवण, भावुकतापूर्ण वायवीय आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थवादी व्यक्तिवाद की बगावत देखते हैं। (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध,) अतः मुक्तिबोध व्यक्ति की जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं उसमें यह देखा जा सकता है कि 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' (1950 में बर्लिन में उदित एक संगठन, जिसे शीतयुद्धीय राजनीति का सांस्कृतिक मूल्य निर्धारक माना जाता है) की प्रतिध्वनि नहीं है। इस तथ्य को ज्यादा अच्छी तरह से समझने के लिए हम चाहें तो एक रूपक का उपयोग कर सकते हैं। अस्तित्ववादी प्रभाव की आत्मकेन्द्रिकता की परवाह करने वाले कवियों के लिए मम और ममेतर के बीच का दरवाजा भीतर की ओर यानि 'मम' की ओर खुलता है, ममेतर में अवस्थित बहुत सारी चीजें सन्देहपूर्वक देखी जाती हैं जैसे वे 'मम' को निरर्थक या प्रदूषित कर देगी। मुक्तिबोध के लिए 'मम' की मुक्ति 'ममेतर' यानि समाज की मुक्ति से जुड़कर है। वे कहते भी हैं कि 'मुक्ति के रास्ते अकेले नहीं मिलते'। व्यक्ति स्वातंत्र्य को एक आदर्श मानते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- ''फिर भी वह मानव गौरव की आधारभूत शिक्षा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रश्न जनता के जीवन से उसकी मानवोचित आकांक्षाओं से सीधे-सीधे सम्बन्धित है किन्तु व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो समाज में ऐसी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति पैदा हो गई है जिसके कारण व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति केन्द्रिकता का ही दूसरा नाम रह गया है।'' (मुक्तिबोध रचनावली खण्ड-5)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिरोध से जोड़कर देखा है। यही नहीं बल्कि आधुनिकतावादी नई कविता के कवियों के क्षणबोध को भी चुनौती देते हुए वे लिखते हैं- ''केवल एक क्षण का उत्कर्ष करने के बजाय हमें लम्बी नजर फेंकनी होगी और वह सारा ताना

बाना अंकित करना होगा जिससे वह समस्या एक विशेष काल और परिस्थिति में विशेष रंग और रूप में विकसित ग्रन्थिल हुई है। यह सब कार्य तथाकथित सौन्दर्यानुभूति से बाहर का कार्य है।'' (मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष)

15.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप

नई कविता की संवेदना में भी हम यथार्थवादी और यथार्थवाद विरोधी दृष्टि का अन्तर देखते हैं। अज्ञेय की कविता में संवेदना के विन्यास का आधार मूलतः वे व्यक्तिवादी या व्यक्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ हैं जो यथार्थ को व्यक्ति के केन्द्र से देखती है और व्यक्ति की विशिष्ट निजता की बात करती है। कुछेक अन्तर के साथ व्यक्ति की विशिष्ट अस्मिता का बोध विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त आदि कवियों में है। यही नहीं बल्कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय पर उस दौर में अज्ञेय का घना प्रभाव था और वे उसी ढंग की कविताएं लिख रहे थे, यद्यपि बाद में वे उस प्रभाव से बाहर आए। हम इसे क्रमशः देखें कि नई कविता में संवेदना के स्तर पर इन प्रवृत्तियों का कैसा प्रतिफलन है तथा किस अर्थ में यह संवेदना अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न और नई है।

आधुनिक भाव बोध - नई कविता के कवियों ने सचेत रूप से अपनी पूर्ववर्ती कविता की संवेदना को आधुनिक जीवन बोध के समक्ष पिछड़ी हुई बताया। वे अपने समय के यथार्थ की चुनौतियों को देख रहे थे। यह 'यथार्थ' कविता में रूपायित होने के लिए दबाव बना रहा था। कविता की पूर्वपीढ़ी से नई कविता की संवेदना की भिन्नता को व्यक्त करने के लिए हम अज्ञेय की 'कलंगी बाजरे की' जैसी कविता को देख सकते हैं। मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को नई कविता की आत्मा कहा है वे लिखते हैं, ''विज्ञान के इस युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख तथा संवेदनशील होती है। वह यथार्थ सम्बन्धों को ग्रहण कर यथार्थबोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं करता है।'' (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,)

आधुनिक भावबोध के बारे में नई कविता के कवियों को हम अनेक बार यह कहते सुनते हैं कि यह संक्रान्त समय का बोध है। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से जुड़े कवि इसे भयानक मूल्य ध्वंस के रूप में अनुभव करते हैं। वे एक ऐसे देश काल का अनुभव करते हैं जिसमें आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं और आस्थाओं की चूलें हिला देने वाली पतनशीलता है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती 'मिथक' में जिस आधुनिक बोध को रूपायित कर प्रस्तुत करते हैं, वह यही है। नई कविता के इन कवियों के सामने आत्यंतिक रूप से विसंगत अनुभव थे। मूल्यविचलन के सन्दर्भो ने उन्हें 'विडम्बनाबोध' दिये। इस प्रकार आधुनिक भावबोध एक प्रकार से उनके लिए 'संकटबोध' के रूप में प्रस्तुत हुआ। अब हम इसके परिप्रेक्ष्य को देखे तो पायेंगे कि यह भारत की आजादी के बाद का समय है। एक तरफ आर्थिक विकास की पूंजीवादी प्रणालियाँ जारी हो रही थीं और इसके चलते शहरों, महानगरों की वे संरचनाएँ

उभर रही थीं जिनमें नये सामाजिक सम्बन्ध थे। पूंजीवादी प्रभाव के कारण सामाजिक विच्छिन्नता का समाज उभर रहा था। संवेदनशील मनुष्य पर सबसे बड़ी चोट यह थी कि उसके सामने एक परायेपन से भरी दुनिया थी। मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्धों को जटिल बनाने वाली वर्ग स्थितियाँ चतुर्दिक थीं। कई बार कवि ने इस परिदृश्य से निजी पराजय या निष्फलता को अनुभव किया और उसमें अपने समय के मनुष्य की निष्फलता को व्यंजित करना चाहा। नई कविता में अभिव्यक्त रिक्तता, व्यर्थताबोध या परायापन की भूमिका यही है। इस परिदृश्य को समझकर रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''समाज और व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक गहरे अभावों से गुजरा था किन्तु सामाजिक सम्बन्धों की ऐसी विच्छिन्नता, व्यक्तिमन में ऐसी अकुलाहट और मूल्यों के प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही कभी आई थी। . . . . वास्तव में यांत्रिक सभ्यता पूरे विश्व को प्रभावित कर रही है, किन्तु वह देशगत परिस्थितियों से कटी हुई कोई सिद्ध सत्ता नही है। . . . . . हम अपने अनुभवों से यह पा रहे हैं कि इस नवस्वतंत्र देश की यात्रा भटक गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में उभरने वाली स्थितियाँ भविष्य की कुछ सम्भावनाएँ लिए हुए थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मोहभंग होता गया। जिस सामाजिकता और मूल्य का हम सपना देखते आये थे वह कभी उभरा ही नहीं और रहे-सहे मूल्य भी बुरी तरह टूटते गए।'' (आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि: रामदरश मिश्र) रामदरश मिश्र ने अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों के अधीन होकर देखे जाते हुए इस विसंगत यथार्थबोध की आलोचना भी की है। उन्होंने माना है कि यह व्यापक यथार्थबोध नहीं है बल्कि वैयक्तिक बोध के रूप में देखा गया विच्छिन्न यथार्थ है। यही हम मुक्तिबोध को देखें। वे आधुनिक भाव बोध के लिए सच्चे आधुनिक भावबोध जैसे वाक्य का प्रयोग करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ यथार्थ को उसकी समग्रता में जानना है और समग्रता को वे इस 'यथार्थ के परस्पर अन्तःसम्बन्धों को उसकी गहराई समेत' मानते हैं (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध)। जीवन का वैविध्य इस प्रकार प्रस्तुत हो कि उससे हम कोई निष्कर्ष निकाल सकें। (वही)

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को उसमें निहित अग्रगामी गतिशीलता के अर्थ में देखा है।

मध्यवर्गीय जीवनानुभवों की प्रधानता - नई कविता के केन्द्र में मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव हैं। देखा जाए तो प्रायः ये शहरी या कस्बाई जीवन के अनुभव हैं। शहरी जीवन प्रायः मानवीय सामूहिकता का जीवन नहीं होता। पूंजी का चरित्र व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देना है। इस कारण मनुष्य में सामाजिक सम्बन्धों में स्वार्थ या आत्मकेन्द्रिकता के कारण जड़ता यथास्थितिवादिता ही नहीं कभी-कभी प्रतिगामिता भी आ जाती है। नई कविता मध्य वर्ग की कविता है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष में मध्यवर्ग की एक प्रगतिशील भूमिका भी थी। जिसके अन्तर्गत आजादी के अर्थ में साम्राज्यवाद सामंतवाद से मुक्ति का अभिप्राय भी शामिल था। मध्यवर्गीय युवाओं ने गहरी छटपटाहट के साथ इस आजादी से अपनी उम्मीदों को भंग होता अनुभव किया। इस तथ्य को हम यदि वस्तुपरक ढंग से देखेंगे तो पायेंगे कि वे व्यापक जीवन में

क्रान्तिकारी बदलाव के लिए जरूरी संघर्ष से कटे हुए व्यक्तियों का मोहभंग था जिनकी इस प्रकार की उम्मीदों में वैयक्तिक आकांक्षाओं में पूरा होने का भाव प्रबल था। कई बार तो इस प्रकार की वैयक्तिक रूझानों वाले कवियों ने निष्फलता या मोहभंग को व्यक्तिवाद के लगभग अतिरेकी छोर पर जाकर देखा और व्यक्त किया, इस सन्दर्भ में यह उद्धरण देखें- 'ओ मेरे अफसर/तुम्हारी एक लाइन ने/मेरे जीवन की कविता को निरर्थक कर दिया/बीच ज़िन्दगी में मैं एकाएक/विधवा हो गया' (तीसरा सप्तक, संपा- अज्ञेय)

हम देख सकते हैं कि इस कविता में आत्मग्रस्तता का ही एक रूप व्यंजित है। नई कविता की प्रवृत्तियों को समझने के क्रम में हमने देखा कि अनुभूति की प्रामाणिकता का आग्रह उसके लिए नियामक तत्त्व की तरह हैं। इस प्रकार स्वाभाविक रूप से कविता निजी अनुभवों पर निर्भर हो जाती है। दूसरी ओर नई कविता के अधिकांश कवि मध्यवर्ग के है। अतः उनकी कविता में मध्यवर्गीय अनुभव प्रमुखता से अभिव्यक्त होते हैं। अन्यत्र हमने जिस विडम्बनाबोध की अभिव्यक्ति नई कविता में लक्षित है उसके मूल में भी अधिकांशतः ये मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव ही हैं।

इस प्रकार नई कविता के भीतर व्यक्ति केन्द्रिकता के इस छोर से यथार्थ की वे जटिलताएं प्रकट हुई जिनमें कवि की अपनी टकराहट, संघर्ष और संकट के अनुभव थे। अपनी प्रतिभा के द्वारा कवि ने इन्हें युग संकट के रूप में स्फीत करके प्रस्तुत किया। जिसे यहाँ लघुमानव का बोध कहा गया वस्तुतः वह वैयक्तिक अनुभवों का वह रूप था जिसमें समाज और सामाजिकता के घटित को मिलाकर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई थी। गिरिजा कुमार माथुर की इस कविता में देखें- **हम सब बौने हैं/मन से मस्तिष्क से भी/भावना से, चेतना से भी/बुद्धि से, विवेक से भी/क्योंकि हम जन हैं, साधारण हैं/हम नहीं हैं विशिष्ट/क्योंकि हर ज़माना हमें चाहता है/बौने रहें।//हमको हमेशा ही/घायल भी रहना/सिपाही भी रहना है/दैत्यों के काम निभा/ बौने ही रहना है** (जो बंध नहीं सका, गिरिजा कुमार माथुर)

यह परिवेश की जटिलता के दबाव में आये मनुष्य का अनुभव है। यहाँ जीवन एक संकटबोध के रूप में उपस्थित है। हमें नई कविता में सक्रिय यथार्थवादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के अन्तर को भी समझते हुए चलना है इसलिए हम यह अवश्य देखें कि मुक्तिबोध के यहाँ मध्यवर्गीय मनुष्य का रास्ता संघर्ष का है। वह स्वयं को जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति के लक्ष्य से संयुक्त करता है और इसके लिए अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से संघर्ष करता है। शमशेर ने भी भावबोध और सौन्दर्यबोध को व्यापक जनता के जीवन से जुड़कर अर्जित करने का संघर्ष किया है। यह प्रगतिशील कविता का स्वर है। अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन वैसे अवरूद्ध या यथास्थितिवादी रूपों में नहीं है न ही मध्यवर्ग की दिशाहारा होने की नियति को वे अन्तिम मानते हैं। उनके यहाँ भी मनुष्य की सामाजिक सोद्देश्यता का संघर्ष है किन्तु उसकी दिशायें अन्तर्मुखी हैं।

नगरीय बोध का प्रतिफलन - नई कविता के संवेदनशील कवियों ने शहर को एक अमानुषिक तत्व के रूप में अनुभव किया है। उद्योग, प्रौद्योगिकी, मशीनें, कारखानें, सड़कें, अट्टालिकाएं जिस सुविधाजनक रिहाइशी स्थल का स्वरूप पैदा करती है। उसमें मनुष्यों के मानवीय गुण नष्ट कर देने की स्थितियाँ हैं। अज्ञेय ने भी इसे प्रविधि के अन्तर्गत देखते हुए प्रकृति को इसके विरुद्ध रखना चाहा है। वे मनुष्य की मानवीय स्वाभाविकता की रक्षा चाहते हैं। प्रविधि से उभरते विकास ने मानवीय मूल्यों का क्षरण किया है। नई कविता के कई कवियों को हम प्रकृति, गांव, पहाड़ आदि के प्रति गहरे मोह में पड़ा हुआ देख सकते हैं। छायावाद के प्रकृति प्रेम की प्रवृत्ति से अलग नई कविता में कवि इसे अपने समय की बड़ी चुनौती के रूप में लेते हुए दिखाई देते हैं। उनका कहना है कि पूंजी प्रौद्योगिकी के ऐसे विकास के सम्मुख आधुनिक मनुष्य पलायन का रास्ता चुन कर किसी नीरव एकांत को नहीं चुन सकता। उसे इनके बीच में रह कर मानवीय सम्बन्धों मूल्यों हार्दिकताओं को बचाने का संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए वह शहर केन्द्रित संस्कृति के क्षरण के प्रति आलोचनात्मक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की इस कविता में आये प्रश्न में हम इस आलोचना की ध्वनि सुन सकते हैं। यही कहीं एक कच्ची सड़क थी/जो मेरे गांव को जाती थी/अब वह कहाँ गयी?/किसने कहा उसे पक्की सड़क में बदल दो/उसकी छाती बेलौस कर दो/स्याह कर दो यह नैसर्गिक छटा/विदेशी तारकोल से (बांस का पुल- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,)

बौद्धिकता - नई कविता के आलोचकों ने रूमानियत के विरोध को नई कविता की प्रवृत्ति माना है। इस सन्दर्भ में हम देखते हैं कि नई कविता की रूमानियत छायावादी कविता से भिन्न अवश्य है किन्तु यह पूरी तरह से रूमानियत या भाववादिता से मुक्त नहीं है। रामविलास शर्मा ने तो इससे प्रतिफलित नई रूमानियत को समझते हुए इसे छायावादोत्तर छायावादी कविता कहा है। वस्तुतः नई कविता संवेदना की बौद्धिक बुनावट की कविता है। नई कविता का कवि 'मोहभंग' आदि स्थितियों को कविता में रूपायित करने के लिए बौद्धिकता का आश्रय लेता है। कई बार हम देखते हैं कि इस बौद्धिकता का सम्बन्ध उसकी यथार्थवादी दृष्टि से न होकर भाववादिता से ही है। विशेष रूप से अपने कहने के ढंग को बौद्धिकता के द्वारा वह नया तेवर देता दिखाई देता है। बौद्धिकता कई बार उसकी रचनात्मक मदद करती हुई भी दिखाई देती है। अनुभवों की सघनता, रचनात्मक तनाव या विडम्बना को वह इसके द्वारा नये रूप में निर्मित कर पाता है और भाषा की प्रचलित रूढ़ियों को तोड़कर अनुभव के नये क्षेत्रों में प्रवेश करता दिखाई देता है। जहाँ कहीं इस बौद्धिकता के साथ यथार्थवादी दृष्टि का संयोग होता है कविता ज्यादा अर्थ समृद्ध होती दिखाई देती है किन्तु ऐसा न होने पर वह शाब्दिक चमत्कार होकर रह जाती है।

रागात्मकता - नई कविता ने जिस मनुष्य को परिभाषित किया है उसे मनुष्य के उस मानवीय गुणों को आधार देने वाले रागात्मक संसार की आकांक्षा है। यह अलग प्रश्न है कि कुछ कवियों को इस आकांक्षा के असंभव होने का बोध हुआ है। तो कुछ कवियों को लगा है कि ऐसे रागात्मक मानवीय संसार की रचना के लिए संघर्ष का दायित्व भी मनुष्य का है और कविता को

ऐसे संघर्ष के साथ होना चाहिए। नई कविता के रागात्मक क्षेत्र मानवीय सम्बन्ध हैं, प्रेम और प्रकृति है, और रूढ़ियों दुहरावों से मुक्त होती हुई काव्य भाषा है। अज्ञेय के यहाँ सत्य या यथार्थ 'रागदीप्त' होकर सार्थक होता है। नई कविता के कवियों की आधुनिकता 'रागात्मकता' को भी बौद्धिक संस्पर्श के साथ नया करती है। अज्ञेय का मानना है कि विघटनकारी परिस्थितियों में भी मानवीय अस्मिता को उसकी आंतरिक रागानुभूति ही सुरक्षित रख सकती है। इस प्रकार 'रागात्मकता' का नया अन्तर्गठन नई कविता के लिए जरूरी हो उठता है। यह रागात्मकता अपने समय की बौद्धिक उपलब्धियों से यथा विज्ञान, दर्शन, राजनीति, समाज चिन्तन आदि से निरपेक्ष नहीं है। युगबोध को निर्मित करने वाली इन सरणियों को भी उसे पहचान कर चलना है। साथ ही आदर्शवादी रूमानियत से अलग यथार्थवादी सरोकारों के साथ कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प को निर्मित करने की चुनौती भी है। इस नई रागात्मकता की छवियाँ अनेक हैं। इसे विजयदेव नारायण साही की इस कविता में देखें- मृत्यु के सुनसान दर्पण में प्रतिबिम्बित/केवल यह फुफकारता हुआ/अग्निकमल बच रहता है/यही परम्परा है, यही क्रान्ति है/यही जिजीविषा है/यही आयु है यही नैरन्तर्य है। (समकालीन काव्य यात्रा: नन्द किशोर नवल)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने क्रान्तिकारी जनसंघर्षों में जुटे जन को गहरी आत्मीयता और प्यार से सम्बोधित किया। रागात्मकता के ये रूप नई कविता में कई बार कविता में सहज ही पहचाने जा सकें ऐसे सरल रूपों में नहीं हैं। अपनी पक्षधर काव्यचेतना के स्वभाव के अनुरूप कवियों ने इसे कविता की अन्तर्रचना में शामिल किया है।

प्रकृति - नई कविता के कवि अज्ञेय के आरम्भिक काव्य में हम छायावादी कवियों जैसा प्रकृति का सम्मोहन भी देख सकते हैं। आधुनिक भावबोध के साथ बदलती हुई उनकी चेतना प्रयोगवादी कविता के दौर में प्रकृति का इस प्रकार तिरस्कार करती है कि जैसे ऐसा करते हुए वह कहीं न कहीं छिछली ढंग की भावुकता रूढ़िवाद या प्रतीकों के रूढ़ प्रचलित रूपों से मुक्त हो सकती है। इस सन्दर्भ में हम उनकी 'शिशिर की राकानिशा' जैसी कविता को देखें जिसमें वे चांदनी को वंचना कहते हैं। एक अन्य कवि की कविता में चांदनी को खोटे सिक्के की तरह कहा गया है, जिसमें चमक है पर खनक गायब है। इस प्रकार यहाँ पूर्व प्रतिमानों को ही नहीं पूर्व भावबोध को भी छोड़ा जा रहा था। नई कविता तक आते-आते कवि ने प्रकृति को अपनी मुक्त आकांक्षा चिंतन और संघर्ष से जोड़ा। अन्तर्वस्तु के क्षेत्र में अब उसकी मनोरमता मात्र नहीं थी बल्कि उसका वह चेतन विकसित रूप था जो मनुष्य की चेतना को तमाम जटिलताओं के बावजूद संघर्ष में बने रहने की शक्ति दे रहा था। प्रकृति के स्वायत्त अनदेखे रूप भी कविताओं में आये, विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में प्रकृति मानवीय स्निग्धता धारण करती दिखाई देती है। देखा जाए तो जिस नगरीकरण, बढ़ती यांत्रिकता, असामंजस्य और विषमता के अनुभव कवि के यथार्थबोध का अंग बने उन्हें स्वभावतः प्रकृति के लिए कोई जगह नहीं छोड़नी थी किन्तु अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता मे ही नहीं रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती में भी प्रकृति से जुड़े बोध ने अपने नयेपन के साथ प्रवेश किया। इन कविताओं में प्रकृति

छायावादी प्रकृति से बहुत भिन्न रूपों में है भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में इसे देखें- **बूंद टपकी एक नभ से/ये कि जैसे आँख मिलते ही/झरोखा बंद हो ले और नुपुर ध्वनि, झमक कर/जिस तरह द्रुत छंद हो ले/उस तरह बादल सिमट कर/चंद्र पर छाये अचानक/और पानी के हजारों बूंद/तब आये अचानक** (दूसरा सप्तक)

भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता में नई आँख से देखी जाती हुई वर्षा है। कई बार नगर की संक्रान्त अमानुषिक स्थितियों के बरक्स प्रकृति को रखकर कवि ने अपने संवेदनात्मक जुड़ावों को व्यक्त किया है। इस छोर से उसकी संवेदना का विस्तार होता है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'नदी का द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह .... है।

ख) नई कविता में कवि के अनुसार यह क्षणबोध .... का बोध नहीं है।

ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ................... है।

प्रश्न 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

ख) नई कविता की संवेदना की विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न 3: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नगरीय जीवन बोध से क्या तात्पर्य है?

....
.

....
.

ख) 'क्षणबोध' से क्या अभिप्राय है?

....
.

....
.

ग) 'अस्तित्ववाद' का प्रभाव नई कविता के किन कवियों पर है।

....
.

....
.

15.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट्य

नई कविता की भाषा के सामने नये यथार्थ बोध को अभिव्यक्त करने की चुनौतियाँ थीं। भाषा के सामने एक बड़ा प्रश्न संप्रेषणीयता का होता है। प्रयोगवादी कविता के दौर में अज्ञेय ने भाषा के दुहरे दायित्व की बात कही है। हमने देखा है कि नई भाषा के समक्ष अपनी पूर्वरूढ़ भाषा के प्रभावों से मुक्त होने का संघर्ष तो होता ही है साथ ही पाठकों की अवरूद्ध हुई स्वाद प्रक्रिया को भी बदलने का प्रश्न होता है। नई होती हुई रचनात्मक विधाओं ने नएपन के ऐसे प्रत्येक मोड़ पर इन समस्याओं का सामना किया है। 'हरी घास पर क्षणभर' शीर्षक अपने काव्य संग्रह की 'कलंगी बाजरे की' शीर्षक कविता में अज्ञेय काफी हद तक नई रचनात्मक भाषा की समस्या से टकराते दिखाई देते हैं। एक साथ यह नये अछूते ताजे शब्द पाने की समस्या है, साथ ही नई अन्तर्वस्तु को समग्रता में कहने की समस्या है और अनुभावन की समस्या तो है ही। इसके अतिरिक्त जटिल संक्रान्त स्थितियों के उन दबावों को समझने की समस्या भी है जिनका प्रभाव मनुष्य के संवेदन तंत्र पर पड़ रहा है तथा जिसके कारण प्रचलित रूढ़ चीजों में नये सत्य के बोध और अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रह गयी है। यह इसी प्रकार हुआ है कि जैसे- 'कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है' (कलंगी बाजरे की, अज्ञेय)।

नई कविता की भाषा - नई कविता के कवियों ने अपने अनुभवों के अनुरूप नई भाषा को अर्जित करने का संघर्ष किया है। भाषा की तलाश में वे जीवन के वृहत्तर क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

तद्भव शब्दों की शक्ति - नई कविता की दृष्टि भाषा की पुनर्रचना पर है। यह एक प्रकार की नवोन्मेषी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कविता के संसार में व्यापक अछोर जीवन के तद्भव शब्द अपनी स्मृति और साहचर्य के साथ दाखिल होते हैं इस प्रकार के शब्द सुसंस्कृति का अंग

बनकर स्थापित हुए शब्दों के अगल-बगल आकर बैठ जाते हैं और अपने नयेपन से उन शब्दों को भी नया आलोक प्रदान करते हैं। यहाँ हम इन दो उद्धरणों को देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे/भोर का नभ/शंख से लीपा हुआ चौका/अभी गीला पड़ा है. (कवितांतर: संपा. जगदीश गुप्त)

ये शमशेर की कविता की पंक्तियाँ हैं जो नये बिंब की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु यहाँ हम 'लीपा' क्रिया को विशेष रूप से देखें। यह लोक जीवन से सीधे ले ली गई है और यहाँ अपनी गहरी अर्थवत्ता के साथ दिखाई देती है। इसी तरह अज्ञेय की इस कविता को देखें जो जापानी 'हाइकू' छंद में है।

खेत में एक डरोने पर/बैठा है डरा हुआ कौआ/पूस की हवा कटखनी सी बहती है (अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय)

ठण्डी हवा के स्वभाव के लिए 'कटखनी' विशेषता लोक में पर्याप्त प्रचलित है। तद्भवों के ऐसे प्रयोग की प्रवृत्ति नई कविता के कवियों में खूब दिखाई देती है। नई कविता के प्रत्येक कवि के समक्ष यह बात लगभग प्रधानता में निश्चित है कि नये भावबोध के हिसाब से नई काव्यभाषा को रूप देना है। तद्भव शब्दों के सहारे कवि की भाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है और अभिव्यक्ति को अपेक्षित सृजनात्मकता प्राप्त होती है। इन शब्दों की निकटता से 'तत्सम' शब्दों में आ गई जड़तायें टूट जाती हैं तथा उनका ओज बढ़ जाता है। इस प्रकार तद्भव शब्द तत्सम के रूढ़ आभिजात्य मूलक प्रभाव को भी मांजकर सहज बना देते हैं। अज्ञेय की कविताओं में तद्भव शब्दों की अर्थ क्षमता सबसे ज्यादा दिखाई देती है, जबकि विजयदेव नारायण साही और कुँअर नारायण में यह सबसे कम है। भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इसकी ताजगी का अनूठा रंग भरपूर है। रघुवीर सहाय की इस कविता में देखिए: अपनी कथा की व्यथा का अथाह शून्य / मेरे छटंकी भर दुख से लिया करो /तो क्या करोगे कम वह जो दरद है / हाँ थकन हमारी कभी-कभी हर लिया करो।'

इस प्रकार तद्भव के प्रभाव से हम नई कविता के वाक्य रचना में आए नयेपन को भी देख सकते हैं। तद्भव से निर्मित कुछ क्रियाओं को अज्ञेय की कविता में देखें।

1. तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज/चांपे इस निर्झर को रहो, रहो (कवितांतर: संपा. जगदीशगुप्त,)

2. क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

3. हम आ जाते हैं अभी लौट कर छिन में (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

मुक्त छंद - नई कविता छंद से मुक्त है किन्तु वाक्यों की गद्य में 'लय' का नया प्रयोग इसे कविता की विधा में बनाए रखता है। इसे हम गद्य में अन्तर्लय का विधान भी कह सकते हैं। गद्य की सहजता और गति को कवि इसी अन्तर्लय के द्वारा रचनात्मकता प्रदान करता है। रघुवीर सहाय जैसे कवि ने तो 'सपाट बयानी' में भी कविता को संभव किया है। इस विधान से कविता में उभरते रचनात्मक तनाव को हम सबसे ज्यादा मुक्तिबोध की कविता में प्रतिफलित होते देखते हैं। इस प्रकार की भाषा अल्पविराम, बिन्दु, डैश, कोष्ठक आदि का भी सृजनात्मक उपयोग करती देखी जा सकती है। नई कविता के सन्दर्भ में खड़ी बोली के गद्य को अधिक तीक्ष्णता, बौद्धिकता और गहरी परिपक्व गत्यात्मकता के द्वारा संवरते देखते हैं। अपने समय के कठिन यथार्थ को कविता की रचनात्मकता में बदलता हुआ नई कविता का कवि एक सक्षम भाषा का निर्माण करता दिखाई देता है।

शब्द संसार - नई कविता की भाषा की शब्दान्वेषिणी प्रवृत्ति को समझने के लिए हम उसके विकसित, व्यापक शब्द संसार को देख सकते हैं। हमें यहाँ बिना किसी दुराव के तद्भव देशज ग्रामज शब्दों के साथ अंग्रेजी और उर्दू भाषा के शब्दों का भी व्यवहार मिल जाएगा।

बिंब विधान - नये बिंबों की दृष्टि से नई कविता अत्यधिक समृद्ध है। इन बिम्बों के द्वारा साकार होता हुआ क्रिया व्यापार या रचनानुभव लगभग अछूता होता है। इनमें आधुनिक संवेदना को संवेद्य बनाने की क्षमता है। वस्तुतः नई कविता के कवि के सामने भाषा की इसी प्रकार की चुनौतियों का क्षेत्र है। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों की काव्य भाषा में नये बिम्बों के प्रयोग से सशक्त होती अर्थछवियों को हम देख सकते हैं। केदारनाथ सिंह को बिंब इतने प्रिय हैं कि उन्हें बिंबों का कवि कहा गया है। इन बिम्बों के कुछ उदाहरण देखें-

जिसकी सुधि आते ही पड़ती

ऐसी ठंडक इन प्राणों में

ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है

मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में' (धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर)

श्री माथुर के कविता संग्रह का 'घूप के धान' जैसा शीर्षक ही नये बिम्ब को सूचित करता है। ध्यान देने की बात है कि ये बिम्ब अपनी सहज भाषा की रवानी के कारण छायावादी बिम्बों से अलग है। इन बिम्बों की ऐन्द्रिकता भी उल्लेखनीय है। कठिन जीवनानुभवों से जुड़कर इनकी संश्लिष्टता निखर जाती है। जहाँ कहीं वे छायावादी कविता में प्रचलित उपमाओं को स्पर्श करते हैं। वहाँ भी अपनी संवेदना का अछूतापन रचने का संघर्ष भी करते हैं। इसे हम उपर्युक्त उद्धरण में तो देख सकते हैं, इसके अलावा भी हमें चांदनी, ओस, दीपक, सांझ, सवेरा, नदी,

भोर, आदि का बिम्बों में भरपूर उपयोग दिखाई देता है किन्तु कवि का ध्यान नई अर्थ छवियों के प्रति एकाग्र दिखाई देता है। प्रतीकों की दृष्टि से मुक्तिबोध के सौन्दर्यबोध का उल्लेख करना आवश्यक है। वे कविता की सर्वाधिक नई अर्थ संभावनाओं के अन्वेषक कवि हैं। मुक्तिबोध मराठी भाषी थे। सम्भवतः इसलिए संस्कृत भाषा पर उनकी निर्भरता अधिक थी। इसके अतिरिक्त वे प्रगतिशील चेतना के कवि थे। उनका रचनात्मक संघर्ष भाषा को मनुष्य की आर्थिक-सामजिक मुक्ति के संघर्ष से जोड़ने का था। हम देखते हैं कि उन्होंने अनेक प्रचलित बिम्बों और प्रतीकों को अपनी रचना के प्रगतिशील अर्थ से नया किया है। उनके कविता संग्रह के शीर्षक ने ही रोमेंटिक मिजाज़ वालों को पर्याप्त चौंकाया था। यह शीर्षक है ‘चांद का मुंह ढेढ़ा’ है। अनेक सुन्दरियों के सौन्दर्य के लिए प्रचलित यह ‘चाँद’ टेढ़े मुंह का हो गया। मुक्तिबोध ने इस प्रयोग के द्वारा पूंजीवादी प्रवृत्तियों में धंसे रोमान को यथार्थवादी ढंग से उद्घाटित करना चाहा। यहाँ वे नया सौन्दर्य शास्त्र निर्मित करते दिखाईं देते हैं। उनका सौन्दर्यबोध पूंजीवादी सामंती पतनशील प्रवृत्तियों की आलोचना करता है। इस प्रकार ‘ब्रह्मराक्षस’ ‘अंधेरे में’ ‘लकड़ी का रावण’ आदि सभी उनके नये प्रतीक हैं, दूसरी तरफ अज्ञेय के यहाँ भी ‘कलंगी बाजरे की’ सांप’ ‘नदी के द्वीप’ ‘दीप/अकेला’, ‘चक्रान्त शिला’ ‘असाध्य वीणा’ आदि सब नये प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रतीक वह योजना है जो मूल संवेद्य को सादृश्य आदि के आधार पर पुनर्नियोजित करती है। सांकेतिकता इसका प्रधान गुण है। नई कविता ने प्रतीकों का प्रयोग कर भाषा में अर्थ सामर्थ्य को गहराई से भरा और कलात्मक बनाया है। उनके सामने जटिल संक्रान्त यथार्थ है इसलिए ‘चांद’ का मुंह यहाँ आकर ढेढ़ा हो जाता है, मछली ‘हाँफती हुई मछली’ में बदल जाती है, जूते का कील, खाली गुलदस्ते सा सूर्योदय, बांस का पुल, अग्निकमल, आदि कितने ही नये-पुराने प्रतीक नये अर्थ की रचना में जुटे दिखाई देते हैं

नये मिथ - धर्मवीर भारती, कुँअर नारायण, नरेश मेहता, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि कवियों ने इतिहास पुराण के मिथकीय सन्दर्भों का समकालीन अर्थवत्ता के साथ पुनराविष्कार किया है। कुँअर नारायण ने ‘आत्मजयी’ में कठोपनिषद् के एक आख्यान में आई प्रश्नाकुलता को नये अर्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध की कविता ‘ब्रह्मराक्षस’ का अर्थ वह बुद्धिजीवी है जिसने अपने ज्ञान का सामाजिक उपयोग नहीं किया है और व्यक्तिवादी किस्म का आत्मसम्मोही जीवन बिताया है, इसलिए वह अभिशप्त ब्रह्मराक्षस हैं। नरेश मेहता की लम्बी कविता ‘संशय की एक रात’ में हम ‘राम’ का समकालीन मनुष्य की संशयग्रस्तता के अर्थ से जुड़कर पुनरावतार लक्ष्य कर सकते हैं। राम उस आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अन्तर्द्वन्द्व की जटिलता से गुजर रहा है। अज्ञेय की कविता ‘इतिहास की हवा’ में महाभारत युग का प्रसंग है। धर्मवीर भारती का ‘अंधायुग’, ‘कनुप्रिया’ आदि काव्यकृतियाँ मिथक को आधुनिक युगबोध के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करती हैं, इस प्रकार नई कविता मिथकीय आख्यानों का नया प्रयोग करती है।

फैंटेसी - फैंटेसी का सबसे अधिक उपयोग मुक्तिबोध ने किया है। 'असाध्यवीणा' में वीणा बज कर फैंटेसी का ही सृष्टि करती है। फैन्टेसी वस्तुतः एक भाववादी संरचना है, जो यथार्थ की तार्किक सुसंगति को तोड़ती है किन्तु नई कविता के कवियों ने अपनी यथार्थवादी रचना दृष्टि की शक्ति के रूप में इसका सृजनात्मक उपयोग किया है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में फैंन्टेसी की गढ़न से एक नाटकीयता उभरती है जो कविता के प्रभाव को सघन बनाती है।

नये उपमान - नई कविता के कवि ने असंख्य नये उपमान गढ़े हैं। यही नहीं बल्कि भाषा को नया करते हुए वे पुराने उपमानों को भी नये अर्थ में बदल देते हैं। इस प्रकार यहाँ भाषा को वह नया संस्कार मिलता है जो इन कवियों को अभीष्ट है। सुलगती अंगीठी, सिगरेट का धुआँ, चाय की पत्तियों, चाय की प्याली, मेज कुर्सी, चटाई, राख, धूल, दीवारें, खुले मैदान, कमरे, फाइलें, जूते, लाठी जैसे कितने ही उपमान इस कविता संसार में दाखिल होते दिखाई देते हैं।

नया अप्रस्तुत विधान - अप्रस्तुत विधान के कई नए रूप अपनी सृजनात्मकता के साथ नई कविता में मिलते हैं, मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, रूपक के रूपमें अप्रस्तुत विधान, मानवीकरण आदि के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान इसके अन्तर्गत मिलते हैं। नए प्रतीक, बिंब, रूपक आदि इस विधान की रचना में संलग्न दिखते हैं, एक उदाहरण देखें-

आवारा मछुओं सी शोहदों सी चांदनी/लहरें घायल सांपों सी, मणि खोये सांप सा समय (कवितांतर, संपा.: जगदीश गुप्त)

15.7 नई कविता के कवि

सप्तक श्रृंखला में जो कविता के दौर में भी रचनाशील रहे तथा साठोत्तर दौर की रचनाशीलता में भी जिनकी रचनात्मक सक्रियता कुछेक बदलावों के साथ कायम रही है उनमें से अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुअँर नारायण, केदारनाथ सिंह का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, गिरजाकुमार माथुर आदि कवि नई कविता के कवि हैं। नई कविता के सन्दर्भ में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन महत्वपूर्ण कवि हैं। प्रयोगवाद के साथ-साथ नई कविता के भी पुरस्कर्ता कवि के रूप में आपका नाम लिया जाता है।

15.7.1 अज्ञेय

अज्ञेय ने आधुनिक संवेदना और कविता के सृजनात्मक सार्थक सम्बन्ध की चिंता की है। नई कविता को नये सौन्दर्यबोध, पारिभाषिक और आधुनिक चिंतन के सन्दर्भ में वे सबसे ज्यादा रेखांकित करते हैं और उसके पक्ष में धारणाएं और विमर्श रचते हुए दिखाई देते हैं। उस दौर में नई कविता पर हुए आक्रमणों ने सबसे ज्यादा अज्ञेय को ही लक्ष्य किया और उन्होंने

उसके सुचिंतित उत्तर देने का प्रयत्न भी किया। अज्ञेय चिंतक कवि हैं। विशिष्ट प्रकार की बौद्धिकता उनका स्वभाव है। पारिवारिक परिवेश शिक्षा और जीवन संघर्ष ने उन्हें आधुनिकता के चिन्तनपूर्ण सृजनात्मक रूप से जोड़ कर विकसित किया है। उनकी काव्य संवेदना का आधार एक सुसंकृत ढंग का आभिजात्य है। सरल ढंग की जनोन्मुखता के पक्षधर कवियों और समीक्षकों ने उनके आभिजात्य पर बड़ा प्रहार किया है।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरीघास पर क्षणभर', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, 'बावरा अहेरी,' 'अरीओ करुणा प्रभामय, 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ ', 'महावृक्ष के नीचे', 'ऐसा कोई घर आपने देखा है'। 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' उनकी संपादित कृतियाँ हैं। शेखर:एक जीवनी के दो खण्ड, 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं तथा 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उन्होंने नाटक भी लिखा है। अज्ञेय की गद्य कृतियाँ भी अनेक हैं जिनमें कहीं संस्मरण है, यात्रा वृतान्त है अथवा साहित्यिक चिन्तन है। कुछ प्रमुख गद्यकृतियाँ इस प्रकार हैं- 'आलवाल', 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'एक बूंद सहसा उछली,' 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि।

15.7.2 मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविताएँ 'तारसप्तक' में संग्रहीत थीं। कवि का विकास मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर हुआ है। यही कारण है कि उनकी कविता में क्रान्तिकारी जनोन्मुखता का रूप दिखाई देता हैं। 'जनमन की उष्मा' उनकी कविताओं का प्राणतत्त्व है। मुक्तिबोध 'लम्बी कविताओं' के कवि हैं। कविता को उन्होंने क्रान्तिकारी जनसंघर्ष में भागीदारी की गहरी मानवीय उम्मीद के साथ देखा और उसे निरन्तर चलने वाली कालयात्री कहा है। उनकी कविताओं में शोषित उत्पीड़ित जन के प्रति बहुत गहरा प्यार दिखाई देता है। वे जन की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। तथा ऐसी शिक्षा-दीक्षा की आलोचना करते हैं जो मनुष्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से काट कर सुविधाभोगी, परजीवी और पतनोन्मुख बनाती है। रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध पर सार्त्र, कामू जैसे अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव माना था तथा उनकी कविता में अस्तित्ववादी प्रकार के अर्थ की छायाएं देखी थीं। जबकि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने मुक्तिबोध की कविता की क्रान्तिकारी चेतना के संघर्ष को रेखांकित किया और उन्हें कबीर तथा निराला की परम्परा का कवि माना है। वस्तुतः मुक्तिबोध की रचनाशीलता के केन्द्र में मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की चुनौतियाँ रही है। हिन्दी कविता के इतिहास में मध्यवर्ग की अवसरवादी संरचनाओं की जटिलता में प्रवेश करने वाले वे पहले कवि हैं। मध्यवर्गीय व्यक्तित्व के भीतर पड़ी सामंती पूंजीवादी प्रवृत्तियों के दबाव को पुर्जा-पुर्जा खोलकर देखते हैं और इसी के साथ बाह्य परिवेश के विघटन, मूल्यहीनता और पतन को भी समूचा पहचानते हैं। मुक्तिबोध की

कविता में छठें-सातवें दशक के भारत के आर्थिक-राजनैतिक अन्तर्विरोधों के असली रूप दिखाई देते हैं।

मुक्तिबोध के यहाँ हमें 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' जैसे प्रत्यय मिलते हैं। इसे उन्होंने व्यक्ति की रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विश्लेषित भी किया है। वस्तुतः यह अनुभव के रचनात्मक अनुभव में बदलने की ऐसी प्रक्रिया है जिसे मार्क्सवादी विचारधारा के द्वारा प्रगतिशील आशय की चमक मिल जाती है। 'चांद का मुंह ढेढ़ा है' शीर्षक उनकी काव्यकृति को अत्यधिक प्रसिद्धि मिली है। साठोत्तर दौर के कवियों ने अपने लिए मुक्तिबोध को सबसे ज्यादा संभावनापूर्ण रचनात्मक विरासत माना है। मार्क्सवादी दृष्टि का सृजनात्मक सौन्दर्य के साथ सबसे प्रभावी रचनात्मक तालमेल मुक्तिबोध की कविता में ही दिखाई देता है। विचारधारा को वे अपना मूल्यवान अर्जित मानते हैं। और मार्क्सवाद को विश्वदृष्टि कहते हैं। पूंजीवादी विकास द्वारा पैदा की गई विषमताओं को वे मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा घातक मानते हैं। पूंजीवाद की विशाल संरचना के प्रत्येक पुर्जे को जिस प्रकार मुक्तिबोध ने पहचाना है उस प्रकार शायद ही किसी ने पहचाना हो। क्रान्ति में उन्होंने ऐसे पूंजीवाद को चुनौती देने वाली शक्ति देखी। इसलिए वे मध्यवर्ग से जनता का सही नेतृत्व बनने की मांग करते हैं। इसीलिए उन्होंने मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की बात कही है क्योंकि जनता से एकमएक हुए बिना केवल सहानुभूति या निष्क्रिय करुणा के द्वारा समाज के क्रान्तिकारी बदलाव की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। अपनी कल्पना में जनता को क्रान्ति के लिए एकजुट होते देखते हैं और लिखते हैं कि जिन्दगी बुरादा तो बारुद तो बनेगी ही' (मुक्तिबोध)

15.7.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं दूसरा सप्तक में संकलित हैं। इन्हें नई कविता की प्रगतिशील धारा से सम्बद्ध कवि माना जाता है। शमशेर ने स्वयं को मार्क्सवाद से प्रभावित माना है। वे अपनी रचनादृष्टि का मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर दृष्टिवान होना स्वीकार करते हैं। 'बात बोलेगी', 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं' 'चुका भी हूँ नहीं मैं', 'इतने पास अपने' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। शमशेर में गहरी संवेदना और तीव्र प्रतिभा थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के साहित्य को उन्होंने डूब कर पढ़ा और उसमें निहित रचनात्मक अर्थ की गहराइयों से प्रभावित हुए। शमशेर साहित्य के बड़े तन्मय पाठक थे। उनकी चेतना को साहित्य और संस्कृति की गहरी निकटता मिली। उनके साहित्यिक संस्कार तुलसी, मतिराम, निराला और मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के साथ-साथ ग़ालिब, हाली, टेनिसन, एज़रा पाउंड आदि को पढ़कर विकसित हुए। चौथे दशक के आस-पास प्रगतिशील लेखकों के सम्पर्क में आये और मार्क्सवादी दर्शन में निहित मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा का महत्व पहचाना। शमशेर कविता में एक चितेरे की सी भूमिका चुनते हैं। उन्हें लगता है कि शब्द और चित्रकारी में बड़ा घना आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। शमशेर की कविता में उनके ज्ञान अनुभव और विश्वासों के रंग खुल पड़े हैं। नई कविता के

इतिहास के सर्वाधिक ऐन्द्रिक कवि शमशेर ही हैं। शमशेर के लिए यथार्थ का रचनात्मक रूपान्तरण प्रमुख है। वे उसके भीतर रूप, रस, गन्ध की सुन्दरता खोजते हैं। शमशेर की काव्य संवेदना में गहरी आवेगात्मकता का स्पन्दन मिलता है। अज्ञेय ने शमशेर को कवियों का कवि कहा है। शमशेर की कविता में बारीक संश्लिष्टता मिलती है। उनकी कविताएं सतह पर अर्थ खोलने वाली कविताएं नहीं हैं। छायावादी सौन्दर्यप्रियता को शमशेर ने अपनी कविता में नया किया है। उनकी कविता में अभिव्यक्त वस्तुसंसार छायावादी विषयों से बहुत मिलता जुलता है, विशेषरूप से प्रकृति की नाना छवियाँ, किन्तु हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि वे भाव बोध की नवता के द्वारा नये रूप में आविष्कृत छवियाँ हैं।

यहाँ से अगर हम देखें तो प्रेम सौन्दर्य और उन्मुक्त उल्लास के निकट का जो एक और भाव शमशेर की कविता में मिलता है वह करुणा का है। शमशेर का काव्य लोक गहरी मानवीय संवेदनाओं के जीवित लोक की तरह है जिसमें स्पन्दन व्यापता है। उनकी काव्य पंक्तियाँ अर्थ की गतिशीलता में स्फुरित होती हैं। वहाँ एक अद्भुत सकर्मकता दिखाई देती है जिसमें सहज ही ठहरावों को तोड़ देने का उद्यम है। यहाँ तक कि उदासियों के सघन चित्रण में भी गति के ये रूप अंकित हैं। संवेदना के इन रूपों में कवि में आत्मविस्तार का उदात्त व्यक्त हुआ है। मनुष्य की गति, संघर्ष, प्रेम और असफलताएं शमशेर को आकृष्ट करती हैं। मजदूर किसान और वंचित भारतीय जन की मुक्ति आकांक्षा उनकी कविता में व्यक्त हुई है। शमशेर ने जनता के लिए आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय भविष्य चाहा है। मेहनतकश जन का शोषण करने वाली व्यवस्था और संस्कृति की आलोचना भी शमशेर की कविता में दिखाई देती है। किन्तु उनके सौन्दर्यबोधीय मूल्य वहाँ उस मानवीय आवेग को धारण करते हैं जिनसे उस भाव का प्रभाव विशिष्ट हो उठता है। शमशेर कविता की संश्लिष्ट मितव्ययी संरचना के कवि हैं। उनकी कविताओं में अर्थ समृद्धि आंतरिक स्तर पर दिखाई देती है।

15.7.4 धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती की कविताएं भी दूसरा सप्तक में संग्रहीत हैं। भारती नई कविता को गति देने वाली संस्था 'परिमल' के संयोजकों में से एक थे, इलाहाबाद के साहित्यिक रचनात्मक परिदृश्य ने धर्मवीर भारती की रचनात्मक चेतना को संवारा है। भारती सन् 60 में धर्मयुग के यशस्वी सम्पादक हुए। उनके सम्पादन काल में इस पत्रिका ने स्तरीय साहित्यिकता को भरपूर योगदान दिया। 'अंधायुग' 'कनुप्रिया' जैसे नाटकों से उनके कवि को अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने महाभारत युद्ध के महाविध्वंस को समकालीन संकट से जोड़कर नई अर्थछवि प्रदान की है। इस प्रकार नई कविता में अभिव्यक्त संकटबोध का सर्वाधिक तनावपूर्ण और सृजनात्मक रूप 'अंधायुग' में व्यक्त हुआ। इस कृति में भारती की प्रतिभा का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'अंधायुग' में भारती प्रबन्धात्मकता का वह नया प्रयोग करते हैं जिसका परम्परा से बड़ा ही सृजनात्मक सम्बन्ध है। इस काव्यनाटक के नियोजन में उन्होंने नाट्य तत्वों में

भी भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों का बड़ा ही सार्थक सम्मिलन कराया है। भारती ने भारतीय मिथकों का समकालीन अर्थ की विराटता और प्रभाव को निर्मित करने के लिए एक प्रकार से अन्वेषण किया है। भारती की कविताओं में गहरी रागात्मकता और ऐन्द्रिकता परिलक्षित होती है। अपने समय के इतिहास के प्रश्नों से वे बौद्धिकता और रागात्मकता के सृजनात्मक मेल के द्वारा टकराते हैं। मनुष्य के अधीन लघु या क्षुद्र होने की स्थिति का नियति बन जाना भारती को स्वीकार नहीं है। भारती ने 'मिथक' द्वारा निर्दिष्ट नायकों के प्रभाव का अतिक्रमण करते हुए युगसंकट की जटिलता को व्यक्त करने वाले नायकों और प्रतिनायकों का निर्माण किया है।

'सप्तक' में संग्रहीत कविताओं के अतिरिक्त 'ठंडा लोहा' 'सात गीत वर्ष' आदि भारती के काव्य संग्रह हैं जिनकी कविताएं गहरी जिम्मेदारियों के साथ अपने समय के विसंगत स्वरूप से टकराती हैं। भारती की काव्य संवेदना में अभिजात्य और लोक का घुला मिला रूप दिखाई देता है। गहरी आवेगात्मक रूमानियत से इनके शिल्प का अलग प्रभाव निर्मित होता है। भाषा में भी लोक का प्रभाव उसकी व्यंजकता को रचता हुआ दिखाई देता है। धर्मवीर भारती के काव्यानुभव के केन्द्र में भारतीय मध्यवर्ग का संघर्ष और आकांक्षा है।

15.7.5 विजयदेव नारायण साही

विजयदेव नारायण साही 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं। नई कविता के कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद विजयदेव नारायण साही ही ऐसे कवि हैं जो कविता को चिंतन के निष्कर्षों से जोड़ते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-सामाजिक संकट का तीव्रतर बोध साही की कविता को रागात्मक बौद्धिक भूमिका के लिए प्रेरित करता है। वे लोहिया, जय प्रकाश और आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवादी विचारों के निकट रहे हैं तथा उनके चिंतन का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। 'मछलीघर' और 'साखी' उनकी कविताओं के संग्रह हैं। साही की रचनादृष्टि यथार्थबोध की जटिलता को समझते हुए परिपक्व हुई है। कठिन जीवन की चुनौतियों को साही ने सरल समाधान में नहीं लेना चाहा है। अपने समय के मनुष्य को वे संकट को पहचान कर उससे संघर्ष की क्षमता में देखना चाहते हैं, इसलिए संकट के दृश्य अदृश्य तंतुओं को कविता में उद्घाटित करते दिखाई देते हैं। विसंगति और विडम्बना से भरे समय में मनुष्य की तैयारी उसका विवेक है और निर्वैयक्तिकता भी, ऐसा साही का मानना है। साही एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उनकी कविताएं संवेदना को चिंतन से जोड़ती दिखाई देती है। जैसे संघर्ष, जिजीविषा, सृजन, सौन्दर्य, परम्परा, आस्था, सार्थकता, विषाद और पूर्णता आदि को साही ने एक चिन्तक कवि के रूप में देखा है। 'आत्मोन्मुखता' का एक अलग रूप साही की कविताओं में प्रतिफलित होता है। उनके वैचारिक आदर्श उन्हें अपने अनुभवों और विश्वासों को व्यापक समाज के पक्ष में परखने के लिए प्रेरित करते हैं। साही की कविताएं मनुष्य के अन्तहीन संघर्ष को देखती है।

विजयदेव नारायण साही की भाषा में बौद्धिकता ज्यादा है। उनमें रूपक बिम्ब और प्रतीक बहुधा अमूर्तन की ओर चले जाते हैं। साही भाषा के द्वारा काव्यानुभव का एक नाटकीय तनाव भरा रूप निर्मित करना चाहते हैं। मुक्तिबोध की तरह साही ने भी अधिकांश लम्बी कविताएं लिखीं हैं, जिनमें नाटकीय एकालाप और चिंतन है। 'अलविदा' 'एक आत्मीय बातचीत की याद' 'सन्दर्भहीन बारिश', 'घाटी का आखिरी आदमी' आदि उनकी चर्चित कविताएं हैं।

इन कवियों के अलावा भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह आदि नई कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। इन कवियों का भी अपना भिन्न रचनात्मक स्वर है। अन्तर्वस्तु के स्तर पर भी ये अलग-अलग काव्य संसार के रचयिता हैं।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प बताइए (सही /गलत चिह्नित करें)

क) 'प्रात नभ था बहुत गोला शंख जैसे' काव्य पंक्ति किस कवि की है?

शमशेर बहादुर सिंह

गजानन माधव मुक्तिबोध

गिरिजा कुमार माथुर

ख) 'कवितांतर' के संपादक है:

अज्ञेय

जगदीश गुप्त

गोविन्द रजनीश

ग) 'ब्रम्हराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं

कुंवर नारायण

नरेश मेहता

गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रश्न 2: तीन या चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता के प्रमुख कवियों का नाम बताइए

....
.....

....
.....

....
.....

ख) 'फैंटेसी' से क्या अभिप्राय है।

....
.....

....
.....

....
.....

ग) नई कविता द्वारा खोजे गए नये उपमानों के विषय में बताइए।

....
.....

....
.....

15.8 सारांश

नई कविता में नये भावबोध की केन्द्रीयता है तथा इसमें नया सौन्दर्यबोध प्रतिफलित होता दिखाई देता है। आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद के आगे की स्थिति माना है और इसमें वे संवेदना और शिल्प की दृष्टि से विकास लक्षित करते हैं। सन् 1952 में रेडियो से प्रसारित अपने व्याख्यान में अज्ञेय ने 'नई कविता' सम्बन्धी कई मान्यताओं को स्पष्ट किया था। नई कविता के विकास के सन्दर्भ में अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है, इसके अतिरिक्त सन् 1946 से प्रकाशित 'ज्ञानोदय', सन् 1947 से प्रकाशित 'प्रतीक' नामक पत्रिकाओं के द्वारा नई कविता का स्वरूप सामने आने लगा था। सन् 1949 में प्रकाशित

'कल्पना' के द्वारा नई कविता के साथ-साथ 'नई कहानी', 'नई आलोचना' आदि का स्वरूप भी सामने आने लगा। सन् 1953 में 'नये पत्ते' पत्रिका सामने आई और सन् 1955 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सहयोग से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त 'निकष', 'कविता' आदि ने नई कविता को आधार और प्रचलन दिया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, आदि नई कविता के कवि थे। नई कविता में व्यक्तिवादी व वस्तुवादी रूझानों की कविताएं मिलती हैं। कार्ल मार्क्स और सार्त्र, काल यास्पर्स जैसे दार्शनिकों के साथ-साथ गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य, नरेन्द्र देव की वैचारिकी ने भी नई कविता के कवियों को प्रभावित किया है। नई कविता की संवेदना का आधार आधुनिक भावबोध है। ये कविताएं जीवन के व्यापक क्षेत्रों से अर्थग्रहण करना चाहती हैं। वैयक्तिक रूझानों वाली आधुनिकतावादी कविता की संवेदना के केन्द्र में 'संकट बोध' है तो मार्क्सवादी प्रभाववाली यथार्थवादी कविता के भावबोध का सम्बन्ध प्रतिरोध और संघर्ष की चेतना से है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणबोध, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि इसके भावबोध की विशेषताएं हैं। भाषा में नया बौद्धिक संस्पर्श दिखाई देता है। नाटकीयता और अप्रस्तुत विधान आदि भी यहाँ अपनी नवीनता में दिखाई देते हैं।

15.9 शब्दावली

1. संप्रेषणीयता: श्रोता सहृदय पाठक या भावक द्वारा अर्थ ग्रहण संप्रेषण है।

2. अनुभूति की प्रमाणिकता: विश्वसनीय आंतरिक अनुरूप।

3. विडम्बनाबोध: आधुनिक जीवन की जटिलता के कारण अनुभव में निहित वैषम्य को सूचित करने वाला पद है।

4. अमानुषीकरण: मानवीय संवेदनशीलता का अभाव इसे पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति में मौजूद व्यक्तिवादिता के अतिरेक में देखा गया है।

5. लघुमानव: व्यापक यथार्थ की विकटता के निकट मध्यवर्गीय मनुष्य का निजताबोध जिसमें वह अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से अनजान नहीं किन्तु उससे लज्जित भी नहीं।

6. मोहभंग: सन् 1947 में मिली स्वतंत्रता के प्रति उम्मीद के टूटने का अनुभव।

7. अस्तित्ववाद: विचारधारा नहीं अपितु दर्शन है जिसमें मनुष्य की अस्मिता की चिंता कार्ल यास्पर्स, हेडेगर, सार्त्र, कीकेगार्द आदि अस्तित्ववादी दार्शनिक हैं। इस दर्शन का आविर्भाव विश्वयुद्धोत्तर योरोप में हुआ। यह मृत्यु, अजनबीपन, सामाजिक अलगाव आदि परिणतियों पर विचार करता है।

8. मार्क्सवाद: सर्वहारा जन की आर्थिक सामाजिक मुक्ति का दर्शन है। मार्क्सवाद समाज का आधार पूंजी को मानता है, कला संस्कृति, दर्शन, राजनीति, कानून, उसकी अधिरचना है। आधार और अधिरचना का सम्बन्ध द्वंद्वात्मक होता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा वह सामाजिक विकास की व्याख्या करता है। इसका बल पूँजीवादी समाज व्यवस्था की आलोचना है तथा साम्यवादी समाज अर्थात आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय समाज इसका स्वप्न है जिसे वह क्रान्तिकारी जन एकता और संघर्ष के द्वारा संभव होता देखता है।

9. व्यक्ति स्वातंत्र्य: व्यक्ति की आत्मपर्याप्त निजता का बोध।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) ‘तारसप्तक’ का प्रकाशन वर्ष 1943 है।
ख) प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है।
ग) नई कविता और अस्तित्ववाद शीर्षक’ किताब के लेखक हैं डॉ. रामविलास शर्मा

प्रश्न 2: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति कविता की यथार्थदृष्टि है। छायावादोत्तर कविता ने अपने समय के यथार्थ को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने और व्यक्त करने का संघर्ष किया।

ख) प्रयोग को दोहरा साधन अज्ञेय ने कहा है। उनके अनुसार कविता की रचना प्रक्रिया में इस प्रयोग का दायित्व नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना है तथा उस वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिए नई अर्थभंगिमा युक्त भाषा का अन्वेषण है।

ग) दूसरा सप्तक के कवि हैं हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुंत माथुर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती तथा ‘तीसरा सप्तक’ के कवि हैं प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुअँर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन; विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

प्रश्न 3. कुछ सही कुछ गलत कथन-

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था - सही कथन
ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं - गलत कथन
ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है - सही कथन

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। प्रायः इसके साथ ही नई कविता का आरम्भ माना जाता है। विशेष रूप से सप्तकों के सम्पादक अज्ञेय की भूमिका इस संदर्भ में उल्लेखनीय मानी गई है। सप्तकों की भूमिका में अज्ञेय ने निरन्तर बदले हुए काव्यबोध की अभिव्यक्ति की चुनौतियों को रेखांकित किया। 'सप्तकों में आई कविताओं ने नई संवेदना और भाषा की बानगी भी प्रस्तुत की।
ख) 'प्रयोग' अज्ञेय के लिए एक सृजनात्मक मूल्य है जिसे वे काव्यवस्तु के साक्षात्कार और अभिव्यक्ति तक सक्रिय मानते हैं। 'अन्वेषण' इस प्रयोग का बुनियादी आधार है। कविता को रचनात्मक नवोन्मेषता प्रदान करने के लिए यह नये भावों की खोज से लेकर नई भाषिक भंगिमा की खोज तक अग्रसर है। कवि के सामने सम्प्रेषण की समस्या भी है। अतः इस अन्वेषण का सम्बन्ध प्रयोगधर्मी रचना प्रक्रिया से है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्र.1: रिक्त स्थानों की पूर्ति-

क) 'नदी के द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना है।
ख) नई कविता के कवि के अनुसार क्षण बोध क्षणिकता का बोध नहीं है।
ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है।

प्र. 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियाँ हैं- 1. व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना 2. अनुभूति की प्रामाणिकता 3. क्षणबोध 4. यथार्थोन्मुखता। अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही और मुक्तिबोध की कविताओं में ये प्रवृत्तियाँ प्रायः उनकी वैचारिक प्राथमिकताओं के कारण भिन्न रूपों में प्रतिफलित होती हैं। मोटे तौर पर हम इन्हें आधुनिकतावादी और मार्क्सवादी प्रभावों के अनुरूप घटित होते देखते हैं।

ख) नई कविता की संवेदना का फलक प्रायः मध्यवर्गीय जीवनानुभवों के प्रसार और गहराई से रूप लेता दिखाई देता है। प्रायः इसे आधुनिक भावबोध जो संकटबोध के साथ संघर्ष चेतना के अर्थ में हैं, उसके प्रतिफलन के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त रागात्मकता और प्रकृति के बदले हुए रूपों का नगरीयबोध के सापेक्ष साक्षात्कार यहाँ सम्मिलित है।

प्र.3. दो या तीन पंक्तियों में उत्तर:

क) नगरीय महानगरीय मनुष्य का भावबोध उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसकी चेतना और मर्म को प्रभावित करने वाले दबाव और उनसे बनती जटिलताओं का साक्षात्कार नगरीय जीवनबोध में निहित है।

ख) क्षणबोध: यह एक सृजनात्मक आभा से भरा देशकाल के अलावा काल की निरन्तरता से सम्बद्ध रागात्मक क्षण के रूप में हैं। अज्ञेय ने इसकी अद्वितीयता पर बल दिया है।

ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, कैलाश बाजपेई आदि कवियों पर देखा गया है। माना गया है कि अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण नई कविता के कवियों में मोहभंग, अजनबीपन, आत्मविघटन आदि घटित हुए।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प

क) प्रात नभ था बहुत गीला शंख ‘जैसे’ पंक्ति शमशेर बहादुर सिंह की है।

ख) ‘कवितांतर’ के सम्पादक जगदीश गुप्त हैं।

ग) ‘ब्रह्मराक्षस’ शीर्षक कविता के कवि हैं गजनान माधव मुक्ति बोध।

प्रश्न. 2. तीन या चार पंक्तियों में उत्तर।

क) नई कविता के कवि हैं अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँअर नारायण, नरेश मेहता आदि।

ख) ‘फैंटेसी’ को अतियथार्थवादी कला कहा जाता है। इसका सम्बन्ध स्वप्न या अवचेतनमन के असम्बद्ध बिंब विधान से भी माना गया है। इसकी प्रक्रिया में बिंब प्रतीक मिथक आदि स्वप्न के तर्क से नियोजित होते हैं अर्थात् कार्य कारण पद्धति या सुसम्बद्धता को परे करते हुए निर्मित हो सकते हैं।

ग) नई कविता द्वारा अनेक नये उपमान खोजे गये हैं। आधुनिक भाव के अनुरूप बाजरे की कलंगी, मुलम्मा लगा बेसन, चाय की प्याली, सिगरेट का धुंआ, मेज, कुर्सी, चटाई, फाइलें, जूते वगैरह।

15.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. बाजपेई, नन्द दुलारे, हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी।

3. कुंतल, रमेश 'मेघ', क्योंकि समय एक शब्द है।

4. मिश्र, रामदरश, आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि।

5. डॉ. रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य।

6. राय, डॉ. रामबचन, नयी कविता: उद्भव और विकास।

7. शुक्ल, डॉ. ललित, नया काव्य: नये मूल्य।

8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नई कविताएँ: एक साक्ष्य।

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नई कविता से आप क्या समझते हैं ? सविस्तार स्पष्ट कीजिए . नई कविता कि पृष्ठभूमि एवं प्रमुख प्रवृतियों को भी स्पष्ट कीजिए .

2. नई कविता पर एक विस्तृत निबंध लिखिए तथा नई कविता के दो प्रमुख कवियों का समीक्षात्मक परिचय दीजिए .

ईकाई 16 अज्ञेय : पाठ और आलोचना

ईकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 अज्ञेय: कवि परिचय
16.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत
16.5 असाध्यवीणा:संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

यह इकाई सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय की महत्वपूर्ण कविता 'असाध्यवीणा' के पाठ और मूल्यांकन पर केन्द्रित है। जैसा कि हमें ज्ञात है अज्ञेय ने छायावादोत्तर दौर की काव्य संवेदना और भाषा में परिवर्तन की समस्या के सृजनात्मक हल के लिए 'अन्वेषण' को जरूरी रचनात्मक युक्ति माना था। इसी संदर्भ में प्रयोग उनके लिए महत्वपूर्ण हो उठा। प्रयोग को लेकर चली कवि की सक्रियताओं ने हिन्दी कविता के इतिहास में एक मोड़ भी प्रस्तुत किया तथा काफी हद तक नई कविता के लिए नये सौन्दर्यबोधीय मूल्यों का स्वरूप सामने आया। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता में अज्ञेय के सृजन सम्बन्धी सरोकारों का प्रातिनिधिक स्वरूप उभरता दिखाई देता है। इस कविता में अज्ञेय 'मम' और 'ममेतर' अर्थात् 'आत्म' और 'वस्तु' के सम्बन्ध को दार्शनिक बारीकियों में जाकर हल करते हैं साथ ही 'असाध्यवीणा' के बज उठने में सृजन प्रक्रिया के निष्पन्न होने का निरुपण करते हैं। इस कविता का आधार एक चीनी लोककथा है। उसके सूत्रों को अज्ञेय एक भारतीय सन्दर्भ प्रदान करते हैं तथा सृजन की समग्रता के लिए साधक के या कि रचनाकार के सम्पूर्ण समर्पण का पक्ष रखते हैं। इसके अलावा 'असाध्यवीणा' में वर्णित कथा के द्वारा अज्ञेय ने सृजन की व्याप्ति के स्तरों को स्पर्श किया है। अज्ञेय की निरन्तर विकसित होती हुई सृजन प्रक्रिया में यह विश्वास पुष्ट होता चला है कि रचयिता द्वारा सृजन में निष्पन्न होता हुआ अर्थ और आलोक पुनः रचयिता में भी उस आलोकमय स्फुरण को भरकर उसे मुक्त करता है।

'असाध्यवीणा' में उन्होंने स्रष्टा और सृजन के परस्पर मेल के अर्थ को पूरी गरिमा में उभारा है। इस विलय में 'अस्मिता' के घुल जाने को वे श्रेयस्कर नहीं मानते, बल्कि सृजन की उच्चतम भावभूमि की असाधारणता के आविष्कार द्वारा चेतना का सारपूर्ण ढंग से संघटित होना लक्ष्य करते हैं। इस संघटन के द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। इसके मूल में सर्जनात्मक संपृक्ति है जिसके विषय में अज्ञेय की 'दीप अकेला' या 'नदी के दीप' जैसी कविताएं संकेत करती हैं। यही है 'संघटित' निजता'। इस प्रकार के व्यक्तित्व की अर्थवान सामाजिक उपादेयता है, अज्ञेय यह रेखांकित करते हैं।

16.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़कर हम अज्ञेय की रचनाशीलता के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

- 'असाध्यवीणा' शीर्षक लम्बी कविता की संवेदना के विषय में जान सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान के रूपकात्मक अभिप्राय के विषय में समझ सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की व्याख्या में सक्षम हो सकेंगे।

16.3 अज्ञेय: कवि परिचय

अज्ञेय कवि कथाकार चिंतक आलोचक और सम्पादक रहे हैं। वे विलक्षण यात्रा-वृत्तान्तों और संस्मरणों के लेखक हैं। 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उनका एक नाटक भी है। इसके अलावा अज्ञेय ने शरतचन्द्र के 'श्रीकांत' और जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 को कुशीनगर में एक पुरातात्त्विक खनन स्थल पर हुआ। पिता पं0 हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे। अज्ञेय ने विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त की थी तथा अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर के प्रथम वर्ष में अध्ययन किया किंतु 1929-36 तक क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रियता के कारण शिक्षा में व्यवधान आया। अज्ञेय चन्द्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल थे। इसी सिलसिले में उन्हें जेल भी हुई। 'चिन्ता' शीर्षक काव्य संग्रह तथा 'शेखर: एक जीवनी' जैसा उपन्यास जेल में ही लिखा गया। एक वर्ष तक (1936) 'सैनिक' के संपादक मण्डल में रहे। 1937 में 'विशाल भारत' के सम्पादन से जुड़े। 1943 में सेना में नौकरी की तथा असम बर्मा फ्रंट पर नियुक्ति मिली। 1950-55 में आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नियुक्ति मिली। स्वदेश और

विदेश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। दद्दा यानी कि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त से कवि की अत्यधिक निकटता थी। विदेश यात्राओं में 'जापान यात्रा' का प्रभाव उनके रचनाकार पर सर्वाधिक है। बर्कले के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। 1965 से 69 तक साप्ताहिक दिनमान का सम्पादन किया। अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमैंस' का भी सम्पादन किया। 'प्रतीक' और 'नया प्रतीक' जैसे साहित्यिक पत्रों में सम्पादन के साथ इसी दौर में कविता कहानी उपन्यास लेखन भी चलता रहा। सप्तकों के सम्पादन का कार्य भी हुआ। 1961 में प्रकाशित काव्यकृति 'आँगन के पार द्वार' को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 'कितनी नावो में कितनी बार' शीर्षक काव्यकृति को 1979 में भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान मिला। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती सम्मान मरणोपरान्त इला डालमिया ने ग्रहण कर उसे वत्सलनिधि को प्रदान कर दिया था।

अज्ञेय की प्रथम काव्यकृति 'भग्नदूत' (1933) है। क्रमशः इस रचना यात्रा में 'चिन्ता' (1942) 'इत्यलम्' (1946) 'हरी घास पर क्षण भर' (1949) 'बावरा अहेरी' (1954) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957) 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) 'आँगन के पार द्वार' (1961) 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967) 'क्यों कि मैं उसे जानता हूँ' (1968) 'सागर मुद्रा' (1969) 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1970) 'महावृक्ष के नीचे' (1977) 'नदी की बांकपर छाया' (1981) 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' (1986) आदि हैं। 'प्रिजन डेज एंड अदर पोयम्स' (1946) उनकी अंग्रेजी कविताओं का संग्रह है। 'शेखर: एक जीवनी' के दो भागों के अलावा 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उनके उपन्यास हैं। विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945) शरणार्थी (1948) जयदोल (1951) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'भवंती', 'सर्जना और संदर्भ' उनके लेखों का संग्रह है। तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) तीसरा सप्तक (1959) चौथा सप्तक (1978) का अज्ञेय ने सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' उनके यात्रा वृत्तांत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय का रचना संसार व्यापक और विविध हैं।

16.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत

'असाध्यवीणा' 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' शीर्षक संग्रह की अनेक कविताएं जैसे इस महत्त्वपूर्ण कविता का पूर्व पक्ष है। इस उल्लेख का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय की कविताएं यहाँ विशेष आध्यात्मिक गहराई में ढलती दिखाई देती है। इस आध्यात्मिकता के केन्द्र में ईश्वर नहीं बल्कि मनुष्य है। इस अध्यात्म की विशेषता यह है कि यहाँ कवि उस आत्म का आविष्कार करता है जो उदात्त और समर्पणशील है। उसका संघर्ष व्यापक सत्य से जुड़ने का है। अज्ञेय इस एकात्म में व्यक्ति का शेष हो जाना ठीक नहीं मानते। व्यापक सत्य ही उनके लिए ममेतर है जो अपनी व्याप्ति और अर्थ से व्यक्ति

अर्थात 'मम' को अर्थवान सोद्देश्य और मानवीय बनाता है। इस दार्शनिक बोध से भरी हुई अज्ञेय की अनेक कविताएं हैं, जिनमें से एक की ये पंक्तियाँ देखिए: 'मुझको दीख गया:/सूने विराट के सम्मुख'/हर आलोक छुआ अपनापन/है उन्मोचन/नश्वरता के दाग से।(अरी ओ करुणा प्रभामय) 'असाध्यवीणा' की कथा वस्तुतः एक रूपक के रूप में प्रयुक्त है। पूरी कविता 'सृजन' की उस प्रक्रिया का अर्थ बताना चाहती है जिसके द्वारा सृजन व्यापक अर्थवान और गहरे अर्थ में मानवीय उद्देश्य को अर्जित करता है।

अभ्यास प्रश्न: 1

- अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में दीजिए।
- ईकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता का मूल मन्तव्य बताइए।

ख) अज्ञेय के लिए 'अन्वेषण' का क्या महत्व है बताइए।

ग) अज्ञेय ने रचनाकार के लिए क्या जरूरी माना है?

घ) अज्ञेय के जन्म वर्ष और पिता के विषय में बताइए

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'असाध्यवीणा' .... शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ....

ग) अज्ञेय को .... शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी सम्मान मिला।

घ) अज्ञेय .... के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) 'आँगन के पार द्वार' संग्रह की कविताओं की विशेषता क्या है?

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिता के विलय का क्या अर्थ है?

----

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) अज्ञेय द्वारा संपादित कृति का नाम है।

i) चिंता ii) इंद्रधनु रौंदे हुए ये iii) तारसप्तक

ख) अज्ञेय के यात्रा वृत्तांत सम्बन्धी पुस्तक का नाम है-

i) आलवाल ii) त्रिशंकु iii) अरे यायावर रहेगा याद!

16.5 असाध्यवीणा: संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)

अज्ञेय आधुनिक कवि हैं यह कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के भावबोध और मूल्यदृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। यह मनुष्य अपने चतुर्दिक के तीव्र परिवर्तनशील और किन्हीं अर्थों में विघटन की ओर जाते हुए जीवन से निरपेक्ष या दायित्वहीन नहीं है। एक सजग रचनाकार की तरह अज्ञेय की चिंता में मानवीय गतिशील समाज और सामाजिकता का पक्ष है। अपनी रचनाशीलता में अज्ञेय ने अपनी अर्जित वैचारिकी और अनुभव से यह निष्कर्ष प्राप्त

किया है कि ऐसे विघटन के विरुद्ध मूल्यावेषी समर्पणशील व्यक्तित्व ही सकारात्मक भूमिका जरूरी है। इसके लिए मनुष्य को अपनी सृजनात्मकता के मानवीय रूप के लिए संघर्ष करना होगा। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक मानवीय दीप्ति है जो अपनी रचने की क्षमता को रहस्य में आवेष्टित किये पड़ी रहती है। उन्होंने प्रत्येक मानवीय अस्तित्व के भीतर ऐसे अनूठेपन की थाह ली। इस भाव को हम अज्ञेय की 'दीप अकेला' शीर्षक कविता में देख सकते हैं। 'त्रिशंकु' में अज्ञेय ने लिखा है कि कला एक श्रेष्ठतम नीति(एथिक) की दिशा में गतिशील होती है, इस श्रेष्ठतम नीति को वे सामान्य नैतिकता से अलग भी करते हैं इसी अर्थ में वे कला की सामाजिकता का पक्ष भी रखते हैं। अज्ञेय ने संवेदना को वह यंत्र कहा है- 'जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर के साथ सम्बन्ध जोड़ती है' (अज्ञेयः आलवाल)। अज्ञेय मनुष्य के लिए दायित्वबोध से भरी सामाजिकता को जरुरी मानते हैं किन्तु इसके लिए उसकी 'अस्मिता' के मिट कर विलयित हो जाने को ठीक नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व वाह्य संघर्ष की टकराहट का अपने सृजनात्मक केन्द्र पर अडिग रहकर सामना करता है तब वह अपने व्यक्तित्व को अधिक संघटित सामाजिक उपादेयता में प्राप्त करता है।

इस प्रकार के अपने विश्वासों को कविता में ढालते हुए अज्ञेय ने अपने अभिप्रेत अर्थ को जीवन की गहरी सारपूर्णता में अर्जित किया है इसीलिए उनकी कविता में यह मूल्यबोध अपनी सूक्ष्मता में व्यक्त होता है। यहाँ से यदि हम 'असाध्यवीणा' के धुरी भाव की खोज करें तो सम्भवतः वह सृजन को समर्पणशील आत्मोत्तीर्णता के द्वारा लेने का भाव है। यही 'आत्म' और 'आत्मेतर' का वह मिलन बिंदु है जहाँ वे एक दूसरे को अपना-अपना अर्जित 'विराट' सौंपते हैं और पूर्णकाम होते हैं। यह अलग प्रकार का आत्मदान है जो दाता को रिक्त नहीं करता बल्कि देय की महिमा और आलोक से दोनों को भर देता है, दाता को भी और पाने वाले को भी। 'असाध्यवीणा' में यह प्रक्रिया प्रियंवद और 'असाध्यवीणा' के बीच इसी गरिमापूर्ण संपूर्णता में घटित होती है। यहाँ आकर साधक, साधना और साध्य तीनों के भीतर वह संगीत बज उठता है जो आस्वादन की उस उच्च भूमि तक ले जाता है जहाँ जाकर सारी निजताएं अपने आकांक्षित सत्य का एक सघन आत्मिक एकांत में साक्षात्कार करती हैं। इस प्रकार 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान में सृजन प्रक्रिया का रूपक ध्यान या समाधि के द्वारा एक विलक्षण लोकोत्तरता में सम्पन्न होता है जिसमें 'लौकिक' या 'लौकिकता' के स्थूल अर्थ को लेकर चलना संभव नहीं है। वस्तुतः इस संसार को सच्चे अर्थ में सुसंस्कृत और मानवीय रूप में ढालने के स्वप्न और आकांक्षा को अज्ञेय मनुष्य में ऐसे आत्मविस्तार के द्वारा संभव होते देखते हैं। यहाँ से हम इस कविता में मनुष्य के उस रागबोध प्रज्ञा और साधना का रूप निष्पन्न होते देखते हैं जहाँ वह व्यापक सत्य के साक्षात्कार और तादात्म्य के योग्य हो पाता है। अकारण नहीं है कि 'असाध्यवीणा' को सुनते हुए सभी अपने व्यक्तित्व की तुच्छता द्वेष इत्यादि से मुक्त होते हैं और उसके भीतर अपने प्रिय स्वप्नों की छवि देखते हैं। 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं, 'अन्तः सलिला', 'चक्रांतशिला' और 'असाध्यवीणा'। तीनों खण्डों में रूपक

और प्रतीक मिलजुल कर 'व्यापक सत्य' के अनिर्वचनीय साक्षात्कार बोध और अभिव्यक्ति को संभव करना चाहते हैं। 'अन्तः सलिला' में रेत रिक्त या सूखी हुई नहीं है उसके भीतर रस की निरन्तर गति है। अज्ञेय का प्रिय 'मौन' यहाँ अपने प्रेय और सार्थक रूप में मौजूद हैं, 'ज्ञेय' को सम्पूर्णता में जानने के लिए यह मौन या कि चरम एकांत आवश्यक है। जानने की सीमा से परे स्थित सत्य को जानने की साधना इस मौन में है, इसके बावजूद वह अव्यक्त रूप में ही बना रह सकता है। अज्ञेय इन कविताओं में बौद्ध दर्शन की निष्पत्तियों के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार 'अन्तः सलिला' में जीवन बाह्य रूपाकारों से अलग आंतरिक गतियों के अर्थ में जाना गया है और कई बार अर्थ को एक रहस्यमयता मिलती दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय अस्तित्व की सार्थकता के प्रश्न को 'विराट' से उसके सम्बन्ध के नजदीक जाकर समझाना चाहते हैं। वह 'मछली' उनका प्रिय प्रतीक है जो सागर और आकाश के नील अनन्त के बीच अपनी जिजीविषा के संघर्ष के साथ अपनी प्राणवायु के लिए उछलती है और उन विराटों के बीच अपने अस्तित्व की सार्थकता बता जाती है। इस तरह उसका जीवन सागर और आकाश दोनों को अपनी समाई भर छूकर भी क्षुद्र नहीं है बल्कि अर्थवान बनता है। 'इयत्ता' के भीतर विराट के अर्थ को अज्ञेय इस प्रकार समझते हैं।

'चक्रांतशिला' शीर्षक खण्ड में एक 'चक्रमितशिला' का रूपक है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ 'पियेर-क्वि-वीर' से अज्ञेय को इस चक्रमण करती शिला का रूपक मिला, जिसे उन्होंने 'काल' के अर्थ में ग्रहण किया है। 'एक बूंद सहसा उछली' में वे लिखते हैं- 'वह पत्थर जो घूमता है, चक्रमित शिला, चक्रांतशिला.......... वह काल के अतिरिक्त और क्या है।' इस खण्ड में अज्ञेय पुनः तथागत करुणामय बुद्ध की उस छवि का साक्षात्कार करते हैं जो सारी विषमताओं पर अपनी धवल करुणामयी मुस्कान डालते हैं। इस प्रकार कालरुपी काक जो कुछ भी लिखता जाता है, उसे यह मुक्ति दूत मिटाता जाता है।

'आँगन के पार द्वार' का अर्थ समझते चलें। यह वह द्वार है जो हमें बाहर से जोड़ता है किंतु भीतर भी आँगन है यानी व्यक्ति के अर्जित विस्तार को व्यापक विस्तार से जोड़ता है। इस प्रकार 'आत्म' का 'आत्मेतर' से सम्बन्ध रागात्मक और परस्पर आलोक का सृजन करने वाला बनता दिखाई देता है।

इस कविता में अज्ञेय ने एक चीनी लोक कथा का आधार लिया है। यह लोककथा उस भारतीय रंग रूप के आख्यान में बदल जाती है जिसमें किरीटीतरु के अंश से गढ़ी गई वीणा वस्तुतः असाधारण साधक वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना थी। विडम्बना यह कि वीणा तो पूरी हुई किंतु उसके भीतर का संगीत जागता इसके पूर्व ही वज्रकीर्ति का जीवन शेष हो गया। पहले हम उस चीनी लोककथा को देखें। डॉ. रामदरश मिश्र ने सन्दर्भ दिया है कि 'ओकाकुरा की 'द बुक ऑफ ट्री' में 'टेमिंग ऑफ द हार्फ' शीर्षक कथा में किरी नामक विलक्षण वृक्ष का उल्लेख मिलता है। इसी वृक्ष के अंश को लेकर एक जादूगर ने वीणा को निर्मित किया। वीणा

चीनी सम्राट के पास थी। सम्राट को इसके भीतर सोये असाधारण संगीत का भान था किंतु उसने देखा कि इस वीणा का संगीत जगा सकने में कोई कलाकार सक्षम नहीं हो सका। राजकुमार पीवो ने एकांत साधना के द्वारा उस उच्चतर भूमि को स्पर्श कर लिया कि जिससे वह 'वीणा' बज उठी। सम्राट के पूछने पर राजकुमार ने यह अद्भुत उत्तर दिया कि उसे कुछ भी ज्ञात नहीं है। सिवाय इसके कि वीणा और उसके बीच एक योग बन गया, अर्थात उनके बीच का पार्थक्य मिट गया और वीणा बज उठी।

अज्ञेय इस कथा को जापानी ज़ेन साधना के सोपानों में ढाल देते हैं। उनकी दृष्टि में कहीं यह रचना और रचयिता के सम्बन्ध को गहराई से समझा जाने वाला अर्थवान रूपक है। इसीलिए प्रायः इस कविता को सृजन प्रक्रिया की निष्पत्तियों के साथ मिलाकर देखा गया है।

व्याख्या - वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना का प्रतिफल हुई वीणा राजा के पास है। अनेक कलावंतो ने उस वीणा को बजाने का उद्यम किया है किंतु निष्फल हुए हैं। राजा पुनः नयी उम्मीद के साथ प्रियवंद का आवाह्न करते हैं और उस विलक्षण वीणा को प्रियवंद को सौंपते हैं। राजसभा टकटकी लगाए प्रियवंद को देख रही है। प्रियवंद कम विलक्षण नहीं है। केशकंबली गुफागेह वासी प्रियवंद भी अनन्य साधक हैं। अपनी विकट लंबी साधना के चलते ही वे केशकंबली हुए हैं। अज्ञेय प्रियवंद की विशेषताओं के सन्दर्भ से साधना की उन एकांत नीरव स्थितियों की ओर संकेत करते हैं जिसके द्वारा कोई साधक अपने मन आत्मा और व्यक्तित्व की उच्चतम भूमि को प्राप्त कर सकता है। यह उस उदात्त को अर्जित करना है जिसमें स्वार्थ, संकीर्णता और किसी प्रकार का कलुष नहीं है। एक प्रकार से यही एकांत समर्पण के योग्य मन आत्मा और प्रतिभा की तैयारी है। अज्ञेय इसे 'अहं' का विलयन कहते हैं। प्रियंवद के सम्मुख राजा उस किरीटीतरु की विशालता गहराई व्यापकता और ऊँचाई का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः यह वृक्ष अखण्ड गतिमान परम्परा ही नहीं है, बल्कि समूची संसृति है। इस वृक्ष के आदि मध्य अंत में सृष्टि का पूरा वैभव विस्तार और भविष्य समाहित है। कविता में स्पष्ट रूप से यह प्रसंग आता है कि उत्तराखण्ड के उस शांत आत्मिक वैभव से परिपूर्ण वन खण्ड में वह वृक्ष संस्कृति के पितर सरीखा स्थित था। उसकी वत्सलता, शांति गंभीरता और विस्तार को अज्ञेय ने अनूठे ढंग से कहा है। वृक्ष इतना विशाल कि उसके कंधों पर बादल सोते थे, कानों में हिमशिखर अपना रहस्य कह जाते थे। जड़ें पाताल में दूर तक गयीं थी कि जिन पर फण टिका कर वासुकि सोता था। वन प्रान्तर के वासी हिमवर्षा से बचने के लिए उसके विस्तृत आच्छादन के नीचे आ जाते थे। भालू, सिंह आदि उसकी छालों से अपनी पीठ रगड़ लेते। सबका आत्मीय पितर, गुरू और सखा सरीखा यह वृक्ष अपनी काया में ही नहीं अपितु अपनी आत्मा में भी ममता से भरा हुआ सबके आत्मविस्तार को संभव करने वाला है। राजा का विश्वास है कि वज्रकीर्ति की कठिन साधना व्यर्थ नहीं होगी। वीणा बजेगी अवश्य अगर कोई सच्चा साधक उसी ममता समर्पण और आत्मविस्तार में ढल कर उसे अपने अंक में लेगा। यह कह कर राजा वीणा प्रियंवद को सौंपते हैं।

सभी अत्यधिक उत्सुकता जिज्ञासा और प्रतीक्षा पूर्वक इसे देख रहे हैं, अर्थात् राजा, रानी, प्रजा समेत पूर्ण सभा उत्सुक और आतुर हैं।

प्रियवंद अपने केश कंबल पर बैठे, वीणा उस पर रखकर प्राणों को उर्ध्वता में साधा, आँखें बंद की और वीणा को प्रणाम किया। यह समाधि की आरम्भिक अवस्था थी। प्रियवंद के द्वारा रचा हुआ वह एकांत जिसमें उन्हें सभी चीजों से हटा कर अपने ध्यान को चरम एकाग्रता में केन्द्रित करना था। अज्ञेय ने यहाँ लिखा है- 'अस्पर्श छुवन से छुए तार' अर्थात प्रियंवद ने अपनी गहन होती हुई समाधि में 'वीणा' को अपने ध्यान में धारण किया। 'वीणा' उनके ध्याता का एकांत ध्येय थी और ध्यान को उस पर केन्द्रित करना उनकी ध्यान प्रक्रिया का आरम्भ था। ध्यान में डूबे हुए मद्धिम स्वर में प्रियंवद ने 'अहं' से मुक्त होने का प्रमाण भी दिया। उन्होंने कहा कि वे कलाकार नहीं बल्कि शिष्य साधक हैं। वे साधक होने की अपनी स्थिति को किसी महत्व बोध के साथ नहीं बताते। प्रियंवद उस महान वीणा की निकटता से रोमांचित है। 'वीणा' जो उस परम अव्यक्त सत्य की साक्षी है, वज्रकीर्ति की महान साधन का प्रतिफल है और वह महान किरीटी वृक्ष। ऐसी अभिमंत्रित वीणा के ध्यान ने प्रियंवद में विलक्षण हर्षाकुलता को भर दिया।

क्रमशः प्रियंवद ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं। प्रियंवद मौन है, इस मौन के साथ सभा भी मौन है। प्रियंवद ने वीणा को गहरे समर्पण भरे प्रेम के साथ अपने अंक में ले लिया। इस अहंमुक्त साधक ने धीरे-धीरे झुकते हुए अपने माथे को वीणा के तारों पर टिका दिया। सभा की प्रतिक्रिया यह हुई कि क्या प्रियंवद सो गए, क्या वीणा का बजना सचमुच असंभव है?

अज्ञेय यहाँ कथा में नाटकीयता की युक्ति को सहेजते हैं। 'असाध्यवीणा' एक लंबी आख्यानपरक कविता है। इस युक्ति से कथा का नाटकीय तनाव बनता है।

कवि की दृष्टि प्रियंवद पर टिकती है और वह उस साधक की गहनतर होती हुई ध्यानावस्था के विषय में बताता है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में प्रायः व्यक्तित्व के संघटन की बात कही है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तित्व की सर्जनात्मक अर्थवत्ता बनती है। अपने व्यक्तित्व के एकांत साक्षात्कार के उन्हीं क्षणों में उसकी क्षमता का साक्षात्कार या आविष्कार किया जा सकता है। ज़ेन बुद्धिज्म द्वारा अर्जित सातोरी ध्यान पद्वति के अर्थ ने अज्ञेय को इसीलिए आकृष्ट किया। इस आत्म साक्षात्कार के द्वारा सबसे पहले आत्मपरिष्कृति रूप लेती है। इस कविता में भी प्रियंवद उस महान वीणा के स्वर को मुक्त करने लायक साधक होने की साधनावस्था में जब उतरते हैं तो आत्मपरिष्कार की भावभूमि को छूते हैं। एक स्पंदित एकांत का परिवेश है जो मौन से संभव है। शब्दों के निर्मम कोलाहल का थम जाना ही आत्मिक स्फुरण को गति प्रदान कर सकता है।

ध्यान दें कि सातोरी ध्यान पद्धति में निहित ध्यान की चारो अवस्थाओं का क्रमशः निरुपण 'असाध्यवीणा' में है। प्रथम अवस्था में ध्याता अपने अहं से मुक्त होकर विस्तृत भावभूमि के प्रति उन्मुख होता है। ऐसा करते हुए वह एक प्रकार की विस्मृति में चला जाता है जो समाधि की तरह है। इस समाधि में उसकी चेतना का ध्येय से सम्बन्ध होता है और उसकी विराटता और व्याप्ति को धारण करता है। तीसरी अवस्था में ध्याता और ध्येय का 'योग' अपनी अखंडता निर्मित करता है और चौथी अवस्था में ध्येय ध्याता के भीतर आविर्भूत होता है। यहाँ से हम 'प्रियंवद' के मौन समर्पण एकात्म और वीणा में संगीत अवतरण को समझ सकते हैं। इस प्रकार यह नीरव मौन की मुखरित महामौन तक की यात्रा है। इस समाधि के भीतर प्रियवंद की 'वीणा' के पितर कीरीटीतरू से गहरी समर्पित एकात्मकता बनती है। इसके साथ ही किरीटीतरू अपने व्यापक विशद विलक्षण जीवनानुभवों के साथ प्रियंवद की स्मृति में प्रकट होता है। प्रियवंद उसकी स्मृतियों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि सदियों, सहस्राब्दियों में असंख्य पतझरों के बाद नव-नव पल्लवनों ने जिसे निर्मित किया। जीवनानुभवों के ऐसे कितने ही वैविध्य हैं जिनका साक्षी है किरीटीतरू! बरसात की अंधेरी रातों में जुगनुओं ने जिसकी अपनी समवेत चमक से आरती उतारी। दिन को भँवरों ने अपनी गूंज से भर दिया। रात झिंगुरों ने अपने संगीत से सजाया और सवेरा अनगिनत प्रजातियों के पक्षियों के कलरव से भरता गया। उनका उल्लास उनकी क्रीड़ाएँ किरीटीतरू के सर्वांग में आनंद की विह्वलता भर देती हैं। प्रियंवद सम्बोधन देते हैं ओ दीर्घकाय! अर्थात् ऐसे प्रकृत स्वर संभार के आमोद से भरे हुए विशाल वृक्ष उस वन प्रदेश में सबसे सयाने पिता, मित्र, शरणदाता सरीखे महावृक्ष तुम्हारे भीतर वे तमाम वन्य ध्वनियाँ समाहित हैं, मैं चाहता हूँ कि वे समस्त मेरी अनुभूति में अवतरित हों, मैं तुम्हारी उस मुखरित साकारता को अपने ध्यान में धारण करूं। महावृक्ष का इस प्रकार आह्वान करते हुए प्रियवंद को पुनः अपनी लघुता का बोध होता है, कहते हैं उस साक्षात्कार और योग का साहस कैसे पाऊँ, वीणा में अवस्थित संगीत को बलात मुखरित करने की स्थिति प्रियवंद को काम्य नहीं है, वह उसे उस अद्भुत वीणा से छीनने की स्पर्धा से विरत होकर पुनः अहं के विलयन के साथ महावृक्ष को राग और समर्पण पूर्वक सम्बोधित करते हैं। वे उसकी वत्सल गोद का आह्वान करते हुए कहते हैं कि हे तुम पिता मुझे अपने शिशु की तरह सम्हालो, मेरी बालसुलभ किलकें तुम्हारे वत्सल स्पर्श की प्रसन्नता से भर जाएं। इस प्रकार प्रियंवद अपने अस्तित्व को शिशु की निश्छल प्रेममयी भावभूमि में ले आते हैं। वे उस महावृक्ष में व्याप्त संगीत का स्वर में प्रकट होने का आह्वान करते हैं। वह संगीत जो उनकी सांसो को अपनी लय से आनन्द की चरम 'विश्रांति' की भावभूमि में भरा-पूरा करेगा। वे पुनः उस महावृक्ष का आदर और प्रेम के साथ आह्वान करते हैं। यहाँ हम प्रियंवद और किरीटीतरू के बीच के वत्सल एकात्म को अनुभव कर सकते हैं। प्रियंवद वीणा के अंगी स्वरूप तरु को जो रसविद् और स्मृति और श्रुति का सार स्वरूप है, तू गा! तू गा! कह कर पुकारते हैं।

महावृक्ष अपने समस्त जीवनानुभवों व स्मृतियों सहित मुखर हो उठा है। तू गा! के मनुहार को गुनता हुआ सा वह प्रियंवद की साधना को स्वीकार कर अपनी स्मृतियों का पुनः पुनः साक्षात्कार करता प्रतीत होता है। यहाँ हम उसके विशाल और निरन्तर हुए अनुभवों की लड़ियों को क्रमशः खुलते देखते हैं। महावृक्ष की स्मृति में निर्मल प्रकृति के अनेक अनुभव हैं। विशाल वन प्रदेश के नैसर्गिक क्रियाकलापों में बदली भरे आकाश की कौंध, पत्तियों पर वर्षा की बूंदों की टप-टप ध्वनि, निस्तब्ध रात में महुए का टप-टप टपकना, शिशु पक्षियों का चौंक-चिहुंक जाना, शिलाओं पर बहते झरनों का द्रुत जल, उनका कल-कल स्वर संभार, शीतभरी रातों का कुहरा, उसे चीर कर आती गाँवों में उत्सव के वाद्य वृंद की आवाजें, गड़रिये की बांसुरी के खोये-खोये से स्वर, कठफोड़वा का अपनी लम्बी चोंच से काठ पर ठक-ठक करना, फुलसुंघनी की क्षिप्र-चंचल गतियाँ ढ़रते हुए ओसकणों का हरसिंगार बन जाना, कुंजपक्षी की ध्वनियाँ, हंसों की पंक्तियाँ, चीड़ वनों में गंध उन्मद पतंग का ठिठकना टकराना, जलप्रपातों के स्वर, इन सबके भीतर निसर्ग की मुखरता, स्वरों के गतिरूप उसकी स्मृति में उतरते हैं।

इस क्रम में हम निरंतर दृश्यों में एक सूक्ष्म बदलाव देख सकते हैं। स्मृति के ऐसे आह्वान में जीवनानुभवों के शांत मृदुल कोमल ही नहीं भीषण रूप भी हैं। ये सभी प्रकृति के रूप हैं, स्वरों में नाना वैभव से सजी प्रकृति के इन रूपों में सुदूर पहाड़ों को घेरते आक्रान्त करते बढ़ते चले आते ऐसे काले बादल हैं जो हाथियों के समूह से लगते हैं, पानी का घुमड़ कर बढ़ना, करारों का नदी में टूट कर छप-छड़ाप गिरना, आंधियों की रोषभरी हुंकार, वृक्षों की डालों का टूट कर अलग हो जाना, ओले की तीखीमार, पाले से आहत घास का टूटना, शीत जमी मिट्टी का धूप की स्निग्धता में क्रमशः कोमल होना हिमवर्षा से चोटिल धरती पर हिम के फाहे जैसे, घाटियों में गिरती चट्टानों का शोर क्रमशः धीमा और शांत होता हुआ, पहाड़ों के बीच के समतल की हरी घासों के निकट मध्यम कद के वृक्षों और तालाबों पर सुबह-शाम वन पशुओं का जुटना और शब्द करना, वे विविध स्वर भिन्न-भिन्न पुकारों से, कहीं गर्जना, कहीं घुर घुराना, चीखना, भूकना या चिचियाना, नाना पशुओं के अपने-अपने स्वर का विलक्षण मेल-जोल, तालों में छाये कुमुदिनी और कमल के पत्तों पर तेजी से जलजन्तुओं का सरक जाना, मेढक की तेज छलांगों से उत्पन्न ध्वनि, वन प्रांतर के निकट से गुजरते रास्तों पर पथिक के घोड़ों की टापें अथवा मंद स्थिर गति से चलते भैंसों के भारी खुरों की आवाजें, स्वरों का यह बहुरंगी स्वरूप सबका सब महावृक्ष की स्मृति में घुलकर घुलता गया है। अति प्रातः का वह दृश्य भी जब क्षितिज से भोर की पहली किरण झांकती है और ओस की बूंदों में उसकी सिहरन और दीप्ति उतर आती है, मधुमक्खियों के गुंजार में अलसाई सी वे दुपहरियायें जब घास-फूस की असंख्य प्रजातियों के नाना पुष्प खिल उठते हैं, शांत सी संध्याएं जब तारों से अनछुई सी सिहरने लगती हैं कुछ ऐसे जैसे आकाश में अश्रुभरी आँखों वाली असंख्य बछड़ों वाली युवा धेनुओं के आशीष उस गोधूलि बेला को पुलकन में रच रहे हों। कीरीटीतरू का अनुराग भरा स्वीकार यह है कि उस महावृक्ष ये स्वर और दृश्य अपने वैभव में अचंचल कर देते हैं, प्रत्येक स्वर वृक्ष के अस्तित्व को अपनी लय में लीन

कर लेता है, यह जीवन की विराट बहुरंगी छवियाँ हैं जो वृक्ष की अस्मिता को अपनी स्फूर्ति तरलता संगीत और तरंग में डुबा देती है। यह व्यापक व्याप्त जीवन के प्रतीक किरीटीतरू की विस्मृति या कि समाधि अवस्था है जो अपने जीवन को उस व्याप्ति और वैविध्य में घुला कर अर्थ पाती है। इसीलिए उसका सच यह है कि- 'मुझे स्मरण है पर मुझको मैं भूल गया हूँ।' यह भी कि ''मैं नहीं, नहीं मैं कहीं नहीं'', वृक्ष की यह उदात्त समाधि अवस्था प्रियंवद की चेतना को अपनी व्याप्ति और ऊँचाई सौंपती है और वे कातर होकर अपने गूंगेपन में उस स्वर ज्वार का आह्वान करते हैं। पुनः पुनः वे किरीटीतरू का उसके समृद्ध जीवनानुभवों से अखण्ड तादात्मय के लिए आवाहन करते हैं और उस समस्त अर्जित संगीत के लय में ढल कर मुखर हो उठने की मनुहार करते हैं। 'अंग' में व्यापते अंगी को प्रियंवद इस तरह पुकारते हैं।

सघन समाधि में घटित होते इस आह्वान को अज्ञेय ने उसके उदात्त के अनुरूप ही शब्द दिये हैं। एक प्रकार से यहाँ साधना से साधना तक की अंतरंग यात्रा है। प्रियंवद की साधना वज्रकीर्ति की साधना को पूरा करने के लिए उस समग्र जीवन संगीत को टोहती है जिसका वैभव अपने जीवंत वैविध्य में किरीटीतरू में बसता है। एक सम्मोहन सा यहाँ बनता दिखाई देता है। सृजन की प्रक्रिया में निहित वह रहस्यमयता जिसका आत्मिक सा संवाद ही संभव है, यहाँ जैसे उस पूरे जादू की सृष्टि करती है और वीणा बज उठती है। उस संगीत को अज्ञेय ने स्वयंभू कहा है। उसके भीतर सृष्टा का अखण्ड मौन सोता है। सबके मर्म को गहराई तक जाकर झंकृत कर देने वाले संगीत के प्रभाव को भी अज्ञेय ने कुछ ऐसे देखा है कि प्रियंवद ही नहीं, राजा रानी, प्रजा समेत सभी उसमें एक साथ डूबते हैं, बिहारी के 'तंत्रीनाद कवित्तरस' वाले दोहे में आये 'सब अंग' से डूबने के अर्थ में ही डूबते हैं। किंतु उनका तिरना और पार लगना अपनी विशिष्ट निजताओं के अर्थ में ही होता है अर्थात् सभी अपने चरम काम्य या अभीष्ट का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अज्ञेय यहाँ 'आत्मविलयन' के अपने उन्हीं आदर्शों को पुष्ट करते हैं जिनके अनुसार व्यक्तित्व को निःशेष करके समर्पित होना अर्थवान नहीं है बल्कि 'अस्मिता' के सृजनात्मक विशिष्ट अर्थ को अर्जित करने के बाद किया गया समर्पण ही मूल्यवान होता है। इस कविता में भी आप देखिए कि राजा ने जहाँ जयदेवी का मंगलगान सुना और महत्वाकांक्षा द्वेष चाटुकारिता नये-पुराने बैर से मुक्त होकर व्यक्तित्व का वह विरेचन अनुभव किया कि जिसमें धर्म ही प्रधान हो उठा और राज्य का दायित्व फूल सा हलका हो आया। इसी तरह रानी ने वस्त्राभूषणों की निरर्थकता अनुभव की, जीवन का प्रकाश केवल वह समर्पित नेह है जिसमें विश्वास है आश्वस्ति है अनन्यता है रस है। रानी भी निर्भार होती हैं। देखा जाए तो श्रोताओं ने स्वर को अपने-अपने जीवनानुभवों के अनुरूप सुना। यहाँ अज्ञेय ने साधना और रचना की जीवन सापेक्षता को देखा है। जिसका जैसा जीवन था, जिसे जो काम्य था प्रेय था, उसने उसका वैसा साक्षात्कार किया। अज्ञेय ने यहाँ काव्यात्मक ब्यौरे दिए हैं जिनका अर्थ ओझल या अमूर्त नहीं है। इस प्रक्रिया से गुजर कर 'इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी/संघीत हुई/पा गई विलय/'

अतः विलय पाना ही ध्येय है किंतु संघीत होकर विलय पाना ही श्रेयस्कर है। सभी श्रोता उस समाधिभाव से संयुक्त होकर ही संघीत हुए। प्रियंवद के साथ उन्होंने भी किरीटीतरू को उसकी समग्रता के साथ आत्मसात किया, इस तरह एक सेतु बना। अज्ञेय का बल 'महाशून्य' पर है। इस 'महाशून्य' में महामौन अवस्थित है। राजा और प्रजा की अत्यधिक प्रशंसा में भी अविचलित रहते हुए प्रियंवद ने पुनः वीणा को बजा देने का श्रेय स्वीकार नहीं किया बल्कि राजकुमार पीवों की तरह ही अपने एकांत आत्म विस्मरण, समर्पण और महाशून्य के अनिर्वचनीय अनुभव के विषय में बताया। यह भी कहा कि वही सबके भीतर है जब सब अपने भीतर उससे एकात्म होने की लय में स्थित हो जाते हैं तब वह गा उठता है। प्रियंवद ने उस 'महामौन' को अनाप्त अद्रवित और अप्रमेय जैसे विशेषण दिये हैं। इस प्रकार वह संगीत प्रियवंद सहित पूरे उपस्थित समाज को चेतना की उस उच्चतम भूमि पर ले गया जिसके कारण युग पलट गया।

इस प्रकार हम देखते है कि इस कविता में आया आख्यान पूरी तरह से रूपकात्मक है। किरीटीतरू, वज्रकीर्ति वीणा, प्रियंवद आदि सभी जीवनानुभवों की व्याप्ति तक मनुष्य की गति और उसके आत्मिक विरेचन की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। एक प्रकार से यह उत्कृष्ट रचना के लिए जरूरी जीवन सम्बद्धता की भी बात है। अज्ञेय ने रचना में सत्यान्वेषी दृष्टि के साथ धंसना स्वीकार किया है। इस सत्य को जानने और व्यक्त करने के लिए उच्चकोटि की रचनात्मक निस्पृहता को भी जरूरी माना है। इस प्रकार अज्ञेय एक आवेगमय वस्तुनिष्ठता पर भी ध्यान देते हैं।

अज्ञेय की काव्यभाषा का रूझान शब्दान्वेषण की और प्रायः देखा गया है। इस दृष्टि से वे तत्सम के अतिरिक्त तद्भव देशज यहाँ तक कि ग्रामज शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। कई बार वे शब्दों की नई अर्थछवियों को भी खोजते हैं। भाषा को अज्ञेय काव्यात्मक लचीलेपन में ढालते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अज्ञेय की काव्यभाषा उनके भाव वैविध्य को व्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम है। रुपकों, प्रतीकों के साथ-साथ नये उपमानों के प्रयोग की दृष्टि से भी अज्ञेय की काव्यभाषा समर्थ है। प्रकृति के अछूते बिंबों ने 'असाध्यवीणा' की भाषा को खास तौर पर सजाया है। 'कविता' में काव्योचित तरलता और आवेग को प्रतिफलित करने के लिए अज्ञेय ने 'गद्य' को अर्थ की लय से संवारा है। इस लय की खासियत यह है कि यह शब्दों के निकटवर्ती अंतरालों में अर्थ की व्यापक संभावनाएं भर देती है।

अभ्यास प्रश्नः 2

- अपने उत्तर नीचे दिये गए स्थानों में दीजिए।
- इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए

क) अज्ञेय के लिए ‘संवेदना’ का क्या अर्थ है?

ख) असाध्यवीणा का केन्द्रीय भाव क्या है?

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक .... है।

ख) असाध्यवीणा का निर्माण .... ने किया था।

ग) ‘आँगन के पार द्वार’ शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं

(1)............................(2) ....(3) ....

घ) ‘असाध्यवीणा’ की साधना में .... पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) ‘चक्रमितशिला’ से क्या तात्पर्य है?

ख) चीनी लोककथा के विषय में बताएं

ग) किरीटीतरू के विषय में बताएं

घ) वीणा से जुड़ने के लिए प्रियंवद ने क्या किया?

---

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) राजा ने वीणा बजाने के लिए किसे आमंत्रित किया।

i) 'पीवो' नामक राजकुमार को ii) वज्रकीर्ति को iii) प्रियंवद को

ख) सातोरी ध्यान पद्धति में ध्यान की कितनी अवस्थाएं हैं

i) दो ii)चार iii) पाँच

ग) वीणा में सोये संगीत को किस तरह जगाया गया?

i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा ii) याचना करके iii) आह्वान करके

16.6 सारांश

अज्ञेय के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके समय का वह यथार्थ है जिसने मनुष्य की रागात्मक संवेदना को सबसे ज्यादा निर्मूल किया है। मानवीय निकटताओं और हृदय की सहज स्वाभाविकताओं से कटने के लिए अभिशप्त होना उसका सबसे बड़ा संकट है। मनुष्य की चेतना और व्यवहार को खंडित करने वाले इस यथार्थ की विसंगति और प्रहार के जवाब में अज्ञेय ने उसकी रागात्मकता और सामाजिक जवाबदेही से सुसंस्कृत मानवीय रूपों के लिए संघर्ष की नई जमीन को अपने साहित्य में लगातार खोजा है। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता की अन्तर्वस्तु संवेदना और भाषा के स्तर पर संघटित व्यक्तित्व के लिए जरूरी प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति करती है।

16.7 शब्दावली

1. निर्भार	-	भार रहित
2. अभीष्ट	-	चाहा हुआ
3. स्फुरण	-	अंग का फड़कना, उमगना, उमंग पूरित होना
4. आत्म विस्मरण	-	स्वयं को भूल जाना
5. विरेचन	-	शुद्धि
6. अप्रमेय	-	जो नापा न जा सके
7. खगकुल	-	पक्षियों के समूह
8. दीर्घकाय	-	विशाल शरीर वाला
9. अभिमंत्रित	-	मंत्र द्वारा संस्कारित किया गया
10. अनिमेष	-	निरन्तर, पलक झपकाये बिना

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

1) दो-तीन पंक्तियों के उत्तर

क) 'असाध्यवीणा शीर्षक कविता का मूल मंतव्य: 'असाध्यवीणा' सृजन प्रक्रिया का रूपक है। सृजन के लिए रचनाकार का सम्पूर्ण समर्पण जरूरी है। इसके द्वारा ही वस्तु का समग्र रचनात्मक साक्षात्कार संभव है।

ख) अन्वेषण को अज्ञेय ने रचनाकार के लिए जरूरी रचनात्मक युक्ति माना है। इसके द्वारा नये भावबोध का अनुभव और उसके अनुरूप संवेदना और भाषा का नयापन संभव है।

ग) अज्ञेय ने सृजन के लिए रचनाकार में उच्चतम भावभूमि हेतु साधना को अनिवार्य माना है। इसके द्वारा वह संघटित होता है और रचनात्मक अस्मिता को भी अर्जित करता है।

घ) अज्ञेय का जन्म 07 मार्च 1911 को कुशीनगर के पुरातात्विक खनन शिविर में हुआ, इनके पिता पं. हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति:

क) ‘असाध्यवीणा’ आँगन के पार द्वार’ शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ‘उत्तर प्रियदर्शी’

ग) अज्ञेय को ‘आँगन के पार’ शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

घ) अज्ञेय, चंद्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) ‘आँगन के पार द्वार’ संग्रह की कविताओं का झुकाव उस विशिष्ट आध्यात्मिकता की ओर है जिसके केन्द्र में मनुष्य है। इसे ही अज्ञेय का नवरहस्यवाद भी कहा गया है यहाँ कवि ‘आत्म’ को असीम को धारण कर सकने की क्षमता में परिष्कृत करना चाहता है, यह ‘मम’ की ममेतर से जुड़ने की वह प्रक्रिया है जो आत्म को ‘विराटता’ और ‘विराटता’ को आत्म का वैशिष्ट्य सौंपती है।

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिताविलय का अर्थ ‘मम’ ‘ममेतर’ अर्थात ‘आत्म’ और ‘व्यापक’ का ऐसा सम्बन्ध है जिसके द्वारा ‘अस्मिता’ व्यापक में निःशेष न होकर व्यापक के प्रकाश से आलोकित सृजनात्मक और सार्थक होती है। समुद्र की सतह से हवा का बुलबुला पीने के लिए उछली मछली में केवल जिजीविषा नहीं बल्कि सागर और आकाश के विराट से जुड़ कर मिला स्पंदन भी है, इसी तरह सूर्य की किरणें एक बूंद को अपने आलोक में भर देती हैं।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) iii) तारसप्तक ख) iii) अरे यायावर रहेगा याद!

अभ्यास प्रश्न 2 :-

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर-

क) अज्ञेय के लिए संवेदना वह यंत्र है जिसके द्वारा मनुष्य शेष संसार के अर्थ और यथार्थ से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

ख) ‘असाध्यवीणा’ के केन्द्र में सृजन प्रक्रिया है जो आत्म और वस्तु के बीच सम्पूर्ण समर्पण से सम्पन्न होती है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) 'असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक चीनी लोककथा है।

ख) 'असाध्यवीणा' का निर्माण वज्रकीर्ति ने किया था।

ग) 'आँगन के पार द्वार' काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं-

(1) 'अन्तः सलिला, (2) 'चक्रान्तशिला', और (3) 'असाध्यवीणा'

घ) 'असाध्यवीणा' की साधना में सातोरी ध्यान पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'चक्रमित शिला' एक घूमती हुई शिला है जिसे अज्ञेय ने काल की गति के रूपक के रूप में ग्रहण किया है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ पियेरे-क्वि-वीर, के प्रभाव में अज्ञेय ने इसके अर्थ से संगति अनुभव की। यह चक्रमितशिला ही चक्रांतशिला है।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) iii) प्रियंवद को ख) ii)चार ग) i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा

16.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वात्स्यायन, सच्चिदानंद हीरानंद 'अज्ञेय, आँगन के पार द्वार।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या।

3. बाजपेई, नन्द दुलारे, आधुनिक साहित्य: नया साहित्य नये प्रश्न।

4. बांदिवडेकर, चंद्रकांत, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन।

5. माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता: सीमाए और संभावनाएं।

6. शाह, रमेशचन्द्र (सम्पादक), असाध्य वीणा और अज्ञेय।

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. असाध्य वीणा की रचनात्मक उपलब्धि की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई 17 मुक्तिबोध - पाठ एवम् आलोचना

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 कवि परिचय

17.3.1 रचनाकार – व्यक्तित्व

17.3.2 रचनाएँ

17.3.2.1 पद्य रचनाएँ

17.3.2.2 गद्य रचनाएँ

17.4 काव्य संवेदना

17.4.1 काव्य यात्रा का विकास

17.4.2 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवम् आस्था

17.4.3 मानवीय संवेदना

17.4.4 जीवन संघर्ष एवं संत्रास का चित्रण तथा यथार्थ बोध

17.4.5 जिजीविषा एवं आस्था

17.4.6 आत्मचेतन एवं आत्मविश्लेषण

17.4.7 मानव मूल्य

17.4.8 युग बोध

17.4.9 जीवन दर्शन - काव्य दृष्टि

17.5 शिल्प विधान

17.5.1 भाषा की सर्जनात्मकता

17.5.2 बिम्ब विधान

17.5.3 प्रतीक

17.5.4 फैंटेसी शिल्प

17.5.5 छंद एवं लय

17.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.12 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

मुक्तिबोध नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं उनका सम्पूर्ण रचना संसार समाज व्यवस्था, समकालीन सच्चाइयों, व्यवस्थागत विसंगतियों, अन्तर्विरोधों के बीच जन-जन की पीड़ा एवम् विक्षोभ का आलेख है। जिए एवं भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं मानवीय सम्भावनाओं के यर्थाथ चित्रण के कारण उनका रचना संसार समसामयिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है, मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते हुए आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। उस युगीन परिवेश को कविता में उतारा है जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत- विक्षत है। शोषण के भयानक दुष्चक्रों के बीच पिसते व्यक्ति की त्रासदी की गाथाएँ मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं के कथ्य रहे हैं। उनकी रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम मानवीय सम्भावनाओं का मार्मिक दस्तावेज हैं। वे मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के प्रति अपनी वैचारिक आस्था, शोषित पीड़ित मानवों के प्रति गहन निष्ठा एवं भविष्य के प्रति आशान्वित रहने के कारण सच्चे मानवतावादी कवि हैं।

सपने से आते हैं

किसी दिन पुराने मुहल्ले सब साफ होंगे।

मानव घुकघुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिल खिलाएगा।

(मुक्तिबोध स्वनावली भाग 2-232)

मुक्तिबोध ने संवेदना एवम् शिल्प दोनों ही धरातलों पर काव्य सर्जना की विशिष्टिताओं को मापदण्ड के रूप में साहित्य धरातल पर रखा, जिसके आधार पर समकालीन साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका तथा उसे नयी पहचान प्राप्त हो सकी। आगे के बिन्दुओं में हम मुक्तिबोध काव्य की विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मुक्तिबोध के जीवन, व्यक्तित्व, उनकी सृजन यात्रा एवम् युगीन परिवेश से परिचित हो सकेंगे।
- मुक्तिबोध की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नयी कविता के प्रमुख कवि के रूप में मुक्तिबोध की रचनाधर्मिता एवं काव्य संवेदना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विभिन्न पड़ाव तथा मानवीय मूल्य एवं मानवीय सरोकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता से परिचित हो सकेंगे।
- कवि की मूल संवेदना, युग यथार्थ के प्रति आग्रह, तनाव, अन्तर्द्वन्द जीवन संघर्ष, जनवादी काव्य दृष्टि एवं मानवीय संकल्पनाओं के प्रति आस्था आदि प्रमुख काव्य प्रवृतियों से परिचित हो सकेंगे।
- मुक्तिबोध के काव्य का शिल्प विधान, काव्य भाषा, बिम्ब विधान प्रतीक, छंद, लय तथा मुक्तिबोध के काव्य शिल्प का सबसे महत्वपूर्ण रूप फेंटेसी का शिल्प जिसे अपनाकर मुक्तिबोध ने सम्पूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति की है, आदि शिल्पगत प्रयोगों को गहराई से समझ सकेगें।
- मुक्तिबोध किन अर्थों में अपने समकालीन कवियों से भिन्न हैं? तथा नयी कविता के बीच उनका क्या महत्व है? समझ सकेंगे।
- मुक्तिबोध का नये साहित्य के प्रमुख रचनाकार के रूप में मूल्याँकन कर सकेगे।

17.3 कवि परिचय

मुक्तिबोध का पूरा नाम है गजानन माधव मुक्तिबोध, मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 की रात 2 बजे श्यौपुर जिला मुरैना में कुलकर्णी ब्राह्मण माधवराव जी के घर हुआ था। पूर्व में इनके पूर्वज महाराष्ट्र जलगाँव खान्देश में रहते थे, इनके किसी विद्वान पूर्वज ने खिलजीकाल में 'मुक्तिबोध' नाम का आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा था। कालान्तर में उसी आधार पर इनके वंशज मुक्तिबोध संज्ञा से अभिहित किए जाने लगे।

पिता श्री माधवराव मुक्तिबोध तत्कालीन ग्वालियर राज्य के पुलिस विभाग में पुलिस सब इन्सपेक्टर के पद पर कार्यरत थे। पिता के बार-बार स्थानान्तरण के कारण मुक्तिबोध की प्रारम्भिक शिक्षा अस्त व्यस्त ढंग से हुई। उन्हें उज्जैन से 1930 में दी गयी ग्वालियर बोर्ड की मिडिल परीक्षा में असफलता का मुँह देखना पड़ा। 1935 में माधव कालेज उज्जैन से इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की। 1938 में इन्दौर के होल्कर कालेज से बी0ए0 उत्तीर्ण करने के साथ कविता के प्रति रुचि बढ़ी। सन् 1939 में उन्होंने पारिवारिक असहमति एवं सामाजिक अवरोधों का तिरस्कार कर प्रेम विवाह किया। 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर मण्डी में 'शारदा शिक्षा सदन' में अध्यापक हो गये। किन्तु यहीं से उनके जीवन में दुःख, अभाव एवम् संघर्ष की कहानी की शुरूआत भी हो गयी।

1943 में हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण काव्य संकलन 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसमें मुक्तिबोध की कविताएं छपी। मुक्तिबोध इसी बीच इन्दौर से उज्जैन चले गए। बेहतर जीवन जीने की लालसा ने अध्यापकी से पत्रकारिता की ओर आकर्षित किया। पर पत्रकारिता के क्षेत्र ने उनके जीवन में अधिक भटकाव दिया। जीवन में स्थिरता की चाह में एम0ए0 की परीक्षा दी। 1959 में एम0ए0 करने के चार साल उपरान्त उनकी नियुक्ति राजनाँदगाव में प्राध्यापक के रूप में हो गयी। वहाँ का वातावरण सुखद था, अतः मुक्तिबोध ने सफलतम कविताओं की रचना यहाँ की। इन्हीं दिनों मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस', 'औराग उटांग', 'अंधेरे में' की रचना की तथा लिखा ''जिन्दगी बहुत तल्ख़ है लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना। जी होता है सारी जिन्दगी एक घूँट में पी ली जाए।'' 1962 में जीवन की एक विद्रूप घटना ने मुक्तिबोध की जीवन शक्ति को तोड़ दिया। उनकी पुस्तक 'भारत इतिहास और संस्कृति' पर मध्यप्रदेश सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी के पश्चात 17 फरवरी 1964 को मुक्तिबोध मैनिनजाइटिस नामक घातक बीमारी

से पीड़ित हो गए। उन्हें पक्षाघात का सामना करना पड़ा। अपनी अदम्य जीवन शक्ति के आधार पर वह कुछ दिनों मौत से लड़ते रहे अंततः 11 सितम्बर 1964 में मौत जीत गयी उनकी जिजीविषा मृत्यु के सम्मुख हार गयी।

17.3.1 रचनाकार का व्यक्तित्व

मुक्तिबोध के कवि तथा मुक्तिबोध एक मनुष्य के बीच किसी प्रकार की दूरी नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा था -

''गलत के खिलाफ नित

सही की तलाशमें

इतना उलझ जाता हूँ कि

जिन्दगी का जहर नहीं

लिखने की स्याही मैं

पीता हूँ।''

उनके बाह्य व्यक्तित्व के विषय में गौरीशंकर लहरी ने लिखा है ''लम्बा डील, दुबला पतला शरीर, हड्डी की प्रधानता से मांस का भाग दबा, हाथ का ऊँगलियाँ और हथेली बिल्कुल लुचई सी लचीली और मुलायम। छाती में इतने बाल कि जंगल। चेहरे में सूची भेद्य आँखें, बड़ी-बड़ी जिनमें भावुकता तथा भावावेश का टूर्नामेंट। माथा खूब फैला हुआ कि भाग्यवान के साइनबोर्ड जैसा। साँवली छब में त्वचा का स्वभावतः रंग व्यक्त होने के साथ मानव की छाती पर पड़ने वाली चोटों का व्यापक रंग चढ़ा था। समुंदर का गर्जन साथ में सिमटा- सिमटा था जो तब मालूम होता जब अनाचार, अशोभन और असंस्कृत के प्रति उनके नथुने फड़क उठते थे।''

चाय और काफी के प्यालों में डूबकर मुक्तिबोध खुद को बौद्धिक परिश्रम के लिए तैयार करते। मुक्तिबोध अत्यन्त भावुक एवं सरल प्रकृति के इंसान थे। अपने मित्रों को लिखे पत्र उनके व्यक्तित्व की भावुकता को प्रदर्शित करते हैं। मुक्तिबोध के व्यक्तित्व में विद्रोह की भावना समग्रता में विद्यमान थी। अपनी प्रवृति से वह घुमक्कड़ प्रकृति के इंसान थे। जिस प्राकृतिक

वातावरण को उन्होंने घूम कर, भटक कर देखा था उसका उपयोग उन्होंने कविताओं में किया। उन्हें जो जीवन जीने हेतु प्राप्त हुआ उसमें तनाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द, विक्षोभ, आवेग घुलते रहे तथा कविता के कैनवास पर यह सब एक विशाल फैंटेसी के रूप में उभरते गए। अपने रास्ते की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देते हुए, जीवन के कटु आघातों को हृदय पर झेलते हुए वे हमेशा सृजनरत रहे। श्री के पार्थ सारथी के शब्दों में ''वह मात्र एक मनुष्य ही नहीं थे वरन मनुष्य की एक संस्था थे। वह दार्शनिक शिक्षक, एक कवि एवं इतिहासकार थे। वह विद्वानों के बीच विद्वान राजनीतिज्ञों में राजनीतिज्ञ, शिक्षकों में शिक्षक और अपने एकान्त में और कार्य करते हुए पीड़ित मानवता की समग्रता के रूप थे। वह विरोधी प्रवृतियों के संकलन थे, वह एक रोमानी रहस्यवादी थे जो धरती के पुत्र की तरह रहते थे। वह प्रतिभाशाली, नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान धार्मिक विद्रोही थे जो जीवित परम्पराओं में आस्था रखते थे लेकिन जिन्हें रहस्यवादी मूर्च्छाओं से दूर रखना कठिन लगता था। उनके पास जीवन का गहन दर्शन था। वह निरन्तर सोचते रहे कि दुःख दैन्य जैसी जीवन की विषम परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कैसे हो और फिर भी समाज में रहना उन्हें प्रीतिकर लगता था। वह इतने अधिक व्यक्तिवादी कि किसी भी पार्टी अथवा दल में सम्मिलित नहीं हुए दूसरी ओर उनमें ऐसा व्यक्तिवाद था जो स्वयं में सारे विश्व को समाए रखता है।

किसी भी साहित्यकार के रचनाशील व्यक्तित्व के अन्तर्गत उसकी विचारधारा, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसका ज्ञान कोश, उसकी अनुभूतियाँ, उसका चरित्र, उसकी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक स्थिति, उसकी अभिरूचियाँ, उसके जीवन संघर्ष एवम् उसके व्यवहार आदि के समन्वित रूप को लिया जाता है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध की कविताओं की बनावट में उनका समग्र व्यक्तित्व अनुस्यूत है। मुक्तिबोध के शब्दों में ''जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होंगे ही और वे साहित्य में भी उतरेंगे। यह सही है कि साहित्य में आकर उनकी रूपरेखा बदल जाएगी किन्तु उनके तत्व कैसे बदलेंगे। जिन्दगी के जो रूख हैं, जो रवैये हैं, जो एटीट्यूट हैं वे साहित्य में अवश्य प्रकट होंगे।'' मुक्तिबोध से स्पष्ट कहा था कि नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म चेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। मुक्तिबोध का सृजनधर्मी व्यक्तित्व नयी प्रगति, नवीनमूल्य, जन-जन के प्रति अत्यन्त सजग एवं सतर्क है। मानवीय जीवन की विविध संकल्पनाओं से पूर्ण है। मानवीय संवेदना उनकी काव्यचेतना का मूलाधार है।

17.3.2 रचनाएँ

17.3.2.1. काव्य

- चाँद का मुँह टेड़ा है
- भूरी भूरी खाक धूल

17.3.2.2 आलोचनात्मक

- कामायनी: एक पुनर्विचार
- भारत: इतिहास और संस्कृति
- नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध
- नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र
- एक साहित्यिक की डायरी

कथा साहित्य

- काठ का सपना
- विपात्र
- सतह से ऊपर उठता आदमी

1980 में नेमिचन्द्र जैने के सम्पादकत्व में छः खण्डों में प्रकाशित 'मुक्तिबोध रचनावली' में मुक्तिबोध की समस्त रचनाएँ संग्रहित कर प्रकाशित की गयी हैं -

मुक्तिबोध रचनावली - प्रथम खण्ड - 1935 से 1956 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - द्वितीय खण्ड - 1957 से 1964 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - तृतीय खण्ड- 1936 से 1963 तक रचित कथात्मक लेख

मुक्तिबोध रचनावली - पंचम खण्ड -नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

मुक्तिबोध रचनावली - षष्टम खण्ड - पत्र पत्रिकाओं में लिखे आलेख एवं मित्रो को लिखे पत्र

अभ्यास प्रश्न 1

1. मुक्तिबोध का पूरा नाम लिखिए।

....
....
....
....

2. मुक्तिबोध के दो काव्य सग्रहों के नाम लिखिए।

....
....
....
....

3. मुक्तिबोध की कविताएँ सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के किस महत्वपूर्ण संकलन में प्रकाशित हुई?

....
....
....
....

4. तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार ने मुक्तिबोध की किस पुस्तक को प्रतिबन्धित किया।

....
....
....
....

5. मुक्तिबोध के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ बताइए।

....
....
....
....

17.4. काव्य संवेदना

17.4.1 काव्य यात्रा का विकास

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में विभिन्न चिन्तकों, विचारकों, महापुरुषों, जीवन दर्शनों से प्रभावित होकर अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण करता है। कवि तथा रचनाकार के संदर्भ में यह प्रभाव उसकी कृतियों में पूर्णतः परिलक्षित होता है। जीवन के विविध पड़ावों में विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित कवि व्यक्तित्व का निर्माण होता चला जाता है। उसकी रचनाओं का स्पष्ट विकास क्रम सामने आता है। मुक्तिबोध की सम्पूर्ण रचनाओं में उनकी उत्तरोत्तर विकासमान जीवन दृष्टि का स्पष्ट परिचय मिलता है। समय तथा जीवन दृष्टि के आधार पर मुक्तिबोध की रचनाओं को निम्न क्रम दिया जा सकता है।

1. प्रारम्भिक रचनाएँ - 1935 से 1939 तक की छायावादी जीवन दृष्टि तथा एक तरूणकवि का स्वप्निल लेखन।

2. तार सप्तक एवम् समकालीन रचनाएँ- 1940 से 1948 तक वर्गसॉ के चिन्तन से प्रभावित किन्तु एक निजी मुहावरे की खोज।

3. मुक्तिबोध की मध्यकालीन रचनाएँ- 1948से 1956 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवम् कविता की प्रखर सर्जनात्मकता।

4. मुक्तिबोध की उत्तरकालीन रचनाएँ- 1956 से 1964 तक मानवतावादी जीवन दृष्टि एवम् लम्बी कविताओं की सर्जना।

मुक्तिबोध की काव्य संवेदपना, भावबोध एवं वैचारिकता को आधार बनाकर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन इस प्रकार भी किया जा सकता है।

1. वैयक्तिक सुख-दुख से अनुप्रेरित भावप्रवण रचनाएँ।
2. वर्गसाँ के चिन्तन से प्रभावित रचनाएँ
3. मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित रचनाएँ
4. आत्मान्वेषण तथा आत्मविश्लेषण परक रचनाएँ

5. विशुद्ध मानवतावादी रचनाएँ।

मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार की भावनाओं से अभिप्रेरित हैं। मुक्तिबोध ने तार सप्तक की भूमिका में मालवे की प्राकृतिक सौन्दर्य को सृजन की आद्यप्रेरणा स्वीकार किया। जीवन में क्रियाशील तथा रचना शील होने हेतु उन्हें जिस आस्था विश्वास तथा सृजनात्मक प्रेरणा की आवश्यकता थी वह वर्गसों के जीवन दर्शन से मिला।

जाने कौन, कैसे किन स्तरों से, फूट पड़ती यह अजस्रा अश्रुधारा

जो कि उद्गम स्रोत का आदिम सम्भाले बल, कदाचित

विविध प्रान्तों, विविध देशों में बनाए कूल बहती चली जाए।

तिमिर आप्लावित जगत यह दीर्घ है सुविशाल है आगे धरा है।

अन्तःकरण का आयतन, चकमक की चिन्गारियाँ, जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे की रचना इसी प्रभाव में की गयी।

मुझे कदम कदम पर चौराहे मिलते हैं

बाहें फैलाए

एक पैर रखता हूँ कि

सौ राहें फूटती

व उन पर से गुजरना चाहता हूँ।

मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि आन्तरिक शांति के विनष्ट होने तथा शारीरिक घ्वंस के क्षणों में वर्गसाँ के व्यक्तिवादी दर्शन ने उन्हें सुरक्षा कवच प्रदान किया, पर 1942 के आस पास क्रमशः झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ, अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त, अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

17.4.2 मार्क्सवादीजीवन दृष्टि एवम् आस्था

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया मानते हैं। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित उनकी काव्य सर्जना में वर्ग चेतना मुखर हो उठी है।

वे उच्चवर्ग की साधन सम्पन्नता, भौतिक लिप्सा, मध्यवर्ग की अवसवादिता तथा खोखली जिन्दगी, निम्न मध्य वर्ग की टूटती-घुटती जिन्दगी के आलोचक थे। मार्क्सवाद के प्रति गहन रचनात्मक आस्था होते हुए भी उनकी कविता मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचारवादी भाष्य नहीं बनी क्योंकि उन्होंने काव्य सर्जना के लिए मार्क्सवाद का उपयोग नहीं किया अपितु अपनी रचना प्रक्रिया में उसे सत्य संवृत, सांसारिक अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक वस्तुपरक वैज्ञानिक संगति की खोज का आधार माना। वे मानते थे -

चाहे जिस देश प्रान्त पुर का हो

जन-जन का चेहरा एक,

एशिया की यूरोप की

कष्ट, दुख, संताप की

चेहरों पर पड़ी हुई, झुर्रियों का रूप एक।

× × × × ×

वह गरीब धुकुधुकी

कि बेनसीब धुकधुकी

अथक चलती रहती है कोरे करुण स्वरों में।

× × × × ×

मुक्तिबोध के समक्ष वास्तविकता के तिक्त, कटु संवेदन को सम्पूर्ण सच्चाई तथा भयानकता के साथ ग्रहण कर उसे अभिव्यक्ति देना एक मात्र जीवन का सत्य था। उनकी कविताएँ व्यवस्था के बीच पिसते व्यक्ति का दस्तावेज हैं। उनकी कविताएँ अनुभवों के विस्तृत फलक पर मेहनतकश, बेसहारा, शोषित, पीड़ित मानव का जीवंत यथार्थ हैं। 'जिन्दगी की रास्ता', 'भविष्य धारा', 'जमाने का चेहरा', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'सूरज के वंशधर', 'बारह बजे रात के', 'एक प्रदीर्घ कविता' आदि अनेक कविताएँ समाज विकृतियों का दर्पण हैं। इनमें नवीन समाज की स्थापना के स्वप्न भी समाए हैं।

17.4.3 मानवीय संवेदना

मुक्तिबोध का कविता संसार मानवीय स्थितियों के चित्रण का संसार है। वे मानवीय संभावनाआंे के कवि भी हैं। उनकी कविता समाज की वास्तविकता, अन्तर्विरोध, तनावों का ही चित्रण नहीं करती अपितु समाज सापेक्ष व्यक्ति की मुक्ति की प्रामाणिक खोज भी है। उन्होंने अपनी कविता को युग जीवन के मटमैले क्षितिज पर धुंधले छितरे काले मेघ बताया है। एक गहरी मानवीय संवेदना की अजस्र धारा मुक्तिबोध की कवितओं में आद्यत्त बहती रहती है। मानवीय जीवन के प्रति गहन सम्पृक्ति मुक्तिबोध की कविता की पहचान है। उनकी सम्पूर्ण आस्था, सम्पूर्ण विश्वास की धूरी मानव है जो दुख दैन्य की तपन से तप रहा है।

आह! त्याग की उत्कट प्रतिमा होरी, महतो, भोली धनिया

जाग रहे हैं

काम कर रहे हैं अब भी अपने खेतों में

× × × × ×

आँखों में तैरता है चित्र एक

उर में सँभाले दर्द

गर्भवती नारी का

जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से

कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़।

17.4.4 जीवन संघर्ष एवम् संत्रास का चित्रण तथा यथार्थबोध

मुक्तिबोध अपनी काव्य यात्रा के विकास क्रम में ज्यों ज्यों मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, उनकी कविता यथार्थोन्मुख होती चली गयी है। उनका सम्पूर्ण काव्य वर्तमान समाज व्यवस्था के वास्तविक एवम् सम्भावित रूपों का चित्रण है, जिसमें यथार्थ के ऐतिहासिक स्वरूप का ज्ञानात्मक बोध है, इतिहास की जटिल प्रक्रिया की वैज्ञानिक समझ है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत मानव की पीड़ा का दंश है। समाज तथा ऐतिहासिक अन्तर्विरोधों की स्पष्ट अनुगूँज

है। कविता यथार्थ की स्थिर दशाओं का चित्रण न होकर सामाजिक यथार्थ के विकास और परिवर्तन की प्रक्रियाओं का चित्रण है। सामाजिक यथार्थ अपनी गत्यात्मकता में मूर्तिमान हो उठा है। मुक्तिबोध की कविताएँ मात्र वैचारिक संलाप न रहकर सत्य के अनवरत क्रम से सामने आने वाले विविध दृश्य चित्र सी प्रतीत होती हैं। बीसवीं शताब्दी के पचासवें दशक का सत्य उनकी कविता का कथ्य बना है उसमें गाँव तथा बस्तियों का उजड़कर शहर बनना, मेहनतकश बन्धुआ मजदूर की वेबसी, भूख, प्यास, पीड़ा से सन्त्रासित मानवीय स्थितियाँ हैं। अनाचार, अतिचार, व्यभिचार से स्याह जीवन के विविध रंग हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, विलासिता, अवसर वादिता आदि वर्तमान समाज के किसी भी परिदृश्य को मुक्तिबोध ने अनदेखा नहीं किया है, वह युगधर्मी रचनाकार हैं, युग यथार्थ के प्रति उनकी पक्षधरता उन्हें विशिष्ट बना देती है 'चुप रहो मुझे सब कहने दो', 'अंधेरे में, हे प्रखर सत्य दो', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' इसी सत्य को उद्घाटित करने वाली रचनाएँ हैं। युग सत्य जटिल है अतः उसे उद्घाटित करना सरल नहीं। कवि लम्बी कविताओं के माध्यम से ही इसे उद्घाटित करने में सफल हो सका है। मुक्तिबोध ने सिद्ध कर दिया कि समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार सबसे बड़ा रचनाधर्म है।

मुक्तिबोध को संत्रास का कवि माना गया है क्योंकि उन्होंने जीवन के संत्रास को वाणी दी है। मुक्तिबोध ने जो अन्तर्बाहय वेदना भोगी है वही काव्य में मुखरित हो उठी। अतः काव्य में संत्रास के वीभत्स एवं भयानक चित्र भी उभरे हैं।

वे जहाँ आन्तरिक संत्रास को व्यक्त करते हैं

> पिस गया वह भीतरी
>
> औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच
>
> ऐसी ट्रेजडी है नीच।

17.4.5 जिजीविषा एवम् आस्था

मुक्तिबोध की कविताएँ संक्रान्ति युग की स्थितियों का अंकन करती हैं। वह समकालीन परिवेश का दस्तावेज हैं। समाज का वास्तविक दर्पण हैं उनमें तीक्ष्ण युग बोध हैं यंत्रणा, भूख, प्यास, दैन्य, हताशा, पीड़ा, संत्रास के भयावह चित्र हैं। किन्तु इन सबके बावजूद एक आशा है। परिवर्तन की आकांक्षा है। समाज की स्थितियों के बदलने का विश्वास है जो उन्हें चीख

चिल्लाहट का नहीं अपितु आस्था का कवि बनाती है। उन्हें सच्चा जन-जन का कवि बना देती हैं -

दीखते हैं सभी ओर

बस्ती में झिलमिलाते दीये लग गये हैं

कि जिनके प्रकाश में

शायद कुछ विद्यार्थी कहीं पढ़ रहे हैं

कि कहीं कोई बहन अपनी भाभी के लिए

नीली साड़ी में रूपहली गोट किनार लगा रही है

कि कहीं कोई पित श्री

नाती को क-ख-ग परॉच पढ़ा रहे हैं

कि कहीं कोई बालक अपनी छोटी सी गोदी में

शिशु छोटा भाई लिए तुलसी बोली में

कविताएँ गाते हुए उसे सुला रहा है

17.4.6 आत्मान्वेषण एवम् आत्मविश्लेषण

मुक्तिबोध की कविताएँ आन्तरिक संघर्ष एवम् अन्तर्द्वन्द को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उभारती हैं। कवि व्यष्टि चेतना तथा सामाजिक जीवन के द्वन्द टकराहट तथा उससे उत्पन्न तनाव एवम् मानवीय पीड़ा को आत्म विश्लेषण आत्मशोधन के माध्यम से काव्य में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। मुक्तिबोध काव्य का लक्ष्य आत्मपरिशोधन द्वारा वर्गीय चेतना पैदा करना मानते हैं। 'चकमक की चिन्गारियाँ', 'जब प्रश्नचिन्ह बौखला उठे', 'मेरे सहचर मित्र', 'ब्रह्मराक्षस औरागं उटांग-, 'अंधेरे में' इत्यादि कविताएँ आत्मान्वेषी कविताएँ हैं।

आत्म प्रताड़ना और आत्म ग्लानि की पंक्तियों से मुक्तिबोध का काव्य भरा पड़ा है -

ओ मेरे आदर्शवादी मन,

ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन

अब तक क्या किया

जीवन क्या जिया

उदरम्भि हो अनात्म बन गए

भूतों की शादी में कनात सा तन गए।

मुक्तिबोध में आत्मशोध और आत्मालोचन की प्रवृति अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है।

मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में

उमग कर जन्म लेना चाहता फिर से

कि व्यक्तित्वान्तरित होकर

नये सिरे से समझना और जीना

चाहता हूँ सच।

17.4.7 मानव मूल्य

मुक्तिबोध ने वृहद मानवीय परिप्रेक्ष्य को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। मुक्तिबोध जिस समय/काल में रचना कर रहे थे उस काल का सम्पूर्ण यथार्थ अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उनके काव्य का विषय बना। बर्गसों, मार्क्स, यथार्थबोध मानवता की विभिन्न सरणियों से गुजरती उनकी कविता मानवीय अन्तःकरण एवम् मानवीय संकल्पनाओं का काव्य बन जाती है। यद्यपि उनका काव्य संघर्ष यातना और पीड़ा का काव्य है पर उन्हें इसके भीतर जिस सौन्दर्य, समता और माधुर्य की तलाश है वह उन्हें सच्चा मानवतावादी कवि प्रमाणित कर देती है।

सपने से आते हैं कि किसी दिन

पुराने मोहल्ले सब साफ होंगे

मानव धुकधुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिलखिलाएगा।

× × × × ×

कोशिश करो

कोशिश करो

जीने की

जमीन में गड़कर भी।

मुक्तिबोध मानते हैं कि कवि रचना धर्मिता को सीधे मानवतावाद से जोड़े, वह विश्व जनता के अम्युत्थान को देखे। आज उत्पीड़न करने वाली शक्तियों से सचेत हो और उसके प्रति विद्रोह करने वाली ताकतों से सहानुभूति रखे। (नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ 37) ''साधारण जन सल्तनत नहीं चाहता, मनुष्य की स्वाभाविक गरिमा के अनुरोधों के अनुसार वह जीवन चाहता है'' (एक साहित्यिक की डायरी पृ0 132) रचनाकार का नैतिक दायित्व बनजाता है कि वह शोषित उत्पीड़ित बहुसंख्यक जनता की आशा, आकांक्षा, उसकी भूख प्यास को संवेदनात्मक रूप से अपनी आशा आकांक्षा का अभिन्न अंग बनाए। यही मुक्तिबोध की मानवीय पक्षधरता का स्वरूप है।

17.4.8 युग बोध

मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में अपने समय का तीक्ष्ण युग बोध अभिव्यक्त हुआ है, उन्होंने अपनी रचनाओं में ह्रासोन्मुखी पूँजीवादी व्यवस्था का विशद चित्रण कर मानवीय अवमूल्यन की वीभत्सता तथा इस व्यवस्था के ध्वंस की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है।

शोषण की अति मात्रा

स्वार्थों की सुख यात्रा

जब-जब सम्पन्न हुई

आत्मा से अर्थ गया

मर गयी सभ्यता।

मुक्तिबोध का काव्य स्वतंत्रता के अगले दो दशकों का जीवंत इतिहास है। जिसमें गहन मानवीय स्पन्दन है, कडुवे सत्य हैं गहरी संवेदनात्मकता है।

पूँजीवादी ह्रास के इस भैरव काल में

बादामी कागज सा प्राणहीन

दिन फीका रहता है

पुते नीले रंग से सूने आसमान में

सूरज एलुमैन का

करता है चमकने का असफल स्वांग नित।

मुक्तिबोध हिन्दी के कवियों की समकालीन पीढ़ी में सर्वाधिक युग धर्मी रचनाकार हैं। यद्यपि जब वे रचना कर रहे थे उनके काव्य को जटिल काव्य ठहरा कर लोगों ने उन्हें अन्तविरोधों का कवि सिद्ध किया। किन्तु बाद में यह निर्विवाद रूप से साबित हो गया कि मुक्तिबोध एक प्रतिबद्ध और अपने समय से जूझते जागरूक कवि हैं।

मुक्तिबोध ने व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, गुटपरस्ती, विलासिता, अवसरवादिता, दम्भ, आडम्बर, बनावटीपन इत्यादि जैसे-जैसे व्यवस्था के भीतरी तहों में पैठती जाती है वैसे-वैसे व्यक्ति मानव से पशु बनते जाते हैं।

इस नगरी में अच्छे-अच्छे

लोग हुए जाते हैं देखो

शैतानों के झबरे बच्चे

एक जमाने में जनता के आंगन में नंगे खेले थे,

जन-जन की पगडण्डी पर वे जन मन के थे,

किन्तु आज उनके चेहरे पर

विद्युत वज्र गिराने वाले

बादल की कठोर छाया है।

संवेदना तथा मूल्यों की खरीद फरोख्त में हिस्सा लेने वाले जन-जन के उत्पीड़न में व्यवस्था के सक्रिय हिस्सेदार स्वनामधन्य लोग किस प्रकार प्रभुत्वकामी तथा अवसरवादी हो उठते हैं। मुक्तिबोध ने इसका चित्रण किया है। इस प्रकार का तीक्ष्ण युगबोध ही मुक्तिबोध को समकालीन पीढ़ी से किंचित भिन्न भूमि पर स्थापित कर नयी कविता का प्रतिनिधि कवि बना देता है।

17.4.9 जीवन दर्शन तथा काव्य दृष्टि

जीवन जगत के बारे में, समाज के बारे में साहित्य और कला के विषय में एक कवि की जो दृष्टि और विचार होते हैं मोटे तौर पर उन्हें ही हम कवि की जीवन दृष्टि और काव्य दृष्टि कहते हैं और यह दृष्टि जीवनानुभवों, जीवनानुभूतियों के घात प्रतिघात से विकसित होती रूपाकार धारण करती है, मुक्तिबोध ने अत्यन्त विस्तार से साहित्य, कला और जीवन के उन प्रश्नों पर विचार किया है जिनसे जूझते हुए, जिनसे साक्षात्कार करते हुए उनकी जीवन दृष्टि का विकास हुआ। 'एक साहित्यिक की डायरी', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' तथा अन्य निबन्ध 'नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' आदि आलोचनात्मक लेखन में मुक्तिबोध ने कला का क्षण, कला की स्वायत्तता, कलात्मक अनुभूति, जीवनानुभूति, आभ्यान्तरीकरण, बाह्यीकरण, काव्य की रचना प्रक्रिया पर इतने विस्तार से विचार किया है कि मुक्तिबोध की जीवन दृष्टि एवम् काव्य दृष्टि को लेकर किसी प्रकार का संदेह नही रह जाता है।

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया मानते हैं। कविता जीवन की पुनर्रचना है। वे कला के तीन क्षण मानते हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूल्यों से पृथक हो जाना और ऐसी फैंण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैण्टसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। मुक्तिबोध कला को पूर्णतः जीवन सापेक्ष मानते हैं, कला जीवन की समस्याओं से अलग-थलग रहकर न अस्तित्व में आ सकती है और न ही जीवंत हो सकती है। अपनी वास्तविक प्राण शक्ति के लिए उसे समाज पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। कलाकार का रचनात्मक व्यक्तित्व कितना ही अद्भुत क्यों न हो उसे सामाजिक जीवन पर

अवलम्बित होना ही पड़ेगा। अतः रचना की स्वायत्तता निरपेक्ष नहीं रह सकती। कला व्यक्ति सापेक्ष है तो व्यक्ति समाज सापेक्ष। अतः कला स्वतः समाज सापेक्ष हो जाती है। इस तथ्य को मुक्तिबोध उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हैं। प्रकृति में भी हमें यही दृश्य दिखाई देता है। फूल के विकास और हास के अपने नियम और कार्य होते हैं किन्तु वह फूल अपने अस्तित्व के लिए सारे वृक्ष पर निर्भर है। मूल पर, स्कन्ध पर, शाखा पर, यहाँ तक कि पत्तियों पर भी रश्मि रासायनिक समन्वय कार्य के लिए। पुष्प की अपनी 'सापेक्ष' स्वतन्त्रता है किन्तु उसका वह पृथक अस्तित्व अन्य निर्भर, अन्य सम्बद्ध है। इस प्रकार पुष्प एवं कला की स्थिति समान है। फूल वृक्ष की मूलधारा से विलग निष्प्राण हो जाता है उसी प्रकार कला, कलाकार के व्यक्तित्व जोकि अपनी स्थिति में पूर्णतः सामाजिक है उससे विच्छित्र होकर निष्प्राण हो जाती है। (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध)

कवि मात्र दुखी के प्रति सहानुभूति कर नहीं रह जाता। वह प्रश्न करता है

जब इस गली के नुक्कड़ पर
मैंन देखी
वह फक्कड़ भूख, उदार प्यास
निःस्वार्थ तृष्णा
जीने मरने की तैयारी
वशर्ते तय करो, किस ओर हो तुम, अब
सुनहरे उर्ध्व आसन के
दबाते पक्ष में अथवा
कहीं उससे लुटी टूटी
अंधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन,
कहाँ हो तुम? (चकमक की चिंगारिया)

मुक्तिबोध साधारण जन के प्रति अपार सहानुभूति के कवि हैं। उन्होंने आत्ममुक्ति के लिए जनमुक्ति की आवश्यक मानने के साथ ही आत्मविकास के लिए जनजीवन के विकास को महती शर्त माना है।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विकास की विभिन्न स्थितियों का निरूपण दस पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

(ख) मुक्तिबोध के काव्य की वैचारिकता एवं भाव संवेदना पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....

(ग) मुक्तिबोध की काव्य की वैचारिकता का आधार मार्क्सवाद रहा। इस कथन पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....
....
....
....
....

(घ) मुक्तिबोध जीवन संघर्ष, संत्रास एवं तनाव के कवि हैं। सात आठ पंक्तियों में विचार कीजिए

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

(ङ) मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

....
....
....
....
....

(च) मुक्तिबोध मानवीय संवेदना के कवि हैं। उनकी मानवतावादी दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

....
....
....

....

....

(छ) मुक्तिबोध के जीवन दर्शन एवं काव्य दृष्टि की मीमांसा कीजिए।

....

....

....

....

....

17.5 शिल्प विधान

काव्य का सौन्दर्य उसके शिल्प पर भी निर्भर करता है, भावों के साथ अभिव्यक्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। कविता में भाव के अनुरूप शैल्पिक विन्यास की आवश्यकता पड़ती है। शिल्प वह माध्यम है जिसके द्वारा कोई संवेदना, अनुभूति, विचार अथवा भाव एक ही बार अपनी समग्रता में सम्प्रेषित हो जाता है इसके लिए कवि को कुछ जोखिम उठाने ही पड़ते हैं। मुक्तिबोध ने इन्हीं को अभिव्यक्ति के खतरे कहा है -

अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे ही मठ ओर गढ़ सब

पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार

तब कहीं देखने को मिलेंगी बाहें

जिनमें कि प्रतिपल काँपता रहता

अरुण कमल एक।

शिल्प सिफ 'फार्म' नहीं है। वह कथ्य को सम्प्रेषित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का प्रकाश होता है। शिल्प विधान के अन्तर्गत भाषा की सृजनात्मकता, प्रतीक विधान, बिम्बधर्मिता, मुक्तिबाध के संदर्भ में फैन्टेशी महत्वपूर्ण है। अतः इन प्रभावशाली उपकरणों पर क्रमशः विचार करना अपेक्षित है।

17.5.1 भाषा की सृजनात्मकता:

नयी कविता जहाँ भावों की नवीन भंगिमा का आन्दोलन है वहीं भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग का भी आन्दोलन है। पुराने संदर्भ वाले शब्दों में नया अर्थ भरना, अर्थ के आधार पर शब्द गढ़ना, कवि कर्म को शब्द की तलाश मानना नए कवियों का प्रयास रहा।

मुक्तिबोध ने अपने काव्य चेतना के अनुरूप नवीन भाषा का निर्माण किया। भाषा की परम्परा को तोड़ा। उनकी भाषा के विषय में डा0 राज नारायण मौर्य का कथन महत्वपूर्ण लगता है। ''उनकी भाषा नयी चेतना नयी धारा की तरह अपने आप मार्ग बना लेती है, वह कभी पाषाणों के नीचे दबकर, कभी पाषाणों की छाती पर चोट करती हुई, कभी ऊँचे, कभी नीचे, कभी झाड़ झंखाड़ों, खंडहरों से कमी शस्य श्यामला पुष्पित समतल भूमि से बहती हुई चलती है। वह कभी संस्कृत निष्ठ सामासिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती है, कभी अरबी फारसी तथा उर्दू के नाजुक लचीले हाथों को थामकर चलती है। कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठ कर जल्दी से खटाक खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जनसमूह के शोर गुल और धक्के मुक्के के बीच एक-एक पर दृष्टि डालती हुई रूक-रूक कर चलती है मुक्तिबोध ने अपनी इस नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें स्पष्ट रूप से मुक्तिबोधपन है। (राष्ट्रवाणी जनवरी, फरवरी 1965)

मुक्तिबोध की कविताओं में मुफलिस, रफ्तार, फजूल, रौनक, ख्याव मेहराब, नामंजूर खुदगर्ज जैसे असंख्य शब्द उर्दू फारसी से लिए गए हैं। ''भूल गलती'' जैसी कविता तो जैसे उर्दू में लिखी प्रतीत होती हो पर वह अपनी प्रभावान्विति में अप्रतिम है।

मुक्तिबोध ने अंग्रेजी, मराठी भाषा के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया। इसी प्रकार संस्कृत शब्दावली का भी प्रयोग किया।

मुक्तिबोध ने नक्षे, नक्षीदार, कन्दील, पूर, हकाल दिया, मन्ध, तिपहर, भोंगली का सहज प्रयोग कर वातावरण तैयारकिया है।

मुक्तिबोध आवश्यकतानुसार विशेषणों का निर्माण कर प्रभाव पैदा करते हैं। भुसभुसा उजाला, ऐय्यारी रोशनी, सॅवलाई किरन, सर्द अंधेरा, अजगरी मेहराव, संवलाई चाँदनी आदि के प्रयोग कविता में सहज रूप से किए गए हैं।

सामने है अंधियाला ताल और

स्याह उसी ताल पर

सँवलाई चाँदनी।

इसी प्रकार मुक्तिबोध द्वारा गणितीय शब्दावली, वैज्ञानिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। उन्होंने शब्द की परम्परा को तोड़ा। कुशल शिल्पी की तरह शब्दों को तराशा है। मुहावरों का सहज प्रयोग भी उनकी भाषा को समृद्ध बनाता है। खेत रहे, सातवाँ आसमान, साँप काट जाना, साँप सूँघ जाना आदि का प्रयोग प्रभावान्विति के लिए किया गया है।

मुक्तिबोध की भाषा में सजीवता है, और चित्रोपमता भी है। साथ ही भाषा पर उनका असाधारण अधिकार भी है। एक कुशल शिल्पी की तरह से उन्होंने शब्दों को तराश कर नयी चमक भरकर असाधारण प्रयोग किया है उनकी भाषा में आधुनिक युग की नयी चेतना की सर्वांग अभिव्यक्ति है।

मुक्तिबोध के लिए भाषा एक औजार है उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं के लिए भाषा का नाटकीय उपयोग किया है। सघन बिम्बों की माला के बाद सपाटबयानी द्वारा जीवन के यथार्थ पर, जीवन की विसंगतियों पर तीक्ष्ण आघात करते उनके शब्द चित हिन्दी साहित्य की समृद्ध धरोहर हैं। वहाँ जीवन सत्यों को उबड़ खाबड़ भाषा से भी निचोड़ा गया है एवम् माधुर्य मधुर स्पन्दनों की असंख्य करूण छवियों को भी उभारा गया है। इतना सत्य है कि मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य भाश के आभिजात्य को तोड़कर लोक जीवन की भाषा को विचार कविता के अनुकूल बनाया। शब्दों में नवीन संस्कार भर नयी अर्थ दीप्ति का मार्ग खोल दिया।

17.5.2 बिम्ब विधान

मुक्तिबोध की कविता बिम्ब धर्मी कविता है। बिम्ब अर्थात शब्द चित्र जिसमें दृश्य, ध्वनि, रंग आदि के द्वारा चित्रात्मकता खड़ी की गयी हो। बिम्ब का प्रयोग कथ्य को प्रभावशाली, सघन और आकर्षक बना देता है अमूर्त को मूर्त करने की सहज शक्ति प्रदान करता है। शमशेर सिंह की मान्यता है ''मुक्तिबोध की हर इमेज के पीछे शक्ति होती है वे हर वर्णन को दमदार अर्थपूर्ण और

चित्रमय बनाते हैं।'' एक दृश्य के उपरान्त दूसरा दृश्य, दृश्यों में विविध रंग, ध्वनियाँ वातावरण का निर्माण करती जाती है जब एक सम्पूर्ण कैनवास सा तैयार हो जाता है तब मुक्तिबोध के काव्य लक्ष्य को पूर्ण करती जाती हैं। अतः वे असंख्य शब्दचित्र जो मुक्तिबोध ने युग यथार्थ को अभिव्यक्त करने हेतु खड़े किए हैं वह उनकी कविता का सबसे प्रबल हथियार हैं। 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे में चकमक की चिन्गारियाँ, जीवनधारा, भूल गलती जैसी कविताएँ बिम्बधर्मिता के कारण ही इतनी प्रसिद्ध हुई हैं।

17.5.3 प्रतीक

मुक्तिबोध यथार्थवादी कवि हैं। समकालीन जीवन की सच्चाईयों को सामने लाने हेतु उन्होंने प्रतीकों का भरपूर उपयोग किया। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक पौराणिक प्रतीकों के अतिरिक्त वैज्ञानिक, प्राकृतिक एवं मिथक से भी प्रतीक लेकर सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। यथा चाँद (पूँजीवादी शक्ति), भैरव (शौषक वर्ग की मानसिकता), कंस (शोषक एवम् क्रूर सत्ता), डूबता चाँद (मृतप्राय पूँजीवादी व्यवस्था), अंधेरा (मध्यमवर्गीय संस्कारों की विवशता), स्याह पहाड़ (संघर्ष), बबूल (निम्न मध्यवर्ग), कमल (लक्ष्य), टीला (आत्म विवेक) के प्रतीक बन प्रयोग हुए हैं। प्रायः मुक्तिबोध की सभी कविताएँ प्रतीकात्मकता को लेकर चलती हैं।

17.5.4 फैन्टेसी शिल्प

मुक्तिबोध की कविताओं का आधार फैन्टेसी का रचना शिलप है। फैन्टेसी का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रजालिक संसार। अर्थात शब्द चित्रों के माध्यम से एक जादुई संसार खड़ा करना तत्पश्चात जीवन सत्यों का उद्घाटन करना। मुक्तिबोध के लिए फैन्टेसी एक कलात्मक सार्थकता है। कविता में यथार्थ की संश्लिष्टता, विसंगति, जटिलता सबको समेटने के लिए आवश्यक है कि कवि फैन्टेसी का आसरा ले, मुक्तिबोध के समक्षतो कठिनाई ही यह है कि उन्हें स्वप्न के भीतर एक स्वप्न, विचारधारा के भीतर एक अन्य सघन विचारधारा प्रछन्न दिखायी देती है। उन्हें पग-पग पर चौराहे, सौ सौ राहें और नव नवीन दृश्य वाले सौ-सौ विषय रोज मिलते हैं। वे एक पैर रखते हैं कि सौ राहें फूट पड़ती हैं और उन सब पर से गुजर जाना चाहते हैं। फैन्टेसी एक झीना परदा है जिसमें से जीवन तथ्य झाँक-झाँक उठते हैं। फैन्टेसी का ताना बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होने वाली विविध क्रिया प्रक्रियाओं से ही बना हुआ होता है।

शैल्पिक दृष्टि से फैन्टेसी में कवि एक विस्तृत कैनवास पर कथ्य को विविध आकारों तथा रंगों से परिवृत करता है। फैन्टेसी के शिल् के भीतर परस्पर विरोधी बातों के समाहार की सुविधा के कारण मुक्तिबोध की फैन्टीसी नुमा कविताआं में एक ओर आदिम अभिव्यंजना का खुरदुरापन है तो दूसरी ओर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की बिम्ब मालाएँ यथार्थ को तीक्ष्ण आवेग के साथ स्पष्ट करती जाती हैं

जिन्दगी के ....

कमरों में अंधेरे

लगाता है चक्कर

कोई एक लगातार

आवाज पैरों की देती है सुनायी

बार-बार .... बार-बार

पर नहीं दीखता..................... नहीं ही दीखता

किनतु वह रहा घूम

तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक

भति पार आती हुई पास से

गहन रहस्यमय अंधकार ध्वनिता

अस्तित्व जनाता

17.5.5 छंद और लय

नयी कविता छंद के प्रति किसी प्रकार का आग्रह लेकर नहीं चली। मुक्त छंद ही उसका प्रिय छंद रहा। नवीन गति, नवीन लय को नवीन ताल पर बाँध कर की गयी विचार वान अभिव्यक्ति ही नयी कविता है। मुक्तिबोध मस्तिष्क में बुनते जाते अंसख्य विचारों को फैन्टेसी के कैनवास पर रंग भरते अभिव्यक्ति देते जाते हैं और एक प्रवाहपूर्ण काव्य बनता चला जाता है। उसमें छायावाद की सी गीतात्मकता नहीं होती पर प्रश्नों की बौखलाहट होती है।

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
और मर गया
वह सघन झाड़ी के कंटीले
तम विवर में
मरे पक्षी सा विदा ही हो गया।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध के शिल्प विधान की विशेषताएँ चार पाँच पक्तियों में निरुपित कीजिए।

....
....
....
....
....

(ख)मुक्तिबोध की काव्य भाषा की विशेषताएँ बताइए।

....
....
....
....
....

(ग) मुक्तिबोध के बिम्व विधान की चर्चा कीजिए।

....
....
....
....
....

(घ) मुक्तिबोध के काव्य की प्रतीक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....

(ङ) फैन्टेसी से आप क्या समझते हैं? मुक्तिबोध ने काव्य के लिए फैंटेसी के शिल्प को क्यों चुना।

....
....
....
....
....

(च) मुक्तिबोध का काव्य क्या छंद बद्ध है? यदि नहीं तो वह कैसा है?

....
....
....
....
....

17.6 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

काव्यवाचन –

कविता परिचय

नयी कविता के प्रतिनिधि कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता उनकी भाव संवेदना तथा शिल्प विधान को समझने हेतु एक महत्वपूर्ण कविता है। इस कविता का सम्पूर्ण रचना विधान मुक्तिबोध के काव्य धर्म को सामने लाता है।

'ब्रह्मराक्षस' एक बिम्ब धर्मी, फैन्टसी के शिल्प में रचित प्रतीकात्मक कविता है। मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं जीवन में पूरी नहीं हो पाती। उसे समाज तथा व्यवस्था द्वारा ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता तो वह एक अभिशप्त, अतृप्त आत्मा बन जाती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मृत्यु के पश्चात अतृप्त आत्माएँ असंतुष्ट 'प्रेत' बन जाती है।

इस प्रकार की आत्मा अहंकेन्द्रित भी है। स्वयं के प्रति उसके कुछ भ्रम हैं जिन्हें मुक्तिबोध ने विशिष्ट वातावरण में प्रस्तुत किया है।

ब्रह्मराक्षस आज के असंतुष्ट बुद्धिजीवी का प्रतीक है।

संदर्भ सहित व्याख्या: यहाँ 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता के महत्वपूर्ण काव्यांशों की संदर्भ प्रसंग सहित व्याख्या की जा रही है।

उद्धरण 1

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ

परित्यक्त सूनी बावड़ी

के भीतरी

ठंडे अंधेरे में

बसी गहराइयाँ जल की

सीढ़ियाँ डूबी अनेकों

उस पुराने घिरे पानी में

समझ में आ न सकता हो

जैसे बात का आधार

लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर

डालें खूब उलझी हैं

खडे हैं मौन औदुंबर

व शाखों पर

लटकते घुग्घुओं के घोंसले

परित्यक्त भूरे गोल।

संदर्भ: यह काव्य पंक्तियाँ ‘ब्रह्मराक्षस’ शीर्षक कविता में से ली गयी हैं। इसके रचनाकार नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर शलाका पुरुष गजानन माधव मुक्तिबोध हैं।

प्रसंग: मुक्तिबोध जी की ‘ब्रह्मराक्षस’ एक प्रतिनिधि कविता है जो उनके काव्य संग्रह ‘चाँद का मुँह टेड़ा है’ में संकलित है। कवि ने अतृप्त असंतुष्ट आत्मा को ‘ब्रह्मराक्षस’ के रूप में वर्णित किया है। यह कविता की प्रारम्भिक काव्य पंक्तियाँ हैं जिनमें कवि ‘ब्रह्मराक्षस’ के निवास स्थल का वर्णन करता है। कवि प्रभावशाली फैन्टेसी का निर्माण करते हुए कहते हैं।

व्याख्या: शहर के एक छोर पर आबादी से कुछ दूरी पर एक खंडहर है। उसी खंडहर के पास निर्जन और सुनसान स्थान में पूरी तरह से त्यागी गयी अर्थात उपयोग में नहीं लायी जा रही एक बावड़ी (पानी का पोखर) है। उसमें अथाह जल है बावड़ी का भीतरी भाग घने अंधकार से पूर्ण है। उसका पानी गहरा, पुराना चारों ओर से ठंडे अंधेरे से घिरा है। बावड़ी की कई सीढ़ियाँ पानी में डूबी हैं जिस प्रकार कुछ रहस्यमय बातें आसानी से खुल नहीं पाती हैं पर स्पष्ट हो जाता है कि कुछ न कुछ बात अवश्य है उसी प्रकार इस बावड़ी का वातावरण इस प्रकार की प्राकृतिक परिवेश, बावड़ी का परितक्त होना रहस्य की ओर संकेत करता है उस बावड़ी को घेर कर मौन औदुम्बर अर्थात गूलर के वृक्ष खड़े हैं, जिनकी डालें एक दूसरे से उलझी हैं। वहाँ चारों ओर

निस्तब्धता का साम्राज्य है। गहन सन्नाटा है। गूलर वृक्षों की डालों पर घुग्घुओं के घोंसले लटक रहे हैं जो वातावरण को और भी गम्भीर बना रहे हैं ये घोंसले उल्लुओं ने त्याग दिए हैं ये भूरे रंग के हैं तथा गोल-गोल हैं।

विशेष:

1. कवि ने वर्णनात्मक शैली में शहर के छोर पर स्थित बावड़ी का प्रभावशाली चित्रण किया है।

2. चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

3. दृश्य बिम्ब है, जो अत्यन्त सघन है।

4. फैन्टेसी द्वारा एक ऐन्द्रजालिक संसार खड़ करने का प्रयास किया गया है।

5. बावड़ी का जा काल्पनिक चित्र खड़ा किया है वह अत्यन्त सजीव है।

6. भयानक रस की सृष्टि की गयी है।

7. कविता में प्रवाह बना रहता है तथा जिज्ञासा पैदा की गयी है।

8. भाव सादृश्य के दृष्टिकोण से भवानी प्रसाद मिश्र की 'सन्नाटा' कविता का स्मरण हो आता है।

उद्धरण 2

पिस गया वह भीतरी

औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,

ऐसी ट्रैजडी है नीच!!

बावड़ी में वह स्वयं

पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा

वह कोठरी में किस तरह

अपना गणित करता रहा

औ मर गया ....

वह सघन झाड़ी के कंटीले

तम विवर में

मरे पसी सा

विदा ही हो गया

वह जयोति अनजानी सदा को सो गयी

यह क्यों हुआ!

क्यों यह हुआ!!

मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य

होना चाहता

जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य

उसकी वेदना का स्रोत

संगत पूर्ण निष्कर्षों तलक

पहुँच सकूँ।

संदर्भ: प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रसिद्ध काव्य रचना 'ब्रह्मराक्षस' से उद्धृत हैं।

प्रसंग: 'ब्रह्मराक्षस' कविता में तीव्र आत्मविश्लेषण, आत्मपरिशोधन चलता रहता है। मानव अपने तुच्छ स्व से ऊपर उठने को सदैव संघर्षरत रहता है। नैतिक मानों की प्राप्ति के लिए बावड़ी में प्रेत आत्मा बना ब्रह्मराक्षस भी प्रयत्नशील रहता है। पर वह सफल नहीं हो पाता अन्त में वह इस संसार से चला जाता है। मुक्तिबोध ब्रह्मराक्षस के दुखपूर्ण अन्त पर गहरी करूणा और शोक

व्यक्त करते हैं। भाव, तर्क और कार्य के सामंजस्य की स्थापना का कार्य जो ब्रह्मराक्षस अधूरा छोड़ गया है, कवि उसे पूरा करने की अभिलाषा प्रकट करता है -

व्याख्या: बेचारा ब्रह्मराक्षस जीवन भर बाह्य जगत और आन्तरिक जगत के दो पाटों के बीच पिसता हुआ अपनी जीवन लीला समाप्त कर गया। कितना नृशंस और निष्ठुर है दैव विधान? जन्म भर अंधकारपूर्ण बावड़ी रूपी कोठरी में वह चिंतन के स्तर पर अपनी समस्या सुलझाने में लगा रहा। अपना गणित बैठाता रहा पर समस्या सुलझी नहीं। वह प्राक्तन बावड़ी की गहराइयों में हमेंशा के लिए मर गया। बावड़ी के चारों ओर फैली झाड़ियों के सघन अंधकार में, अंधेरी खोह में मरे हुए पक्षी सा सदा के लिए विदा हो गया। वह अपार सम्भावनाओं भरा व्यक्तित्व था। पर उसके साथ यह दुःखान्त हुआ कि वह अनजाने सदा के लिए विलीन हो गया। कवि प्राश्निक हो उठता है कि यह क्यों हुआ? पुनः समाधान के रूप में कहता है कि इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। कवि ब्रह्मराक्षस के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की अभिलाषा प्रगट करता है। वह ब्रह्मराक्षस के चलाए हुए सामंजस्य के समीकरण को, नैतिक मानों को, अन्वेषण को, और पूर्णता की खोज को आगे बढ़ाना चाहता है। इस प्रकार कवि उसके अधूरे कार्य को, जो उसकी वेदना का एक मात्र कारण था, पूर्ण करे उसकी आत्मा को संतुष्टि प्रदान करना चाहता है। उसकी वेदना का कारण जीवित रहते हुए उसके विचारों, सिद्धान्तों को सहमति प्राप्त न होना है। अतः कवि उसका शिष्य बनकर उसकी अधूरी आकांक्षाओं को पूर्ण कर उसकी आत्मा को तृप्त करना चाहता है।

विशेष:

कविता का चरम बिन्दु 'ब्रह्मराक्षस' की मृत्यु के रूप सामने आता है

मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता फैन्टेसी शिल्प का सुन्दर उदाहरण है

कविता की इन पंक्तियों में एक सन्देश दिया है। स्वस्थ, सुन्दर परम्पराएं यदि अपूर्ण रह जाती हैं तो आने वाली पीढ़ियों ने उन्हें पूर्ण कर अतृप्त आत्माओं को सन्तुष्टि प्रदान करनी चाहिए। यह उनके लिए चरम मुक्ति होगी।

17.7 सारांश

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध 'नयी कविता' के सशक्त हस्ताक्षर हैं। जिए एवम् भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं तद् सदृश सम्भावनाओं के निरपेक्ष चित्रण द्वारा कविता में पुनर्जीवित उनका रचना संसार काव्य के महत मूल्यों का निर्माण करता है, उनकी रचनाएँ नयी कविता के प्रस्तावित वस्तुगत, शिल्पगत सन्दर्भों में अधिक प्रभावशाली तथा मौलिक प्रतीत होती हैं। उन्होंने कथ्य और शिल्प के युगीन प्रतिमानों को स्वीकार करते हुए उनकी परिधि को चुनौती दी तथा काव्य सर्जना की उन विशिष्टताओं को भी मानदण्डों के रूप में स्वीकारा जिसके आधार पर साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका। नयी कविता में आधुनिक भावबोध के नाम पर जिस लघुमानवतावाद, क्षणवाद, कुंठावाद, दुःखवाद, व्यक्ति स्वातन्त्रय की प्रवृतियाँ प्रचलित की गयी, उनका भी मुक्तिबोध ने विरोध किया।

मुक्तिबोध साहित्य के सामाजिक उद्देश्य एवं समकालीन यथार्थ से जुड़ाव पर विश्वास रखते थे, उनके अनुसार आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत मानवता के भविष्य निर्माण के प्रश्न, अन्याय के खिलाफ प्रतिकार के स्वर नैतिक उत्थान के प्रयास, मुक्ति के उपाय की तलाश आदि को समाहित होना चाहिए। व्यक्ति की पीड़ा, युग की संत्रस्त एवं उत्पीड़ित मनुष्यता को नवीन दिशाएँ प्रदान करना ही वास्तविक आधुनिक बोध है।

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, उस युग को कविता में उभारा जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत विक्षत है। शोषण के भयानक कुचक्रों के बीच व्यक्ति जीवन का प्रलाप है तथा तीक्ष्ण सामाजिक अनुभवों का अंकन है किन्तु समकालीन यथार्थ का यह साक्षात्कार मानवीय भविष्य की अनंत सम्भावनाओं को लिए है।

मुक्तिबोध ने क्षणवादी जीवन दृष्टि का भी विरोध किया, वह मानते हैं कि जीवन समग्र है। वह भविष्य के प्रति आशान्वित हैं। मानव मुक्ति के प्रयत्नों को शाश्वत मानते हैं अतः उनकी जीवन दृष्टि भी शाश्वत के प्रति आस्थालु है। इसी प्रकार समकालीन रचनाकारों की कुंठा, यौन कुंठा जैसे आग्रहों से मुक्तिबोध का कोई सरोकार नहीं। वे तो जनमुक्ति के गायक हैं। मुक्तिबोध असंग दुख की बात भी नहीं करते। वे वास्तविक दुख के भोक्ता हैं अतः उनकी वेदना में सर्वजन की पीड़ा समायी है। मुक्तिबोध के काव्य में यथार्थ की तीखा बोध है चीख चिल्लाहट भी है पर वह कुंठित नहीं हैं उनका समूचा काव्य मानवीयता की गहन अनुभूतियों से परिव्याप्त है। उनकी

रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम् मानवीय सम्भावनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है। मुक्तिबोध का काव्य प्रथम दृटया थोड़ा जटिल प्रतीत होता है गूढ़ फैन्टेसी के शिल्प में कविता एक जटिल तिलस्मी वातावरण खड़ा करती है किन्तु शिल्प का विन्यास जब समझ में आ जाता है तो मुक्तिबोध समकालीन कवियों विशिष्ठ हो जाते है। वे मानवीय धारा के कवि हैं। मार्क्सवाद में उन्हें गहन आस्था थी पर वैचारिक स्तर पर वे हमेशा स्वयं को परिमार्जित, विकसित करते रहे। आत्मान्वेषण एवं आत्म परिशोधन उनके काव्य की प्रमुख भाव दशाएँ हैं वैचारिक आस्था, सामाजिक प्रतिबद्धता, पीड़ित मानवता के प्रति गहन निष्ठा, मनुष्यता के उज्जवल भविष्य के प्रति उनका आशान्वित दृष्टिकोण उन्हें नयी कविता के बीच केन्द्रीय कवि के रूप स्थापित करता है। नयी पीढ़ी के लिए मुक्तिबोध एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति हैं।

17.8 शब्दावली

मार्क्सवाद - विचारक मार्क्स के जीवन दर्शन पर आधारित विचारधारा। शोषित समाज के प्रति सहानुभूति, शोषक समाज के प्रति आक्रोश। समानमूल्यों वाले समाज की संकल्पना।

फैन्टेसी - मुक्तिबोध की कविताओं के संदर्भ में फैन्टेसी एक प्रकार का शैल्पिक विधान है। शाब्दिक रूप में एन्द्रेजालिक संसार है। पर काव्य में विशेष तरह का 'फार्म' है।

17.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

अशोक बाजपेयी -फिलहाल - राजकमल प्रकाशन

कविता के नए प्रतिमान - नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन

गजानन माधव मुक्तिबोध - सम्पादक लक्ष्मण दत्त गौतम -विद्यार्थी प्रकाशन

मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ9 जनक शर्मा - पंचशील प्रकाशन जयपुर

मुक्तिबोध का रचना संसार - पं0 गंगाप्रसाद विमल - सुषमा प्रकाशन

17.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न

   (क)गजानन माधव मुक्तिबोध

   (ख)तारसप्तक

   (ग) चाँद का मुँह टेड़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल

(घ) भारत इतिहास और संस्कृति

(ङ) देंखे – 17.3.1

17.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुक्ति बोध रचनावली- जैन, नेमीचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुक्ति बोध की कविता अपने युग समाज को बदलने की छटपटाहट से पैदा हुई है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 18 - शमशेर बहादुर सिंह : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर बहादुर सिंह
18.3.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता
18.3.2 शमशेर की काव्य-भाषा और बिम्ब
18.3.3 शमशेर बहादुर सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
18.4 शमशेर: पाठ और आलोचना
18.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ
18.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
18.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.10 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

आप एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम के तृतीय प्रश्न पत्र के चतुर्थ खण्ड का अध्ययन कर रहे हैं। यह इकाई प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह से सम्बन्धित है। आपने आधुनिक हिन्दी कविता के ऐतिहासिक विकास क्रम में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद तथा प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन का परिचय प्राप्त किया होगा। प्रगतिशील साहित्य का संबंध हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन से बहुत गहरा है। आजादी का आन्दोलन आधुनिक साहित्य की अब तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों को प्रेरित और प्रभावित करता रहा है लेकिन प्रगतिशील आन्दोलन ऐसा आंदोलन भी है जिसे हम विश्वव्यापी कह सकते हैं। यूरोप में फासीवाद के उभार के विरूद्ध संघर्ष के दौरान इस आन्दोलन का जन्म हुआ था और भारत जैसे औपनिवेशिक देशों

के लेखकों और कलाकारों ने इसे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से जोड़ दिया। इस आन्दोलन के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा की शक्ति और सोवियत संघ के निर्माण की ताकत भी लगी हुई थी। इसने साहित्य के उद्देश्य से लेकर वस्तु और रूप तक के सवालों पर नये तरह की सोच को सामने रखा, जो उस समय लेखकों और कलाकारों के बीच जीवंत बहस के मुद्दे बने। इस आन्दोलन को जनता के बीच ले जाने का श्रेय नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर तथा केदारनाथ अग्रवाल को है।

शमशेर को 'नयी कविता का प्रथम नागरिक' कहा जाता है। शमशेर की कविताएँ एक तरफ मजदूर किसानों के संघर्ष में सहभागी बनती हैं तो दूसरी तरफ नाविक विद्रोह जैसी कविताएँ भौगोलिक सीमाओं को भी तोड़ती हैं। शमशेर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध और एक समय में कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे। शमशेर की कोशिश रही है कि वे हर चीज या भावना की अपनी भाषा को, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को सामाजिक संघर्ष से जोड़ सकें। विजयदेव नारायण साही के शब्दों में ''तात्विक दृष्टि से शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। शमशेर की प्रवृत्ति सदा ही 'वस्तुपरकता' को उसके शुद्ध या मार्मिक रूप में ग्रहण करने की रही है। वे 'वस्तुपरकता' का 'आत्मपरकता' में और 'आत्मपरकता' का 'वस्तुपरकता' में आविष्कार करने वाले कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति बिम्ब की नहीं, बिम्बलोक की है।'' 'कवियों का कवि' कहे जाने वाले शमशेर ने 1934 से काव्य रचना आरंभ की। 1945 में 'नया साहित्य' के संपादन के सिलसिले में बम्बई गये। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के संगठित जीवन में सामाजिक अन्तर्विरोधों को नजदीक से देखा। उनकी दृष्टि में कला का संघर्ष सामाजिक संघर्ष और जनान्दोलनों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह के काव्यात्मक महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रगतिशील साहित्य के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर के वैशिष्ट्य को भी समझ सकेंगे। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आप प्रगतिशील साहित्य के उदय की जानकारी प्राप्त करेंगे। वैसे तो प्रगतिशील आन्दोलन में अनेक कवि सक्रिय थे लेकिन इस इकाई में हम मुख्यतः प्रगतिशील कविता और शमशेर के महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस तरह यह इकाई प्रगतिशील साहित्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देगी और शमशेर को समझने और जाँचने की दृष्टि से भी परिचित कराएगी।

18.3 प्रगतिशील काव्य और शमशेर बहादुर सिंह:

प्रगतिशील कविता का सम्बन्ध समाज के अन्तर्विरोध से है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता हमेशा एक-सी नहीं रहती। वह समय के अनुसार बदलती रहती है। प्रगतिशील कवियों ने कविता में विषयवस्तु के महत्त्व को समझते हुए यह जान लिया था कि कविता सिर्फ जनता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और प्रगतिशील विषयों पर लिखी जाकर ही महान नहीं बनती, यदि कवि की प्रतिबद्धता सच्ची और गहरी है तो वह अपनी बात को साहित्य के माध्यम से कहने के लिए अब तक आजमाए गये उपकरणों का अनुकरण नहीं करेगा बल्कि नए उपकरणों की तलाश भी करेगा। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्तंभ नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन इत्यादि में से किसी की भी कविता दूसरे की कविता का अनुकरण नहीं है। प्रगतिशील कविता की परम्परा का अध्ययन करते हुए आप पायेंगे कि विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से यहाँ विविधता भी है और बहुस्तरीयता भी। लेकिन प्रगतिशील कविता के सामने हमेशा एक केन्द्रीय मुद्दा रहा है, वह है देश की बहुसंख्यक शोषित-उत्पीड़ित जनता की वास्तविक मुक्ति। प्रगतिशील कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना छायावादी राष्ट्रीय भावना, से कई मायनों में अलग थी। इन कवियों ने जहाँ एक ओर देशभक्ति की भावना को क्रांतिकारी धार दी तो दूसरी ओर सामाजिक मुक्ति के सवाल को भी जोड़ दिया। प्रगतिशील कवियों ने साहित्य और कला को राजनीति से निरपेक्ष रखने की धारणा को भी अस्वीकार कर दिया।

प्रगतिशील कविता पर मार्क्सवाद के प्रभाव का कारण सन् 1930 के बाद की परिस्थितियाँ हैं। 1917 की सोवियत क्रांति जहाँ दुनिया भर के कलाकारों व बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया वहीं आजादी के साथ भारत विभाजन और बाद की निराशाजनक तस्वीर ने प्रगतिशील रचनाकारों को राष्ट्रीय सरकार की आलोचना करने को भी प्रेरित किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोवियत संघ ने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष को अपना समर्थन दिया और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान फासीवादी ताकतों के खिलाफ सोवियत संघ की निर्णायक जीत से प्रगतिशील ताकतों के हौसले बुलन्द हुए। प्रगतिशील लेखक संघ के गठन से पहले 1935 में 'वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ राइटर्स फार दि डिफेंस ऑफ कल्चर' के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की नींव पड़ चुकी थी जिसके कर्त्ता-धर्त्ता गोर्की, रोमाँ रोला, आन्द्रे जींद, टॉमस मान जैसे विश्वविख्यात लेखक थे। इस संस्था का निर्माण फासिज्म और साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध के लिए किया गया था। फासीवाद का उदय विश्व मानवता के लिए खतरा था। हिटलर द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के कारण दुनिया में युद्ध का भंयकर खतरा मंडराने लगा था। हिटलर ने अपने ही देश के अल्पसंख्यक यहूदियों पर बेतहाशा जुल्म ढाये और उनके सारे मानवाधिकार छिन लिये। यूरोप में फासीवाद के बढ़ते खतरे के कारण फासीवाद विरोधी जन आन्दोलनों में बढ़ोतरी हुई। दुनिया भर के लेखकों ने फासीवाद के खिलाफ संगठित होने और उसका विरोध करने का

आह्वान किया। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ (1936) के गठन को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इसका प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर बुद्धिजीवियों पर देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त से सुमित्रानन्दन पंत तक के यहाँ मार्क्स का उल्लेख श्रद्धा के साथ है। जब हिटलर की सेना सोवियत संघ में मास्को तक पहुँच गई और बाद में उसे बर्लिन तक खदेड़ दिया गया, उस ऐतिहासिक क्रांतिकारी संघर्ष को लेकर मुक्तिबोध ने 'लाल सलाम' कविता लिखी, शमशेर ने 'वाम वाम वाम दिशा' कविता द्वारा वामपंथ के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया-

'भारत का

भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये

काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ

वाम वाम वाम दिशा,

समय साम्यवादी।'

आज का समय साम्यवादी है- यह विश्वास सोवियत संघ ने दिया था तथा इसकी पहचान प्रगतिशील आन्दोलन में हुई। यदि एक ओर इसमें किसान और मजदूर सहित मेहनतकश जनता के यथार्थ का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण था, तो दूसरी ओर इसमें उच्च और मध्यवर्ग के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया गया था। यहाँ छायावाद के रोमानीपन से मुक्ति और यथार्थवाद के उत्तरोत्तर विकास को सहज ही देखा जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलनों के शोर-शराबे से दूर शमशेर निरंतर एकांत भाव से अपनी काव्य साधना में लीन रहे। काव्य भाषा, कथ्य तथा शिल्प के स्तर पर उन्होंने हमेशा प्रयोग किये। हिन्दी कविता में जिस प्रयोगशीलता का दावा, 'तारसप्तक' के प्रकाशन से किया गया, उसके प्रकाशन के पूर्व ही शमशेर की कविता में इतने प्रयोग मिलते हैं, जितना पूरे 'तारसप्तक' में दिखाई नहीं पड़ता। शमशेर की कविताओं में रोमानीपन और एकाकीपन का भाव है। इससे वे निरंतर संघर्ष करते हैं। वर्तमान अलगाव और आत्मनिर्वासन के युग में उनकी कविताएँ आत्म विस्तार में सहायक बनती हैं। यह आत्मविस्तार स्वयं कवि के यहाँ भी है, जिसकी मूल प्रेरक शक्ति मार्क्सवाद में उनकी आस्था है। उन्होंने स्वीकार किया है- ''मार्क्सवाद मेरी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्मिक और रूग्ण मनः स्थिति से उबारा।'' शमशेर ने कुछ सपाट राजनीतिक कविताएँ भी लिखी हैं लेकिन वे मूलतः सौन्दर्य के कवि हैं। उनका यह सौन्दर्य आध्यात्मिक न होकर शुद्ध ऐन्द्रिय है, जिसे उन्होंने विशिष्ट कलात्मक शैली में उपस्थित किया है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उनका सौन्दर्य जितना मानवीय है, उनका दृष्टिकोण उतना ही वस्तुवादी। शमशेर की कविताएँ मानव और प्रकृति के विराट सौन्दर्य

तथा आदमी होने की मूल शर्त से प्रतिबद्ध है। दुःख के ताप, पीड़ा और कष्टों से घिरी जिन्दगी में कवि सौन्दर्य को ही अपने सबसे निकट पाता है। जीवन, समाज और संसार की सारी कुरूपताओं के विरूद्ध वह एक सौन्दर्यमयी सृष्टि रचता है। सौन्दर्य की चेतना से उसे जीने लायक बनाता है। कवि का सौन्दर्यबोध बहुत व्यापक है। वह मात्र स्त्री-सौन्दर्य तक सीमित न होकर संपूर्ण मानवीय भावों और प्राकृतिक वस्तुओं को अपने भीतर समेटे हुए हैं। शमशेर के यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का बड़ा ही ऐंद्रिय और मांसल वर्णन हुआ है। यहाँ स्त्री-पुरूष की चिर संगिनी है, उसका ही प्रतिरूप जो नाना भाव से उसे आकर्षित करती और लुभाती है। यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का अत्यन्त ही अकुंठ चित्रण हुआ है। यह सौन्दर्य न तो रीतिकालीन कवियों की तरह सिर्फ शारीरिक है, न ही छायावादी कवियों की तरह वायवीय। वह तो अपनी सम्पूर्ण गरिमा से आकर्षित करने वाला ठोस, गतिशील और पूर्ण-सौन्दर्य है। शमशेर स्त्री-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के भी अप्रतिम चित्रकार हैं। उनकी कविताओं का वातावरण वाकई बहुत मोहक है। शमशेर की एक मुद्रा है: ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/क्यारी/भरी गेंदा की/स्वर्णारक्त/क्यारी भरी गेंदा की।/तन पर/खिली सारी/अति सुन्दर! उठाओ।'' उनकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति और प्रवृति में भी खासकर संध्या और उषा रूप से सम्बन्धित हैं। उनकी भावनाएँ प्राकृतिक बिम्बों के सहारे अभिव्यक्ति पाती हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में ''शमशेर की मूल मनोवृति एक इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार की है। इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार अपने चित्र में केवल उन अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेत शक्ति रखते हैं।'' इस प्रकार शमशेर अपनी मनोवृति को जीवन का अथाह समुंदर मापने के लिए छोड़ देते हैं। कवि की स्मृतियाँ संध्या के साथ उभरती हैं। इन्द्रिय-बोध के धरातल पर शाम कभी-कभी इतना मूर्त्त हो उठती है कि उसे छूकर देखा जा सकता है। उनकी 'उषा' शीर्षक कविता प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ शब्दों से रंगों का काम लेने की उनकी क्षमता को उजागर करती है। इस कविता में शब्द और चित्र दोनों एक दूसरे से अतिक्रमित होते हैं:

''प्रात नभ- भा बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल ज़रा-से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो।'' शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। उनकी कविता शब्दों तक सीमित नहीं होती, बल्कि ऐसे तमाम शब्द जिन्हें वे बहुत ही चुनकर, सोच-समझकर अपनी बात के लिए इस्तेमाल करते हैं- काव्यानुभावों की एक व्यापक और

जटिल दुनिया भी रचते हैं। शमशेर की प्रायः सभी कविताएँ एकालाप हैं- आन्तरिक एकलाप। शमशेर के लिए मृत्यु स्वयं काल है जिससे कतराकर निकल जाना गवारा नहीं है। इसलिये 'काल, तुझसे होड़ है मेरी: अपराजित तू-तुझमें अपराजित मैं वास करूँ।' यह होड़ है कला की काल से। नामवर सिंह ने लिखा है कि- ''अपनी कार्यशाला में शमशेर अकेले चाहे जितने हों, लोग-बाग से वह काफी भरी पूरी है। कितनी कविताएँ सिर्फ व्यक्तियों पर हैं। इतने व्यक्तियों पर शायद ही किसी कवि ने कविताएँ लिखीं हों.......शमशेर के लिए तो जैसे हाड़-मांस के जीते-जागते इंसान ही समाज है जिनका अपना चेहरा है, अपनी पहचान है, अपना सुख-दुःख है, छोटा ही सही पर सच्चा। शमशेर ऐसे ही व्यक्तियों को 'अपने पास' 'इतने पास अपने' खींच लाते हैं।''

18.3.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता: सामन्तवाद-साम्राज्यवाद-

पूँजीवाद के विरोध ने प्रगतिशील कविता को विश्वमानवता से प्रतिबद्ध किया। प्रगतिशील कविता में अगर त्रिलोचन और नागार्जुन में देशज, स्थानीय, ग्रामीण संदर्भ अधिक मुखर हैं, तो शमशेर में वैश्विक और अन्तर्राष्ट्रीय। शमशेर की कविता जिस सार्वभौम मनुष्यता को बिंबवत् धारण करती हैं, उसमें अमूर्तन उनकी मदद करता है। शमशेर चाहते हैं नागार्जुन की तरह सामाजिक और राजनीतिक कविताएँ लिखना; वे चाहते हैं त्रिलोचन की तरह किसान मन को अपनी कविताओं में टटोलना लेकिन उनका काव्य व्यक्तित्व विश्वमानवतावाद की सुदीर्घ परम्परा से जिन तत्वों को ग्रहण करता है, वे मिट्टी की देशजता से अधिक सागर और आसमान की विराट सार्वभौमता से संघटित होते हैं। शमशेर के बगैर प्रगतिशील कविता का आकाश नहीं बनता। उनकी कविता एक तरफ जन संघर्षों को आकाश से जोड़ती है तो दूसरी तरफ मुक्ति की चेतना को विराटता प्रदान करती है। उनके हृदय में जीवन संघर्ष से जूझ रहे व्यक्ति के प्रति गहरी संवेदना है। वे जन-जन को मुक्ति और एकता में विश्वास व्यक्त करते हैं- एक जनता का अमर कर/एकता का स्वर/अन्यथा स्वातंत्रय इति। शमशेर अपने व्यक्तित्व में जितने सहज और सरल रहे, अपनी कविताओं में उतने ही जटिल। वे प्रगतिवादियों के बीच लोकप्रिय रहे तो दूसरी तरफ प्रगतिवाद विरोधियों के बीच भी उतने ही लोकप्रिय रहे। शमशेर के साथ मुश्किल यह है कि वे पिछली पीढ़ी के कवि हैं, लेकिन संकलित किये गये हैं दूसरे सप्तक में। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में लिखा है कि पहले सप्तक से जिस यथार्थवादी कविता की शुरूआत हुई थी उसे दूसरे सप्तक में रूमानी प्रगीतात्मकता की तरफ मोड़ दिया गया। पहले सप्तक की कविता में जहाँ वस्तुपरकता थी वहीं दूसरे सप्तक की कविता में आत्मपरकता। शमशेर के बारे में यह निर्णय भी दिया गया कि- 'वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिये, कविताएँ उन्होंने बराबर वे लिखीं जो प्रगतिवाद को कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।' अज्ञेय ने शमशेर के बारे में लिखा है- ''वह प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ रहे लेकिन उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले कभी नहीं रहे। उन्होंने मान लिया कि हम इस आन्दोलन के साथ हैं और स्वयं उनकी कविता है, वह लगातार उसके बाहर और उसके विरूद्ध भी जाता रहा.......हम चाहें तो उन्हें बिम्बवादी और रूमानी कवि भी कह सकते हैं।'' शमशेर के बारे में एक रूढ़ि है कि वे बड़े मुश्किल कवि हैं या वे

रूपवादी हैं या वे मार्क्सवादी हैं या वे प्रयोगवादी और सुर्रियलिस्ट हैं या मुख्यतः प्रणयजीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि हैं। शायद इसीलिए वे आधुनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप बेपर्दगी नहीं कर सकते। शमशेर किसी वाद की सैद्धांतिक विचारधारा की बनी-बनाई लीक पर नहीं चलते। उन्होंने स्पष्ट कहा कि- ''मेरे कवि को किसी फार्म या शैली का सीमाबंधन स्वीकार नहीं। कौन-सी शैली चल रही है, किस वाद का युग आ गया है या चला गया है- मैंने कभी इसकी परवाह नहीं की। जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे जचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपनाया। अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही। उसके रास्ते में किसी बाहरी आग्रह का आरोप या अवरोध मैंने सहन नहीं किया।''

शमशेर की प्रगतिवादी कविताएँ सामाजिक, आर्थिक विषमता और साम्प्रदायिकता के विरूद्ध हैं। उनकी प्रगतिवादी चेतना, उत्तेजना, विद्रोह या संघर्ष की न होकर एक गहरी पिपासा लिए मानवीय प्रेम की चेतना है। इसलिये संघर्ष उनकी भाषा में नहीं बल्कि भावना में मूर्त्त हुआ है। प्रगतिवादी चेतना के कवि होते हुए भी शमशेर की पहचान मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि के रूप में होती है। उनकी सौन्दर्य चेतना कहीं-कहीं तो छायावादी सौन्दर्य चेतना का भी अतिक्रमण करती दिखाई देती है- ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि। शिथिल करूणा।'' शमशेर मूलतः रोमान के कवि हैं। छिप और बचकर कविताएँ लिखने वाले। शमशेर की आत्मा एक रोमांटिक, क्लासिकल प्रकार की है। उनका जोर संवेदनविशिष्टता और संवेदनाघात पर होता है। प्रणयजीवन के भावप्रसंगों या सूक्ष्म संवेदनाओं के बारे में जो बातें वे नहीं कहते, वे संदर्भ की दृष्टि से बहुत प्रधान हैं।

वह जब किसी दूसरे कवि की कविताओं को राजदाँ की तरह पढ़ने की सलाह देते हैं तो दरअसल अपनी कविताओं को पढ़ने का गुर सिखा रहे होते हैं:

यह कविता नहीं मात्र

मेरी डायरी है

(अपनी मौलिक स्थित में

छपाने की चीज नहीं)।

उनकी असल ताकत उन सरल उक्तियों में देखने में आती है जिनमें किसी उपमा तक का सहारा नहीं लिया जाता और जो अपनी सादगी के कारण ही मन में गहरे उतरती चली जाती है: यही अपना मकान है, जो कि था!/हाँ, यही सायबान है, जो कि था! उनकी अधिकांश कविताएँ सचमुच उनकी डायरी का ही हिस्सा हैं। उतनी ही निजी और गोपनीय या आत्मीयों के लिये पठनीय। इसी आधार पर उन्हें रूमानी और रूपवादी कवि भी कहा जाता है। मुक्तिबोध ने उन्हें 'मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि' कहा है। 'कविता को समाज की नब्ज

टटोलने का माध्यम'- मानने वाले शमशेर कविता को आत्मा की अभिव्यक्ति भी मानते हैं और आत्मा की दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य से भला कैसे विमुख रह सकती है। प्रेम शमशेर की कविताओं में सदैव- 'अंतिम विस्मय' रहा है। उनकी कविताओं में एक अद्भुत किस्म की पाकीज़गी है। यह पाकीज़गी किसी सती-सावित्री किस्म की पाकीज़गी नहीं है बल्कि एक आशिक़ की पाकीज़गी है। वे हमारे समय के सरमद हैं। उन्होंने प्रेम की पाकीज़गी को मध्ययुगीन आध्यात्मिकता के झुरमुट से निकालकर यथार्थवाद की रोशनी में ला खड़ा किया है। प्रेम का अंकुर भाव ही उनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है-

तुमको पाना है अविराम

सब मिथ्याओं में

ओ मेरी सुख

मेरी समस्त कल्पना के पीछे एक सत्य मुझ उपेक्षित को स्नेह स्वीकृत करो। शमशेर की कविताओं में व्यक्त प्रेम की निजी अनुभूतियाँ सामाजिक सम्बन्धों के गहरे लगाव को भी नये सिरे से जानने का साधन बनती हैं। उनकी कविताओं में व्यक्त रूमानियत भी पाठक को करूण वेदना से सिक्त कर देती हैं। इस संदर्भ में 'एक पीली शाम' कविता महत्त्वपूर्ण है। उनका काव्यात्मक आवेग उनकी अपनी पहल या शारीरिक लगाव से इतना आगे चला जाता है, इतना गहरा हो जाता है कि व्यक्ति सम्मुख होते हुए भी स्वयं का समूचा संदर्भ कल्पनाओं की ओट में, ओझल हो जाता है।

18.3.2 शमशेर की काव्य भाषा और बिम्ब-विधान:

शमशेर हिन्दी के उन बिरले रचनाकारों में हैं जो हिन्दी के सही मिज़ाज को पहचानते हैं। शमशेर बोलियों की शक्ति को भी पहचानते हैं। उनकी कविता में इनका असर किन्हीं आंचलिक शब्दों के प्रति मोह के रूप में नहीं आता जैसा कि त्रिलोचन में आता है। समकालीन हिन्दी उर्दू कवियों पर लिखी उनकी समीक्षाएँ उनके गहरे काव्य चिंतन और सुसंगत भाषा चिंतन का प्रमाण हैं। उन्होंने हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी दोआबी संस्कृति को विरासत में हासिल किया और उसका विकास किया। आज जब हिन्दी और उर्दू के बीच लगातार दूरी बढ़ रही है तब शमशेर ही हैं जो अधिकारपूर्वक 'हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू' की आवाज बुलन्द कर सकते हैं-

''वो अपनों की बातें वो अपनों की खू-बू

हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू

वो कोयल वो बुलबुल के मीठे तराने

हमारे सिवा इसका रस कौन जाने।”

शमशेर की काव्य भाषा अपनी प्रयोगधर्मिता में अद्वतीय है। रूप, रस, गंध और स्पर्श की एन्द्रिक अनुभूतियों को शब्द चित्रों में लाने में उनकी काव्यभाषा को अद्भुत कौशल प्राप्त है। वे शब्दों के माध्यम से बहुरंगी चित्रों को साकार कर देते हैं- ‘अक्टूबर के बादल, हल्के रंगीन अटे हैं/पत्ते संध्याओं में ठहरे हैं।’ शमशेर के यहाँ कविता का नूर ही उसका पर्दा बन जाता है। शब्द संकेत और रंग संकेत का उनके यहाँ ऐसा घोलमेल है कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा के सम्मुख कवि कर्म क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है। सरलता ही गूढ़ता का रूप ले लेती है। अपने आशय को पारदर्शी बनाने की चिंता ही उन्हें उन अथाह गहराइयों में पहुँचा देती है जहाँ तक उतरने का अक्सर लोग साहस नहीं जुटा पाते और इसलिये सरल भी गूढ़ बन जाता हैः

सरल से भी गूढ़, गूढ़तर

तत्व निकलेंगे

अमित विषमय

जब मथेगा प्रेम सागर हृदय।

शमशेर, त्रिलोचन की तरह सब कुछ कह देने और पूरा वाक्य लिखने के पक्ष में नहीं हैं। वे बिम्बों को, शब्दों को अनायास बिखेर देते हैं। इस बिखराव को वे विराम, अर्द्धविराम, डैश, डाट से नियंत्रित करने की चेष्टा करते हैं। शमशेर की कविताओं में गाढ़े, चटख और कई बार मद्धिम और उदास रंग वाले बिम्बों की अधिकता है। बिम्ब निर्माण में वे अनेक रंगों का प्रयोग करते हैं- पर एक भी चटकीला नहीं है- सब किंचित, मटमैले, धुँधले, साँवले, उदास। कहीं गुलाबी हैं तो उसका रंग कत्थई है। कहीं केसरिया है तो साँवलेपन की छाया लिये हुए; बिजली है तो कुहटिल, बादलों के पंख गेरूआ रंगें हैं। शमशेर संवेदन चित्रण मुख्यतः दो प्रकार से करते हैं। संवेदन की तीव्रता बताने के लिए वे बहुत बार नाटकीय विधान प्रस्तुत करते हैं। संवेदन के विभिन्न गुणचित्र प्रस्तुत करने के लिए वे मनः प्रतिमाओं का, इमेजेज़ का सहारा लेते हैं। ये इमेजेज़ उनके अवचेतन-अर्धचेतन से उत्पन्न होती हैं। उन इमेजेज़ में उनके अवचेतन का गहरा रंग होता है। इसके अलावा शमशेर का शब्द-संकलन अत्यंत सचेत और संवेदनानुगमी होता है। पर अक्सर बिम्ब खंडित और कभी-कभी अबूझ हो जाते हैं। उनकी कविताओं में ऐसी अमूर्त्तता है कि वह आसानी से पकड़ में नहीं आ पाती, फिर भी लोक भाषा की मिठास अद्भुत है: गाय-सानी। सन्ध्या। मुन्नी-मासी। दूध! दूध! चूल्हा आग भूख

माँ।

प्रेम।

रोटी।

मृत्यु।

केदारनाथ सिंह के शब्दों में ''जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह यह है कि उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध।'' शमशेर सूर्योदय को 'रंगीन बिम्बो से बुना हुआ जागरण का पर्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्हें बारीक़ से बारीक़ संवेदनाओं के सूक्ष्म प्रभावां की पहचान है। शमशेर संवेदनाओं के प्रसंग विशिष्ट गुणों का बहुत सफलतापूर्वक चित्रण करते हैं। वे एक ही भावप्रसंग के विभिन्न संवेदनाओं को प्रभावकारी गुणों के चित्र या चित्रों का कोलाज प्रस्तुत करते हैं। प्रातःकाल के बिम्ब की तरह शाम का भी निजी बिम्ब हैः-

नीबू का नमकीन-सा शरबत

शाम (गहरा नमकीन)

प्राचीन ईसाई चीजों-सी कुछ

राजपूताने की-सी बहुत कुछ

गहरी सोन चम्पई

सोन गोटिया शाम

शान्त

तुम्हारी साड़ी की सी शाम

बहुत परिचित।

शमशेर से अधिक मांसल बिम्ब कम कवियों ने दिये होंगे पर अभिव्यक्ति पर उनका असाधारण अधिकार, मासंलता को भी उदात्र बना देता है- वह मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए के बल खड़ी है, उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर देता है, यह सब शमशेर के अपने मन की बनावट की उपज है। विशेषत: निराला से शमशेर सूक्ष्म रूप से प्रभावित हुए हैं- सीढ़ियों की बादलों की झूलती। टहनियों-सी। शमशेर ध्यान देने वाली बात यह है कि टी.एस. इलियट की तरह शमशेर भी धार्मिक और यौन बिम्बों को एक साथ रखकर नया प्रभाव पैदा करते हैं। उनकी प्रेम कविताओं पर हल्का गौरिक रंग है। शमशेर का सरल वक्तव्य भी वक्रोक्तिपूर्ण या जटिल हो जाता है। 'एक पीली शाम' में पीलापन शाम का ही नहीं है, वह प्रेम पर भी छाया हुआ है। इस संदर्भ में प्रिय का मुख-कमल म्लान होना कविता की संरचना के भी अनुरूप है और कवि की भावना के भी। शमशेर की भाषा जहाँ-जहाँ अधिक अपारदर्शी होती है,

वहाँ-वहाँ अन्यों की तुलना में सम्प्रेषण की समस्याएँ अधिक खड़ी होती है, लेकिन अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए उन्होंने कहा है कि- ''बच्चे अपनी सब बातें समझा लेते हैं- बावजूद इसके कि वो शब्द बहुत से नहीं इस्तेमाल करते.........इसी तरह मेरी भी बहुत सी कविताएँ बच्चों जैसी अटपटी है, बहुत अटपटी है, लेकिन उसमें वो फोर्स बच्चों जैसा है।'' शमशेर के बिम्ब विधान की मौलिकता को देखना हो तो 'चाँद से थोड़ी सी गप्पे, कविता को देखना चाहिये, जिसमें चाँद के घटने बढ़ने का वस्तु बिम्ब अत्यंत प्रभावशाली है: आप घटते हैं तो घटते ही चले जाते हैं/और बढ़ते हैं तो बस यानी कि/बढ़ते ही चले जाते हैं/दम नहीं लेते हैं, जब तक बिल्कुल ही/गोल न हो जायें/बिल्कुल गोल। उनके बिम्ब विधान विलक्षण चित्रों की योजना से हैं। बिम्ब उन्हें इतने प्रिय हैं कि उनकी कविताओं के शीर्षक ही बिम्बधर्मी हो जाते हैं- 'एक पीली शाम', 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'एक नीला आइना बेठोस', पथरीली घास भरी इस पहाड़ी के ढाल पर'। उनकी कविताओं में 'नीला शंख', 'काली सिल', 'लाल केसर', 'पीली शाम', 'पीले गुलाब', 'नीला जल' जैसे विशेषणयुक्त वर्ण बिम्ब हैं। शमशेर शब्दों की आवृत्ति का जिस कुशलता से और जितने अचूक ढंगसे करते हैं, उसका तुलसीदास को छोड़कर दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है- तू किस/गहरे सागर के नीचे/के गहरे सागर/के नीचे का/गहरा सागर होकर/मिंच गया है। अथाह शिला से। शमशेर अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति की तलाश में उस चरम तक पहुँच जाते हैं जहाँ शब्द अभिप्रेत भाव का प्रतिरूप बनकर स्वयं तिरोहित हो जाते हैं। यहाँ शब्दों के सिरे से कविता को पकड़ना भी मुश्किल है और समझना भी। शमशेर की कविताओं में शब्द नहीं है, शमशेर स्वयं हैं। उनकी कविताओं को समझना शमशेर को पाना है।

18.3.3 शमशेर बहादुर सिंह: संक्षिप्त परिचय:

जन्म: 13 जनवरी, 1911 देहरादून में। प्रारंभिक शिक्षा देहरादून, गोण्डा व इलाहाबाद। 1935-36 में उकील बन्धुओं से कला महाविद्यालय में चित्रकला सीखी। 1938 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. प्रीवियस, फाइनल नहीं किया। सन् 1938 में रूपाभ पत्रिका से सम्बद्ध। 1939-1954 तक 'कहानी', 'नया साहित्य', 'माया', 'नया पथ' और 'मनोहर कहानियाँ'- कई पत्रिकाओं में सम्पादकीय कार्य से सम्बद्ध। 1965-77 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजना के अन्तर्गत 'उर्दू-हिन्दी कोश' का सम्पादन। 1981-85 तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ के अध्यक्ष रहे। 1978 में सोवियत संघ की यात्रा। रचनाएँ: 'कुछ कविताएँ'-कमच्छा-वाराणसी 1959, 'कुछ और कविताएँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1961, 'चुका भी हूँ नहीं मैं', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1975 (1977 का साहित्य अकादमी पुरस्कार), 'इतने पास अपने', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'उदिता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'बात बोलेगी', संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1981, 'काल तुझसे होड़ है मेरी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, 'कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, 'सुकून की तलाश', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1998।

निधन: 12 मई, 1993।

18.4 शमशेर: पाठ और आलोचना

18.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ

1. लौट आ, ओ धार

लौट आ, ओ धार
टूट मत ओ सांझ के पत्थर
हृदय पर
(मैं समय की एक लम्बी आह
मौन लम्बी आह)
लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
फिर
फूल में लग जा
चूमता है धूल का फूल
कोई, हाय

2. बात बोलेगी:

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।
सत्य का मुख

झूठ की आँखें

क्या- देखें !

सत्य का रूख

समय का रूख है:

अभय जनता को

सत्य की सुख है

सत्य ही सुख।

दैन्य दानव, काल

भीषण; क्रूर

स्थिति; कंगाल

बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का

क्या रंग ?

पूछो

एक संग।

एक- जनता का

दुःखः एक।

हवा में उड़ती पताकाएँ

अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।

कंगाल बुद्धिः मजूर घर भर।

एक जनता का- अमर वर:

एकता का स्वर
अन्यथा स्वातन्त्रय इति।

3. एक पीली शाम

एक पीली शाम
पत झर का जरा अटका हुआ पत्ता
शांत
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिए अद्भुत रूप- कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सांध्य तारक-सा
अतल में।

4. उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और ....
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

5. मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत
मुझको मिलते हैं अदीब और
कलाकार बहुत
लेकिन इंसान के दर्शन हैं मुहाल
दर्द की एक तड़प-
हल्के-से दर्द की एक तड़प,
सच्ची तड़प,
मैंने अगलों के यहाँ देखी है-
या तो वह आज है खामोश

तबस्सुम में जलील

या वो है क-आलूद

या तो दहशत का पता देती हैं,

या हिस्सा है,

या फिर इस दौर के खाको-खूं में

गुमगश्ता है।

6. बादलों के बीच

फ़र्श पर है सूर्य, जग है जल में

बदलों के बीच

मेरा मीत

आंखों में नहाता

और यह रूह भी गयी है बीत

यूं ही।

18.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना

शमशेर की कविताएँ आधुनिक काव्यबोध के अधिक निकट है, जहाँ पाठक तथा श्रोता के सहयोग की स्थिति को स्वीकार किया जाता है। शमशेर मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इस दृष्टि से वे अज्ञेय की परम्परा में पड़ते हैं। आप जानते हैं कि अज्ञेय की कविता में वस्तु और रूपकार दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रवृति दिखलाई पड़ती है लेकिन शमशेर और अज्ञेय में अन्तर यह है कि शमशेर के प्रयोगवाद का रथ संवेदना का धरातल नहीं छोड़ता है। बावजूद इसके शमशेर में शिल्प कौशल के प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। लोगों को शमशेर का काव्य शिल्पग्रस्त प्रतीत होता है तो इसका कारण शमशेर के कथ्य की नवीनता है। वे वास्तविक और प्रसंगबद्ध संवेदनाओं को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं। इस दृष्टि से वे आधुनिक अंग्रेज कवि एजरा पाउण्ड के नजदीक बैठते हैं। हम जानते हैं कि- आधुनिक अंग्रेजी काव्य में काव्यशैली के नये प्रयोग एजरा पाउण्ड से प्रारंभ होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह अपने वक्तव्य में एजरा पाउण्ड के

प्रभाव को मुक्त भाव से स्वीकारते भी हैं- ''टेक्नीक से एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बड़ा आदर्श बन गया।''

शमशेर आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रतिम संभावनाशील कवि हैं। वे मार्क्सवाद के प्रति आकृष्ट हैं, प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखते हैं लेकिन रचनाप्रवृति में प्रगतिवादी नहीं हैं। वे प्रयोगवादी हैं, पर मानवीय सरोकारों से विरहित प्रयोगवादी नहीं हैं। उनकी कविताओं में आत्मसंघर्ष है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का ढंग रेहटारिक किस्म का नहीं है, उनका आत्मसंघर्ष निजी है, प्राइवेट है इसलिये उसमें अद्भुत कशिश है। 'मेरी कविताओं को/अगर वो उठा सके और एक घूंट/पी सकें/अगर।' इस 'अगर' की विवेचना ही उनकी सम्पूर्ण आत्मसंघर्षी चेतना की विवेचना है। उनकी कविताएँ मानसिक जटिलता की कविताएँ हैं। वे भीतर, और भीतर घुसते जाते हैं, यहाँ तक की अचेतन मन की सीमाओं में भी प्रवेश कर जाते हैं। शमशेर ने समाज को निकट से देखा है, उसकी पीड़ा, उसकी पीड़ाएं देखी हैं, उनका यथार्थ चित्रण भी किया है लेकिन इस विश्वास के साथ कि मनुष्य एक न एक दिन नवयुग का निर्माण करने में समर्थ होगा- नया एक संघर्ष नई दुनिया का/नये मूल्यों का, नये मानव का/एशिया का नया मानव आ रहा है/ एक नया युग ला रहा है। शमशेर परिस्थितियों के भीतर प्रसंग उपस्थित करते हैं। परिस्थिति एक विशिष्ट चीज़ है, सामान्यीकृत नहीं। उनके यहाँ जीवन प्रसंग अनेक सूत्रों से, अनेक तत्वों से उलझे हुए होते हैं। यहाँ उलझे हुए सूत्र और परस्पर प्रतिक्रियाशील तत्व ज्वलन्त अग्निखण्ड से हैं। शमशेर सामान्यीकृत भावनाओं और सामान्यीकृत रूखों के कवि नहीं हैं। विशिष्टता उनकी कविता के ताने बाने के भीतर से अकुलाती रहती है।

शमशेर के पूरे काव्य शिल्प को- जिसमें यथातथ्यता, सूक्ष्मता, मितव्ययिता आदि का आदर्श उपस्थित है- वह उनकी समग्र सौन्दर्य चेतना को प्रभावित करता है। शमशेर उन दुर्लभ कवियों में हैं जो केवल जीवन के सच को लिखते हैं; मगर उनके जीवन का सच, समय और समाज के सच से न केवल सहज रूप से जुड़ जाता है बल्कि उसी में अपना विस्तार भी पाता है। शमशेर की कविता का आदर्श 'बात बोलेगी' कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है- 'बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही।' 'दैन्य-दानव, काल-भीषण, क्रूर-स्थिति, कंगाल-बुद्ध, घर-मजूर' अकेले शब्दों से पूरे संदर्भ को ध्वनित करने की कोशिश में 'सख्त कविता' का आदर्श उपस्थित हो जाता है। यहाँ कविता की संरचना उस 'मानसिक अन्तर्ग्रथन' को सामने लाती है जिससे समूची कविता एक अविभाज्य ठोस बिम्ब के रूप में प्रकाशित हो उठती है। उनकी वेदना यह है कि उच्च वर्ग और ऊँचा उठता जा रहा है, उसके पास साधनों का अम्बार लगता जा रहा है लेकिन मध्यमवर्गीय समाज बेवसी, कुण्ठा, निराशा, वेदना को झेलने के लिए अभिशप्त है। आर्थिक विषमता ने उसे और भी तोड़ दिया है। उसकी आकांक्षाएँ चूर-चूर हो रही हैं। कवि को ऐसा लगने लगता है कि मानो सारे मार्ग अवरूद्ध हो गये हों, सारे रास्ते रूक से गये हैं- जर्द आहें हैं, जर्द है यह शाम, सभी राहें हैं नाकाम।

उनके यहाँ अभिव्यक्ति और संकोच का तनाव प्रत्यक्ष है। कवि एक संकेत के द्वारा, एक काव्य बिम्ब के द्वारा, दो स्थितियों या वस्तुओं के तनाव के द्वारा शाम का जो चित्र देना चाहता है- 'एक पीली शाम/पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- वह चित्र पूरा होता है 'अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू/सान्ध्य तारक-सा/अतल में- लेकिन यहाँ अतल में गिरने के पहले संकोच का अटकाव का एक झिलमिलाता अन्तराल है जिसमें आँसू अपनी जीवितता ग्रहण करता है। यहाँ जन्म लेना, अलग होना है। अतल की ओर जाना, नितांत पराया हो जाना है। यह शमशेर की कविता की अन्यतम महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह बिल्कुल निजी और बिल्कुल पराये के बीच एक-एक क्षण को रचते हैं- जहाँ आँसू निजी भी हैं और नहीं भी हैं, पराया भी है और नहीं भी हैं। शमशेर एक ही साथ प्रवृति को भी प्रभावित करते हैं और भाव को भी। शमशेर की कविताएँ शाम और रात पर अधिक हैं। शाम उनकी मनःस्थिति को ज्यादा गहराई से व्यंजित करती है। उनके अकेलेपन व उदासी को शाम व रात पर लिखी कविताओं में देखा जा सकता है। 'आज मई की शाम अकेली', 'इन्दु विहान', 'शाम की मटमैली खपरैल', 'एक पीली शाम', 'शाम होने को हुई', तथा 'शाम-सुबह' जैसी कविताओं में उदासी का लगातार बना हुआ भाव ही व्यक्त हुआ है। 'एक पीली शाम' कविता में उदासी से परिपूर्ण उद्वेग की ही व्यंजना है। शाम का जो भाग गो-धूलि कहलाता है, वह मटमैला और पीला होता है। उसे पीली शाम कहना स्वाभाविक ही है। उसे मूर्त्त रूप देने के लिए पतझर के अटके हुए पीले पत्ते का समीकरण है। पीली शाम विस्तृत होती है। उसे पतझर के पीले पत्ते में समेटना वैसा ही है जैसे छोटे दर्पण में किसी बहुत बड़ी चीज का प्रतिबिम्ब। फिर जब कवि यह कहता है कि तुम्हारे मौन दर्पण में कहीं वह स्वयं ही तो नहीं है, तो अभिप्राय यह होता है कि वह स्वयं कृश, म्लान, हारा-सा है। इस कविता में पीला अटका हुआ पत्ता और गिरने-गिरने को अटका हुआ आंसू- ये दोनों बिम्ब कवि की निजी पीड़ा का मर्मस्पर्शी सम्प्रेषण कराते हैं। इस कविता का गहरा सम्बन्ध उनकी निजी पीड़ा से भी है। आखिरी सांसें गिनती हुई मरणासन्न पत्नी को देखते हुए संवेदनशील हृदय में भावनाओं और विछोह की पीड़ा का ज्वर कैसे उमड़ता-घुमड़ता है- इसका प्रभावशाली दृश्यांकन यहाँ सहज उपस्थित है। 'पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- शरीर में अटके हुए प्राण का प्रतीक है, लेकिन शाम का पीला होना कवि की घनीभूत वेदना का प्रतीक है। उनकी कविताओं की यह विशेषता है कि वे 'वस्तु' का सम्पूर्ण खाका या चित्र उपस्थित नहीं करते, बस उसके प्रमुख अंगों पर 'फोकस' डालकर संवेदनात्मक धरातल पर छोड़ देते हैं। उनकी कविताओं में ज्ञानेन्द्रिय विषयों- रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श के शब्द चित्र बिखरे हुए हैं।

शमशेर की काव्यानुभूति वस्तुओं के मर्म में एक ही स्थिति को पकड़ती है, 'रह गया-सा'एक सीधा बिम्ब चल रहा है/जो शान्त इंगित-सा/न जाने किधर।' ये कविताएँ गहरी सामाजिक संभावना के परिवर्तनशील बोध को कलात्मक रूप में उजागर करती हैं। शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। अपनी काव्यवस्तु के चयन और उसके शिल्प संगठन में वे बेहद सजग हैं। वास्तव में उनकी कविता सीधे सरल तरीके से सामाजिक संघर्ष की कविता नहीं

है, बल्कि उसे उनकी काव्य भाषा की बहुस्तरीयता को बेधकर ही समझा जा सकता है। बिम्ब व प्रतीक के मौलिक और कलात्मक प्रयोग से वे अपने अभिव्यक्ति कौशल को पैना बनाते हैं। उनकी कविताओं पर केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ‘‘जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध है। इसलिए शमशेर के बिम्बों को उनके ध्वनिगत संदर्भ के स्तर पर देखने-परखने की आवश्कता है।’’ शमशेर की काव्यशैली पर उर्दू काव्यशैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उर्दू ग़ज़ल के विविध शेड्स उनकी कविताओं में अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं-

कितने बादल आये, बरसे और गये

जिसके नीचे मैं पड़ा, सुलगा किया।

उनकी ग़ज़लनुमा कविताएँ प्रेम और सैंदर्य के साथ ही राजनीतिक विदू्रपताओं को भी प्रखर व्यंग्य के साथ व्यक्त करती हैं। वे न स्वयं के बारे में कुछ कहते हैं, न कविताओं के बारे में। कवि में भी वे कविता को ही बोलने देने वाले कवि हैं- बात बोलेगी, हम नहीं/भेद खोलेगी, बात ही।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. शमशेर का जन्म .... ई0 में हुआ था।
2. शमशेर को .... कहा गया है।
3. शमशेर बिम्ब ग्रहण में .... से प्रभावित है।
4. शमशेर .... सप्तक के कवि है।
5. दूसरा सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है ।

ख) संक्षेप में उत्तर दीजिए :-

1. शमशेर की दो रचनाओं के नाम बताइए।
2. शमशेर पर किस विचारधारा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

ग) टिप्पणी कीजिए :-

1. शमशेर बहादुर सिंह की कविता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. शमशेर की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. शमशेर को 'कवियों का कवि' क्यों कहा जाता है ?

4. शमशेर की कविताएँ प्रगतिवादी चेतना से भिन्न हैं- कैसे ?

18.5 सारांश

इस ईकाई में आपने प्रगतिशील काव्यान्दोलन के संदर्भ में शमशेर की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने प्रगतिशील आन्दोलन, प्रगतिवाद के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर बहादुर सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। प्रगतिशील आन्दोलन और मार्क्सवाद से उनका क्या सम्बन्ध है तथा किस प्रकार वैचारिक प्रतिबद्धता के बाद भी शमशेर काव्यात्मक बिम्बों के कवि बनते हैं साथ ही प्रयोगवाद और नयी कविता के पुरस्कर्त्ताओं में अग्रणी स्थान बनाते हैं- यहाँ इसे विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। शमशेर आत्मगत बिम्ब और आत्मा का वस्तुगत बिम्ब दोनों को एक ही साथ रचते हैं- 'एक नीला आइना/बेठोस-सी यह चाँदनी/और अन्दर चल रहा मैं/उसी के महातल के मौन में।' इस काव्यात्मक बिम्ब के सृजन में कवि का दृष्टिकोण नितांत भिन्न है। वह 'बेठोस नीले आइने' में अपने को वैसा नहीं पाता, जैसा वस्तुतः वह है। शमशेर न प्रतिछवि रचते हैं, न छायाभास ही, वे दोनों के बीच की स्थिति का बिम्ब रचते हैं। देखने की क्रिया ही बिम्ब है। शमशेर की काव्य संवेदना मूलतः रोमांटिक तथा काव्य संस्कार प्रधानता रूपवादी है। इस रोमांटिक तथा रूपवादी रूझानों के बावजूद विवेक के धरातल पर शमशेर प्रगतिशील सामाजिक चेतना के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं तथा धरती व मनुष्यता की मुक्ति के लिये संघर्ष करते हैं। शमशेर की कविताएँ प्रयोगवाद के काव्यशास्त्र को विस्तार देती हैं। वे विचारों में जितने स्पष्ट जान पड़ते हैं, काव्य प्रक्रिया में उतने ही उलझे व दुर्बोध प्रतीत होते हैं। वे अपनी कविताओं में जिस शिल्प का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः साधारण पाठक को चिंतित करता है- शिक्षित संवेदना के अभ्यास से ही उनकी अर्थवत्ता ग्रहण की जा सकती है।

शमशेर की कविता पढ़ते हुए आप देखेंगे कि कवि प्रेम और सौन्दर्य चेतना के साथ-साथ बिम्बों, कल्पनाओं, प्रतीकों के माध्यम से विश्वदृष्टि और वर्गचेतना को बदलने का संघर्ष करता है। शमशेर के शब्दों में- 'कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज नहीं हो सकती।' विषमतापूर्ण वर्तमान जीवन, दुःख और दैन्य के चक्र में पिसता जन सामान्य, जीवन के प्रत्येक उतार-चढ़ाव में जन सामान्य की स्वतंत्रता ही शमशेर की कविताओं का लक्ष्य है।

18.6 शब्दावली

1. दूसरा सप्तक : प्रकाशन 1951 (सं. अज्ञेय), संकलित कवि-भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

2. प्रगतिशील काव्यान्दोलन : 1930 के बाद नवीन सामाजिक चेतना के कारण 1936 में प्रगतिश ल लेखक संघ का गठन हुआ। प्रगतिशील काव्यान्दोलन ने अपनी विचारधारात्मक प्रेरणा मार्क्सवाद से ग्रहण की। प्रगतिशील काव्यान्दोलन किसान-मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति के साथ शोषण उत्पीड़न से मुक्ति के सामूहिक प्रयास की जरूरत पर बल देता है। इस काव्यन्दोलन को नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन व शमशेर बहादुर सिंह ने आगे बढ़ाया।

3. प्रयोगवाद: प्रयोगवाद का आरंभ अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'तार सप्तक' (1943) से माना जाता है। 'प्रयोगवाद' नाम प्रगतिशील विचारधारा के विरोध में दिया गया, क्योंकि जहाँ प्रगतिवाद में सामाजिक मुक्ति का सवाल महत्त्वपूर्ण था वहीं 'व्यक्ति स्वातंत्रय' की वकालत कर प्रयोगवाद के माध्यम से सामाजिक मुक्ति का विरोध हुआ। प्रयोगवाद ने हिन्दी कविता में रूपवाद (व्यक्तिवाद) को मजबूत आधार दे दिया। प्रयोगवाद मानव जीवन के आंतरिक यथार्थ पर बल देने के कारण अनास्था, संदेह, व्यक्तिवाद व बौद्धिकता का झूठा मुखौठा लगाकर प्रयोग का आग्रह सहित साहित्यिक मूल्यों तक सीमित रहा तथा मूलतः शिल्प की चमक-दमक का आन्दोलन बन गया।

4. बिम्बवाद : बिम्ब अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है चित्रण करना या मानसी प्रतिकृति उतारना। बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है। बिम्ब शब्दों में निर्मित आकृति है। केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ''बिम्ब शब्द के अर्थ में क्रमशः विकास हुआ है। आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में जो अर्थ उसे दिया गया है वह अपेक्षाकृत नया है। सामान्यतः उसका प्रयोग मूर्तिमता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है।'' काव्य बिम्ब का मुख्य कार्य सम्प्रेषणीयता है। वह विषय को स्पष्ट करता है, दृश्य, भाव या व्यापार को स्पष्ट करता है। बिम्बवादी विचारधारा का प्रवर्तक टी.ई. इल्मे हैं लेकिन बिम्बवाद का विकास एजरा पाउण्ड के माध्यम से हुआ। बिम्बवादियों का उद्देश्य कविता को एक नयी दिशा देना है।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 1. 1911 2. कवियों का कवि 3. एजरा पाउंड

4. द्वितीय तारसप्तक 5. 1951

ख) 1. चूका भी नही हूँ मैं, इतने पास अपने 2. मार्क्सवाद

18.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शमशेर: प्रतिनिधि कविताएँ 2008, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. श्रीवास्तव, सं0 परमानन्द, दिशान्तर (1999) , अनुराग प्रकाशन, काशी।

3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. नवल, डॉ. नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता (1993), अनुपम प्रकाशन, पटना।

5. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग, वाणी प्रकाशन (1996), नई दिल्ली।

18.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नई कविता और अस्तित्ववाद।

3. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. वाजपेयी, अशोक, फिलहाल।

5. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शमशेर बहादुर सिंह की काव्य चेतना और शिल्प गठन पर प्रकाश डालिये।

2. प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर का महत्त्व पर विचार प्रस्तुत कीजिये

3. शमशेर की काव्यभाषा और बिम्ब विधान का महत्व बताइये।

4. शमशेर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की चेतना से भिन्न किस्म के कवि हैं- कैसे?

5. शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं की अन्तर्वस्तु का महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 19 श्रीकांत वर्मा : पाठ और आलोचना

इकाई की रुपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा
19.3.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता
19.3.2 श्रीकांत वर्मा: नई काव्य भाषा की तलाश
19.3.3 श्रीकांत वर्मा: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
19.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना
19.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ
19.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
19.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने समकालीन कविता और शमशेर बहादुर सिंह का अध्ययन किया समकालीन कविता गहरे अर्थ में राजनीतिक कविता है। उस पीढ़ी के अधिकांश कवियों ने समय-समाज-राजनीति की चिंताओं-तनावों का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया, इन कवियों ने अपने समय-समाज की स्थिति से क्षुब्ध होकर नितांत तात्कालिकता को रचना में उतारने का यत्न किया, परिणाम यह हुआ कि इनका ऐतिहासिक विवेक कुंद होता गया और भाषा जातीय स्मृति के गहरे बोध से कटती गई। वह दौर मोहभंग का भी है और स्मृतिभ्रंश का भी। धीरे-धीरे काव्यभाषा में सपाटता सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आती गई। अकविता के चीखते काव्य मुहावरे यौन क्रांति की आवाज बनते गये, नवगीतकारों का दौर अबौद्धिक स्थितियों का शिकार होता गया, नववामपंथी-जनवादी कविताओं की नारेबाजी अकाव्यात्मक लगने लगी- जैसे कविता राजनीतिक दलदल में फँसकर गहरी सांस्कृतिक जड़ों और वैचारिक स्थितियों की धूरी से उतरने लगी। इस निराशा, घुटन, अराजकता और मूल्यहीनता के माहौल में अमरीकी कवि एलिन गिन्सबर्ग 1962-63 में भारत आया, उसका स्थायी निवास बनारस था

लेकिन उसके यौनवाद का प्रभाव युवा कवियों पर पड़ा। गिन्सबर्ग का 'हाउल' युवा कवियों का 'धर्मग्रंथ' बन गया ऊब, उपभोक्तावाद और यौन-विकृतियों की बजबजाहट के वीभत्स चित्र 'मुक्तिप्रसंग' और 'कांकावती' में देखे जा सकते हैं। डॉ0 नन्दकिशोर नवल ने इस दौर को 'नयी विद्रोही पीढ़ी की कविता' नाम दिया है- जिसके प्रसिद्ध कवि हैं श्रीकांत वर्मा (1931-1986) और धूमिल (1931-86)। सातवें दशक की हिन्दी कविता में सीमाओं का अतिक्रमण कर विद्रोह की एक नयी भूमि निर्मित करने वालों में श्रीकांत वर्मा महत्वपूर्ण कवि हैं।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप सातवें दशक के महत्त्वपूर्ण कवि श्रीकांत वर्मा की कविता में अभिव्यक्त समकालीन वास्तविकता की तीखी चेतना का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप देखेंगे कि सन् 60 के बाद की हिन्दी कविता में श्रीकांत वर्मा किस प्रकार नयी चेतना का विकास करते हैं। यह इकाई सातवें दशक की कविता के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ श्रीकांत वर्मा और आधुनिकतावादी काव्य मुहावरों से भी परिचित करायेगी।

19.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा

सातवें दशक की कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनीतिक जीवन के पाखण्ड, स्वार्थपरता, अंतर्विरोध, हताशा और विद्रूपता को बहुत ही नंगी और बेलौस भाषा में उजागर किया; इस कविता को 'मोहभंग की कविता' मात्र कहना उचित नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता-प्राप्ति से मोह तो नई कविता के कवियों को हुआ था इसलिए बदली हुई परिस्थितियों में यथार्थ के साक्षात्कार से मोहभंग उन्हीं का हुआ है। नये कवि न स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा लिये थे, न उसके आदर्शों से प्रभावित थे और न उससे उम्मीद ही लगाए थे। उन्होंने तो स्वाधीन भारत के भ्रष्ट और हताशाग्रस्त वातावरण में ही आंखे खोली थीं, इसलिये वे केवल विद्रोही थे, अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ के प्रति आक्रोश और अस्वीकार का भाव रखने वाले थे । डॉ0 नामवर सिंह ने आलोचना के मार्च 1968 के अंक में युवालेखन पर बहस का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए इसकी ताईद की और इस तरह मोहभंग की कविता की जगह 'युवा कविता' शब्द प्रचलन में आया। इन युवा कवियों ने राजनीति, राजनीतिक दल, विचार-भाव और जनता से नए ढंग का सम्बंध स्थापित किया और राजनीतिक कविता लिखते हुए भी अपनी सृजनात्मक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की कोशिश की, बल्कि उसी के बल पर उन्होंने प्रगतिशील राजनीतिक कवियों से अलग एक नई किस्म के राजनीतिक कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई।

मोहभंग की प्रक्रिया सबसे अधिक तीखे रूप में सबसे पहले श्रीकांत वर्मा में दिखलाई पड़ी- ‘मायादर्पण’ संग्रह (1957) में। यह संग्रह उनके पहले काव्य संग्रह ‘भटका मेघ’ (1957’ के ठीक दस साल बाद प्रकाशित हुआ, जिसमें वे बिल्कुल बदले हुए रूप में सामने आए। ‘मायादर्पण’ में श्रीकांत वर्मा ने घोषणा की कि.... ‘‘सारे संसार में सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं/क्या मैं भी दिन गिनूँ ?/अपने निरानन्द में/रेंक और भाग और लीद रहे गधे से/मैं पूछकर/आगे बढ़ जाता हूँ/मगर ख़बरदार! मुझे कवि मत कहो।/मैं बकता नही हूँ कविताएँ/इज़ाद करता हूँ /गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/ मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ/मैं थकता नहीं हूँ /कोसते।’’ श्रीकांत वर्मा ने कविता का विषय बनाया, चारों ओर से मूल्यहीन और क्रूरतापूर्ण संसार को, जिसमें जीने के लिए वे विवश थे। उन्होंने इस परिस्थिति को ‘मृत्यु’ नाम दिया और ‘अवसाद’ को अपनी कविता का स्थायी भाव बनाया। यही वह समय था, जबकि राजनीति में लोहिया की लोकप्रियता बढ़ी थी और वे अपने गैर-कांग्रेसवाद के नारे को युवा लेखकों में ‘व्यवस्था का विरोध’ के नारे में तब्दील कराने में सफल हुए थे। यह मोहभंग की प्रक्रिया को चरम तक पहुँचना ही था, जिसमें सारा जोर इस बात पर था कि यथास्थितिवाद टूटे और स्थिति बेहतर हो। मलयज ने लिखा है कि ‘‘नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र-असंतोष, घेराव और दल-बदल में आम आदमी की ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झण्डा पार्टी-सिद्धांतों के चिथड़े को मिलाकर बनाया गया हो, वहाँ मोहभंग की गुंजाइश रह ही नहीं जाती। आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से शुरू होती है।’’ श्रीकांत वर्मा की कविताएँ बुनियादी तौर पर इसी कटुस्थितियों-परिस्थितियों की सच्चाई की साक्षात्कार की कविताएँ हैं। उनके प्रारंभिक काव्य संग्रहों-भटका मेघ, मायादर्पण, दिनारंभ, जलसाघर में आत्मरति और आत्मश्लाधा भाव की प्रधानता है, भीड़ से नफरत और घृणा का भाव है। इन संग्रहों में यौन विकृतियों की बजबजाहट भी कम नहीं- जैसे ‘स्त्रियाँ जो प्रेमिका नहीं थीं न वेश्याएँ/बिस्तर पर/छाप की तरह/दूसरे सबेरे धूल जाती हैं।’ या ‘जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझा कर’- यह सब इस बात का लक्षण है कि इन रचनाओं में ऊब, अनिर्णयात्मकता, आक्रामकता, विडम्बना, यौन-विकृति- यह सब आधुनिकतावाद का प्रतिफलन है, लेकिन ‘मगध’ संग्रह की कविताओं में शांति है, ठहराव है, सोच है, रास्ते की खोज है और ऐतिहासिक अतीत को वर्तमान की असंगति से जोड़ने का प्रयास भी है। यह प्रयास ‘जलसाघर’ कविता में भी है:

‘‘बार-बार पैदा होती है आशंका, बार-बार मरता है

वंश।

क्या मैं इसी प्रकार, बिल्कुल बेलाग, यहाँ से

गुज़र जाऊँ ?

हे ईश्वर! मुझको क्षमा करना, निर्णय

कल लूँगा, जब

निर्णय हो चुका होगा"

श्रीकान्त वर्मा जिस भटकाव और अस्तित्ववादी अवसाद के दौर में कविता करते हैं, उसमें 'इसके बाद कुछ भी कहना बेकार है।' कोई भी जगह नहीं रही/रहने के लायक/न मैं आत्महत्या कर कर सकता हूँ/न औरों का/खून! न मैं तुमको जख्मी/कर सकता हूँ /न तुम मुझे/निरस्त्र।/तुम जाओ अपने बहिश्त में/मैं जाता हूँ/अपने जहन्नुम में। यहाँ समय-समाज की चुनौतियों से उपजी बौद्धिक चिन्ताओं का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम हुआ है। ये कविताएँ अपनी काव्य संवेदना में इतनी धारदार, निर्भय और व्यापक हैं कि उसमें न केवल राजनीतिक-आर्थिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्यवक्रोक्तियाँ, खीझ-आक्रोश-गुस्सा-विद्रोह की मुद्राएँ हैं- वरन् मानवीय सार्थकता के सारे सरोकार सक्रिय हो उठे हैं। ऐसे में लोकतंत्र में विश्वास कायम रखना मुश्किल है। श्रीकांत वर्मा ने इसे सहज ढग से अभिव्यक्त किया:-

''कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर

फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)

कुछ लोग सारा समय

कसमें खायेंगे लोकतंत्र की

मुझसे नहीं होगा

जो मुझसे नहीं हुआ

वह मेरा संसार नहीं है।"

19.3.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता

श्रीकांत वर्मा स्वातंत्रयोत्तर भारत में व्याप्त भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करने वाले अत्यंत सजग कवि हैं। वे मूल्य दृष्टि के विरोध से कविता शुरू करते हैं और विरोध में ही समाप्त भी। उनकी कविताओं पर युद्ध की खौफनाक छाया मँडराती हुई सी है और अमानवीय बर्बरता का तीव्र विरोध सहज देखा जा सकता है। यह अचानक नहीं है कि उनकी कविताओं में इतिहास के प्रसिद्ध युद्ध-नायक किसी न किसी रूप में आते हैं। युद्ध और शांति, अन्याय और न्याय, बर्बरता और जिजीविषा का द्वन्द्व उनकी पूरी कविताओं में व्याप्त है। अनास्था, घुटन, संत्रास, उदासी और टूटते हुए जीवन के बीच

प्रतिरोधी शक्तियों से जूझने की, यथास्थिति को तोड़ने की शक्ति वाली कविताओं के लिए भाषा का सजग उपयोग जरूरी है। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में बगल से गोली का दनाक से गुजरना, कहीं बेंत का पड़ना, घोड़ों का हिनहिनाना, हत्यारों का मूछों पर ताव देना, सहसा बम फटना- यह सब अनायास नहीं है। यह सब उनके समय का सच है। कृत्रिमता और परम्परागत जड़ता का प्रतिरोध के लिए श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में बेलौस वक्तव्य देते हैं:-

हे ईश्वर! सहा नहीं जाता मुझसे अब

औरों की सुविधा से

जीने का ढंग।

× × ×

हे ईश्वर! मुझसे बरदाश्त नहीं होगा

यह मनीप्लाण्ट।

सहन नहीं होगा

यह गमले का कैक्टस

पिकनिक के। चुटकुले

आफ़िस का ब्यौरा

और

देशभक्त कवियों की

कविताएँ।

(क्षमा करें महिलाएँ)

मैं अपने कमरे में खड़ा हूँ नग्न- 'जलसाघर' की कविताओं में क्रमशः गोली का दनाक से चलना और घोड़े का बार-बार आना और विजेता, चेकोस्लोवाकिया, ढाका बेतार केन्द्र, युद्ध नायक, बाबर और समरकंद- जैसी कविता में बर्बरता, छीना-झपटी, लूट-खसोट, अन्याय -अत्याचार, दमन-शोषण व हत्या-फरेब से भरी होना उनकी सजग राजनीतिक चेतना का परिणाम और प्रमाण है। यहाँ 'साध्वियाँ चली आ रही हैं, हया और बेशर्मी/फली और फूली/ किसको दूँ अपना बयान ? हलफ़नामा/उठाऊँ/किसके सामने ? कोई है ? या केवल/बियाबान है ? मेरे पास कहने के लिये/केवल दो शब्द हैं/'लौट जाओ।' यूरोप/बड़बड़ा रहा है बुखार

में/अमेरिका/पूरी तरह भटक चुका है, अंधकार में/एशिया पर/बोझ है गोरे इन्सान का/संभव नहीं है/कविता में यह सब कर पाना'- ये ऐसी कविताएँ हैं जो इजलास के सामने हलफ़नामा उठाने को तैयार हैं, पर उनके लिए न्यायालय बंद हो चुके हैं। उनकी कविताओं में 'विलाप', 'संताप', 'चीख' जैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग करूणा सृजित करता है। गरज यह है कि श्रीकांत वर्मा की कविताओं में करूणा के चित्र भयानक और नाटकीय लगने वाले काव्य संसार को मानवीय संदर्भ देकर पाठक की संवेदना का विस्तार करते हैं। उनकी कविताएँ केवल भाषा की शक्ति को ही नहीं बढ़ाती बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी करती हैं। उनके यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं :-

''हमारा क्या दोष?

न हम सभा बुलाते हैं

न फैसला सुनाते हैं

वर्ष में एक बार

काशी आते हैं-

सिर्फ यह कहने के लिए

कि सभा बुलाने की भी आवश्यकता नहीं

हर व्यक्ति का फैसला

जन्म से पहले हो चुका है।''

भाषिक-प्रक्रिया और काव्य-प्रक्रिया दोनों की सृजनात्मकता स्वयं श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक खास काव्य-टोन पैदा करती है।

'मगध' में मगध, काशी, कोसांबी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल, अशोक, शकटार, अजातशत्रु, वसंतसेना, आम्रपाली इत्यादि का जादुई स्मरण है, साथ ही मायालोक भी है। यहाँ प्रधानता आत्ममंथन का है। व्यंग्य, वक्रोक्ति व विडम्बना को श्रीकांत वर्मा आक्रामकता प्रदान नहीं करते हैं। क्रांति का हुहुआता माहौल नहीं बनाते हैं। यहाँ अतीतकालीन इतिहास के बड़े-बड़े नाम हैं लेकिन वे केवल बहाना मात्र हैं। सच है केवल त्रासदियों और मनोवृत्तियों को समूचे संदर्भ के साथ खोल देने की रचनात्मक छटपटाहट-

''बन्धुओं

यह वह मगध नहीं

तुमने जिसे पढ़ा है

किताबों में

यह वह मगध है

जिसे तुम

मेरी तरह गवाँ

चुके हो।"

यहाँ महत्त्वपूर्ण है बातचीत और सम्बोधन का लहजा। ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों का श्रीकांत वर्मा ने सार्थक उपयोग किया है। यहाँ इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आये हैं। इस रचनात्मक उपलब्धि को 'मगध' में इस प्रकार व्यक्त किया हैः-

'केवल अशोक लौट रहा है

और सब

कलिंग का पता पूछ रहे हैं

केवल अशोक सिर झुकाए है

और सब विजेता की तरह चल रहे हैं।'

19.3.2 श्रीकांत वर्मा: नयी काव्यभाषा की तलाश

श्रीकांत वर्मा की परवर्ती कविताओं में पश्चिमी आधुनिकतावादी चिंतन और संवेदना का प्रभाव अधिक है। वे 'सिनिसिज्म' के विचार को मुक्ति के तलाश के विचार में बदलने का प्रयास करते हैं तथा सामाजिक संगठन और कौशल से प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता की भी तलाश करना चाहते हैं। इसलिये अपने दौर की भावधारा के अनुरूप ही श्रीकांत वर्मा नई कविता की भाषा को नष्ट कर अपने लिए एक 'निर्वसन' भाषा गढ़ते हैं और ऐसे शिल्प की खोज करते हैं, जिसमें कविता भीतर से जुड़ी होने पर भी ऊपर से खंडित दिखलाई पड़ती थी और जिसमें तुकों के साथ क्रीड़ा करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है- ''कोई मेरे बिस्तरे पर/आकर/सो गया है/कोई मेरा बोझ/अपने/कन्धे पर/ढो रहा है/मैं जंगलों के साथ/सुगबुगाना चाहता हूँ /और/शहरों के साथ/चिलचिलाना/चाहता हूँ।" श्रीकांत वर्मा ने अन्त्यानुप्रयास के खिलवाड़ के संयोजन से अर्थचमत्कार एवं कविता की संरचना में विशेष कसावट का निर्माण किया है। यह विशेषता यहाँ केवल शिल्प या संरचना का अंग नहीं है, वह उनके दृष्टिकोण को भी सूचित करती है। कथ्य की

अर्थगंभीरता के अभाव में तुकों का खिलवाड़ निरा खिलवाड़ रह जाता जबकि यहाँ वह अर्थक्षमता में वृद्धि करता है-

मैं हरेक नदी के साथ

सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड़

ढो रहा हूँ

मैं सुखी

हो रहा हूँ

मैं दुःखी

हो रहा हूँ

मैं सुखी-दुःखी होकर

दुःखी-सुखी

हो रहा हूँ

मैं न जाने किस कन्दरा में

जाकर चिल्लाता हूँ: मैं

हो रहा हूँ: मैं

हो रहा हूँ-

आरंभ का शब्द-कौतुक यहाँ अन्त तक आते-आते सर्वथा गंभीर अर्थव्यंजना ग्रहण कर लेता है। यही श्रीकांत वर्मा की कविताओं का अर्थगौरव है। 'मगर खबरदार/मुझे कवि मत कहो। मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ/ईजाद करता हूँ गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ'- ऐसी काव्य पंक्तियों की अतिनाटकीयता किसी अर्थ में उनकी कविता की सीमा भी कही जा सकती है।

श्रीकांत वर्मा शब्दों से कम संकेतों से अधिक कविता बनाते हैं। उनकी कविताओं में सहायक क्रियाओं का प्रयोग नहीं के बराबर है। उनकी काव्य पंक्तियाँ भागती हुई-सी लगती हैं-

अ-प-ने/आप/से-मैंने/उसे/मा-रा/स-ड़-क/के/कि-ना-रे/बैठी/बूढ़ी/औ-र-त/क-ह-ती/है। 'हत्यारा' या 'विजेता' जैसी कविताओं में एक शब्द से दूसरा शब्द निकलता है, एक वाक्य से दूसरा वाक्य निकलता है, एक चित्र से दूसरा चित्र निकलता है। शब्द चित्रों की यह क्रमागतता ऐसी है मानो कवि आज की वास्तविकता का जल्दी से जल्दी बयान कर डालना चाहता है क्योंकि दुनिया भर की वास्तविकताएँ एक दूसरे से गड्डमड्ड होने को हैं।

श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में स्वप्न संसार जैसा रचते हैं खासकर 'मायादर्पण' और 'जलसाघर' की कविताओं में, जहाँ बहुत सारे असम्बद्ध चित्र अचानक जुड़ने लगते हैं। शायद कवि अपने चारों ओर की अव्यवस्था को सम्पूर्णता में व्यक्त करना चाहता है-

''मैं और तुम। अपनी दिनचर्या के

पृष्ठ पर

अंकित थे

एक संयुक्ताक्षर।''

या 'धो-धो जाता है/कौन/बार-बार आसूँ से कीचड़ में लथपथ/इस/पृथ्वी के पाँव ?/नदियों पर झुका हुआ काँपता है कौनः कवि अथवा सन्निपात ? '- यह चित्रात्मकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। वे देखे हुए चित्रों को कभी व्यंग्यपूर्ण, कभी विडम्बनापूर्ण और कभी नाटकीय बनाकर रखते चलते हैं। कहीं-कहीं तुकबाजी भी खूब करते हैं- सुन पड़ती है टाप/-झेल रहा हूँ थाप/कहुए पर बैठा है नीला आकाश-। इतने बड़े बोझ के नीचे भी/दबी नहीं, छोटी-सी घास। मैं एक भागता हुआ दिन हूँ और रूकती हुई रात-/मैं नहीं जानता हूँ /मैं ढूँढ़ रहा हूँ अपनी शाम या ढूँढ रहा हूँ अपना प्रात।- ऐसी कविताएँ 'दिनारम्भ' संग्रह में खूब हैं। यहाँ प्रायः छोटी कविताएँ हैं। इनमें तीव्र वैचारिक सघनता है लेकिन इनके छोटे-छोटे बिम्ब एक व्यापक अनुभव जगत को समेटने और खोलने वाले हैं। श्रीकांत वर्मा की छोटी कविताओं में जो ऐन्द्रिकता और चित्रात्मकता मिलती है, वह उनके पाठकों को राहत देती है। ऐसे पाठकों को, जो उनकी लम्बी कविताओं के आतंक और नरक से गुज़र रहे होते हैं।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं के क्रमिक विकासक्रम में यह देखना दिलचस्प है कि उनकी प्रारंभिक कविताओं में ग्राम्य परिवेश के प्रति गहरा लगाव है। नदी, घाट, टीला, खँडहर, चिड़िया, आकाश, बादल, खेत, गुलाब, टेसू, बट, पीपल, सावन, पुरवाई, आषाढ़ी सन्ध्या, फागुनी, हवा, उदास लहर, झाड़ी-झुरमुट, बेल-काँटा, उजली-गोरी-चाँदनी इत्यादि ग्राम्य प्रकृति के अनेक ताजा चित्र इन कविताओं में मौजूद हैं। बाँसों का झुरमुट, तुलसी का चौरा, सरसों का खेत, महुए के फूल, पोखर का जल, मेड़ों पर बैठे पंथी, गायों की खड़पड़, सूखी-दरकी धरती, उजड़ी खपरैलें जैसी ग्रामीण शब्दावली का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है, लेकिन परवर्ती संग्रह की

कविताओं में जो आत्मीयता, कोमलता, लोक-सम्पृक्ति और एक खास हद तक जो रोमानी अन्दाज दिखायी पड़ता है, वह एकदम नया है। पहले संग्रह में जो ग्राम्य और कस्बाई परिवेश था, वह बाद के संग्रहों में महानगरीय हो गया है- अत्यंत जटिल, व्यापक, क्रूर और निर्मम। यहाँ वर्तमान अमानवीय भयावहता का पूरा ग्लोब घूमने लगता है- वियतनाम, चेकोस्लोबाकिया, क्रेमलिन, अमेरिका, हिरोशिमा, पेरिस, यूनान, ढाका तथा समरकंद के साथ-साथ लेनिन, स्टालिन, बेरिया, लिंकन, क्लाडइथरली, गोडसे, अशोक इत्यादि न जाने कितने नामी-बदनामी इतिहास पुरूष अभिनय करते से दिखते हैं। इन कविताओं का मुख्य स्वर गुस्सा, विद्रोह, घृणा, क्षोभ, छटपटाहट के साथ-साथ निर्मम प्रहार का है।

19.3.3 श्रीकांत वर्मा: जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म 18 सितम्बर 1931 विलासपुर (छत्तीसगढ़), प्रारंभिक शिक्षा विलासपुर से। 1956 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम0ए0। शिक्षक और पत्रकार रूप में जीवन का प्रारंभ। भारतीय श्रमिक (1956-58), कृति (1958-61), दिनमान (1964-77) तथा वर्णिका (1985) जैसे पत्रों से सम्बद्ध। यूरोप के विश्वविद्यालयों की यात्रा। अयोबा विश्वविद्यालय के इन्टरनेशनल राइटिंग प्रोग्राम में 1970-71 तथा 78 में अतिथि कवि के रूप में सम्बद्ध। 1957 में भटका मेघ, 1967 में मायादर्पण, 1967 में दिनारंभ, 1973 में जलसाघर, 1964 में ‘मगध’ कविता संग्रहों का प्रकाशन। झाड़ी (1964) संवाद (1969) कहानी संग्रह का प्रकाशन। दूसरी बार (1968) उपन्यास का प्रकाशन। ‘जिरह‘ नाम से 1973 में आलोचनाकृति। अपोलो का रथ (1975) यात्रावृतांत। आन्द्रेई वोज्नेसेंस्की की कविताओं का अनुवाद ‘फैसले का दिन’ (1970) नाम से तथा ‘बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में’ (1982) में साक्षात्कार व वार्तालाप का प्रकाशन। 1973 में उन्हें मध्यप्रदेश सरकार ने ‘उत्सव 73’ के अन्तर्गत सम्मानित किया। 1977 में ही तुलसी पुरस्कार (मध्यप्रदेश)। 1987 में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सम्मान। 1980 में मध्यप्रदेश सरकार का शिखर सम्मान। 1984 में कविता केरल का ‘कुमारआशान’ राष्ट्रीय पुरस्कार। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ युवा परिषद् का राष्ट्रीय पुरस्कार तथा दिल्ली सरकार का साहित्य-कला परिषद् पुरस्कार और इंदिरा-प्रियदर्शिनी पुरस्कार। 21 मई 1986 को गले के कैंसर से अमेरिका में मृत्यु।

19.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना

19.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ

1. माया-दर्पण

देर से उठकर

छत पर सर धोती
खड़ी हुई है
देखते-ही-देखते
बड़ी हुई है
मेरी प्रतिभा
लड़ते-झगड़ते
मैं आ पहुँचा हूँ
उखड़ते-उखड़ते
भी
मैंने
रोप ही दिये पैर
बैर
मुझे लेना था
पता नहीं
कब क्या लिखा था
क्या देना था।
अपना एकमात्र इस्तेमाल यही किया था-
एक सुई की तरह
अपने को
अपने परिवार से निकालकर
तुम्हारे जीर्ण जीवन को सिया था।
(दोनों हाथों में सँभाल

अपने होठों से
छुलाकर)
बहते हुए पानी में झुलाकर
अपने पाँव
मैं अनुभव कर रहा हूँ सबकुछ
बस छूकर
चला जाता है
छला जाता है
आकाश भी
सूर्य से
जो दूसरे दिन
आता नहीं है
कोई और सूर्य भेज देता है।
विजेता है
कौन
और
किसकी पराजय है-
सारा संसार अपने कामों में
फँसाये अपनी उँगलियाँ
उधेड़बुन करता है।
डरता है
मुझसे

मेरा पड़ोस।

मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ।

नहीं, एक रोज़नामचा हूँ

मुझमें मेरे अपराध

हू-ब-हू कविताओं-से

दर्ज हैं।

मर्ज़ हैं

जितने

उनसे ज्यादा इलाज हैं।

मेरे पास हैं कुछ कुत्ता-दिनों की

छायाएँ

और बिल्ली-रातों के

अन्दाज हैं।

मैं इन दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मैं अपने दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मेरे लिए तुमसे भी बड़ा

यह सवाल है।

यह एक चाल है,

मैं हरेक के साथ

शतरंज खेल रहा हूँ

मैं अपने ऊलजलूल
एकान्त में
सारी पृथ्वी को बेल रहा हूँ।
मैं हरेक नदी के साथ
सो रहा हूँ
मैं हरेक पहाड़
ढो रहा हूँ।
मैं सुखी
हो रहा हूँ
मैं दुखी
हो रहा हूँ
मैं सुखी-दुखी होकर
दुखी-सुखी
हो रहा हूँ
मैं न जाने किस कन्दरा में
जाकर चिल्लाता हूँ: मैं
हो रहा हूँ। मैं
हो रहा हूँ
अनुगूंज नहीं जाती!
लपलपाती
मेरे पीछे
चली आ रही है

चली आये।

मुझे अभी कई लड़कियों से

करना है प्रेम

मुझे अभी कई कुण्डों में

करना है स्नान

अभी कई तहख़ानों की

करनी है सैर

मेरा सारा शरीर सूख चुका

मगर साबित है

पैर!

मैं अपना अन्धकार, अपना सारा अन्धकार

गन्दे कपड़ों की

एक गठरी की तरह

फेंक सकता हूँ।

मैं अपनी मार खायी हुई

पीठ

सेंक सकता हूँ

धूप में

बेटियाँ और बहुएँ

सूप में

अपनी-अपनी

आयु के

दाने

बिन

रही

हैं।

सारे संसार की सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं।

क्या मैं भी दिन गिनूँ ?

अपने निरानन्द में

रेंक और भाग और लीद रहे गधे से

मैं पूछकर

आगे बढ़ जाता हूँ

मगर ख़बरदार ! मुझे कवि मत कहो

मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ

ईज़ाद करता हूँ

गाली

फिर उसे बुदबुदाता हूँ।

मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ।

मैं थकता नहीं हूँ

कोसने।

सरदी में अपनी सन्तान को

केवल अपनी

हिम्मत की रजाई में लपेटकर

पोसते

ग़रीबों के मुहल्ले से निकलकर

मैं

एक बन्द नगर के दरबाजे पर

खड़ा हूँ।

मैं कई साल से

पता नहीं अपनी या किसकी

शर्म में

गड़ा हूँ !

तुमने मेरी शर्म नहीं देखी !

मैं मात कर

सकता हूँ

महिलाओं को।

मैं जानता हूँ

सारी दुनिया के

बनबिलावों को

हमेशा से जो बैठे हैं

ताक में

काफ़ी दिनों से मैं

अनुभव करता हूँ तकलीफ़

अपनी

नाक में।

मुझे पैदा होना था अमीर घराने में।

अमीर घराने में

पैदा होने की यह आकांक्षा

सास-साथ

बड़ी होती है।

हरेक मोड़ पर

प्रेमिका की तरह

मृत्यु

खड़ी होती है।

शरीरान्त के पहले मैं सबकुछ निचोड़कर उसको दे जाऊँगा जो भी मुझे मिलेगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता; मेरे न होने से कुछ भी नहीं हिलेगा। मेरे पास कुरसी भी नहीं जो खाली हो। मनुष्य वकील हो, नेता हो, सन्त हो, मवाली हो-किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता।

नाटक की समाप्ति पर

आँसू मत बहाओ।

रेल की खिड़की से

हाथ मत हिलाओ। ('माया दर्पण' संग्रह से)

2. हस्तिनापुर का रिवाज़

मैं फिर कहता हूँ

धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--

मगर मेरी

कोई नहीं सुनता!

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं--

जो सुनते हैं

बहरे हैं या
अनसुनी करने के लिए
नियुक्त किये गये हैं
मैं फिर कहता हूँ
धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--
मगर मेरी
कोई नहीं सुनता
तब सुनो या मत सुनो
हस्तिनापुर के निवासियों! होशियार !
हस्तिनापुर में
तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार--
और याद रखो
आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,
विचार। ('मगध' संग्रह से)

3. मणिकर्णिका का डोम

डोम मणिकर्णिका से अक्सर कहता है,
दुःखी मत होओ
मणिकर्णिका,
दुःख तुम्हें शोभा नहीं देता
ऐसे भी श्मशान हैं
जहाँ एक भी शव नहीं आता
आता भी है,

तो गंगा में
            नहलाया नहीं जाता
डोम इसके सिवा कह भी
क्या सकता है,
एक अकेला
डोम ही तो है
मणिकर्णिका में अकेले
रह सकता है
दुःखी मत होओ, मणिकर्णिका,
दुःख मणिकर्णिका के
विधान में नही
दुःख उनके माथे है
जो पहुँचाने आते हैं,
दुःख उनके माथे था
जिसे वे छोड़ चले जाते हैं

भाग्यशाली हैं, वे
जो लदकर या लादकर
काशी आते हैं
दुःख
मणिकर्णिका को सौंप जाते हैं
दुःखी मत होओ

मणिकर्णिका,

दुःख हमें शोभा नहीं देता

ऐसे भी डोम हैं,

शव की बाट जोहते

पथरा जाती हैं जिनकी आँखें,

शव नहीं आता--

ठसके सिवा डोम कह भी क्या सकता है! ('मगध' संग्रह से)

4. हस्तक्षेप

कोई छींकता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की शान्ति

भंग न हो जाय,

मगध को बनाये रखना है, तो,

मगध में शान्ति

रहनी ही चाहिए

मगध है, तो शान्ति है

कोई चीखता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की व्यवस्था से

दखल न पड़ जाय

मगध से व्यवस्था रहनी ही चाहिए

मगध में न रही
    तो कहाँ रहेगी ?
    क्या कहेंगे लोग ?
    लोगों का क्या ?
    लोग तो यह भी कहते हैं,
    मगध अब कहने को मगध है,
    रहने को नहीं
कोई टोंकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध में
टोकने का रिवाज़ न बन जाय

एक बार शुरू होने पर
कहीं नहीं रूकना हस्तक्षेप--

वैसे तो मगधनिवासियो
कितना भी कतराओ
तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से--
जब कोई नहीं करता
तब नगर के बीच से गुज़रता हुआ
मुर्दा

यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है--

मनुष्य क्यों मरता है ? ('मगध' संग्रह से)

5. तीसरा रास्ता

मगध में शोर है कि मगध में शासक नहीं रहे

जो थे

वे मदिरा, प्रमाद और आलस्य के कारण

इस लायक

नहीं रहे

कि उन्हें हम

मगध का शासक कह सकें

लगभग यही शोर है

अवन्ती में

यही कोसल में

यही

विदर्भ में

कि शासक नहीं

रहे

जो थे

उन्हें मदिरा, प्रमाद और आलस्य ने

इस

लायक नहीं

रखा

कि उन्हें हम अपना शासक कह सकें

तब हम क्या करें ?

शासक नहीं होंगे

तो कानून नहीं होगा

कानून नहीं होगा

तो व्यवस्था नहीं होगी

व्यवस्था नहीं होगी

तो धर्म नहीं होगा

धर्म नहीं होगा

तो समाज नहीं होगा

समाज नहीं होगा

तो व्यक्ति नहीं होगा

व्यक्ति नहीं होगा

तो हम नहीं होंगे

हम क्या करें ?

कानून को तोड़ दें ?

धर्म को छोड़ दें ?

व्यवस्था को भंग करें ?

मित्रो-

दो ही

रास्ते हैं:

दुर्नीति पर चलें

नीति पर बहस
बनाये रखें
दुराचरण करें
सदाचार की
चर्चा चलाये रखें
असत्य कहें,
असत्य करें
असत्य जिएं--
सत्य के लिए
मर-मिटने की आन नहीं छोड़ें
अन्त में,
प्राण तो
सभी छोड़ते हैं
व्यर्थ के लिए
हम
प्राण नहीं छोड़ें
मित्रों-
तीसरा रास्ता भी
है--
मगर वह
मगध
अवन्ती

कोसल

या

विदर्भ

होकर नहीं

जाता। ('मगध' संग्रह से)

19.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना

श्रीकांत वर्मा की कविता में समकालीन भारतीय समाज की तीखी चेतना अभिव्यक्त हुई है। उनकी काव्यात्मक यात्रा के अवलोकन से यह सहज स्पष्ट हो जाता है कि कवि में आद्यन्त अपने परिवेश और उस परिवेश में फँसे अभिशप्त मनुष्य के प्रति गहरा लगाव है। उसके आत्मगौरव और सुरक्षित भविष्य के लिये कवि अपनी कविताओं में लगातार चिंतित है। ये कविताएँ सहज ग्राम्य परिवेश से शुरू होकर महानगरीय बोध का प्रक्षेपण करने लगती हैं या यह कहना अधिक सही है कि शहरीकृत अमानवीयता के खिलाफ एक संवेदनात्मक बयान में बदल जाती हैं। इस संवेदनात्मक बयान की परिधि इतनी विस्तृत है कि उसके दायरे में शोषित-उत्पीड़ित और बर्बरता के आतंक में जीती पूरी-की-पूरी दुनिया सिमट आती है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में आत्मरति और आत्मश्लाघा भाव की प्रधानता है। अनिर्णयात्मकता है, व्यर्थताबोध है। यहाँ अनिर्दिष्ट भविष्य धुँधला-धुँधला सा है; खासकर 'मायादर्पण' और 'जलसाघर' में। इन प्रारंभिक कविताओं से अभिव्यक्त होता हुआ यथार्थ हमें अनेक स्तरों पर प्रभावित करता है लेकिन अंतिम संग्रह 'मगध' तक पहुँचकर वर्तमान शासकवर्ग के त्रास और उसके तमाच्छन्न भविष्य को भी रेखांकित कर जाता है।

उनकी कविताओं का मुख्य मुद्दा है- 'सवाल यह है कि तुम कहाँ जा रहे हो ?', 'अश्वारोही, यह रास्ता किधर जाता है ?' कपिलवस्तु और नालन्दा कोई नहीं जाता। यहाँ कपिलवस्तु और नालन्दा अहिंसा और लोकतंत्र का प्रतीक हैं। रास्ते के अभाव में लोग भटकते रहते हैं, इतना अवश्य है कि उसे मालूम है- 'कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/केसल में विचारों की कमी हैं।' वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का एक ही शत्रु हैं- वह है विचार।

''हस्तिनापुर के निवासियों ! होशियार !

हस्तिनापुर में

तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार-

और याद रखो

आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,

विचार।''

यहाँ विचार की बात है किंतु विचार की काई रूपरेखा नहीं है। वह एक तीसरे रास्ते की ओर संकेत करता है कि वह यहाँ नहीं जाता, वहाँ नहीं जाता, फिर प्रश्न होता है कि वह कहाँ जाता है ? ये कविताएँ सावधान करती हैं कि-

''मित्रो

यह कहने का कोई मतलब नहीं

कि मैं समय के साथ चल रहा हूँ।

यहाँ असल सवाल यह है/इसके बाद कहाँ जाओगे ?''

यह प्रश्नवाचकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। यह प्रश्नवाचकता विसंगत स्थितियों को, अतार्किक स्थितियों को सम्पूर्ण तनाव के साथ गंभीर परिणति तक लाता है। इन कविताओं में नकारात्मक संयोजन, विसंगतियों, अतीत और भविष्य का निषेध उस समय की राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विडम्बनाओं की त्वरित प्रतिक्रियाएँ हैं :- मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ/ नहीं एक रोजनामचा हूँ/मुझ में मेरे अपराध/हू-ब-हू कविताओं से/दर्ज हैं/मर्ज हैं/जितने/उनसे/ज्यादा इलाज हैं। इस अर्थगंभीरता के अभाव का कारण विसंगत यथार्थ और मूल्य विघटित समय है, लेकिन ऐसी कविताएँ निश्चय ही तत्कालीन युद्ध की चापलूसी भरी अतिरंजनाओं और खोखली चुनौतियों वाली कविताओं से ज्यादा समझदार और गहरी हैं। श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं के लिए तंत्र और सेक्स के बजाय राजनीति से भाषा और संवेदन-प्रमेय उठाने की कोशिश की।

न्यायालय बन्द हो चुके हैं, अर्जिया हवाँ में

उड़ रही हैं

कोई अपील नहीं

कोई कानून नहीं,

कुहरे में डूब गयी हैं प्रत्याशाएँ

धूल में पड़े हैं

कुछ शब्द।

जनता थककर सो गयी है।

ये कविताएँ न्याय-अन्याय तथा व्यवस्था-अव्यवस्था के द्वन्द्व में अपना स्वरूप ग्रहण करती है-

फैसला हमने नहीं लिया-

सिर हिलाने का मतलब फैसला लेना नहीं होता

हमने तो सोच विचार तक नहीं किया।

बहसियों ने बहस की

हमने क्या किया ? जिस समय-समाज में हम जी रहे हैं वह समय सुनने और न सुनने के साथ-साथ सुनकर भी अनसुना करने का समय है, व्यवस्था अनसुना करने और असल सवालों से हटाने के लिए सारे प्रयत्न करती है, तरह-तरह के हथकण्डे अपनाती है और चालाकी को रिवाज में तब्दील करने की पूरी कोशिश करती है-

''कोई नहीं सुनता

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं-

जो सुनते हैं

बहरे हैं या

अनसुनी करने के लिए

नियुक्त किये गये हैं।''

यह व्यवस्था, लोकतंत्र, विकास और लोक कल्याण के नाम पर जनता को गुमराह करती है जबकि असलियत यह है कि नागरिक/कोसल के अतीत पर/पुलकित होते हैं/जो पुलकित नहीं होते/उँघते हैं। इसलिये- ''कोसल मेरी कल्पना में गणराज्य है, क्योंकि 'कोसल सिर्फ कल्पना में गणराज्य है।' 'कल्पना का यह गणराज्य' क्या गणराज्य है ? चारों तरफ 'जड़ता' और 'चुप्पी' क्यों व्याप्त है ? 'मगध' की कविताओं में 'चुप क्यों हो ?' की आवृति बार-बार होती है- चुप क्यों हो, मित्रों ?/क्या हुआ ?/चुप क्यों हो?/कभी कभी/मगध में न जाने क्या हो जाता है/सब कुछ सामान्य होने के बावजूद/न कोई बोलता है/न मुँह खोलता है/सिर्फ शकटार/जड़ को छू/पेड़ की कल्पना करता है/सोचकर सिहरता है/मित्रों/जो सोचेगा/सिहरेगा। सिहरना, 'डर', 'संशय' और असमंजय का प्रतीक है। व्यवस्था डर, संशय और असमंजस को कायम रखना और मजबूत बनाना चाहती है। श्रीकांत वर्मा इस यथास्थितिवाद और सिहरन के खिलाफ 'हस्तक्षेप' की बात करते हैं, 'तीसरे रास्ते' की तलाश करते हैं- तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से-। जब कोई

नहीं करता/तब नगर के बीच से गुजरता हुआ/मुर्दा/यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है-/मनुष्य क्यों मरता है ? यह कविता बहुत खलल पैदा करने वाली, डिस्टर्ब करने वाली कविता है। भले ही कोई टोकता तक नहीं/इस डर से/कि मगध में/टोंकने का रिवाज़ न बन जाये। हस्तक्षेप का यह 'प्रश्न'- मगध की शांति को भंग कर ही देता है। मगध के शासक मदिरा, प्रमाद और आलस्य में आकण्ठ डूबे हैं, यहाँ न कोई विकल्प है, न विकल्प की संभावना है। क्या कानून को तोड़ दिया जाय ? धर्म को छोड़ दिया जाय ? व्यवस्था को भंग कर दिया जाय ? दुर्नीति पर चलने और नीति पर बहस बनाये रखने, दुराचरण करने और सदाचरण की चर्चा चलाये रखने वाले समय में तीसरा रास्ता भी है- मगर वह/मगध/अवन्ती/कोसल/या/विदर्भ/होकर नहीं/जाता। श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में व्यवस्था के इसी सड़ांध को खोलकर रख देते हैं, पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं तथा सत्ता प्रतिष्ठान को तिलमिलाने वाले सवाल करते हैं। उनकी कविताएँ परम्परागत सौन्दर्यबोध को तोड़ने वाली, सक्रिय प्रतिरोध का मुहिम खड़ा करने वाली कविताएँ हैं। कविताओं की प्रश्नवाचकता को इस नाटकीयता के साथ कविता में प्रस्तुत किया गया है कि चिंतन और संवेदना का विस्तार सहज ढंग से अभिव्यक्त हो गया है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. श्रीकान्त वर्मा का जन्म .... वर्ष में हुआ है।
2. श्रीकान्त वर्मा .... दशक के कवि है।
3. श्रीकान्त वर्मा .... रचना से चर्चित हुए।
4. श्रीकान्त वर्मा का पहला संग्रह .... है।

ख) संक्षिप्त उत्तर दीजिए :-

1. श्रीकान्त वर्मा की रचनाओं का परिचय दीजिए।
2. श्रीकांत वर्मा का संक्षिप्त दीजिये।

3. श्रीकांत वर्मा राजनीतिक प्रश्नों के कवि हैं - सिद्ध कीजिए।

4. श्रीकांत वर्मा के काव्यात्मक महत्व पर प्रकाश डालिये।

19.5 सारांश

नयी कविता के बाद की कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढियों के कवि सक्रिय हैं। यहाँ एक विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। सातवें-आठवें दशक में तीस से ज्यादा काव्य-आन्दोलन प्रस्तावित किए गये किंतु उनमे से किसी को भी एक केन्द्रीय आन्दोलन के रूप में महत्त्व नहीं मिला। इस दौर की कविता किसी भी तरह के केन्द्रवाद का निषेध करती है। जिस नई चुनौती को इस दौर के कवि स्वीकार करते हैं, वह है- सपाट अनुभव की रचना। सपाटबयानी ही यहाँ असली कवि-कर्म है। श्रीकांत वर्मा इस दक्षता की खुली संभावनाओं का विस्तार करने वाले कवि हैं। मोहभंगपरक यथार्थ से समकालीन कविता का यथार्थ भिन्न हैं। समकालीन यथार्थ राजनीतिक सांस्कृतिक विकृतियों का यथार्थ है, जिन्हें जीने के लिए और जिनमें जीने के लिए आदमी लाचार है जिसके दुःखते-कसकते अनुभवों की यातना को श्रीकांत वर्मा की कविताएँ 'चीख' और 'आग' में बदलकर व्यक्त करती हैं।

श्रीकांत वर्मा अपने समय के एक अत्यंत सजग कवि हैं। आज का परिवेश, उसकी भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीति और उसकी त्रासदी अपने नंगे रूप में उनकी कविताओं में मौजूद है। 'मायादर्पण' तथा 'जलसाघर' की कविताएँ खासतौर से बीसवीं सदी की अमानवीय बर्बरता का बयान करती हैं- ''कई साल/हुए/मैंने लिखी थीं। कुछ कविताएँ/तृष्णाएँ/साल ख़त्म होने पर/उठकर..../स्त्रियाँ/पता नहीं जीवन में आती/या जीवन से/जाती हैं।'' वह अन्तिम वक्तव्य के रूप में कहता है कि 'आत्माएँ/राजनीतिज्ञों को/बिल्लियों की तरह/मरी पड़ी हैं/सारी पृथ्वी से/उठती हैं/सड़ांध!' इन कविताओं में युद्ध की छाया मँडराती रहती है। यह दौर ऐसा है कि कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर/फिर/बेचेंगे क्रांति की (अथवा-षड्यंत्र की)/कुछ और लोग/सारा समय/कसमें खायेंगे/लोकतंत्र की।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक केन्द्र विहीन उत्तर आधुनिक सृजन परिदृश्य उमड़-घुमड़ रहा है। यहाँ मूल आदमी गायब है, केवल एक उपभोक्तावादी समाज है जिसमें उपभोक्ता ही सब कुछ है। कवि यह सूचना देने वाला भर रह गया है कि विश्वपूँजीवादी व्यवस्था में टेक्नालाजी का लाभ उन्हीं को मिलता है जो बाजार के मालिक हैं। श्रीकांत वर्मा की कविताएँ इस परिदृश्य का प्रमाणित दस्तावेज हैं-

दफ़्तर में, होटल में, समाचार पत्र में,

सिनेमा में

स्त्री के साथ एक खाट में ?

नावें कई यात्रियों को

उतारकर

वेश्याओं की तरह

थकी पड़ी हैं घाट में।

श्रीकांत वर्मा के यहाँ आधुनिकतावाद के सारे तत्व हैं, देश व काल से जीवन्त सम्बन्ध के संदर्भ हैं, तात्कालिकता का बढ़ता आग्रह है, इतिहास से मुक्ति पाने का संघर्ष है लेकिन यौन-विकृतियों की बजवजाहट भी कम नहीं है- 'जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझाकर।' श्रीकांत वर्मा चिंतन और सघन अनुभूति को एकमेक करते हुए गद्य कविता में बड़ी दक्षता हासिल करते हैं। सपाटबयानी के साथ-साथ सघन बिम्ब-विधान को कला को साधने वाले वे बेजोड़ कवि हैं। मगध, काशी, कौशाम्बी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल ये सिर्फ काव्यात्मक प्रतीक भर नहीं है बल्कि सत्ता प्रतिष्ठान की बर्बरता, अमानवीयता, अनिर्णयात्मकता को साधने-खोलने के विराट जागृत प्रतीक भी है। उसे मालूम है कि- 'कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/कोसल में विचारों की कमी है।' वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का शत्रु पल रहा है- विचार। श्रीकांत वर्मा भटकाव और विचार की बात साथ-साथ करते हैं। उन्हें अस्तित्ववादी अवसाद से मुक्ति की संभावना विचार में ही दिखती है।

19.6 शब्दावली

1. आधुनिकतावाद- आधुनिकता का सम्बन्ध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परमपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीति-रिवाजों के खिलाफ नवीन और वैज्ञानिक विचारों तथा मूल्यों से है। आधुनिकतावाद साहित्य, कला तथा अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रचलित रहा जिसका विकास टी.एस. इलियट की कृति- 'द वेस्ट लैण्ड' के प्रकाशन से माना जाता है। हिन्दी कविता में यह शब्द पचास के दशक में चर्चा का विषय बना जब यूरोप में विक्षुब्ध युवा ।बंगाल और अमेरिका में बीट्स की कृतियों का महत्व स्थापित हुआ। आधुनिकतावाद, धर्म, प्रकृति, परम्परा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तु-स्थिति व व्यवस्था को चुनौती देता है। विद्रोह उसका मूल स्वर है। आधुनिकतावाद हर प्रकार के सामाजिक, नैतिक, वैचारिक तथा यौन दमन के विरूद्ध है। आधुनिकतावाद चौकाने- सनसनी फैलाने, उत्तेजना, आघात का प्रभाव विकसित करने के लिए भाषा और शैली में भी नये परिवर्तन का हिमायती है। साथ ही प्रकृतिवाद के विपरीत व्यक्ति की जटिल मानसिकता और अछूती संवेदनाओं को भी प्रस्तुत करता है।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. 1931 2. सातवें दशक 3. मायादर्पण 4. भटका मेघ

19.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीकांत वर्मा: प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन।

2. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

3. राय, डॉ0 लल्लन, प्रगतिशील हिन्दी कविता

4. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास।

19.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. पाण्डेय, मैनेजर, शब्द और कर्म।

3. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सातवें दशक की कविता के बीच श्रीकांत वर्मा की कविताओं का महत्व बताइये।

2. सिद्ध कीजिए कि- ‘श्रीकांत वर्मा नये काव्य मुहावरे के कवि हैं।’

3. श्रीकांत वर्मा की काव्य संवेदना और शिल्प सौंदर्य पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

4. ‘श्रीकांत वर्मा की कविताओं का लक्ष्य मूल्य विघटित राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करना है ’ - इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 20 - केदारनाथ सिंह : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 केदारनाथ सिंह: काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता
20.3.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नई दुनिया
20.3.2 केदारनाथ सिंह: काव्यभाषा और बिम्ब विधान
20.3.3 केदारनाथ सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
20.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना
20.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ
20..4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना
20.5 सारांश
20.6 शब्दावली
20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.10 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नयी उम्मीदों ने जन्म लिया। प्रयोगवाद और नयी कविता के वस्तु और रूप का नया काव्य-मुहावरा सन् 1960 तक पहुँचते-पहुँचते अपना आकर्षण खोने लगा था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पनपे मूल्य विघटन के दौर ने नयी उम्मीदों को अवसाद और खिन्नता से ग्रस लिया। स्वयं नयी कविता के सभी जागरूक कवि अपने काव्य-मुहावरे की अपर्याप्तता का अनुभव करते हुए नये यथार्थ की बेचैनी के एहसास से तिलमिलाने लगे थे। हिन्दी कविता के इतिहास में यह समय मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति व विद्रूपताबोध से ग्रस्त रहा। फलतः नयी पीढ़ी में आक्रोश, विद्रोह, विक्षोभ, असंतोष के स्वर उभर पड़े। 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन को इस नये दौर का सूचक माना जा सकता है। उस समूचे काव्य सृजन संदर्भ को समकालीन कविता नाम दिया गया लेकिन इस काव्य सृजन के भीतर अनेक धारायें हैं, अनेक काव्य शैलियाँ हैं- अनेक

तरह के छोटे बड़े काव्य आन्दोलन हैं- उनकी अलग-अलग तरह की काव्य ध्वनियाँ और प्रवृतियाँ हैं। इसमें अकविता, अस्वीकृत कविता, युयुत्सावादी कविता, प्रतिबद्ध कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, नंगी पीढ़ी की कविता, श्मशानी कविता आदि तथाकथित आन्दोलनों को अलग-अलग करके समझना-समझाना बेहद कठिन है। इसलिए काल चेतना की दृष्टि से इसे साठोत्तरी कविता कहना अधिक संगत प्रतीत होता है।

सन् साठ के लगभग बुद्धिजीवियों की जो नई-पुरानी पीढ़ी सामने आयी, उसने अपने आगे एक भयंकर अंधकार पाया। यह अंधकार इतना गहरा है कि सन् 1960 के बाद नयी कविता का व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा शीत युद्ध की वेदना वाला भाव गायब होकर राजनीतिक-सांस्कृतिक चिन्ताओं की चीख-पुकार तथा गुर्राहट विद्रोह की अर्थ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाता है। चीनी आक्रमण के साथ नेहरू युग से मोहभंग शुरू हुआ और देश की भीतरी तथा बाहरी स्थिति की असलियत उजागर हो गयी। इसने हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया, जिससे वह नई कविता की रूमानियत को छोड़कर पुनः कटु यथार्थ की भूमि पर पॉव टेकने को विवश हुई। इस दौर में राजनीति से लेकर साहित्य तक में ‘मोहभंग’ शब्द का बार-बार आना अनायास नहीं है। यह शब्द वस्तुतः नई कविता के बाद की कविता का बीज शब्द है। धूमिल ने अपने दौर की कविता का पूर्ववर्तियों से अन्तर बताते हुए लिखा कि-

‘‘छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे

प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे

नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे

सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।’’

‘शब्दों को खोलकर’ रखने से मतलब समय-समाज की मांग और दुःख-दर्द को महसूस करने से है और यह कार्य साठोत्तरी कविता के कवियों ने ही किया। सठोत्तरी कवियों में केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, धूमिल, राजकमल चौधरी, मणि मधुकर आदि का नाम उल्लेखनीय है। साठोत्तरी कवियों ने किसी वाद विशेष को अपनाने की आतुरता नहीं दिखाई बल्कि यह कविता राजनीति, समाज की विषम स्थितियों और असंगतियों से सीधा साक्षात्कार कराती है। साठोत्तरी कविता का व्यापक विस्तार केदारनाथ सिंह की कविताओं में देखा जा सकता है।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप नयी कविता के बाद के दौर में आये बदलाव का अध्ययन करेंगे तथा समकालीन कविता के काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता से परिचित होंगे। इस इकाई को

पढ़ने के बाद आप साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के महत्त्व का आकलन कर सकेंगे साथ ही साठोत्तरी कविता की मूल प्रवृतियों के बीच केदारनाथ सिंह की कविताओं के सम्बन्ध को भी समझ सकेंगे। आजादी के बाद पनपे मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति-विद्रूपता आदि के भाव-बोध को लेकर नये शिल्प में केदारनाथ सिंह ने अपने रचना कर्म में किस प्रकार विकसित किया- यह विश्लेषित करना इस इकाई का लक्ष्य है।

20.3 केदारनाथ सिंह : काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता

नयी कविता के बाद की कविता या साठोत्तरी कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढ़ियाँ सक्रिय थीं। यह एक ऐसा विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। यह कविता किसी भी तरह के केन्द्रवाद का विरोध करती है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ खुली संभावनाओं का विस्तार हैं। उन कविताओं में जितना विस्तार है, उतनी ही गहराई भी। उनकी काव्य संवेदना की परिधि में टमाटर बेचने वाली बुढ़िया, गड़रिया, जगरनाथ, सन् 1947 के नूर मियाँ, शीत लहरी में काँपता हुआ बूढ़ा आदमी, मैदान में खेलते बच्चे आते हैं तो साथ ही निहायत गैर जरूरी लगने वाली चीजें जैसे- गर्मी में सूखते कपड़े, सुई और तागे के बीच, घड़ी, टूटा हुआ ट्रक भी कविता का विषय बनते हैं। उनकी कविता के शीर्षक को देखकर उनकी काव्य संवेदना के बारे में यह एकतरफा नहीं कहा जा सकता है कि वे महानगरीय संवेदना के कवि हैं या लोक संवेदना के कवि हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि समकालीन कविता के कई महत्त्वपूर्ण नाम (धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, मणिक मोहिनी, मोनागुलाटी आदि) जब भयावह सरलीकरणों-निरर्थकताओं-चीखों-संत्रांसों का शिकार हो रहे थे तब केदारनाथ सिंह जीवन की समग्रता पर बल दे रहे थे। केदारनाथ सिंह का महत्व यह है कि वे अपने दौर की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए विद्रोह की एक नई भावभूमि पर पांव टेक रहे थे। विद्रोह के इस मानसिक विक्षोभ को उन्होंने जनवरी-मार्च 1968 के आलोचना में प्रकाशित अपनी टिप्पणी 'युवालेखन: प्रतिपक्ष का साहित्य' में स्पष्ट करते हुए कहा कि ''यह मानसिक विक्षोभ साहित्यिक कम और ऐतिहासिक अधिक है। संभवतः नवलेखन के क्षेत्र में यह सौंदर्यवादी रूझान कुछ दिनों तक और चलता रहता यदि अकस्मात 1962 के राष्ट्रीय संकट में साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों और खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में शंका न भर दी होती।'' डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार सन् 1960 के बाद की कविता की दो दिशाएँ थीं- देहगाथा की दिशा और बुर्जुआ लोकतंत्र के विरोध की दिशा। एक में बजबजाहट की तो दूसरे में बौद्धिक रूखाई। केदारनाथ सिंह ने कविता को उनसे मुक्त कर संवेदनात्मक बौद्धिकता से जोड़ा।

केदारनाथ सिंह शायद हिन्दी कविता के अकेले ऐसे कवि हैं, जो एक ही साथ गाँव के भी कवि हैं और शहर के भी। अनुभव के ये दोनों छोर कई बार उनकी कविता में एक ही साथ और एक ही समय दिखाई पड़ते हैं। अनुभव का यह विस्तार उनके संवेदनात्मक ज्ञान को और बढ़ाता है। उनकी संवेदना में विस्तार भी है और गहराई भी। इसमें आग और पानी के अर्थगर्भ संकेत हैं, मौत और जिन्दगी के उत्तर-प्रत्युत्तर हैं, युगीन चुनौतियाँ हैं, फसलें, रोटी, माँ की अनजानी प्रतिध्वनियाँ और आहटें हैं और कुल मिलाकर यहाँ है- जीवन का पर्व। उनके पास अनुभवों का एक ठोस संसार है, जिसे उन्होंने आसपास से गहरे डूबकर प्यार करके प्राप्त किया है। उनकी काव्य संवेदना का दायरा गाँव से शहर तक परिव्याप्त है, जिसमें आने वाली छोटी-सी-छोटी चीज उनके उत्कृष्ट मानवीय लगाव से जीवन्त हो उठती है। नीम, बनारस, पहाड़, बोझे, दाने, रोटी, जमीन, बैल, घड़ी जैसी कविताएँ अपनी धरती और अपने लोगों के प्रति गहरी आत्मीयता की प्रमाण हैं। भारतीय समाज के प्रति उनके गहरे संवेदनात्मक लगाव को देखना हो तो 'माँझी का पूल', 'सड़क पार करता आदमी', 'पानी से घिरे हुए लोग', 'एक पारिवारिक प्रश्न', 'टूटा हुआ ट्रक' तथा 'बिना ईश्वर के भी'- जैसी कविताओं को देखना चाहिये। उनके यहाँ मामूली से मामूली विषयों में भी गहरे मानवीय सरोकार और चिंताएँ छिपी हुई हैं, जो बिना किसी वाद या खेमेबाजी के सैद्धांतिक बैसाखी के सहारे उनकी कविताओं में व्यक्त होती है। उनकी कविताओं की दुनिया एक ऐसी दुनिया है जिसमें रंग, रोशनी, रूप, गंध, दृश्य, एक-दूसरे में खो जाते हैं लेकिन कविता का 'कमिटमेंट' नहीं खोता- वहाँ कविता के मूल सरोकार, कविता की बुनियादी चिंता, कविता का काव्य या संदेश पूरी तीव्रता के साथ ध्वनित होता है। उनके अनुसार-

''ठण्ड से नहीं मरते शब्द

वे मर जाते हैं साहस की कमी से

कई बार मौसम की नमी से

मर जाते हैं शब्द''- लेकिन यह चिंता भी है कि-

''क्या जीवन इसी तरह बीतेगा

शब्दों से शब्दों तक

जीने

और जीने और जीने और जीने के

लगातार द्वन्द्व में ?''

वे कविता में एकालाप नहीं, सार्थक संवाद की कोशिश करते हैं। उनकी कविताएँ अपने समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करने वाली कविताएँ हैं।

20.3.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नयी दुनिया

केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थो के कवि हैं। उनकी कविताएँ अपने समय समाज में बहुत दूर तक और देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। कविता का आन्दोलन, कविता का मतवाद आते-जाते रहते हैं- लेकिन केदारनाथ सिंह को कविताएँ हर समय में प्रासंगिक बनी रहती हैं और नया अर्थ देती हैं। एक सामान्य कथन के सहारे वे एक ओर अन्तःकरण की पीड़ा को व्यक्त करते हैं तो दूसरी तरफ अपने समय की विडम्बना पर भी गहरा कटाक्ष करते हैं-

‘‘पर सच तो यह है

कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता

तुमने यहाँ लिखा है ‘प्यार‘

वहाँ लिख दो सड़क

फर्क नहीं पड़ता।’’

यहाँ महत्त्वपूर्ण है अत्यंत सामान्य से लगने वाले मुहावरे ‘फर्क नहीं पड़ता’ पर इतनी गहराई से और इतनी दूर तक की अर्थ अभिव्यंजना। उनके यहाँ ‘हाँ’ या ‘नहीं’, ‘क्या‘ और ‘क्यों’ जैसे शब्द कामचलाऊ शब्द नहीं हैं। वे पूरे अर्थ में जीवित शब्द हैं जो अपना नया अस्तित्व या प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उनकी काव्यात्मक यात्रा के कई महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं और हर पड़ाव ‘होने की लगातार कोशिश’ का परिणाम हैं। ‘होने की लगातार कोशिश’ के परिवर्त्तन की यह प्रक्रिया सन् 1960 में प्रकाशित उनके प्रथम संग्रह ‘अभी बिल्कुल अभी’ से होती है। वे तीसरा सप्तक तक युवा गीतकार के रूप में सामने आये थे लेकिन वे गीतों को अलविदा कहते हैं और कविता की नयी दुनिया में प्रवेश करते हैं। यह वह दौर है जब केदारनाथ सिंह अपनी रूमानियत (गीतों के रूमानियत) से छुटकारा पाकर यथार्थ का साक्षात्कार करते हैं और अपने को नेहरू युग के मोहभंग से जोड़ते हैं। 1967 आते-आते भारतीय समाज के आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध इतने तीव्र हो जाते हैं कि आम चुनाव में नौ राज्यों में कांग्रेस अपना बहुमत खो देती है और मिली-जुली गैर कांग्रेसी सरकारों का एक नया दौर शुरू होता है यद्यपि उससे स्थिति में कोई बुनियादी परिवर्त्तन नहीं होता। साठोत्तरी कविता की समूची पीढ़ी का गहरा सम्बन्ध 1967 के आम चुनाव से है, लेकिन उसकी ट्रेजेडी है कि वह विकल्पहीन है। आम चुनाव के परिणामों ने उसके अनुभव में यथास्थिति के टूटने का एक तीखा बोध जरूर दिया था, लेकिन इससे उसकी स्थिति में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया था। 1967 में केदारनाथ सिंह ने एक कविता लिखी- ‘चुनाव की पूर्व संध्या पर’, जिसमें उन्होंने कहा कि- भेड़िये से फिर कहा गया है- ‘अपने जबड़ों

को खुला रखें'- इससे भारतीय जनतंत्र से आप उनकी निराशा का अनुमान लगा सकते हैं। उनका दूसरा काव्य संग्रह लगभग दो दशकों के अन्तराल पर 1980 में 'ज़मीन पक रही है' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की सभी कविताएँ साठोत्तरी कविता के दौर की ही हैं लेकिन उस दौर के बदलाव का आईना भी हैं। ज़मीन की तरह कवि के काव्यात्मक परिपक्वता का संकेत यहाँ साफ है जैसे केदारनाथ सिंह ने 'जमीन पक रही है'- ठेठ किसानी मुहावरे को किसानों के बीच से उठा लिया है। केदार की कविताएँ जो कुछ भी और जहाँ कहीं भी सुन्दर और मूल्यवान है, उसे बचा लेना चाहती हैं-

''नहीं

हम मंडी नहीं जायेंगे

खलिहान से उठते हुए

कहते हैं दाने

जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे

जाते-जाते

कहते जाते हैं दानें''

× × × ×

''मगर पानी में घिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते

वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में

कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं

थोड़ी-सी आग''

केदारनाथ सिंह थोड़ी सी धूप, आम की गुठलियाँ, पुआल की गंध, खाली टीन, भुने हुए चने, महावीर जी की आदमक़द मूर्ति, टुटही लालटेल को हर कीमत पर बचाने की कोशिश करने वाले कवि हैं। 'यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा/मैं लिखना चाहता हूँ'- यह सिर्फ केदारनाथ सिंह की काव्यपंक्ति भर नहीं है बल्कि उनकी प्रतिबद्धता और सजगता की पहचान भी है क्योंकि अब- ''इंतजार मत करो

जो कहना हो

कह डालो

क्योंकि हो सकता है

फिर कहने का काई अर्थ न रह जाय।''

उनकी कविता में एक ऐसा संसार है जिसमें कवि पूरी ताकत से शब्दों को फेंकना चाहता है, आदमी की तरफ यह जानते हुए कि आदमी का कुछ नहीं होगा, वह भरी सड़क पर सुनना चाहता है वह धमाका जो शब्द और आदमी की टक्कर से पैदा होता है और यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा, वह लिखना चाहता है।

केदारनाथ सिंह के परवर्ती संग्रह 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस' तथा 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ'- की कविताएँ जीवनोत्सव की कविताएँ हैं। उन्हीं के शब्दों में कहा नाम तो वे अपने काव्यानुभव के हर अगले पड़ाव पर धीरे-धीरे पहुँचते हैं जैसे- ''बनारस में धूल/धीरे-धीरे उड़ती है/धीरे-धीरे चलते हैं लोग/धीरे-धीरे बजते हैं घंटे/शाम धीरे-धीरे होती है।'' कविता में 'धीरे-धीरे' होने की यह लय इस बात की प्रमाण है कि कवि शब्दों और भावनाओं को संतुलन के साथ पेश करना चाहता है। विसंगतियों से भरे इस दौर में उन्हें आदमियत की तलाश है और उसके होने पर गहरा भरोसा भी है। उसे विश्वास है कि-

'एक दिन भक् से

मूँगा मोती

हल्दी-प्याज

कबीर-नरक

झींगुर कुहासा

सभी के आशय स्पष्ट हो जायेंगे।'

20.3.2 केदारनाथ सिंह: काव्य-भाषा और बिम्बविधान

केदारनाथ सिंह का मूल स्वर एक गीतकार का है। 'अभी बिल्कुल अभी' में वे गीतों की छन्दयोजना को इस हद तक संभालने की कोशिश करते हैं कि उनको मुक्तछन्द की कविताएँ सिद्ध किया जा सके। कम से कम 1965-67 तक केदारनाथ सिंह गीतों के प्रयोग कर रहे थे, न कि मुक्तछन्द में। कवि के द्वारा एक खास विधा में प्रयोग की इतनी संभावनाओं का उद्घाटन उनकी प्रयोग शक्ति और दृष्टि को प्रमाणित करता है। केदारनाथ सिंह की काव्य-भाषा कविताई की काव्य-भाषा से अलग अपने पाठक से सार्थक संवाद की काव्य-भाषा है। उनका मानना है

कि ''बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव-अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्रायः असंभव है।'' उनकी कविताओं के विषय में यह भी कहा जाता है कि उनके यहाँ काव्य-भाषा व बिम्बविधान में अमूर्त्तन बहुत है। कहीं-कहीं अमूर्त्तन अर्थ-ग्रहण की अबूझ प्रक्रिया तक पहुँच जाता है। जैसे- 'उसे बेहद हैरानी हुई जब उसने/खरहों की माँद में जमीन नहीं है' या 'आदमी की परछाई एक छोटे-से चम्मच में रखी जा सकती है या नहीं' इत्यादि। केदारनाथ सिंह की कविताएँ उस दौर में लिखी गई जब सपाटबयानी का खूब शोर-शराबा था जबकि ज़िन्दगी की जटिलता को सपाटशैली में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता था। इसलिये केदारनाथ सिंह सूर्य, जमीन, रोटी, बैल, बढ़ई और चिड़िया, एक प्रेम-कविता को पढ़कर, धूप में घोड़े पर बहस आदि कविताओं में सौन्दर्यमूलक योजना के तहत चीजों को बिखरा देते हैं। इसके माध्यम से वस्तुओं के रिश्तों और स्पेस में अनुस्यूत अर्थवत्ता की तलाश करते हैं। बर्ड्सवर्थ ने जिस कविता में भावों के सहज एवं तीव्र उच्छलन की बात की है, केदारनाथ सिंह उन स्वतःस्फूर्त उद्रेकों को रोककर अधिक आभामय, अधिक प्रखर बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिये वे प्रायः दृश्यचित्रों को उनके संदर्भ से काटकर ऐसे घनचित्र उभारते हैं जो एक ही दृश्य को अनेक संदर्भ से जोड़ता, अनेक अर्थों को उभारता चला जाता है। अपने मन के विक्षोभ को, आकाश को, पराजय और असमर्थता को भी बिम्बों में बांधा जा सकता है यह सब पाब्लो नेरूदा की कविताओं की विशेषता है। पर केदारनाथ सिंह के यहाँ बिम्ब सीधे और आक्रामक रूप में आते हैं, दबे-सिकुड़े संदर्भ से कटे हुए नहीं- लगता है छतों पर सूखते हुए सारे कपड़े/मेरी त्वचा और हड्डियों की मांग से/उतनी ही दूर है/जितनी मेरे गॉव के टीले से/फिदेल कास्त्रों की भूरी दाढ़ी।

केदारनाथ सिंह अपने दौर के कवियों के बीच भाषा के जादूगर हैं। वे कभी-कभी चौकाने के प्रलोभन में पड़ जाते हैं, इससे उनकी कविताओं का सौन्दर्य बिगड़ता सा लगता है लेकिन वे बहुत कीमती धागे से बाँध लेते हैं। उनकी कविताओं में एक ठहराव है, बँधाव है। रोक रखने और बाँध लेने की शक्ति है, प्रश्न पर प्रश्न उभारते जाने की क्षमता है, पर उत्तर नहीं, गति नहीं। उनकी कविताएँ-

एक दिशा है

जो लौटा देती है सारे दूत

प्रश्नवाहक

भटकी आवाज।

× × × ×

छत पर आकाश

आकाश में

रखी हुई

सतरंगे बाँस की टेढ़ी-सी कुर्सी

कुर्सी में

मैं हूँ। -

यह मोह ही केदार की काव्यात्मक शिल्प विधान की विशेषता है। केदारनाथ सिंह पर 'कवि' पत्रिका में लिखते हुए कभी नामवर सिंह ने लिखा था कि वह ''मद्धिम संवेगों के कवि'' हैं। उनकी विशेषता है कि वे केवल रंगों और ध्वनियों को ही नहीं, पूरे दृश्य खण्ड को ही एक साथ अपनी तूली मे उठाकर नये सौन्दर्य की रचना कर सकते हैं। वे अंधेरे में पहुँच के पार फेंकने के उभरते हुए चित्रों की प्रतीति करा देते हैं-

'फेंक दिया जाता हूँ

(अपने ही पैरो से)

हवा की गेंद-सा

बाहर अंधेरे में

पहुँच के पार'

यहाँ फेंकने वाले पैर उनके ही हैं। उन्होंने अपना क्रूस स्वयं तैयार किया है और उसमें अपने को जड़ा भी, अपनी ही गढ़ी कीलों से है। वे अपनी कविताओं में कवि के रूप में कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। अद्भुत है शब्दों की रंगत, मिज़ाज और ताप की उनकी पहचान, असाधारण और अविश्वसनीयता की हद तक असाधारण है उनकी दक्षता।

20.3.3. संक्षिप्त जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म: 1932, चकिया जिला बलिया, उ0प्र0 सामान्य किसान परिवार में। हाईस्कूल से एम.ए. तक की शिक्षा वाराणसी में। 1964 में काशी विश्वविद्यालय से 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान' विषय पर पीएचडी उपाधि। विधिवत् काव्य लेखन की शुरूआत 1952 से। बनारस से निकलने वाली अनियतकालीन पत्रिका 'हमारी पीढ़ी' से सम्बद्ध। 1959 में प्रकाशित 'तीसरा सप्तक' के कवियों में से एक। पेशे से अध्यापक, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी, सेंट इण्डूज कॉलेज, गोरखपुर, उदित नारायण कॉलेज, पडरौना तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय,

गोरखपुर से सम्बद्ध। 1976 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए वहीं से सेवानिवृत्त। प्रकाशित काव्य संग्रह- अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, अकाल में सारस, यहाँ से देखो, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ। आलोचना- कल्पना और छायावाद, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, मेरे समय के शब्द।

20.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना

20.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ

1. रोटी

उसके बारे में कविता करना
हिमाक़त की बात होगी
और वह मैं नही करूँगा

मैं सिर्फ़ आपको आमन्त्रित करूँगा
कि आप आयें और मेरे साथ सीधे
उस आग तक चलें
उस चूल्हे तक--जहाँ वह पक रही है
एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ
समूची आग को गन्ध में बदलती हुई
दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़
वह पक रही है
और पकना
लौटना नहीं है जड़ों की ओर

वह आगे बढ़ रही है
धीरे-धीरे
झपट्टा मारने को तैयार
वह आगे बढ़ रही है
उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद
और विचारों तक

मुझे विश्वास है
आप उसका सामना कर रहे हैं

मैंने उसका शिकार किया है
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ

मेरे हाथ खोजने लगते हैं
अपने तीर और धनुष
मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं
जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ

मैंने जब भी उसे तोड़ा है
मुझे हर बार पहले से ज़्यादा स्वादिष्ट लगी है
पहले से ज़्यादा गोल

और खूबसूरत
पहले से ज़्यादा सुर्ख और पकी हुई

आप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ़ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे-यह भूख के बारे में
आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है

आप देखेंगे
दीवारें धीरे-धीरे
स्वाद में बदल रही है।

2. पानी में घिरे हुए लोग

पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को
और एक दिन
बिना किसी सूचना के
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर
धर-असबाब लादकर

चल देते हैं कहीं और

यह कितना अद्भुत है
कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो
उन्हें पानी में
थोड़ी-सी जगह ज़रूर मिल जाती है
थोड़ी-सी धूप
थोड़ा-सा आसमान

फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे
उलझा देते हैं मूँज की रस्सियाँ और टाट
पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गन्ध
वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ
खाली टिन
भुने हुए चने
वे ले आते हैं चिलम और आग

फिर बह जाते हैं उनके मवेशी
उनकी पूजा की घंटी बह जाती है
बह जाती है महावीर जी की आदमक़द मूर्ति

घरों की कच्ची दीवारें
छीवारों पर बने हुए हाथी-घोड़े
फूल-पत्ते
पाट-पटोरे
सब वह जाते हैं

मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी-सी आग

फिर डूब जाता है सूरज
कहीं से आती हैं
पानी पर तैरती हुई
लोगों के बोलने की तेज़ आवाज़ें
कहीं से उठता है धुँआ
पेड़ों पर मँडराता हुआ
और पानी में घिरे हुए लोग
हो जाते हैं बेचैन
वे जला देते हैं
एक टुटही लालटेल

टाँग देते हैं किसी ऊँचे बाँस पर
ताकि उनके होने की खबर
पानी के पार तक पहुँचती रहे

फिर उस मद्धिम रोशनी में
पानी की आँखों में
आँखें डाले हुए
वे रात-भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने
पानी की तरफ
पानी के ख़िलाफ़

सिर्फ उनके अन्दर
अरार की तरह
हर बार कुछ टूटता है
हर बार पानी में कुछ गिरता है
छपाक्.........छपाक्...........

3. फर्क नहीं पड़ता
हर बार लौटकर
जब अन्दर प्रवेश करता हूँ
मेरा घर चौंककर कहता है ‘बधाई‘

ईश्वर
यह कैसा चमत्कार है
मैं कहीं भी जाऊँ
फिर लौट आता हूँ

सड़कों पर परिचय-पत्र माँगा नहीं जाता
न शीशे में सबूत की ज़रूरत होती है
और कितनी सुविधा है कि हम घर में हों
या ट्रेन में
हर जिज्ञासा एक रेलवे टाइम टेबुल से
शान्त हो जाती है

आसमान मुझे हर मोड़ पर
थोड़ा-सा लपेटकर बाक़ी छोड़ देता है
अगला कदम उठाने
या बैठ जाने के लिए

और यह जगह है जहाँ पहुँचकर

पत्थरों की चीख साफ़ सुनी जा सकती है

पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फ़र्क नहीं पड़ता
तुमने जहाँ लिखा है ‘प्यार’
वहाँ लिख दो ‘सड़क’
फ़र्क नहीं पड़ता

मेरे युग का मुहाविरा है
फ़र्क नहीं पड़ता
अक्सर महसूस होता है
कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे
और अफ्रीका की धुँधली नदियों के छोर
एक हो गये हैं

और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में
सटी है

मैं बहस शुरू तो करूँ
पर चीज़ें एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं
कि सामने की मेज़ को
सीधे मेज़ कहना

उसे वहाँ से उठाकर
अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है

और यह समय है
जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर
अलग हो जाती है
और यह समय है
जब मेरे जूते के अन्दर की एक नन्हीं-सी कील
तारों को गड़ने लगती है

4. अनागत

इस अनागत को करें क्या
जो कि अक्सर
बिन सोचे, बिना जाने
सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है
किताबों में घूमता है
रात की बीरान गलियों-बीच गाता है
राह के हर मोड़ से होकर गुज़र जाता
दिन ढले--
सूने घरों में लौट आता है,
बाँसुरी को छेड़ता है
खिड़कियों के बन्द शीशे तोड़ जाता है

किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटा देता
बिस्तरों पर छाप अपनी छोड़ जाता है।

इस अनागत को करें क्या
जो न आता है, न जाता है!

आजकल ठहरा नहीं जाता कहीं भी,
हर घड़ी, हर वक्त खटका लगा रहता है
कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाये
हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है!

फूल जैसे अँधेरे में
दूर से ही चीखता हो
इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है
हाथ उसके
हाथ में आकर बिछल जाते,
स्पर्श उसका
धमनियों को रौंद जाता है।

पंख
उसकी सुनहली परछाइयों में खो गये हैं,
पाँव

उसके कुहासे में छटपटाते हैं।

इस अनागत को करें क्या हम
कि जिसकी सीटियों की ओर
बरबस खिंचे जाते हैं।

5. एक पारिवारिक प्रश्न

छोटे-से आँगन में
माँ ने लगाये हैं
तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है
बरगद छतनार

मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ!

मुट्ठी में प्रश्न लिये
दौड़ रहा हूँ वन-वन,
पर्वत-पर्वत,
रेती-रेती......
बेकार।

20.4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना

केदारनाथ सिंह का काव्यात्मक विकास गीतकार के रूप में हुआ, जहाँ कथ्य व शिल्प की नयी दीप्ति थी और स्वर में ताज़गी, निजता और सम्वेद्यता भी- 'झरने लगे नीम के पत्ते', 'ये कोयल के बोल उड़ा करते' तथा 'आना जी बादल जरूर' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। केदारनाथ सिंह नई कविता के थोड़े से भाग्यशाली कवियों में हैं जिनकी काव्यशक्ति पर प्रयोगवादियों तथा प्रगतिवादियों दोनों ने विश्वास जताया था। वे अपने आसपास की हल्लेबाजी से अलग, अपनी निजी जमीन पर टिके उस पूरे दौर में कविता करते रहे जब समूचा काव्य परिदृश्य भीड़ के साथ बहा जा रहा था लेकिन केदारनाथ सिंह के लिए परम्परा का एक गहरा अर्थ था और वह उनका निषेध करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे:

'छोटे से आंगन में/माँ ने लगाए हैं/तुलसी के बिरवे दो/पिता ने उगाया है/बरगद छतनार/मैं अपना नन्हा गुलाब/कहाँ रोप दूँ।' यहाँ एक विनम्र स्वीकार है पूर्ववर्तियों के कृतित्व का, उनके द्वारा सिंचित-पल्लवित परम्परा का लेकिन उसमें नवीन के प्रति गहन आस्था भी है। वह जिसे प्रतिष्ठित करना चाहता है, वह कम प्यारा नहीं है- उसके लिए। वह न तुलसी की उपेक्षा करके गुलाब रोपने के पक्ष में हैं, न बरगद की छाया में उसे रोपकर इसे ग्रस्त होने देना चाहता है- यहाँ नई जमीन, नई संभावनाओं की खोज है। एक पारिवारिक प्रश्न सिर्फ पारिवारिक प्रश्न भर नहीं है बल्कि अपने पूरे सामाजिक-साहित्यिक संदर्भ के सम्मुख उपस्थित प्रश्न है, स्वीकृति और निषेध का और नवीन की स्थापना का भी।

केदार की कविताएँ अपने समय में बहुत देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। ये कविताएँ चुप्पी और शब्द के रिश्ते को बखूबी पहचानती हैं और उसे एक काव्यात्मक चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है। गीतों की रूमानियत से छुटकारा पाकर जब वह यथार्थ का साक्षात्कार करते हों या सामाजिक-राष्ट्रीय मोहभंग का सामना करते हैं तो उन्हें साफ दिखता है कि- ''भेड़िये से फिर कहा गया है/अपने जबड़ों को खुला रखे।'' इससे भारतीय जनतंत्र से उनकी निराशा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कविताओं में आत्मनिर्वासन से लेकर वस्तुकरण तक का वर्णन है। 'सूर्य' उनकी बस्ती के लोगों की दुनिया में वह अकेली चीज़ है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है। कवि के शब्दों में 'सिर्फ उस पर रोटी नहीं सेंकी जा सकती!'- यह संदर्भ अर्थव्यंजना को कहाँ तक खींच लाता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है कि 'केदार विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। उनकी कविता में शब्दार्थों की जो अद्वैतता है, स्पर्धाधर्मिता है, वह उसे विशिष्ट बनाती है।' केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चिंतता का भाव भी है, एक बेचैनी है, जो कविताओं के बीच में बिजली की तरह कौंध-कौंध उठती है- ''आप विश्वास करें/मैं कविता नहीं कर रहा हूँ/वह पक रही है/और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में/आग का बयान है/जो दीवारों पर लिखा जा रहा है।''- जो पक रही है वह 'रोटी' है। वह वहाँ तक चलना चाहता है जहाँ वह पक रही है- एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ/समूची आग को गंध में

बदलती हुई/दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज/वह पक रही है- उसके पकने में जनसरोकार और प्रतिबद्धता का भाव निहित है। यहाँ जीवनोन्मेष की अनुभूति प्रबल है। यहाँ कविता श्रम संस्कृति और जन सरोकार का तिर्यक साक्षात्कार न करके, सीधे करती है। सब मिलाकर यहाँ कविता के स्तर में विषमता है। 'रोटी' न सिर्फ़ राजनीतिक प्रतीक भर है बल्कि जनधर्मी प्रतीक भी है। केदार की कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा भी करती हैं। उनके यहाँ खलिहान से उठते हुए दानों की आवाज़ है, जो मण्डी जाने से इंकार करते हैं, मनुष्य के खाली सिर हैं, जो अपने बोझे का इंतेजार कर रहे हैं, रोहू मछली की डब-डब आँखें हैं, जिसमें जीने की अपार तरलता है और वह बेचैन धूल है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चयता के स्थान पर अनिश्चयता है, आत्मविश्वास के स्थान पर संशयग्रस्तता है। उनकी कविताएँ सौन्दर्य और उल्लास की ओर चलते रहने का आग्रह करती हैं लेकिन गहरी प्रश्नाकुलता का संकेत भी करती हैं। 'माझी के पुल में कितने पाये हैं ? ', 'रास्ता किधर है? ', 'क्या तुम जानते हो? ', 'क्या शुरू हो गया आमों का पकना? ', 'तुम अब तक चुप क्यों हो मेरे भाई? '- क्या यह अनायास है कि केदार की कविताएँ प्रश्नवाचक चिन्हों से भरी पड़ी हैं! क्योंकि कवि प्रश्नवाचकता को अभिप्राय सहित खोलना चाहता है। उनकी कविताओं में अस्पष्टताबोधक चित्र अवश्य हैं, पर उन्हीं में वे सूक्ष्य रेखाएँ भी हैं जो विचार-बोध को विशेष अर्थ-बोध प्रदान करती हैं- 'उनके लक्ष्यहीन मोड़ों पर खिंचे हुए टोली के हल्के इशारे हैं।' दिशाहीन चिड़िया के पर में आकांक्षा के जीवित रेशे हैं। कामकाज, घर-हाट, खेत-खलिहान, घर-परिवार, गर्द-गुबार की दुनिया में धुंधले पड़े मामूली शब्द, इस्तेमाल की मामूली चीज़ें, प्रकृति लोक के नगण्य तथ्य केदारनाथ सिंह की कविता में अपना बजूद प्रमाणित करते हैं। वे अपने कलात्मक कौशल से मामूलीपन में भी अर्थपूर्णता व अनिवार्यता की तलाश करते हैं। अनागत है तो 'हाथ उसके हाथ में आकर बिछल जाते हैं।' पूल अजन्में हैं लेकिन हवाओं में तैरते हैं। केदार की कविताएँ अपने दायरे को तोड़कर व्यापक वास्तविकता का सामना करने की आकुलता जगाती हैं। 'अनागत'- वैसे अमूर्त्त है लेकिन कवि-दृष्टि उसकी आहट को अपने परिवेश या वातावरण में देख लेती है और वातावरण के उन अमूर्त्त संदर्भों द्वारा अनागत को मूर्त्त करने का प्रयास करती है। इन्हीं जीवन्त संदर्भों के चलते 'अनागत' एक निराकार भविष्य के स्थान पर 'जीवित सत्ता' की तरह जान पड़ता है। कभी वह प्रेत छाया की तरह किताबों में घूमता है, कभी रात की वीरान गलियों के पार जाता है। कभी बाँसुरी को छेड़ता है, कभी खिड़कियों के बंद शीशे तोड़ जाता है, कभी किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटाते हुए बिस्तरों पर अपनी छाप अंकित कर जाता है। उसके आने-जाने की रहस्यता ऐसी है कि हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है। यहाँ प्रत्यक्ष है कि आस-पास के वातावरण से जो वस्तुएँ चुनी गई हैं, वे मन में निराकार और रहस्यमय अनागत की गतिविधियों को सजीव मूर्त्त और दीप्त बनाती है- फूल जैसे अंधेरे में दूर से ही चीखता है/इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है- उनका विश्लेषण करते हुए

कविता की बिम्वधर्मी असंगतियों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कविता का वक्तव्य और कवि का भी वक्तव्य यही है कि भविष्य यहीं-कहीं, आस-पास है, पर उसका रूप अनिश्चित अज्ञात है- हालांकि 'हम उसकी ओर बरबस खिंचे जाते हैं।'

केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता की सरलीकृत बोझिल शिथिलता तथा बिम्बधार्मिता की निरर्थकता का अनुभव कराते हैं। उनके यहाँ समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की है क्योंकि-

'चीज़े एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं

कि सामने की मेज को सीधे-मेज कहना,

उसे उठाकर अज्ञात अपराधियों के बीच रख देना है'

यहाँ भाषा अकारण ही, वक्तव्य की भाषा नहीं है- 'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'/वहाँ लिख दो सड़क/फर्क नहीं पड़ता/मेरे युग का मुहावरा है फर्क नहीं पड़ता।' मानवस्थिति की यह क्रूर विडम्बना- जिसके सामने हर जिज्ञासा रेलवे टाइम टेबुल से शांत हो जाती है'- वक्तव्य की सीधी भाषा में ही अपने को व्यक्त कर सकती है। यहाँ न कोई चित्रमयता है, न काव्योचित अलंकृति। यह कविता नेहरू युग के बाद के पनपे मोहभंग के बदले परिप्रेक्ष्य के साथ सूचित करती है, संकेत करती है और विश्लेषित भी करती है- जहाँ किसी चीज़ से कोई फर्क नहीं पड़ता- क्या यह स्थिति अमानवीयता की चरम स्थिति को नहीं सूचित करती है?

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. केदारनाथ सिंह का जन्म .... सन् में हुआ था।
2. केदारनाथ सिंह .... सप्तक के कवि हैं।
3. केदारनाथ सिंह हिन्दी कविता में .... के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।
4. अभी बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह का .... संग्रह है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. केदारनाथ सिंह की काव्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. केदारनाथ सिंह की कविताओं का महत्त्व बताइये।

3. 'केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं' कैसे ?

4. अनागत या फर्क नहीं पड़ता कविता का वैशिष्ट बताइये।

20.5 सारांश

इस ईकाई में आपने साठोत्तरी कविता के संदर्भ में केदारनाथ सिंह की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने नेहरू युग के अन्त के बाद के दौर में भारतीय समाज में पनपे मोहभंग, संत्रास तथा मूल्य विघटन के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, शमशानी कविता, किसिम-किसिम की कविता वाले समय में केदारनाथ सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। केदारनाथ सिंह तीसरा सप्तक के कवि हैं, उनकी काव्ययात्रा गीतकार के रूप में प्रारंभ होती है। वे इस अर्थ में विलक्षण कवि हैं कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की शिविर बद्धता के बीच वे दोनों के लिए समान प्रिय हैं। उनकी कविताएँ पहली बार रूप या तंत्र के धरातल पर एक आकर्षक विस्मय पैदा करती हैं, क्रमशः बिम्ब और विचार के संगठन में मूर्त्त होती हैं और एक तीखी बेलौस सच्चाई की तरह पूरे सामाजिक दृश्य पर अंकित होती चली जाती हैं। यहाँ कविता किसी अर्थ में एकालाप नहीं, वह हर हालत में एक सार्थक संवाद है। वह एक पूरे समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करती है। चुप्पी और शब्द के रिश्ते को वह बखूबी पहचानती हैं और उसे एक ऐसी चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है- जिसके उदाहरण कम मिलते हैं। ये कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा करती हैं। उनकी संवेदना अपने समय के समस्त हिन्दी कवियों से भिन्न है और उन्हें सौन्दर्य के ऐसे अछूते आयामों से जोड़ती है जिनकी ओर सामान्यतः औरों की दृष्टि ही नहीं जाती। ग्रामांचल में एक विशाल सपाट, फैला, हरियाली से भरा दृश्य खण्ड, जो संभवतः किसी तलाब का कछार- इन सबका सार्थक चित्र अन्यत्र मुश्किल है- हवा शान्त है/लोग/भागते हुए/स्वयं के साथ दौड़ती परछाई से अलग/तेजतर्रार /सीमान्तों पर/मुड़ते/मुड़ते/झण्डे बदल रहे हैं अपने।

केदारनाथ सिंह अपनी रचनायात्रा में कई बदलाव के साथ सक्रिय हैं। उनके प्रत्येक रचना संग्रह के साथ ताज़गी और रंगत के कई-कई विविध रूप अलग-अलग उभरते हैं। वे अपनी कविताओं में कवि कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। वे भाषा के जादूगर अतिरंजना के कारण नहीं हैं बल्कि उनकी कविताएँ एक विशाल मंच पर सुनहरी पगड़ी और चमचमाती कोट पहने गिलि-गिलि करता हवा से या किसी तीसरे के हैट से मनमानी चीज़ें निकालता, दिखाता, गायब करता, बदलता, जोड़ता, तोड़ता और पूरी शान

और आत्मविश्वास से एक छोर से दूसरे छोर तक टहलता और मुस्कुराता हुआ गोगिया पाशा की याद दिलाने वाली कविताएँ हैं।

केदार मुख्यतः रूपवादी कवि हैं उनका पैटर्न आश्चर्यजनक है। वे बहुत तेजी से घटित होने वाले बदलाव के खण्डित प्रभाव को शोर भरी निशब्धता में परिवर्तित कर देते हैं। उनकी कविताएँ उस दुनिया में विचरण करती हैं जिससे अभिजात्य रूचि वाले अन्य रूपवादी दूर भागते हैं- उनके यहाँ कन्धे पर कल्हाड़ी, पत्थरों की रगड़, आटे की गंध, बंसी डाले झुम्मन मियाँ, पकी रोटियों की गंध, अपनी समूची आदिम गरिमा के साथ उपस्थित है। इसलिये उनकी कोई भी कविता प्रतिक्रियावादी नहीं है। केदार जिस परिचित और आत्मीय दुनिया को अपनी कविताओं में उतारते हैं, उससे ही पैदा होता है वह विश्वास कि यह हमारा अपना कवि है और इसलिए थकान मिटाने या जी बहलाने को वह थोड़ी देर भटका और बिलमा तो सकता है, पर हमें धोखा नहीं दे सकता। वे काव्य प्रयोजन के प्रति बेहद सजग हैं, उनमें काव्य चमत्कार प्रदर्शित करने से अधिक चिंता जीवन के जवलन्त सरोकारों से जुड़ने की देखी जा सकती है। जहाँ कवि एक ऐसी आडम्बरहीन शैली का 'सादगी ओ पुरकारी बेखुदी ओ हुशियारी' का विकास करते हैं। वे आवेग के स्थान पर विट से काम लेते हैं, इसलिये उनकी सादगी विचलित और विगलित नहीं करती, हमें चमत्कृत करती है। केदार की कविताओं में एक कलात्मक नियंत्रण, एक लगाव-अलगाव का युगपत् व्यापार सहज ही पाया जाता है। ऊर्जा और कला का एक सार्थक संगठन केदार की खासियत है जिसे विलक्षण उत्तेजना के साथ कवि विश्लेषणपरक बनाता है।

20.6 शब्दावली

1. तीसरा सप्तक: (प्रकाशन-1959, से0 अज्ञेय) संकलित कवि: कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण सारी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, प्रयाग नारायण त्रिपाठी)

2. अकविता: अकविता का प्रयोग । साठोत्तरी कविता के अर्थ में किया गया है। 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में चौदह कवियों की कविताओं का संग्रह 'प्रारंभ' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसके सम्पादकीय 'नये काव्य की भूमिका' के द्वारा प्रयोगवादियों के विरूद्ध सामूहिक आक्रोश के रूप में 'अभिनव काव्य' का प्रवर्तन किया गया। अभिनव काव्य शब्द को अपर्याप्त मानकर इसे । साठोत्तरी शीर्षक दिया गया जिसे अकविता के नाम से जाना जाता है। श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी की कविताओं के लिये यह नाम दिया गया। अकविता के मूल में विश्वयुद्धों के बाद दुनिया भर में फैली हताशा, एब्सर्डिटी और निरर्थकताबोध की लहर को माना जाता है जिसे किर्केगर्ड के परम्पराद्रोह तथा नीत्शे की ईश्वर

की मृत्यु की घोषणा से काफी बल मिला। आजादी के बाद पनपे मोहभंग ने इसे हवा दी और यह आन्दोलन खड़ा हो गया।

3. बिम्बग्रहण: ऐसी रूप योजना जो मन के समक्ष वर्ण्य-वस्तु को प्रत्यक्ष कर दे, बिम्ब कहलाती है। केदारनाथ सिंह के अनुसार काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है। इस प्रकार सामान्य बिम्ब और काव्य बिम्ब में फर्क होता है। जहाँ भी कवि का उद्देश्य विषय का आलम्बन रूप में ग्रहण करना होगा वहाँ बिम्ब ग्रहण अनिवार्य होगा। बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 1. 1932 2. बिम्ब 3. तृतीय सप्तक 4. प्रथम कविता संग्रह

20.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

2. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

3. श्रीवास्तव, (सम्पादक) परमानन्द, दिशांतर (समकालीन कविता का संकलन)।

4. प्रतिनिधि कविताएँ: केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन।

5. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग।

20.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. श्रीवास्तव, परमानन्द, कविता का अर्थात।

3. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नयी कविता और अस्तित्ववाद।

4. सिंह, नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता।

5. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

20.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के काव्य वैशिष्ट्य का महत्त्व बताइए।

2. केदारनाथ सिंह की कविताओं के शिल्प वैशिष्ट्य का मूल्यांकन कीजिये।

3. 'केदारनाथ सिंह की कविताओं का बिम्बविधान' को स्पष्ट कीजिये।

4. 'केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता के परिदृश्य विशालता के कवि हैं'- कैसे ?

5. केदारनाथ सिंह मानवीय लगाव और जीवनोल्लास के कवि हैं- स्पष्ट कीजिए।